

श्रीमद्वाल्मीकि

रामायण

हिन्दी भाषानुवाद सहित

युद्धकाण्ड

पूर्वार्द्ध—७

अनुवादक

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा

प्रकाशक

रामनारायण लाल

पब्लिशर और बुकसेलर

इलाहाबाद

सचित्र

श्रीमद्वाल्मीकि-रामायण

[हिन्दीभाषानुवाद सहित]

युद्धकाण्ड पूर्वार्द्ध—७

अनुवादक

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा, एम० आर० ए० एस०

प्रकाशक

रामनारायण लाल

पब्लिशर और बुकसेलर

इलाहाबाद

१९२७

प्रथम संस्करण २,०००] [मूल्य २)

Printed by Ramzan Ali Shah at the National Press,
Allahabad.

युद्धकाण्ड-पूर्वार्द्ध

की

विषयानुक्रमणिका

के लिये यह भी कहना कि, अङ्गदादि वानर लङ्का को तहस नहस कर डालेंगे। अतः सेना को युद्धयात्रा के लिये शीघ्र आज्ञा दी जाय।

उन्नीसवाँ सर्ग

विभीषण का श्रीरामचन्द्र जी के चरण पकड़, रावण द्वारा अपने अपमानित किये जाने की बात कहना। विभीषण पर विश्वास कर श्रीरामचन्द्र जी का उनसे राक्षसों के बलाबल के सम्बन्ध में प्रश्न करना और विभीषण का उस प्रश्न का यथार्थ उत्तर देना। विभीषण के मुख से सारा हाल सुन, श्रीरामचन्द्र जी का प्रतिज्ञा करना और राक्षसों के वध में श्रीराम को सहायता देने की प्रतिज्ञा विभीषण द्वारा किया जाना। विभीषण का राज्याभिषेक। समुद्र पार होने के विषय में सुग्रीव का विभीषण से प्रश्न। उत्तर में विभीषण का यह सलाह देना कि, श्रीरामचन्द्र जी समुद्र की शरणागति करें। सुग्रीव के मुख से यह बात सुन, श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण और सुग्रीव की आलोचना प्रत्यालोचना। अन्त में कुश बिछा, श्रीरामचन्द्र जी का समुद्र के सामने बैठना।

बीसवाँ सर्ग

रावण के भेजे शार्दूल नामक जासूस का सुग्रीव के सैन्यशिबिर में आगमन और लौट कर रावण से वानर सैन्य का वर्णन। इस पर रावण का शुक नामक दूसरे गुप्तचर को भेजना। शुक का पकड़ा जाना और वानरों द्वारा सताये जाने पर शुक का श्रीरामचन्द्र जी की दुहाई देना। इस पर श्रीरामचन्द्र जी का शुक को वानरों के अत्याचार से छुड़वाना। सुग्रीव का शुक के द्वारा रावण के पास संदेस भिजवाना।

॥ इति ॥

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्रामायणपारायणोपक्रमः

[नोट—सनातनधर्म के अन्तर्गत जिन वैदिकसम्प्रदायों में श्रीमद्रामायण का पारायण होता है, उन्हीं सम्प्रदायों के अनुसार उपक्रम और समापन क्रम प्रत्येक खण्ड के आदि और अन्त में क्रमशः दे दिये गये हैं।]

श्रीवैष्णवसम्प्रदायः

—※—

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥ १ ॥

वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः।
शृण्वन्रामकथानादं को न याति परां गतिम् ॥ २ ॥

यः पिबन्सततं रामचरितामृतसागरम्।
अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम् ॥ ३ ॥

गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम्।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ॥ ४ ॥

अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम्।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम् ॥ ५ ॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥ ६ ॥

उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥ ७ ॥

आञ्जनेयमतिपाटलाननं
काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम् ।
पारिजाततरुमूलवासिनं
भावयामि पवमाननन्दनम् ॥ ८ ॥

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं
तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम् ।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं
मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ॥ ९ ॥

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।
वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥ १० ॥

तदुपगतसमाससन्धियोगं
सममधुरोपनतार्थवाक्यबद्धम् ।
रघुवरचरितं मुनिप्रणीतं
दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम् ॥ ११ ॥

श्रीराघवं दशरथात्मजमप्रमेयं
सीतापतिं रघुकुलान्वयरत्नदीपम् ।
आजानुबाहुमरविन्ददलायताक्षं
रामं निशाचरविनाशकरं नमामि ॥ १२ ॥

वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्येपुष्पकमासने मणिमये वीरासने सुस्थितम् ।

अग्रे वाचयति प्रभञ्जनसुते तत्त्वं मुनिभ्यः परं
व्याख्यान्तं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम् ॥१३॥

—:※:—

माध्वसम्प्रदायः

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ १ ॥

लक्ष्मीनारायणं वन्दे तद्भक्तप्रवरो हि यः ।
श्रीमदानन्दतीर्थाख्यो गुरुस्तं च नमाम्यहम् ॥ २ ॥

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।
आदावन्ते च मध्ये च विष्णुः सर्वत्र गीयते ॥ ३ ॥

सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वसिद्धिकरं परम् ।
सर्वजीवप्रणेतारं वन्दे विजयदं हरिम् ॥ ४ ॥

सर्वाभीष्टप्रदं रामं सर्वारिष्टनिवारकम् ।
जानकीजानिमनिशं वन्दे मद्गुरुवन्दितम् ॥ ५ ॥

अभ्रमं भङ्गरहितमजडं विमलं सदा ।
आनन्दतीर्थमतुलं भजे तापत्रयापहम् ॥ ६ ॥

भवति यदनुभावादेडमूकोऽपि वाग्मी
जडमतिरपि जन्तुर्जायते प्राज्ञमौलिः ।
सकलवचनचेतोदेवता भारती सा
मम वचसि विधत्तां सन्निधिं मानसे च ॥ ७ ॥

मिथ्यासिद्धान्तदुर्ध्वान्तविध्वंसनविचक्षणः ।
जयतीर्थाख्यतरणिर्भासतां नो हृदम्बरे ॥ ८ ॥

चित्रैः पदैश्च गम्भीरैर्वाक्यैर्मानैरखण्डितैः ।
गुरुभावं व्यञ्जयन्ती भाति श्रीजयतीर्थवाक् ॥ ९ ॥

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥ १० ॥

वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः ।
शृण्वन्रामकथानादं को न याति परां गतिम् ॥ ११ ॥

यः पिबन्सततं रामचरितामृतसागरम् ।
अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम् ॥ १२ ॥

गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम् ।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ॥ १३ ॥

अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् ।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम् ॥ १४ ॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥ १५ ॥

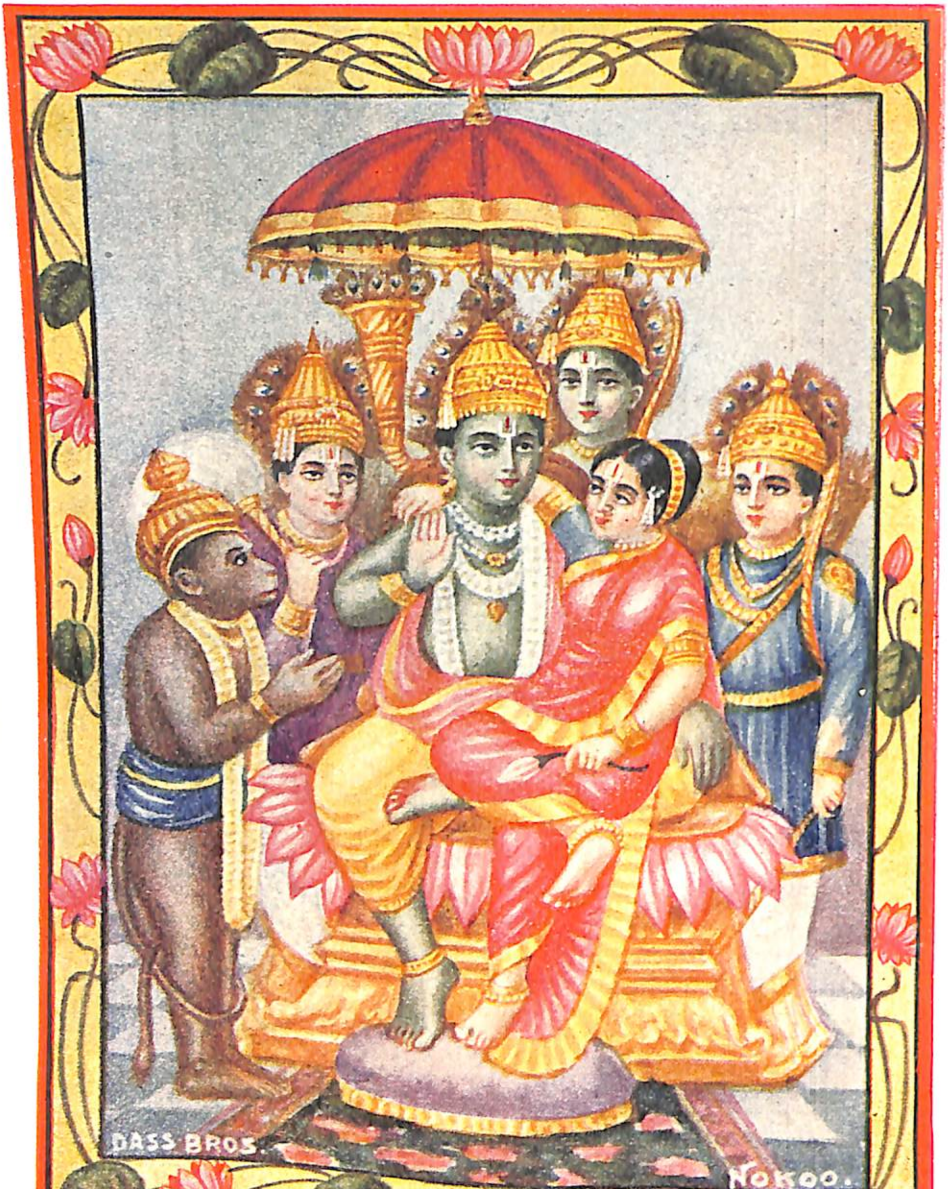
उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥ १६ ॥

आञ्जनेयमतिपाटलाननं
काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम् ।

वामे भूमिसुता पुरश्च हनुमान्पश्चात्सुमित्रासुतः
शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वाय्वादिकोणेषु च ।
सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्
मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम् ॥१९॥

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो
नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः ॥ २० ॥

—※—



आसाद्य नगरीं दिव्यामभिषिक्ताय सीतया ।
राज:धिराजराजाय रामभद्राय मंगलम् ॥

श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम्

युद्धकाण्डः

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं यथावदनुभाषितम् ।
रामः प्रीतिसमायुक्तो वाक्यमुत्तरम[1]ब्रवीत् ॥ १ ॥

हनुमान जी द्वारा यथावत् कहे हुए वचन सुन, श्रीरामचन्द्र जी अत्यन्त प्रसन्न हुए और प्रिय संवाद सुनने के अनन्तर समयोचित यह बचन बोले ॥ १ ॥

कृतं हनुमता कार्यं सुमहद्भुवि दुष्करम् ।
मनसाऽपि यदन्येन न शक्यं धरणीतले ॥ २ ॥

देखा, हनुमान जी ने ऐसा बड़ा काम किया है, जिसे इस पृथिवीतल पर ता कोई कर नहीं सकता । करना ता जहाँ तहाँ, ऐसा काम करने की इस संसार में कोई कल्पना भी नहीं कर सकता ॥ २ ॥

न हि तं परिपश्यामि यस्तरेत महोदधिम् ।
अन्यत्र गरुडाद्वायोरन्यत्र च हनूमतः ॥ ३ ॥

गरुड़ जी, पवन देव और हनुमान जी को छोड़, मुझे ऐसा और कोई नहीं देख पड़ता जो महासागर के पार जा सके ॥ ३ ॥

---

१ उत्तरं—प्रियश्रवणोत्तर कालयोग्यम् । (रा०)

देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
अप्रधृष्यां पुरीं लङ्कां रावणेन सुरक्षिताम् ॥ ४ ॥

देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, उरग और राक्षस भी जिस लङ्कापुरी में नहीं पहुँच सकते, रावण द्वारा रक्षित उसी लङ्कापुरी में ॥ ४ ॥

प्रविष्टः सत्त्वमाश्रित्य श्वसन्को नाम निष्क्रमेत् ॥ ५ ॥

पहुँच, जीता हुआ वहां से कौन लौट सकता है ? ॥ ५ ॥

को विशेत्सुदुराधर्षां राक्षसैश्च सुरक्षिताम् ।
यो वीर्यबलसम्पन्नो न समः स्याद्धनूमतः ॥ ६ ॥

हनुमान के समान बलवान और पराक्रमी मनुष्य को छोड़ कर, ऐसा कौन है जो अकेला, उस दुर्धर्ष नगरी में, घुस भी सके, जो राक्षसों द्वारा सुरक्षित है ॥ ६ ॥

भृत्यकार्यं हनुमता सुग्रीवस्य कृतं महत् ।
एवं विधाय स्वबलं सदृशं विक्रमस्य च ॥ ७ ॥

निश्चय ही इस प्रकार अपने विक्रम के योग्य बल प्रदर्शन कर, हनुमान जी ने सुग्रीव का बड़ा भारी भृत्यकार्य (चाकरी) किया है ॥ ७ ॥

यो हि भृत्यो नियुक्तः सन्भर्त्रा कर्मणि दुष्करे ।
कुर्यात्तदनुरागेण तमाहुः पुरुषोत्तमम् ॥ ८ ॥

जो भृत्य, अपने मालिक द्वारा किसी कठिन काम को करने के लिये नियुक्त किये जाने पर, उस काम को जी लगा कर, कर डालता है, वह सर्वोत्तम सेवक कहलाता है ॥ ८ ॥

नियुक्तो यः परं कार्यं न कुर्यान्नृपतेः प्रियम् ।
भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुर्मध्यमं नरम् ॥ ९ ॥

जो भृत्य किसी एक कार्य के लिये नियुक्त किये जाने पर, अपने प्रभु (राजा) के हितकर अन्य कार्यों के उपस्थित होने पर, अपनी सामर्थ्यानुसार उन्हें पूरा नहीं करता, वह मध्यमश्रेणी का भृत्य है ॥ ९ ॥

नियुक्तो नृपतेः कार्यं न कुर्याद्यः समाहितः ।
भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुः पुरुषाधमम् ॥ १० ॥

जो भृत्य सामर्थ्यवान होकर भी प्रभु (राजा) द्वारा निर्दिष्ट कार्य को यत्नपूर्वक पूरा नहीं करता, वह अधम सेवक कहलाता है ॥ १० ॥

तन्नियोगे नियुक्तेन कृतं कृत्यं हनूमता ।
न चात्मा लघुतां नीतः सुग्रीवश्चापि तोषितः ॥ ११ ॥

परन्तु हनुमान जी ने राज्याज्ञा में नियुक्त होकर अपना कर्तव्य कार्य यथावत् पूरा किया है। इनको कहीं भी नीचा नहीं देखना पड़ा और अतः इन्होंने सुग्रीव को भी सन्तुष्ट किया है ॥ ११ ॥

अहं च रघुवंशश्च लक्ष्मणश्च महाबलः ।
वैदेह्या दर्शनेनाद्य [1]धर्मतः परिरक्षिताः ॥ १२ ॥

हनुमान जी के जानकी को देख आने से मैं तथा बलवान् लक्ष्मण तथा अन्य रघुवंशियों का धर्म बच गया, (अथवा हम सब आत्मघात रूपी महाअधर्म से बच गये) ॥ १२ ॥

---

१ धर्मतः परिरक्षिताः—धर्मेस्थापिताः । (गो०)

इदं तु मम दीनस्य मनो भूयः प्रकर्षति[1] ।
यदिहास्य प्रियाख्यातुर्न कुर्मि सदृशं प्रियम् ॥ १३ ॥

इस घड़ी मुझ दीन को एक बात बहुत सता रही है। वह यह है कि, मैं इस प्रिय संवाद देने वाले हनुमान को इस कार्य के अनुरूप कुछ भी पारितोषिक नहीं दे सकता ॥ १३ ॥

एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः ।
मया कालमिमं प्राप्य दत्तश्चास्तु महात्मनः ॥ १४ ॥

जो हो, इस समय, मेरा यह सर्वस्वदान रूप आलिङ्गन ही महात्मा (महाबली) हनुमान जी के कार्य के योग्य पुरस्कार हो ॥१४॥

इत्युक्त्वा प्रीतिहृष्टाङ्गो रामस्तं परिषस्वजे ।
हनूमन्तं महात्मानं कृतकार्यमुपागतम् ॥ १५ ॥

महात्मा (महाबली) और काम पूरा कर के आये हुए हनुमान जी से यह कह कर और प्रीति-पुलकित शरीर से, श्रीरामचन्द्र जी ने हनुमान जी को अपने गले लगा लिया ॥ १५ ॥

ध्यात्वा पुनरुवाचेदं वचनं रघुसत्तमः ।
हरीणामीश्वरस्यैव सुग्रीवस्योपशृण्वतः ॥ १६ ॥

तदनन्तर रघुवंशियों में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी कुछ देर तक सोच कर, कपिराज सुग्रीव के सामने फिर यह वचन बोले ॥ १६ ॥

सर्वथा सुकृतं तावत्सीतायाः परिमार्गणम् ।
सागरं तु समासाद्य पुनर्नष्टं मनो मम ॥ १७ ॥

---

१ प्रकर्षति—व्याकुलयति, सन्तापयति । (गो०)

सीता के ढूढ़ने का कार्य यद्यपि सब प्रकार से पूरा हो चुका है, तथापि जब मैं समुद्र को देखता हूँ, तब मेरा मन हतोत्साह हो जाता है ॥ १७ ॥

कथं नाम समुद्रस्य दुष्पारस्य महाम्भसः ।
हरयो दक्षिणं पारं गमिष्यन्ति समाहिताः ॥ १८ ॥

बड़ी कठिनाई से पार होने योग्य महासागर के दक्षिण तट पर, ये वानरगण क्यों कर जा सकेंगे ॥ १८ ॥

यद्यप्येष तु वृत्तान्तो वैदेह्या गदितो मम ।
समुद्रपारगमने हरीणां किमिवोत्तरम् ॥ १९ ॥

यद्यपि सीता का सन्देस मुझे मिल गया, तथापि अब इसके आगे वानरों को समुद्र पार पहुँचाने का क्या उपाय किया जाय ॥ १६ ॥

इत्युक्त्वा शोकसंभ्रान्तो रामः शत्रुनिवर्हणः ।
हनुमन्तं महाबाहुस्ततो ध्यानमुपागमत् ॥ २० ॥

इति प्रथमः सर्गः ॥

शत्रुहन्ता एवं शोकसन्तप्त महाबाहु श्रीरामचन्द्र जी हनुमान जी से इस प्रकार कह कर, फिर सोचने लगे ॥ २० ॥

युद्धकाण्ड का प्रथम सर्ग पूरा हुआ ।

—*—

द्वितीयः सर्गः

तं तु [1]शोकपरिद्यूनं रामं दशरथात्मजम् ।
उवाच वचनं श्रीमान्सुग्रीवः शोकनाशनम् ॥ १ ॥

शोकसन्तप्त दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र जी से, श्रीमान् सुग्रीव ने, शोक को दूर करने वाले ये वचन कहे ॥ १ ॥

किं त्वं सन्तप्यसे वीर यथाऽन्यः प्राकृतस्तथा ।
मैवं भूस्त्यज सन्तापं कृतघ्न इव सौहृदम् ॥ २ ॥

हे वीर ! तुम एक क्षुद्र जन की तरह क्यों सन्तप्त होते हो। ऐसा मत करो और सन्ताप को वैसे ही छोड़ दो, जैसे कृतघ्नजन मैत्री त्याग देते हैं ॥ २ ॥

सन्तापस्य च ते स्थानं न हि पश्यामि राघव ।
प्रवृत्तावुपलब्धायां ज्ञाते च निलये रिपोः ॥ ३ ॥

हे राघव ! तुम्हारे सन्तप्त होने का कोई कारण मुझे नहीं देख पड़ता। क्योंकि सीता का हाल मिल गया और वैरी के निवासस्थान का भी पता चल गया ॥ ३ ॥

[2]मतिमाञ्शास्त्र[3]वित्प्राज्ञः पण्डितश्चासि राघव ।
त्यजेमां[4]पापिकां बुद्धिं [5]कृतात्मेवात्मदूषणीम्[6] ॥ ४ ॥

---

१ शोकपरिद्यूनं—शोकपरितप्तं। (गो०) २ मतिमान्—आगामिगोचरज्ञानवान्। (गो०) ३ शास्त्रवित्—नीतिशास्त्रज्ञः (गो०) ४ पापिकां—अनुत्साहकारिणीम् (गो०) ५ कृतात्मा—योगी। (गो०) ६ आत्मदूषणीम्—मोक्षरूपपुरुषार्थनिवर्तिकां। (गो०)

हे रघुनन्दन ! तुम तो आगे होने वाली घटनाओं के जानने वाले, नीतिशास्त्रज्ञ और पण्डित हो। अतः आप इस अनुत्साह कारिणी बुद्धि को वैसे ही त्याग दो, जैसे योगी लोग मोक्ष में बाधा डालने वाली बुद्धि को त्याग देते हैं ॥ ४ ॥

समुद्रं लङ्घयित्वा तु महानक्रसमाकुलम् ।
लङ्कामारोहयिष्यामो हनिष्यामश्च ते रिपुम् ॥ ५ ॥

हे राम ! हम लोग बड़े बड़े मगरों से भरे हुए समुद्र को लाँघ और लङ्का पर चढ़ जायँगे और तुम्हारे शत्रु को मार डालेंगे ॥ ५ ॥

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः ।
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति ॥ ६ ॥

देखिये, उत्साहशून्य, दीन और शोक से विकल मनुष्य के समस्त कार्य नष्ट हो जाते हैं और इसलिये उसे बड़ा दुःख भोगना पड़ता है ॥ ६ ॥

इमे शूराः समर्थाश्च सर्वे नो हरियूथपाः ।
त्वत्प्रियार्थं कृतोत्साहाः प्रवेष्टुमपि पावकम् ॥ ७ ॥

ये समस्त वीर और समर्थ वानर यूथपति तुम्हारी प्रसन्नता के लिये आग में भी कूद पड़ने को भी उत्साहित हो रहे हैं ॥ ७ ॥

एषां हर्षेण जानामि तर्कश्चास्ति दृढो मम ।
विक्रमेण समानेष्ये सीतां हत्वा यथा रिपुम् ॥ ८ ॥

मैंने इन लोगों के प्रसन्नवदन का भाव तड़ कर, इस प्रकार का दृढ़ निश्चय किया है। मैं पराक्रम से शत्रुओं को मार कर, सीता को ले आऊँगा ॥ ८ ॥

रावणं पापकर्माणं तथा त्वं कर्तुमर्हसि ।
सेतुरत्र यथा बध्येद्यथा पश्येम तां पुरीम् ॥ ९ ॥

तुम भी ऐसा करो जिससे समुद्र पर पुल बाँधा जाय और जिससे हम लङ्का में पहुँच उस पापी रावण को देख लें ॥ ९ ॥

तस्य राक्षसराजस्य तथा त्वं कुरु राघव ।
दृष्ट्वा तां तु पुरीं लङ्कां त्रिकूटशिखरे स्थिताम् ॥ १० ॥

हे राघव ! तुम ऐसा करो जिससे त्रिकूटपर्वत के शिखर पर बसी हुई उस राक्षसराज की लङ्का हम देख सकें ॥ १० ॥

हतं च रावणं युद्धे दर्शनादुपधारय ।
अबद्ध्वा सागरे सेतुं घोरे तु वरुणालये ॥ ११ ॥

जहाँ हमने लङ्का देखी वहाँ तुम रावण को मरा ही समझ लेना । उस घोर वरुणालय समुद्र पर पुल बाँधे बिना तो ॥ ११ ॥

लङ्का नो मर्दितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।
सेतुर्बद्धः समुद्रे च यावल्लङ्कासमीपतः ॥ १२ ॥

इन्द्र सहित देवताओं अथवा दैत्यों के लिये भी लङ्का में पहुँचना असम्भव है । बस लङ्का तक पुल बंधने ही की देर है । पुल बंधते ॥ १२ ॥

सर्वं तीर्णं च मे सैन्यं जितमित्युपधार्यताम् ।
इमे हि समरा शूरा हरयः कामरूपिणः ॥ १३ ॥

ही, मेरी सेना तो तुरन्त ही पार हो जायगी और जब सेना पार होगयी, तब अपनी जीत भी निस्सन्देह ही समझ लेनी चाहिये ।

ये सब वानर युद्ध में बड़े शूर और इच्छानुसार रूप धारण करने वाले हैं ॥ १३ ॥

शक्ता लङ्कां समानेतुं समुत्पाट्य सराक्षसाम् ।
तदलं विक्लबा बुद्धी राजन्सर्वार्थनाशिनी ॥ १४ ॥

हे राजन् ! इन वानरों में इतनी सामर्थ्य है कि, ये लोग राक्षसों सहित लङ्का को उखाड़ कर यहाँ उठा ला सकते हैं। अतएव तुम समस्त अर्थों को नाश करने वाली कादर बुद्धि को त्याग दो ॥ १४ ॥

पुरुषस्य हि लोकेऽस्मिञ्शोकः शौर्यापकर्षणः ।
यत्तु कार्यं मनुष्येण शौण्डीर्यमवलम्बता ॥ १५ ॥

क्योंकि शोक मनुष्य के शौर्य को नष्ट कर डालता है और जो काम शूरता का अवलम्बन कर के किया जाता है, वह पूर्ण होता है ॥ १५ ॥

अस्मिन्काले महाप्राज्ञ सत्त्वमातिष्ठ तेजसा ।
शूराणां हि मनुष्याणां त्वद्विधानां महात्मनाम् ॥ १६ ॥
विनष्टे वा प्रनष्टे वा क्षमं न ह्यनुशोचितुम् ।
त्वं तु बुद्धिमतां श्रेष्ठः सर्वशास्त्रार्थकोविदः ॥ १७ ॥

अतः हे महाप्राज्ञ ! शूर लोगों को जो करना योग्य है इस समय तुम वही करो। तुम अपने तेज का सहारा लो। क्योंकि तुम जैसे धैर्यवान और शूर मनुष्य को तो, अभीष्ट वस्तु के नष्ट हो जाने अथवा विध्वंस हो जाने पर भी कभी चिन्तित अथवा शोकान्वित नहीं होना चाहिये। तुम बुद्धिमानों में श्रेष्ठ और सर्वशास्त्र-कोविद हो ॥ १६ ॥ १७ ॥

मद्विधैः सचिवैः सार्धमरिं जेतुमिहार्हसि ।
न हि पश्याम्यहं कश्चित्त्रिषु लोकेषु राघव ॥ १८ ॥

फिर मुझ जैसे मंत्रियों की सहायता से तुम बैरी को नाश कर सकोगे। हे राम ! मुझे तो त्रिलोकी में ऐसा कोई देख नहीं पड़ता ॥ १८ ॥

गृहीतधनुषो यस्ते तिष्ठेदभिमुखो रणे ।
वानरेषु समासक्तं न ते कार्यं विपत्स्यते ॥ १९ ॥

जो युद्धक्षेत्र में उस समय तुम्हारा सामना कर सके, जिस समय तुम हाथ में धनुष लेकर खड़े हो जाओ। फिर तुम जो काम वानरों को सौंपोगे वह कार्य कभी न बिगड़ने पायेगा ॥ १९ ॥

अचिराद्द्रक्ष्यसे सीतां तीर्त्वा सागरमक्षयम् ।
तदलं शोकमालम्ब्य क्रोधमालम्ब भूपते ॥ २० ॥

इस अनन्त-सागर के पार जा तुम शीघ्र ही सीता को देखोगे। अतः हे राजन् ! अब तुम शोक त्याग कर क्रोध धारण करो अथवा यह समय शोक का नहीं बल्कि क्रोध करने का है ॥ २० ॥

निश्चेष्टाः क्षत्रिया मन्दाः सर्वे चण्डस्य बिभ्यति ।
लङ्घनार्थं च घोरस्य समुद्रस्य नदीपतेः ॥ २१ ॥

क्योंकि जो क्षत्रिय होकर उद्यमहीन होता है वह कभी सौभाग्यवान् नहीं हो सकता। फिर जो क्रोधी होता है, उससे सभी डरते हैं। सो तुम इस भयङ्कर नदियों के पति समुद्र को पार करने के लिये ॥ २१ ॥

सहास्माभिरिहोपेतः सूक्ष्मबुद्धिर्विचारय ।
सर्वं तीर्णं च मे सैन्यं जितमित्युपधारय ॥ २२ ॥

हम लोगों के साथ परामर्श कर सूक्ष्म बुद्धि से कोई उपाय सोचना चाहिये। यह आप निश्चय जान लें कि, ज्यों ही हमारी समस्त सेना उस पार पहुँची, त्योंही शत्रु परास्त हुआ ॥ २२ ॥

इमे हि समरे शूराः हरयः कामरूपिणः।
तानरीन्विधमिष्यन्ति शिलापादपवृष्टिभिः ॥ २३ ॥

ये समस्त वानर, इच्छानुसार रूप धारण करने वाले और युद्ध में बड़े शूरवीर हैं। ये पत्थरों और पेड़ों की वर्षा कर शत्रुओं को मार डालेंगे ॥ २३ ॥

कथञ्चित्सन्तरिष्यामस्ते वयं वरुणालयम्।
हतमित्येव तं मन्ये युद्धे समितिनन्दन ॥ २४ ॥

हे रणप्रिय! मेरे मन में तो यह बात आती है कि, हम लोग किसी न किसी तरह समुद्र पार हो ही जाँयगे और समुद्र पार होते ही शत्रु का नाश करते हमें देर भी न लगेगी ॥ २४ ॥

किमुक्त्वा बहुधा चापि सर्वथा विजयी भवान्।
निमित्तानि च पश्यामि मनो मे संप्रहृष्यति ॥ २५ ॥

इति द्वितीयः सर्गः ॥

हे राम! अब मैं अधिक और क्या कहूँ। आप सब प्रकार से विजयी होंगे। क्योंकि इस समय मैं जो शुभ शकुन देख रहा हूँ इससे जान पड़ता है कि, आगे चल कर कोई हर्षोत्पादक कार्य होने वाला है अथवा इस समय शुभ शकुन हो रहे हैं और मेरा मन अत्यन्त हर्षित हो रहा है ॥ २५ ॥

युद्धकाण्ड का दूसरा सर्ग पूरा हुआ।

—※—

तृतीयः सर्गः

—※—

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा हेतुमत्परमार्थवित् ।
प्रतिजग्राह काकुत्स्थो हनुमन्तमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

परमार्थ के जानने वाले श्रीरामचन्द्र जी ने सुग्रीव के युक्तियुक्त वचन सुन उन सब को अङ्गीकार किया और हनुमान जी से कहा ॥ १ ॥

तपसा सेतुबन्धेन सागरोच्छोषणेन वा ।
सर्वथा सुसमर्थोऽस्मि सागरस्यास्य लङ्घने ॥ २ ॥

हे हनुमन् ! अपने तपोबल से, अथवा समुद्र पर पुल बाँध कर अथवा समुद्र के जल को सुखा कर, मैं तो हर प्रकार से समुद्र के पार जाने में समर्थ हूँ ॥ २ ॥

कति दुर्गाणि [1]दुर्गाया लङ्काया ब्रूहि तानि मे ।
ज्ञातुमिच्छामि तत्सर्वं दर्शनादिव वानर ॥ ३ ॥

परन्तु अब तुम मुझे यह बतलाओ कि, लङ्का में दुर्गम दुर्ग कितने हैं। हे वानर ! मैं उनका वर्णन ऐसा सुनना चाहता हूँ, मानों मैं उनको प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। अथवा तुम उन दुर्गों का ऐसा वर्णन करो जिससे मुझे वे प्रत्यक्ष सरीखे देख पड़ें ॥ ३ ॥

बलस्य परिमाणं च द्वारदुर्गक्रियामपि ।
गुप्तिकर्म च लङ्कायां राक्षसां सदनानि च ॥ ४ ॥

---

१ दुर्गाया—दुष्प्रापायाः (गो०)

लङ्का में सेना कितनी है? लङ्का के दुर्गद्वार किस प्रकार के साधनों से सुरक्षित हैं? उनकी सुरक्षा के लिये जो परकोटे अथवा खाइयाँ बनी हैं वे कैसी हैं और राक्षसों के घर कैसे हैं? ॥ ४ ॥

[1]यथासुखं यथावच्च लङ्कायामसि दृष्टवान्।
सर्वमाचक्ष्व तत्त्वेन सर्वथा कुशलो ह्यसि ॥ ५ ॥

तुम देखने और वर्णन करने में चतुर हो। अतएव लङ्का में जो कुछ तुम देख आये हो वह सब निर्भीक होकर मेरे सामने यथार्थ कहो ॥ ५ ॥

श्रुत्वा रामस्य वचनं हनूमान्मारुतात्मजः।
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठो रामं पुनरथाब्रवीत् ॥ ६ ॥

वाक्यविशारदों में श्रेष्ठ पवनतनय हनुमान जी श्रीरामचन्द्र जी के ये वचन सुन, उनसे फिर कहने लगे ॥ ६ ॥

श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये दुर्गकर्मविधानतः।
गुप्ता पुरी यथा लङ्का रक्षिता च यथा बलैः ॥ ७ ॥

हे राजन्! वह लङ्का जिस प्रकार परकोटे, खाइयों तथा राक्षस सेना से रक्षित है, वह सब मैं कहता हूँ, सुनिये ॥ ७ ॥

राक्षसाश्च यथा [2]स्निग्धा रावणस्य च तेजसा।
परां समृद्धिं लङ्कायाः सागरस्य च भीमताम् ॥ ८ ॥

विभागं च बलौघस्य [3]निर्देशं वाहनस्य च।
एवमुक्त्वा हरिश्रेष्ठः कथयामास तत्त्वतः ॥ ९ ॥

---

१ यथासुखं—निश्शङ्कं। (गो०) २ स्निग्धा—स्वामिनिभक्ताः। (गो०)
३ निर्देशः—संख्या तं। (गो०)

वहाँ के राक्षस जैसे स्वामि-भक्त हैं, राक्षसराज रावण का जैसा प्रताप है, लङ्का की जैसी समृद्धि है, समुद्र की जैसी भयङ्करता है, सेनाएँ विभक्त होकर, जिस प्रकार वे लङ्का की रक्षा कर रही हैं और वहाँ के वाहनों की जितनी संख्या है—सो सब मैं कहता हूँ। यह कह कर, हनुमान जी ने सब वृत्तान्त यथार्थरीत्या कह दिया ॥ ८ ॥ ९ ॥

[1]हृष्टा प्रमुदिता लङ्का मत्तद्विपसमाकुला।
महती रथसम्पूर्णा रक्षोगणसमाकुला ॥ १० ॥

लङ्का अत्यन्त हर्षित जनों से भरी पूरी है। उसमें मतवाले हाथी भरे हुए हैं। बड़े बड़े रथों से भरी पूरी है और राक्षसों से परिपूर्ण है ॥ १० ॥

वाजिभिश्च सुसम्पूर्णा सा पुरी दुर्गमा परैः।
दृढबद्धकवाटानि महापरिघवन्ति च ॥ ११ ॥

वह घोड़ों से भरी है और शत्रु के लिये दुर्गम है। उसके फाटकों में बड़े मज़बूत किवाड़ लगे हुए हैं और फाटक बंद करने को बड़े बड़े परिघ (बेंड़े) हैं ॥ ११ ॥

चत्वारि विपुलान्यस्या द्वाराणि सुमहन्ति च।
[2]तत्रेषूपलयन्त्राणि बलवन्ति महान्ति च ॥ १२ ॥

उस पुरी में बहुत बड़े और विशाल चार द्वार हैं। उन द्वारों पर बड़े बलवान और बड़े बड़े इषूपल नामक यंत्र लगे हैं ॥ १२ ॥

[इषूपल नामक एक प्रकार की तोपें थीं। इन तोपों से गोले के बजाय शत्रु सैन्य पर तीरों और पत्थरों की वर्षा की जाती थी।]

---

१ हृष्टा प्रमुदिता—अत्यन्त हृष्टजना। (गो०) २ इषूपलयंत्राणि—शरशिला क्षेपक यंत्राणि। (गो०)

आगतं प्रतिसैन्यं तैस्तत्र प्रतिनिवार्यते ।
द्वारेषु संस्कृता भीमाः कालायसमयाः शिताः ॥ १३ ॥
शतशो रचिता वीरैः शतघ्न्यो रक्षसां गणैः ।
सौवर्णश्च महांस्तस्याः प्राकारो दुष्प्रधर्षणः ॥ १४ ॥

इनके द्वारा शत्रु की आक्रमणकारी सेना मार कर भगा दी जाती है। द्वारों पर पैनी और लोहे की बनी सैकड़ों शतघ्नी राक्षसों ने बना कर, सजा रक्खी हैं। उस लङ्का का परकोटा सुवर्णमय और बड़ा दुर्धर्ष है ॥ १३ ॥ १४ ॥

मणिविद्रुमवैडूर्यमुक्ताविरचितान्तरः ।
सर्वतश्च महाभीमाः शीततोयवहाः शुभाः ॥ १५ ॥

वह भीतर से मणियों, मूँगों, पन्नों और मोतियों से बनी हुई है। उसके चारों ओर बड़ी भयङ्कर और ठंढे स्वच्छ जल से युक्त ॥ १५ ॥

अगाधा ग्राहवत्यश्च परिखा मीनसेविताः ।
द्वारेषु तासां चत्वारः [1]संक्रमाः परमायताः ॥ १६ ॥

अगाध खाई हैं, जिनमें बड़े बड़े मगर और मछलियाँ रहा करती हैं। उसके चारो द्वारों पर चार बड़े लंबे चौड़े लकड़ी के पुल ॥ १६ ॥

यन्त्रैरुपेता बहुभिर्महद्भिर्गृहपङ्क्तिभिः ।
त्रायन्ते संक्रमास्तत्र परसैन्यागमे सति ॥ १७ ॥

जिनके ऊपर बड़ी बड़ी कले लगी हुई हैं और उनके पास ही उन कलों को चलाने वाले राक्षस सैनिकों की बारकों की पंक्तियाँ हैं। इन्हींसे शत्रु सैन्य के आक्रमण से नगरी की रक्षा की जाती है ॥ १७ ॥

---

१ संक्रमाः—दारुफलक निर्मित सञ्चारमार्गाः । (गो०)

यन्त्रैस्तैरवकीर्यन्ते परिखासु समन्ततः ।
एकस्त्वकम्प्यो बलवान्संक्रमः सुमहान्दृढः ॥ १८ ॥

वहाँ जो कलें रखी हैं उनको घुमाते ही खाई का जल चारों ओर बढ़ने लगता है और इस जल की बाढ़ से शत्रु सेना डूब जाती है। इन चार पुलों में से एक पुल सब से अधिक मज़बूत है। वह ज़रा भी हिलता डुलता नहीं ॥ १८ ॥

काञ्चनैर्बहुभिः स्तम्भैर्वेदिकाभिश्च शोभितः ।
स्वयं [1]प्रकृतिसम्पन्नो युयुत्सू राम रावणः ॥ १९ ॥

उसके ऊपर बहुत से सोने के खंभे और चबूतरे बने हुए हैं। हे राम! रावण आज कल द्यूतादिव्यसनों से मुँह मोड़ कर, युद्ध के लिये कमर कसे तैयार है ॥ १६ ॥

उत्थितश्चाप्रमत्तश्च बलानामनुदर्शने ।
लङ्का पुनर्निरालम्बा देवदुर्गा भयावहा ॥ २० ॥

वह सदा जागरूक रहता है और बड़ी सावधानी से सेना की देख रेख किया करता है। लङ्का एक ऐसे पहाड़ के ऊपर है जो सीधा खड़ा हुआ है, अर्थात् उस पर चढ़ने का रास्ता नहीं है। वह देवताओं के दुर्ग की तरह नितान्त दुर्गम है ॥ २० ॥

नादेयं पार्वतं वान्यं कृत्रिमं च चतुर्विधम् ।
स्थिता पारे समुद्रस्य दूरपारस्य राघव ॥ २१ ॥

लङ्का में नदीदुर्ग, गिरिदुर्ग, वनदुर्ग और चौथे कृत्रिम दुर्ग हैं। हे राघव! समुद्र के उस पार बहुत दूर तक लङ्का बसी हुई है ॥ २१ ॥

---

१ प्रकृतिसम्पन्नः—द्यूतादिव्यसन रूप विचार रहितः। (गो०)

नौपथोऽपि च नास्त्यत्र निरादेशश्च सर्वतः ।
शैलाग्रे रचिता दुर्गा सा पूर्देवपुरोपमा ॥ २२ ॥

वहां न तो नाव की गति है और न वहां का हाल ही किसी को मिल सकता है। वह पर्वत के शिखर पर दुर्धर्ष बनी हुई है और इन्द्रपुरी की तरह शोभायमान है ॥ २२ ॥

वाजिवारणसम्पूर्णा लङ्का परमदुर्जया ।
परिखाश्च शतघ्न्यश्च यन्त्राणि विविधानि च ॥ २३ ॥

घोड़े हाथियों से भरी पूरी लङ्का परम दुर्जेय है। क्योंकि उसके चारो ओर खाई है और शतघ्नी तथा विविध प्रकार के यंत्रों ॥ २३ ॥

शोभयन्ति पुरीं लङ्कां रावणस्य दुरात्मनः ।
अयुतं रक्षसामत्र पूर्वद्वारं समाश्रितम् ॥ २४ ॥

से दुरात्मा रावण की लङ्का शोभित है। लङ्का के पूर्वद्वार पर दस हज़ार राक्षस रहते हैं ॥ २४ ॥

शूलहस्ता दुराधर्षाः सर्वे खड्गाग्रयोधिनः ।
नियुतं रक्षसामत्र दक्षिणद्वारमाश्रितम् ॥ २५ ॥

उन लोगों के हाथ में त्रिशूल रहता है। ये बड़े दुर्धर्ष हैं और सब के सब तलवारों से लड़ने वाले हैं। दक्षिणद्वार पर एक लाख राक्षस सैनिक रहते हैं ॥ २५ ॥

चतुरङ्गेण सैन्येन योधास्तत्राप्यनुत्तमाः ।
प्रयुतं रक्षसामत्र पश्चिमद्वारमाश्रितम् ॥ २६ ॥

इनके साथ चतुरङ्गिणी सेना रहती है और जो और सैनिक वहां हैं, वे भी बड़े प्रवीण लड़ने वाले हैं। दस लाख राक्षस पश्चिम द्वार पर रहते हैं ॥ २६ ॥

चर्मखड्गधराः सर्वे तथा सर्वास्त्रकोविदाः ।
न्यर्बुदं रक्षसामत्र उत्तरद्वारमाश्रितम् ॥ २७ ॥

ये सब ढाल तलवार धारी हैं और सब अस्त्रों के चलाने में प्रवीण हैं। एक अरब राक्षस उत्तर द्वार पर रहते हैं ॥ २७ ॥

रथिनश्चाश्ववाहाश्च [1]कुलपुत्राः सुपूजिताः ।
शतशोऽथ सहस्राणि [2]मध्यमं स्कन्धमाश्रिताः ॥ २८ ॥

इनमें बहुत से रथी, बहुत से घुड़सवार और कितने ही विश्वसनीय रावण के कृपापात्र नौकर हैं। नगर के बीच में सैकड़ों सहस्रों सैनिकों की छावनी है ॥ २८ ॥

यातुधाना दुराधर्षाः साग्रकोटिश्च रक्षसाम् ।
ते मया संक्रमा भग्नाः परिखाश्चावपूरिताः ॥ २९ ॥

उनमें से एक करोड़ से ऊपर बड़े दुर्धर्ष राक्षस सैनिक हैं। हे राम ! मैंने (खाईं पार करने के) पुलों को तोड़ डाला है और खाईं पाट दी है ॥ २९ ॥

दग्धा च नगरी लङ्का प्राकाराश्चावसादिताः ।
बलैकदेशः क्षपितो राक्षसानां [3]महात्मनाम् ॥ ३० ॥

मैंने लङ्का जला डाली है और लङ्का का परकोटा गिरा दिया है। मैंने महाकायवाले राक्षसों की एक चौथियायी सेना मार डाली है ॥ ३० ॥

---

१ कुलपुत्राः—विश्वसनीया । (गो०) २ मध्यमंस्कन्धम्—नगरमध्यमस्थानं । (गो०) ३ महात्मना—महाकायानां । (गो०)

येन केन च मार्गेण तराम वरुणालयम् ।
हतेति नगरी लङ्का वानरैरवधार्यताम् ॥ ३१ ॥

अब किसी प्रकार समुद्र को पार करना चाहिये और ज्यों ही समुद्र के पार पहुँचे कि, समझ लीजिये लङ्का वानरों द्वारा फतह हुई ॥ ३१ ॥

अङ्गदो द्विविदो मैन्दो जाम्बवान्पनसो नलः ।
नीलः सेनापतिश्चैव बलशेषेण किं तव ॥ ३२ ॥

अङ्गद, द्विविद, मैन्द, जाम्बवान, पनस, नल और सेनापति नील ही वहाँ के लिये पर्याप्त हैं और सैना का काम ही क्या है ॥ ३२ ॥

प्लवमाना हि गत्वा तां रावणस्य महापुरीम् ।
सपर्वतवनां भित्त्वा सखातां सप्रतोरणाम् ।
सप्राकारां सभवनामानयिष्यन्ति राघव ॥ ३३ ॥

ये सब समुद्र को लाँघ कर उस पार जा पहुँचेंगे तथा पर्वतों, वनों, खाइयों, तोरणद्वारों, परकोटों और भवनों को उजाड़ पुजाड़ कर, सीता को ले आवेंगे ॥ ३३ ॥

एवमाज्ञापय क्षिप्रं बलानां सर्वसंग्रहम् ।
मुहूर्तेन तु युक्तेन प्रस्थानमभिरोचय ॥ ३४ ॥

इति तृतीयः सर्गः ॥

हे राम ! अब आप बड़े बड़े सेनापतियों को ऐसी आज्ञा दे कर, शीघ्र ही शुभ मुहूर्त में यात्रा कीजिये ॥ ३४ ॥

युद्धकाण्ड का तीसरा सर्ग पूरा हुआ ।

—*—

चतुर्थः सर्गः

—※—

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं यथावदनु[1]पूर्वशः ।
ततोऽब्रवीन्महातेजा[2] रामः [3]सत्यपराक्रमः ॥ १ ॥

अमोघ-विक्रम-सम्पन्न और महाबली श्रीरामचन्द्र जी हनुमान जी की क्रम-पूर्वक कही हुई बातों को सुन कर, बोले ॥ १ ॥

यां निवेदयसे लङ्कां पुरीं भीमस्य रक्षसः ।
क्षिप्रमेनां मथिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ २ ॥

हे हनुमन् ! तुमने भयङ्कर राक्षस की जिस लङ्का का वृत्तान्त कहा है, मैं तुमसे सत्य सत्य कहता हूँ कि, उसको मैं शीघ्र ही नष्ट करूँगा ॥ २ ॥

अस्मिन्मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचये ।
युक्तो मुहूर्तो विजयः प्राप्तो मध्यं दिवाकरः ॥ ३ ॥

हे सुग्रीव ! इसी मुहूर्त में युद्ध यात्रा करना मुझे अच्छा जान पड़ता है । क्योंकि सूर्य भगवान् मध्य आकाश में आगये हैं। इसलिये यह अभिजित् नामक विजय का मुहूर्त है ॥ ३ ॥

अस्मिन्मुहूर्ते विजये प्राप्ते मध्यं दिवाकरे ।
सीतां हृत्वा तु मे जातु क्वाऽसौ यास्यति यास्यतः ॥ ४ ॥

---

१ अनुपूर्वशः—अनुक्रमेण । (रा०) २ महातेजाः—महाबलः । (गो०)
३ सत्यपराक्रमः—अमोघविक्रमः । (गो०)

सूर्य भगवान् के मध्य आकाशवर्ती होने पर, अभिजित मुहूर्त में यात्रा कर, मैं उस राक्षस से सीता को छीन कर ले आऊँगा। वह राक्षस अब जा ही कहाँ सकता है ॥ ४ ॥

सीता श्रुत्वाऽभियानं मे आशामेष्यति जीविते ।
जीवितान्तेऽमृतं स्पृष्ट्वा पीत्वा विषमिवातुरः ॥ ५ ॥

हम लोगों को युद्धयात्रा का हाल सुन कर, सीता को अपने जीवन की वैसी ही आशा होगी, जैसी कि, विषपान किये और जीवन से निराश, किसी मरते हुए मनुष्य को, अमृत मिल जाने से होती है ॥ ५ ॥

उत्तराफाल्गुनी ह्यद्य श्वस्तु हस्तेन योक्ष्यते ।
अभिप्रयाम सुग्रीव सर्वानीकसमावृताः ॥ ६ ॥

आज उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र है, कल हस्त नक्षत्र से इसका योग होगा। अतः हे सुग्रीव ! चलो, हम सब सेना को साथ ले रवाना हो जाँय ॥ ६ ॥

निमित्तानि च धन्यानि यानि प्रादुर्भवन्ति च ।
निहत्य रावणं सीतामानयिष्यामि जानकीम् ॥ ७ ॥

जो शुभ शकुन बतलाये जाते हैं वे भी हो रहे हैं, जिससे प्रकट होता है कि, हम रावण को मार कर, जानकी को ले आवेंगे ॥ ७ ॥

उपरिष्टाद्धि नयनं स्फुरमाणमिदं मम ।
विजयं समनुप्राप्तं शंसतीव मनोरथम् ॥ ८ ॥

देखो मेरी दहिनी आँख के ऊपर का पलक बराबर फड़क कर मानों मुझसे कह रहा है कि, तुम्हारा विजय समीप है और तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होने वाला है ॥ ८ ॥

तती वानरराजेन लक्ष्मणेन च पूजितः[१] ।
उवाच रामो धर्मात्मा पुनरप्यर्थकोविदः ॥ ९ ॥

यह सुन कपिराज सुग्रीव और लक्ष्मण ने श्रीरामचन्द्र जी के इन युक्तियुक्त वचनों की प्रशंसा की। तदनन्तर नीति-शास्त्र-निपुण धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र फिर कहने लगे ॥ ९ ॥

अग्रे यातु बलस्यास्य नीलो मार्गमवेक्षितुम् ।
वृतः शतसहस्रेण वानराणां तरस्विनाम् ॥ १० ॥

मार्ग देखने के लिये सब से आगे नील जाँय और इनके साथ एक लाख बलवान वानर जाँय ॥ १० ॥

फलमूलवता नील शीतकाननवारिणा ।
पथा मधुमता चाशु सेनां सेनापते नय ॥ ११ ॥

श्रीरामचन्द्र जी ने नील से कहा—हे नील ! तुम ऐसे मार्ग से सेना ले चलो, जहाँ फल मूल मिलें, शीतल जल भरा हो और जहाँ मधु हो ॥ ११ ॥

दूषयेयुर्दुरात्मानः पथि मूलफलोदकम् ।
राक्षसाः परिरक्षेथास्तेभ्यस्त्वं नित्यमुद्यतः ॥ १२ ॥

(एक बात से सावधान रहना वह यह कि,) कहीं दुष्ट राक्षस रास्ते के मूल, फल और जल को विष मिला कर दूषित न कर डालें। राक्षसों से सदा सावधान रहना ॥ १२ ॥

निम्नेषु गिरिदुर्गेषु वनेषु च वनौकसः ।
अभिप्लुत्याभिपश्येयुः परेषां निहितं बलम् ॥ १३ ॥

---

१ पूजितः—युक्तमिति श्लाघितः । (गो०)

वानर छलाँग मार कर टेकरों तथा वृक्षादि के ऊपर चढ़ कर भली भाँति देखें कि, कहीं गढ़ों में, गिरिदुर्गों में और वनों में शत्रु-सेना तो घात लगाये नहीं छिपी बैठी है ॥ १३ ॥

यच्च फल्गु बलं किञ्चित्तदत्रैवोपयुज्यताम् ।
एतद्धि कृत्यं घोरं नो विक्रमेण प्रयुध्यताम् ॥ १४ ॥

हमारी इस सेना में जो बालक बूढ़े हों, या कमज़ोर हों, उनको यहीं छोड़ दो, क्योंकि मेरी यह लङ्का की चढ़ाई बड़ी विकट होगी। अतः वहाँ ऐसे सैनिक जाने चाहिये, जो बलवान और पराक्रमी हों ॥ १४ ॥

सागरौघनिभं भीममग्रानीकं महाबलाः ।
कपिसिंहाः प्रकर्षन्तु शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १५ ॥

ये सैकड़ों हज़ारों महाबलवान् कपिसिंह, समुद्र के समान विशाल और भयङ्कर सेना को साथ ले कर चलें ॥ १५ ॥

गजश्च गिरिसङ्काशो गवयश्च महाबलः ।
गवाक्षश्चाग्रतो यान्तु वाहिन्या वानरर्षभाः ॥ १६ ॥

पर्वत के समान शरीर वाला गज, महाबली गवय और गवाक्ष सेना के आगे आगे चलें ॥ १६ ॥

यातु वानरवाहिन्या वानरः प्लवतांवरः ।
पालयन्दक्षिणं पार्श्वमृषभो वानरर्षभः ॥ १७ ॥

कूदने वालों में श्रेष्ठ और वानरश्रेष्ठ ऋषभ वानरी सेना के दक्षिण भाग की रक्षा करता हुआ, वानरी सेना के साथ चले ॥ १७ ॥

गन्धहस्तीव दुर्धर्षस्तरस्वी गन्धमादनः ।
यातु वानरवाहिन्याः सव्यं पार्श्वमधिष्ठितः ॥ १८ ॥

मतवाले हाथी की तरह दुर्जेय वेगवान् गन्धमादन सेना के बाएँ भाग की रक्षा करता हुआ वानरी सेना के साथ चले ॥ १८ ॥

यास्यामि बलमध्येऽहं बलौघमभिहर्षयन् ।
अधिरुह्य हनूमन्तमैरावतमिवेश्वरः ॥ १९ ॥

मैं हनुमान के कंधे पर सवार हो, ऐरावत हाथी पर चढ़े हुए इन्द्र की तरह, सेना के मध्यभाग में रह कर और सेना को हर्षित अथवा उत्साहित करता हुआ चलूँगा ॥ १९ ॥

अङ्गदेनैष संयातु लक्ष्मणश्चान्तकोपमः ।
सार्वभौमेन भूतेशो द्रविणाधिपतिर्यथा ॥ २० ॥

अङ्गद के कंधे पर सवार हो काल की तरह कोप किये हुए लक्ष्मण उसी प्रकार चलेंगे, जिस प्रकार अपने सार्वभौम दिग्गज पर चढ़ कर, कुवेर चलते हैं ॥ २० ॥

जाम्बवांश्च सुषेणश्च वेगदर्शी च वानरः ।
ऋक्षराजो महासत्त्वः कुक्षिं[1] रक्षन्तु ते त्रयः ॥ २१ ॥

महाबली ऋक्षराज जाम्बवान्, सुषेण और वेगदर्शी—ये तीन वानर यूथपति सेना के पिछले भाग को रक्षा करते हुए चलें ॥ २१ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाहिनीपतिः ।
व्यादिदेश महावीर्यान्वानरान्वानरर्षभः ॥ २२ ॥

---

१ कुक्षिं—पश्चात् भागं । (गो०)

वानरश्रेष्ठ महाबलवान और वाहिनीपति सुग्रीव ने श्रीरामचन्द्र जी के ये वचन सुन, महाबलवान वानरों को श्रीरामचन्द्र जी के आज्ञानुसार कार्य करने की आज्ञा दी ॥ २२ ॥

ते वानरगणाः सर्वे समुत्पत्य युयुत्सवः ।
गुहाभ्यः शिखरेभ्यश्च आशु पुप्लुविरे तदा ॥ २३ ॥

तब तो वे सब बलवान वानरगण जो लड़ने के लिये उत्सुक हो रहे थे, गुफाओं से निकल कर, शिखरों से कूद कूद कर आ पहुँचे ॥ २३ ॥

ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन च पूजितः ।
जगाम रामो धर्मात्मा ससैन्यो दक्षिणां दिशम् ॥ २४ ॥

तदनन्तर वानरराज और लक्ष्मण द्वारा प्रशंसित धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी सेना को साथ लिये हुए दक्षिण की ओर प्रस्थानित हो गये ॥ २४ ॥

शतैः शतसहस्रैश्च कोटीभिरयुतैरपि ।
वारणाभैश्च हरिभिर्ययौ परिवृतस्तदा ॥ २५ ॥

उस समय हज़ारों, लाखों और करोड़ों वानरों के दल के दल श्रीरामचन्द्र जी को घेर कर चल दिये ॥ २५ ॥

तं यान्तमनुयाति स्म महती हरिवाहिनी ।
*हृष्टाः प्रमुदिताः सर्वे सुग्रीवेणाभिपालिताः ॥ २६ ॥

उस समय हर्षित, प्रमुदित और सुग्रीव द्वारा रक्षित वह बड़ी भारी वानरी सेना श्रीरामचन्द्र जी के पीछे हो ली ॥ २६ ॥

---

* पाठान्तरे—" हृष्टाः " ।

आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ।
क्ष्वेलन्तो *निनदन्तस्ते जग्मुर्वै दक्षिणां दिशम् ॥ २७ ॥

उस सेना के समस्त वानर कूदते फाँदते, गरजते, सिंहनाद करते तथा किलकारियाँ मारते दक्षिण की ओर चले जाते थे ॥२७॥

भक्षयन्तः सुगन्धीनि मधूनि च फलानि च ।
उद्वहन्तो महावृक्षान्मञ्जरीपुञ्जधारिणः ॥ २८ ॥

रास्ते में वे सुगन्धित मधु पीते, फलों को खाते तथा ढेर की ढेर मञ्जरियों से युक्त बड़े बड़े वृक्षों को उखाड़ कर अपने कन्धों पर रखे हुए चले जाते थे ॥ २८ ॥

अन्योन्यं सहसा दृप्ता निर्वहन्ति क्षिपन्ति च ।
†पततश्चोत्पतन्त्यन्ये पातयन्त्यपरे परान् ॥ २९ ॥

उनमें से कोई कोई गर्वित हो दूसरों को उठा लेते और कुछ दूर चल कर गिरा देते थे । कोई स्वयं गिर कर दूसरे को गिरा देते थे और कोई कोई दूसरों को धक्का देकर गिरा देते थे ॥ २९ ॥

रावणो नो निहन्तव्यः सर्वे च रजनीचराः ।
इति गर्जन्ति हरयो राघवस्य समीपतः ॥ ३० ॥

श्रीरामचन्द्र जी के सामने वे गर्ज गर्ज कर बारम्बार कह रहे थे कि, रावण तथा अन्य समस्त राक्षसों को हम मार डालेंगे ॥ ३० ॥

पुरस्तादृषभो वीरो नीलः कुमुद एव च ।
पन्थानं शोधयन्ति स्म वानरैर्बहुभिर्वृताः‡ ॥ ३१ ॥

---

* पाठान्तरे—"विनदन्तश्च" । † पाठान्तरे—"पततश्चाक्षिपन्त्यन्ये ।"
‡ पाठान्तरे—"सह ।"

महावीर ऋषभ, गन्धमादन और नील बहुत से वानरों को साथ लिये हुए, मार्ग को खोजते सेना के आगे आगे चले जाते थे ॥ ३१ ॥

मध्ये तु राजा सुग्रीवो रामो लक्ष्मण एव च ।
*बलिभिर्बहुभिः शूरैर्वृताः शत्रुनिबर्हणैः ॥ ३२ ॥

वानरी सेना के मध्य भाग में श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण और कपिराज सुग्रीव; शत्रुओं के संहारकर्ता, बलवान् और शूर बहुत से वानरों के साथ चले जा रहे थे ॥ ३२ ॥

हरिः शतबलिर्वीरः कोटीभिर्दशभिर्वृतः ।
सर्वामेको ह्यवष्टभ्य ररक्ष हरिवाहिनीम् ॥ ३३ ॥

महाबलवान शतबलि दस करोड़ सेना को साथ लिये अकेला ही उस समस्त वानरी सेना की रक्षा कर रहा था ॥ ३३ ॥

कोटीशतपरीवारः केसरी पनसो गजः ।
ऋक्षश्चातिबलः पार्श्वमेकं तस्याभिरक्षति ॥ ३४ ॥

केसरी, पनस, गज और ये अतिबल वानरयूथपति, सौ करोड़ वानरों तथा रीछों को साथ लिये हुए, उस सेना के एक पार्श्व की रक्षा करते चले जाते थे ॥ ३४ ॥

सुषेणो जाम्बवांश्चैव ऋक्षैश्च बहुभिर्वृतौ ।
सुग्रीवं पुरतः कृत्वा [1]जघनं संररक्षतुः ॥ ३५ ॥

सुषेण और जाम्बवान असंख्य रीछों की सेना साथ लिये, सेना के मध्यभाग में चलते हुए सुग्रीव को आगे कर, सेना के पिछले भाग की रक्षा करते जाते थे ॥ ३५ ॥

---

१ जघनं—पश्चाद्भागं । (गो०) * पाठान्तरे—" बहुभिर्बलिभिर्भीमैर्वृताः शत्रुनिबर्हणाः । "

तेषां सेनापतिर्वीरो नीलो वानरपुङ्गवः ।
सम्पतन्पततां श्रेष्ठस्तद्बलं पर्यपालयत् ॥ ३६ ॥

इन सब के सेनापति नील, मार्गशोधन के लिये आगे आगे जाते हुए भी, सेनापति होने के कारण समस्त सेना की देखभाल करते जाते थे ॥ ३६ ॥

दरीमुखः प्रजङ्घश्च रम्भोऽथ रभसः कपिः ।
सर्वतश्च ययुर्वीरास्त्वरयन्तः प्लवङ्गमान् ॥ ३७ ॥

दरीमुख, प्रजंघ, रम्भ, रभस ये सब वीर वानर, सेना को शीघ्र चलने के लिये उत्साहित करते जाते थे ॥ ३७ ॥

एवं ते हरिशार्दूला गच्छन्तो बलदर्पिताः ।
अपश्यंस्ते गिरिश्रेष्ठं सह्यं द्रुमलतायुतम् ॥ ३८ ॥

इस प्रकार उन कपिशार्दूल एवं बलदर्पित वानरश्रेष्ठों ने, चलते चलते, वृक्षों एवं लताओं से युक्त पर्वतोत्तम सह्य नामक पर्वत को देखा ॥ ३८ ॥

सरांसि च सुफुल्लानि तटाकानि महान्ति च ।
रामस्य शासनं ज्ञात्वा भीमकोपस्य भीतवत् ॥ ३९ ॥

खिले हुए कमल के फूलों से सुशोभित सरोवर और बड़े बड़े तड़ाग भी इस सेना ने देखे। किन्तु भयङ्कर कोप करने वाले श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा जान, मारे डर के ॥ ३९ ॥

वर्जयन्नगराभ्याशांस्तथा जनपदानपि ।
सागरौघनिभं भीमं तद्वानरबलं महत् ॥ ४० ॥

वह समुद्र की तरह भयावह बड़ी भारी वानरी सेना नगरों और जनपदों की सीमा को ॥ ४० ॥

*निःससर्प महाघोषं भीमघोष इवार्णवः ।
तस्य दाशरथेः पार्श्वे शूरास्ते कपिकुञ्जराः ॥ ४१ ॥

त्यागती हुई तथा समुद्र की तरह भयङ्कर महाघोष करती हुई चली जाती थी। श्रीरामचन्द्र जी के अगल बगल वे शूर कपि कुञ्जर ॥ ४१ ॥

तूर्णमापुप्लुवुः सर्वे सदश्वा इव चोदिताः ।
कपिभ्यामूह्यमानौ तौ शुशुभाते †नरर्षभौ ॥ ४२ ॥

कूदते फांदते ऐसे चले जाते थे, जैसे घुड़सवारों द्वारा चलाये हुए घोड़े। उस समय दो वानरों की पीठ पर सवार वे दोनों पुरुष-श्रेष्ठ ऐसे सुशोभित जान पड़ते थे ॥ ४२ ॥

महद्भ्यामिव संस्पृष्टौ ग्रहाभ्यां चन्द्रभास्करौ ।
ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन च पूजितः ॥ ४३ ॥

जैसे राहु और केतु नामक दो बड़े बड़े ग्रहों से छुए जाकर चन्द्र और सूर्य शोभा को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार सुग्रीव और लक्ष्मण से सम्मानित ॥ ४३ ॥

जगाम रामो धर्मात्मा ससैन्यो दक्षिणां दिशम् ।
तमङ्गदगतो रामं लक्ष्मणः शुभया गिरा ॥ ४४ ॥
उवाच परिपूर्णार्थः ‡वचनं प्रतिभानवान् ।
हृतामवाप्य वैदेहीं क्षिप्रं हत्वा च रावणम् ॥ ४५ ॥

* पाठान्तरे — "उत्ससर्प ।" † पाठान्तरे — नरोत्तमौ ।" ‡ पाठान्तरे — "स्मृतिमान्प्रतिभानवान् ।"

धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी सेना सहित दक्षिण दिशा की ओर गये। तदनन्तर अङ्गद के कन्धों पर सवार परिपूर्ण मनोरथ एवं प्रतिभाशाली लक्ष्मण ने श्रीरामचन्द्र जी से शुभवाणी से कहा—हे राम! आप शीघ्र रावण को मार और हरी हुई सीता को प्राप्त कर ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

समृद्धार्थः समृद्धर्थामयोध्यां प्रति यास्यसि ।
महान्ति च निमित्तानि दिवि भूमौ च राघव ॥ ४६ ॥

तथा पूर्ण मनोरथ हो धन जन से पूर्ण अयोध्या को लौट जाँयगे। क्योंकि हे राघव! आकाश और पृथिवी पर अनेक प्रकार के शकुन ॥ ४६ ॥

शुभानि तव पश्यामि सर्वाण्येवार्थसिद्धये ।
अनुवाति शुभो वायुः सेनां मृदुहितः सुखः ॥ ४७ ॥

जो तुम्हारे लिये शुभ हैं, और तुम्हारी सर्वार्थसिद्धि के द्योतक हैं, देख पड़ते हैं। देखिये, शीतल मन्द, सुगन्धित अनुकूल पवन, सेना को सुख देने के लिये चल रहा है ॥ ४७ ॥

पूर्णवल्गुस्वराश्चेमे प्रवदन्ति मृगद्विजाः ।
प्रसन्नाश्च दिशः सर्वा विमलश्च दिवाकरः ॥ ४८ ॥

समस्त मृग और पक्षी स्पष्ट और मधुर स्वर से बोल रहे हैं। समस्त दिशाएँ प्रसन्न सी जान पड़ती हैं और सूर्य भी विमल किरणों से प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ४८ ॥

उशनाश्च प्रसन्नार्चिरनु त्वां भार्गवो गतः ।
ब्रह्मराशिर्विशुद्धश्च शुद्धाश्च परमर्षयः ॥ ४९ ॥

अर्चिष्मन्तः प्रकाशन्ते ध्रु ं सर्वे प्रदक्षिणम् ।
त्रिशङ्कुर्विमलो भाति राजर्षिः सपुरोहितः[1] ॥ ५० ॥

शुभ किरण वाले सब वेदों को अध्ययन किये हुए और पाप ग्रहों से रहित शुक्र भी आपके पीछे हैं। निमल आकाश में प्रभा से युक्त सप्तर्षि उज्ज्वल ध्रुव की परिक्रमा सी कर रहे हैं। पुरोहित विश्वामित्र जो के साथ राजर्षि त्रिशङ्कु आकाश में कैसा निर्मल प्रकाश कर रहे हैं ॥ ४६ ॥ ५० ॥

पितामहवरोऽस्माकमिक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ।
विमले च प्रकाशेते विशाखे निरुपद्रवे ॥ ५१ ॥
नक्षत्रवरमस्माकमिक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ।
नैर्ऋतं नैर्ऋतानां च नक्षत्रमभिपीड्यते ॥ ५२ ॥
मूलो मूलवता स्पृष्टो धूप्यते धूमकेतुना ।
सर्वं चैतद्विनाशाय राक्षसानामुपस्थितम् ॥ ५३ ॥

त्रिशङ्कु जी इक्ष्वाकुवंशियों के मुख्य पितामह हैं । विशाखा नक्षत्र, जो इक्ष्वाकुवंश का नक्षत्र कहलाता है, उपद्रव रहित हो कैसा चमक रहा है और राक्षसों का यह नैर्ऋत दैवत मूल नामक नक्षत्र, धूमकेतु द्वारा, जो डंडे की तरह खड़ा है, अत्यन्त पीड़ित हो रहा है । ये सब इन राक्षसों के विनाश के सूचक हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

काले कालगृहीतानां नक्षत्रं ग्रहपीडितम् ।
प्रसन्नाः सुरसाश्चापो वनानि फलवन्ति च ॥ ५४ ॥

---

१ पुरोहितः—विश्वामित्रः । (गो०)

क्योंकि जिसकी मृत्यु निकट आती है उसको ही नक्षत्र और ग्रहों की पीड़ा हुआ करती है। सरोवरों का जल मीठा और साफ हो रहा है, फलयुक्त वृक्षों से वन भरे हुए हैं॥ ५४॥

प्रवान्त्यभ्यधिकं गन्धान्यथर्तुकुसुमा द्रुमाः।
व्यूढानि कपिसैन्यानि प्रकाशन्तेऽधिकं प्रभो॥ ५५॥

समस्त वृक्षों के अकाल में पुष्पित होने से, उनकी सुगन्धि, ऋतु में फूले हुए पुष्पों से अधिक हो रही है। हे प्रभो! व्यूहाकार सुसज्जित ये वानरी सेना ऐसी शोभित हो रही है॥ ५५॥

देवानामिव सैन्यानि सङ्ग्रामे तारकामये।
एवमार्य समीक्ष्यैतान्प्रीतो भवितुमर्हसि॥ ५६॥

जैसे तारकासुर वाले संग्राम में देवताओं की सेना शोभित हुई थी। हे आर्य! इन सब शुभ शकुनों को देख आप प्रसन्न हूजिये॥५६॥

इति भ्रातरमाश्वास्य हृष्टः सौमित्रिरब्रवीत्।
अथावृत्य महीं कृत्स्नां जगाम महती चमूः॥ ५७॥

सुमित्रानन्दन लक्ष्मण जी ने इसप्रकार कह श्रीरामचन्द्र जी को ढाढ़स बँधाया। समस्त पृथिवी को ढक कर वह बड़ी वानरी सेना चली॥ ५७॥

ऋक्षवानर[1]शार्दूलैर्नखदंष्ट्रायुधैर्वृता।
कराग्रैश्चरणाग्रैश्च वानरैरुत्थितं रजः॥ ५८॥

उस महती वानरी सेना में, नखों और दाँतों से लड़ने वाले बड़े बड़े रीछ और वानर ही देख पड़ते थे। उस समय उनके हाथों और पैरों से उड़ी हुई धूल ने॥ ५८॥

---

१ शार्दूल शब्दः श्रेष्ठवाची। (गो०)

भीममन्तर्दधे लोकं निवार्य सवितुः प्रभाम् ।
सपर्वतवनाकाशां दक्षिणां हरिवाहिनी ॥ ५९ ॥
छादयन्ती ययौ भीमा द्यामिवाम्बुदसन्ततिः ।
उत्तरन्त्यां च सेनायां सन्ततं बहुयोजनम् ॥ ६० ॥

सम्पूर्ण दिशाओं और सूर्य के प्रकाश को निविड़ अन्धकार से ढक दिया। वह भयङ्कर कपिसेना पर्वत, वन और आकाश सहित दक्षिणप्रान्त की भूमि को ढक ऐसी चली जाती थी, जैसे आकाश में मेघ का घटाएँ। इस वानरसेना की पंक्ति बराबर कितने ही योजन तक लंबी फैली हुई थी ॥ ५९ ॥ ६० ॥

नदीस्रोतांसि सर्वाणि सस्यन्दुर्विपरीतवत् ।
सरांसि विमलाम्भांसि द्रुमाकीर्णांश्च पर्वतान् ॥ ६१ ॥

रास्ते में नदियों की धार को पार कर, जब वानरी सेना चलती, तब इनके वेग से नदियों की धारें उलटी बहती सी जान पड़ती थीं। निर्मल जल से भरी झीलों, वृक्षों से सुशोभित पर्वतों, ॥ ६१ ॥

समान्भूमिप्रदेशांश्च वनानि फलवन्ति च ।
मध्येन च समन्ताच्च तिर्यक्चाधश्च साऽविशत् ॥ ६२ ॥
समावृत्य महीं कृत्स्नां जगाम महती चमूः ।
ते हृष्टमनसः सर्वे जग्मुर्मारुतरंहसः ॥ ६३ ॥

समतल भूभागों और फलों से भरे वनों में हो कर तथा चारों तरफ, पृथिवी और आकाश को, इस प्रकार समस्त पृथिवी को ढके हुए वह वानरी सेना चली थी। वे समस्त वानर प्रसन्न हो वायु की तरह वेग से चले जाते थे ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

हरयो राघवस्यार्थे [1]समारोपितविक्रमाः ।
हर्षवीर्यबलो[2]द्रेकान्दर्शयन्तः परस्परम् ॥ ६४ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के कार्य को पूरा करने के लिये वानरों का विक्रम बढ़ रहा था अर्थात् वे वानर युद्ध के लिये कमर कसे हुए थे। वे वानर आपस में हर्ष, वीर्य और बल की उत्कृष्टता दिखलाते थे ॥ ६४ ॥

यौवनोत्सेकजान्दर्पान्विविधांश्चक्रुरध्वनि ।
तत्र केचिद्द्रुतं जग्मुरुत्पेतुश्च तथाऽपरे ॥ ६५ ॥

और वे यौवन के गर्व से गर्वित हो, तरह तरह की ध्वनि करते जाते थे। उनमें से कोई तो बड़ी तेज़ी के साथ चले जाते थे और कोई उछलते कूदते चले जाते थे ॥ ६५ ॥

केचित्किलकिलां चक्रुर्वानरा वनगोचराः ।
प्रास्फोटयंश्च पुच्छानि सन्निजघ्नुः पदान्यपि ॥ ६६ ॥

कोई कोई वानर किलकारियां मारते थे, कोई पूँछों को फटकारते, कोई भूमि पर पैरों को पटकते हुए चले जाते थे ॥ ६६ ॥

भुजान्विक्षिप्य[3] शैलांश्च द्रुमानन्ये बभञ्जिरे ।
आरोहन्तश्च शृङ्गाणि गिरीणां गिरिगोचराः[4] ॥ ६७ ॥

कोई कोई भुजाओं को फैला पेड़ों और पहाड़ों को उखाड़ते और तोड़ते जाते थे। पहाड़ों पर विचरने वाले वानर पर्वतशिखरों पर चढ़ जाते थे ॥ ६७ ॥

---

१ समारोपितविक्रमाः—अभिवृद्धविक्रमाः। (गो०) २ उद्रेकशब्दोतिशयवाची। (गो०) ३ विक्षिप्य—प्रसार्य। (गो०) ४ गिरिगोचराः—गिरिचराः। (गो०)

महानादान्विमुञ्चन्ति क्ष्वेलामन्ये प्रचक्रिरे ।
ऊरुवेगैश्च ममृदुर्लताजालान्यनेकशः ॥ ६८ ॥

कोई कोई महानाद करते और कोई कोई सिंहनाद करते थे । कोई अपनी जाँघों से कोमल लताओं को कुचल डालते थे ॥ ६८ ॥

जृम्भमाणाश्च विक्रान्ता विचिक्रीडुः शिलाद्रुमैः ।
शतैः शतसहस्रैश्च कोटीभिश्च सहस्रशः ॥ ६९ ॥

वे विक्रमशाली वानर जमुहाते जाते थे और शिलाओं तथा वृक्षों से खेलते जाते थे । उस समय लाखों करोड़ों ॥ ६९ ॥

वानराणां सुघोराणां यूथैः परिवृता मही ।
सा स्म याति दिवारात्रं महती हरिवाहिनी ॥ ७० ॥
हृष्टा प्रमुदिता सेना सुग्रीवेणाभिरक्षिता ।
वानरास्त्वरितं यान्ति सर्वे युद्धाभिनन्दिनः ॥ ७१ ॥

भयङ्कर वानरों से पृथिवी पूर्ण हो गयी । वह महती वानरी सेना हर्षित एवं प्रमुदित तथा सुग्रीव से रक्षित हो, रात दिन चली जाती थी । सब वानर युद्ध करने की इच्छा से बड़ी शीघ्रता से चले जाते थे ॥ ७० ॥ ७१ ॥

मुमोक्षयिषवः सीतां मुहूर्तं क्वापि नासत ।
ततः पादपसम्बाधं नानामृगसमायुतम् ॥ ७२ ॥
सह्यपर्वतमासेदुर्मलयं च महीधरम् ।
काननानि विचित्राणि नदीप्रस्रवणानि च ॥ ७३ ॥
पश्यन्नभिययौ रामः सह्यस्य मलयस्य च ।
चम्पकांस्तिलकांश्चूतानशोकान्सिन्धुवारकान् ॥ ७४ ॥

सीता जी को छुड़ाने के लिये वे इतने उतावले हो रहे थे कि, एक क्षण के लिये भी वे कहीं विश्राम करने को नहीं ठहरते थे। तदनन्तर वे वानर विविध वृक्षों से शोभित तथा विविध मृगों से युक्त सह्य और मलय नामक पर्वतों के समीप पहुँचे। सह्य और मलय के चित्र विचित्र वनों, नदियों और झरनों को देखते हुए श्रीरामचन्द्र जी चले जाते थे। चम्पा, तिलक, आम, अशोक, सिन्धुवार ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

करवीरांश्च तिमिशान्भञ्जन्ति स्म प्लवङ्गमाः ।
अङ्कोलांश्च करञ्जांश्च प्लक्षन्यग्रोधतिन्दुकान् ॥ ७५ ॥

करवीर और तिमिश के पेड़ों को वानर लोग नष्ट करते हुए चले जाते थे। इसी प्रकार अङ्कोल, करञ्ज, पाकर, बट, तेंदू ॥ ७५ ॥

जम्बूकामलकान्नीपान्भञ्जन्ति स्म प्लवङ्गमाः ।
प्रस्तरेषु च रम्येषु विविधाः काननद्रुमाः ॥ ७६ ॥

जामुन, आवला, नागकेसर के पेड़ों को भी वानर उखाड़ उखाड़ कर फेंक देते थे। वहाँ रमणीय पत्थरों पर जमे हुए अनेक प्रकार के जंगली पेड़ ॥ ७६ ॥

वायुवेगप्रचलिताः पुष्पैरवकिरन्ति तान्* ।
मारुतः सुखसंस्पर्शो वाति चन्दनशीतलः ॥ ७७ ॥

वायु के वेग से चलायमान हो, फूलों को पृथिवी पर बखेर रहे थे। छूने से आनन्द देने वाला और चन्दन की तरह सुशीतल वायु चल रहा था ॥ ७७ ॥

---

* पाठान्तरे—"गां।"

षट्पदैरनुकूजद्भिर्वनेषु मधुगन्धिषु ।
अधिकं शैलराजस्तु धातुभिः सुविभूषितः ॥ ७८ ॥

वनों में भौंरें गूँज रहे थे और वन में मधु की गन्ध आ रही थी। वह पर्वतराज धातुओं के द्वारा विशेष रूप से शोभायमान हो रहा था ॥ ७८ ॥

धातुभ्यः प्रसृतो रेणुर्वायुवेगविघट्टितः ।
सुमहद्वानरानीकं छादयामास सर्वतः ॥ ७९ ॥

उस समय वानरी सेना के चलने के वेग से उत्पन्न वायु के कारण उड़ी हुई उन धातुओं की रज ने महती वानरी सेना को चारों ओर से ढक लिया ॥ ७९ ॥

गिरिप्रस्थेषु रम्येषु सर्वतः सम्प्रपुष्पिताः ।
केतक्यः सिन्धुवाराश्च वासन्त्यश्च मनोरमाः ॥ ८० ॥
माधव्यो गन्धपूर्णाश्च कुन्दगुल्माश्च पुष्पिताः ।
चिरिबिल्वा मधूकाश्च वञ्जुला बकुलास्तथा ॥ ८१ ॥
रञ्जकास्तिलकाश्चैव नागवृक्षाश्च पुष्पिताः ।
चूताः पाटलयश्चैव कोविदाराश्च पुष्पिताः ॥ ८२ ॥
मुचुलिन्दार्जुनाश्चैव शिंशुपाः कुटजास्तथा ।
धवाः शल्मलयश्चैव रक्ताः कुरबकास्तथा ॥ ८३ ॥
हिन्तालास्तिमिशाश्चैव चूर्णका नीपकास्तथा ।
नीलशोकाश्च सरला अङ्कोलाः पद्मकास्तथा ॥ ८४ ॥

उस पर्वत पर सब ओर से रमणीक और फूली हुई केतकी, सिन्धुवार, मनोहर वासन्ती, सुगन्धित माधवी, फूले हुए कुन्द के

गुच्छे, चिरबिल्व, मधुक, वञ्जुल, वकुल, रञ्जक, तिलक, पुष्पित नागकेसर, आम, पाटली, फूले हुए कोविदार, मुचलिन्द, अर्जुन, शिंशपा, कुटज, ढाक, लाल शाल्मली, कुरवक, हिन्ताल, तिमिश, चूर्णक, नीपक, नील, अशोक, माखू, अङ्कोल, पद्मक आदि वृक्षों को ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

प्रीयमाणैः प्लवङ्गैस्तु सर्वे पर्याकुलीकृताः ।
वाप्यस्तस्मिन्गिरौ शीताः पल्वलानि तथैव च ॥ ८५ ॥

मारे आनन्द के वानरों ने उखाड़ कर तथा नोंच नोंच कर फेंक दिया। उस पर्वत पर शीतल जल की बावड़ी तथा छोटे छोटे जलकुण्ड थे ॥ ८५ ॥

चक्रवाकानुचरिताः कारण्डवनिषेविताः ।
प्लवैः क्रौञ्चैश्च सङ्कीर्णा वराहमृगसेविताः ॥ ८६ ॥
ऋक्षैस्तरक्षुभिः[१] सिंहैः शार्दूलैश्च भयावहैः ।
[२]व्यालैश्च बहुभिर्भीमैः सेव्यमानाः समन्ततः ॥ ८७ ॥

जिनमें चक्रवाक, कारण्डव, क्रौंच और पनडुब्बियाँ तैर रही थीं। उस पर्वत पर सुअर, हिरन, रीछ, छोटे भेड़िये, भयङ्कर सिंह, शार्दूल तथा बहुत से भयङ्कर दुष्ट हाथी चारों ओर घूम रहे थे ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

पद्मैः सौगन्धिकैः फुल्लैः कुमुदैश्चोत्पलैस्तथा ।
वारिजैर्विविधैः पुष्पै रम्यास्तत्र जलाशयाः ॥ ८८ ॥

---

१ तरक्षुभिः—मृगादनैः । (गो०) [छोटा भेड़िया ।] २ व्यालैः—दुष्टगजैः । (गो०)

लाल कमल, सुगन्धरा, कुई, सफेद कमल तथा अन्य जल में उत्पन्न होने वाले विविध प्रकार के फूल जलाशयों में फूले हुए थे ॥ ८८ ॥

तस्य सानुषु कूजन्ति नानाद्विजगणास्तथा ।
स्नात्वा पीत्वोदकान्यत्र जले क्रीडन्ति वानरः ॥ ८९ ॥

उस पर्वत के शिखरों पर विविध प्रकार के पक्षी कूज रहे थे। वहाँ ये सब वानर स्नान कर और जलपान कर, जल में क्रीड़ा करने लगे ॥ ८६ ॥

अन्योन्यं [1]प्लावयन्ति स्म शैलमारुह्य वानराः ।
फलान्यमृतगन्धीनि मूलानि कुसुमानि च ॥ ९० ॥

वे आपस में एक दूसरे को छिटियाते थे। फिर वे वानर पर्वत के ऊपर चढ़ कर अमृत समान मीठे फलों और मूलों को तथा फूलों को खाते थे ॥ ६० ॥

बभञ्जुर्वानरास्तत्र पादपानां बलोत्कटा ।
द्रोणमात्रप्रमाणानि लम्बमानानि वानराः ॥ ९१ ॥

बलोद्धत वानरों ने वहाँ के वृक्षों को उखाड़ डाला। अढ़ाई सेर वज़नी लटकते हुए ॥ ६१ ॥

ययुः पिबन्तो हृष्टास्ते मधूनि मधुपिङ्गलाः ।
पादपानबभञ्जन्तो विकर्षन्तस्तथा लताः ॥ ९२ ॥

शहद के छत्तों को तोड़ तोड़ कर तथा उनसे शहद निकाल, वे शहद की रंगत जैसे शरीर वाले वानर, पी लेते थे। फिर वृक्षों को उखाड़ते और लताओं को नोंचते ॥ ६२ ॥

---

१ प्लावयन्ति—सिञ्चन्ति। (गो०)

विधमन्तो गिरिवरान्प्रययुः प्लवगर्षभाः ।
वृक्षेभ्योऽन्ये तु कपयो नर्दन्तो मधुदर्पिताः ॥ ९३ ॥

और पर्वतों को ढहाते वे चले जाते थे। बहुतेरे वानर शहद पीते पीते अघा कर, वृक्षों पर चढ़े हुए गरज रहे थे ॥ ९३ ॥

अन्ये वृक्षान्प्रपद्यन्ते प्रपतन्त्यपि चापरे ।
बभूव वसुधा तैस्तु सम्पूर्णा हरियूथपैः ॥ ९४ ॥

कोई कोई कूद कूद कर वृक्षों पर चढ़ जाते थे और कोई कोई वृक्षों से पृथिवी पर धमाधम कूद रहे थे। उस समय वह स्थान वानरयूथों से वैसे ही परिपूर्ण हो गया था, ॥ ९४ ॥

यथा कमलकेदारैः पक्वैरिव वसुन्धरा ।
महेन्द्रमथ सम्प्राप्य रामो राजीवलोचनः ॥ ९५ ॥

जैसे पके हुए जड़हन (शाली) धान से खेत परिपूर्ण हो जाता है। तदनन्तर कमललोचन श्रीरामचन्द्र जी महेन्द्राचल पर पहुँचे ॥ ९५ ॥

अध्यारोहन्महाबाहुः शिखरं द्रुमभूषितम् ।
ततः शिखरमारुह्य रामो दशरथात्मजः ॥ ९६ ॥

और उस पर्वत के वृक्षों से शोभित शिखर पर चढ़े। तदनन्तर शिखर पर चढ़ दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र जी ने ॥ ९६ ॥

कूर्ममीनसमाकीर्णमपश्यत्सलिलाकरम् ।
ते सह्यं समतिक्रम्य मलयं च महागिरिम् ॥ ९७ ॥

वहाँ कछुओं और मछलियों से भरा एक तालाब देखा। वे पर्वतश्रेष्ठ सह्य और मलय को पार कर ॥ ९७ ॥

आसेदुरानुपूर्व्येण समुद्रं भीमनिःस्वनम् ।
अवरुह्य जगामाशु वेलावनमनुत्तमम् ॥ ९८ ॥
रामो रमयतां श्रेष्ठः ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ।
अथ धौतोपलतलां तोयौघैः सहसोत्थितैः ॥ ९९ ॥

क्रमानुसार भयङ्कर नाद करने वाले समुद्र के समीप जा निकले। तब रमण करने वालों में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी सुग्रीव और लक्ष्मण के साथ पहाड़ से उतर समुद्रतटवर्ती उत्तम वन में शीघ्रता पूर्वक पहुँच गये। वहाँ जाकर श्रीरामचन्द्र जी ने देखा कि, समुद्र के तटवर्ती पहाड़ों की उपत्यका सदा समुद्र की लहरों के जल से धोई जाती है ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

वेलामासाद्य विपुलां रामो वचनमब्रवीत् ।
एते वयमनुप्राप्ताः सुग्रीव वरुणालयम् ॥ १०० ॥

समुद्र के लंबे चौड़े तट पर पहुँच श्रीरामचन्द्र जी बोले—हे सुग्रीव! हम और ये सब वानरगण वरुणालय अर्थात् समुद्र पर पहुँच गये ॥ १०० ॥

इहेदानीं विचिन्ता सा या नः पूर्वं समुत्थिता ।
अतः परमतीरोऽयं सागरः सरितां पतिः ॥ १०१ ॥

यहाँ आने पर हम लोगों के मन में वही चिन्ता फिर उत्पन्न हो गयी जो पहले हुई थी। इस विशाल नदीपति समुद्र का दूसरा (अर्थात् दूसरी ओर का) तट दिखलाई ही नहीं पड़ता ॥ १०१ ॥

न चायमनुपायेन शक्यस्तरितुमर्णवः ।
तदिहैव निवेशोऽस्तु मन्त्रः प्रस्तूयतामिह ॥ १०२ ॥

सो बिना किसी श्रेष्ठ उपाय को विचारे, इस समुद्र के पार होना कठिन है। अतः यहीं ठहर कर विचार करना चाहिये ॥१०२॥

यथेदं वानरबलं परं पारमवाप्नुयात् ।
इतीव स महाबाहुः सीताहरणकर्शितः ॥ १०३ ॥

जिससे यह वानरी सेना उस पार जा सके। इस प्रकार महाबाहु और सीताहरण के शोक से विकल ॥ १०३ ॥

रामः सागरमासाद्य वासमाज्ञापयत्तदा ।
सर्वाः सेना निवेश्यन्तां वेलायां हरिपुङ्गव ॥ १०४ ॥

श्रीरामचन्द्र जी ने समुद्रतट पर पहुँच सेना के वहाँ टिकने की आज्ञा दी। वे सुग्रीव से बोले—हे सुग्रीव! इसी तट पर समस्त सेना को टिका दो ॥ १०४ ॥

सम्प्राप्तो मन्त्रकालो नः सागरस्यास्य लङ्घने ।
स्वां स्वां सेनां समुत्सृज्य मा च कश्चित्कुतो व्रजेत् ॥१०५॥
गच्छन्तु वानराः शूराः ज्ञेयं छन्नं भयं च नः ।
रामस्य वचनं श्रुत्वा सुग्रीवः सहलक्ष्मणः ॥ १०६ ॥

क्योंकि समुद्र के पार होने के सम्बन्ध में परामर्श करने का समय आ पहुँचा है। अपनी अपनी सेना को छोड़ कर कोई भी सेनापति कहीं न जाय। बल्कि शूरवीर वानर इधर उधर घूम फिर कर छिपी हुई राक्षसी सेना का पता लगावें। श्रीरामचन्द्र जी के ये वचन सुन, लक्ष्मण सहित सुग्रीव ने ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

सेनां न्यवेशयत्तीरे सागरस्य द्रुमायुते ।
विरराज समीपस्थं सागरस्य च तद्बलम् ॥ १०७ ॥

वृक्षों से सुशोभित उस समुद्रतट पर वानरी सेना को टिका दिया। उस समय समुद्रतट पर ठहरी हुई वह वानरी सेना ॥१०७॥

मधुपाण्डुजलः श्रीमान्द्वितीय इव सागरः।
वेलावनमुपागम्य ततस्ते हरिपुङ्गवाः ॥ १०८ ॥
विनिविष्टाः परं पारं काङ्क्षमाणा महोदधेः।
तेषां निविशमानानां सैन्यसन्नाहनिःस्वनः ॥ १०९ ॥
अन्तर्धाय महानादमर्णवस्य प्रशुश्रुवे।
सा वानराणां ध्वजिनी सुग्रीवेणाभिपालिता ॥ ११० ॥

मधुपिङ्गलवर्ण (शहद जैसे पीले रंग के) जल से पूर्ण दूसरे महासागर के समान जान पड़ी। तदनन्तर वे वानरश्रेष्ठ समुद्रतट पर पहुँच, समुद्र के दूसरे तट पर जाने की अभिलाषा करने लगे। उस समय वानरी सेना की चिल्लाहट ने समुद्र के गर्जन को दबा दिया और (केवल) वानरों की चिल्लाहट ही सुन पड़ने लगी। वह सुग्रीवपालित वानरी सेना ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ ११० ॥

त्रिधा निविष्टा महती रामस्यार्थपराऽभवत्।
सा महार्णवमासाद्य हृष्टा वानरवाहिनी ॥ १११ ॥

रीछ, बंदर और लंगूर—इस प्रकार तीन भागों में बँट कर श्रीरामचन्द्र जी का कार्यसिद्ध करने को यत्नवती हुई। हर्षित वानरी सेना ने महासागर के समीप पहुँच ॥ १११ ॥

वायुवेगसमाधूतं पश्यमाना महार्णवम्।
दूरपारमसम्बाधं रक्षोगणनिषेवितम् ॥ ११२ ॥

वायु के वेग से लहराते हुए समुद्र को देखा। बड़ी कठिनाई से पार होने योग्य और राक्षससेवित ॥ ११२ ॥

पश्यन्तो वरुणावासं विषेदुर्हरियूथपाः ।
चण्डनक्रग्रहं घोरं [१]क्षपादौ दिवसक्षये ॥ ११३ ॥

वरुण के आवसस्थान अर्थात् समुद्र को देखते हुए, वानर यूथपति वहाँ बैठे हुए थे। समुद्र बड़े बड़े घड़ियालों से पूर्ण होने के कारण भयावह हो रहा था और सन्ध्या के समय ॥ ११३ ॥

हसन्तमिव फेनौघैर्नृत्यन्तमिव चोर्मिभिः ।
चन्द्रोदयसमुद्धूतं प्रतिचन्द्रसमाकुलम् ॥ ११४ ॥

जब उसमें फेन आता था, तब ऐसा जान पड़ता था, मानों वह हँस रहा है और जब वह अपनी लहरों से लहराता था, तब ऐसा जान पड़ता था मानों वह नाच रहा है। समुद्र चन्द्रमा के उदय होने पर बढ़ता और चन्द्रमा के प्रतिबिंबों से भरा हुआ जान पड़ता था ॥ ११४ ॥

[पिनष्टीव तरङ्गाग्रैरर्णवः फेनचन्दनम् ।
तदादाय करैरिन्दुर्लिम्पतीव दिगङ्गनाः ॥ ११५ ॥]

उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानों महासागर, तरङ्गोंरूपी हाथों से फेनरूपी चन्दन रगड़ रहा है और चन्द्रमा अपने किरण रूपी हाथों से दिशारूपी सुन्दरियों के अङ्गों में चन्दन का लेप कर रहा है ॥ ११५ ॥

चण्डानिलमहाग्राहैः कीर्णं तिमितिमिङ्गलैः ।
[२]दीप्तभोगैरिवाकीर्णं भुजङ्गैर्भुजगालयम् ॥ ११६ ॥

---

१ दिवसक्षये क्षपादौ सन्ध्यायामित्यर्थः । (गो०) २ दीप्तभोगैरुज्ज्वल देहैः । (रा०

वह समुद्र प्रचण्ड वायु, बड़े बड़े घड़ियालों, तिमि और तिमिङ्गलों (एक प्रकार की बड़े आकार की मछलियों) से भरा हुआ देख पड़ता था। उज्ज्वल देहधारी सर्पों से भरा होने के कारण वह सर्पों का आलय अर्थात् पाताल जैसा जान पड़ता था ॥ ११६ ॥

अवगाढं महासत्त्वैर्नानाशैलसमाकुलम् ।
सुदुर्गं दुर्गमार्गं तमगाधमसुरालयम् ॥ ११७ ॥

बड़े बड़े जलचरों और पहाड़ों से समुद्र भरा हुआ होने के कारण, मार्गरहित, सब किसी के जाने के अयोग्य और असुरों के रहने का अगाध स्थान था ॥ ११७ ॥

मकरैर्नागभोगैश्च विगाढा वातलोलिताः ।
उत्पेतुश्च निपेतुश्च प्रवृद्धा जलराशयः ॥ ११८ ॥

उसकी लहरें घड़ियाल और सर्पों के चलने फिरने से तथा वायु के वेग से ऊपर को उछलतीं और बड़े ज़ोर से शब्द करती हुई नीचे गिरती थीं ॥ ११८ ॥

अग्निचूर्णमिवाविद्धं भास्वराम्बु महोरगम् ।
सुरारिविषयं[1] घोरं [2]पातालविषमं सदा ॥ ११९ ॥

समुद्र में मणिधारी सर्पों के रहने से, उनके फणों की मणियों की किरनें जब जल पर छिटकती थीं, तब ऐसा जान पड़ता था मानों जल के ऊपर अग्नि की चिनगारियाँ बिखरी हुई पड़ी हों। यह भयङ्कर समुद्र असुरों का आवासस्थान और पाताल की तरह गहरा है ॥ ११९ ॥

---

१ विषयं—आवासभूतं (गो०) २ पातालविषमं—पातालवत् गंभीर। (गो०)

सागरं चाम्बरप्रख्यमम्बरं सागरोपमम् ।
सागरं चाम्बरं चेति [1]निर्विशेषमदृश्यत ॥ १२० ॥

उस समय समुद्र तो आकाश जैसा और आकाश समुद्र जैसा देख पड़ता था। उन दोनों में कोई भी अन्तर नहीं देख पड़ता था ॥ १२० ॥

सम्पृक्तं नभसाऽप्यम्भः सम्पृक्तं च नभोऽम्भसा ।
तादृग्रूपे स्म दृश्येते तारारत्नसमाकुले ॥ १२१ ॥

उस समय ऐसा जान पड़ता था कि, आकाश से तो समुद्र का जल मिला हुआ और जल से आकाश। दोनों ही तुल्य रूप जान पड़ते थे। नक्षत्रदीप्ति (नक्षत्रों के प्रकाश) और रत्नज्योति (रत्नों की दमक) के कारण दोनों एक समान हो रहे थे ॥ १२१ ॥

समुत्पतितमेघस्य वीचिमालाकुलस्य च ।
विशेषो न द्वयोरासीत्सागरस्याम्बरस्य च ॥ १२२ ॥

मेघयुक्त आकाश और लहरों से युक्त समुद्र दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं जान पड़ता था ॥ १२२ ॥

अन्योन्यमाहताः सक्ताः सस्वनुर्भीमनिःस्वनाः ।
ऊर्मयः सिन्धुराजस्य महाभेर्य इवाहवे ॥ १२३ ॥

दोनों आपस में मिले हुए और आपस में टकरा कर महाघोर शब्द कर रहे थे। समुद्र की लहरें ऐसा शब्द कर रही थीं, मानों लड़ाई के नगाड़े बज रहे हों ॥ १२३ ॥

---

१ निर्विशेषं—परस्परातिरिक्तसदृश रहितं । (रा०)

रत्नौघजलसन्नादं विषक्तमिव वायुना ।
उत्पतन्तमिव क्रुद्धं यादोगणसमाकुलम् ॥ १२४ ॥

रत्नों से और विविध प्रकार के जलजन्तुओं से पूर्ण, समुद्र का जल वायु के झोकों से ऐसा उछल रहा था, मानों क्रोध में भर उछल रहा हो ॥ १२४ ॥

ददृशुस्ते महोत्साहा वाताहतमपाम्पतिम्* ।
†अनिलोद्धतमाकाशे प्रवल्गन्तमिवोर्मिभिः ॥ १२५ ॥

उस समय उन वानरों ने इस तरह के समुद्र को ऐसा देखा, मानों वह लहरोंरूपी मुख से व्यर्थ की बक बक कर रहा हो ॥१२५॥

ततोविस्मयमापन्ना ददृशुर्हरयस्तदा ।
भ्रान्तोर्मिजलसन्नादं प्रलोलमिव सागरम् ॥ १२६ ॥

इति चतुर्थः सर्गः ॥

चक्कर खाती हुई बहुत सी तरङ्गों से युक्त और कल्लोलमय समुद्र को देख, वे वानरगण परम विस्मित हुए ॥ १२६ ॥

युद्धकाण्ड का चतुर्थ सर्ग पूरा हुआ ।

—※—

पञ्चमः सर्गः

—※—

सा तु नीलेन [1]विधिवत्स्वारक्षा सुसमाहिता ।
सागरस्योत्तरे तीरे साधु सेना निवेशिता ॥ १ ॥

---

१ विधिवत्—नीतिशास्त्रोक्तरीत्या । (गो०) * पाठान्तरे—"वाताहतजलाशयम्" । † पाठान्तरे—"अनिलोद्भूतं" ।

सेनापति नील के अधिकार में वानरी सेना समुद्र के उत्तर तट पर भली भाँति टिका दी गयी और सैनिक नियमानुसार पहिरे आदि का प्रबन्ध किया गया ॥ १ ॥

मैन्दश्च द्विविदश्चोभौ तत्र वानरपुङ्गवौ ।
विचेरतुश्च तां सेनां रक्षार्थं सर्वतोदिशम् ॥ २ ॥

मैन्द और द्विविद नामक दो यूथपति रखवाली के लिये, सेना के चारों ओर घूम घूम कर पहरा देने लगे ॥ २ ॥

निविष्टायां तु सेनायां तीरे नदनदीपतेः ।
पार्श्वस्थं लक्ष्मणं दृष्ट्वा रामो वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥

नदीपति समुद्र के तट पर सेना के टिक जाने पर, बगल में बैठे हुए लक्ष्मण से श्रीरामचन्द्र जी बोले ॥ ३ ॥

शोकश्च किल कालेन गच्छता ह्यपगच्छति ।
मम चापश्यतः कान्तामहन्यहनि वर्धते ॥ ४ ॥

हे लक्ष्मण ! देखो समय जैसे जैसे बीतता जाता है, वैसे ही वैसे मनुष्य का शोक भी कम होता है। किन्तु सीता के न देखने से मेरा दुःख दिन दिन बढ़ता जाता है ॥ ४ ॥

न मे दुःखं प्रिया दूरे न मे दुःखं हृतेति वा ।
एतदेवानुशोचामि वयोऽस्या ह्यतिवर्तते ॥ ५ ॥

हे लक्ष्मण ! मुझे अपनी प्यारी सीता के दूर होने का दुःख नहीं है और न उसके हरे जाने ही का दुःख है, मुझे तो धीरे धीरे उसकी आयु के क्षीण होते जाने का (अर्थात गतयौवना होने का) दुःख है ॥ ५ ॥

वाहि वात यतः कान्ता तां स्पृष्ट्वा मामपि स्पृश ।
त्वयि मे गात्रसंस्पर्शश्चन्द्रे दृष्टिसमागमः ॥ ६ ॥

हे वायु! तुम उधर ही को चलो जिधर मेरी प्यारी है और उसके शरीर को छू कर मेरे शरीर को छूओ। मेरे शरीर को, तुम्हारे छूने से वैसा ही सुख होगा, जैसा गर्मी से विकल मनुष्य, चन्द्रमा को देख कर, सुखी होता है ॥ ६ ॥

तन्मे दहति गात्राणि विषं पीतमिवाशये ।
हा नाथेति प्रिया सा मां ह्रियमाणा यदब्रवीत् ॥ ७ ॥

हे लक्ष्मण! हरे जाने के समय मेरी प्रिया ने जो "हा नाथ" कहा था, वह मेरे शरीर को शरीरस्थित अथवा (पिये हुए) विष की तरह भस्म कर रहा है ॥ ७ ॥

तद्वियोगेन्धनवता तच्चिन्ताविपुलार्चिषा ।
रात्रिंदिवं शरीरं मे दह्यते मदनाग्निना ॥ ८ ॥

सीता के वियोग रूपी ईंधन से युक्त और उसकी चिन्ता रूपी ज्वाला से दहकता हुआ यह काम रूपी आग रात दिन मुझे भस्म कर रहा है ॥ ८ ॥

अवगाह्यार्णवं स्वप्स्ये सौमित्रे भवता विना ।
कथञ्चित्प्रज्वलन्कामः न मां सुप्तं जले दहेत् ॥ ९ ॥

हे लक्ष्मण! तुम यहीं रहो। मैं इस समुद्र में गोता मार कर सोऊँगा। क्योंकि यह दहकता हुआ काम मुझे जल में तो भस्म न करेगा ॥ ९ ॥

बह्वेतत्कामयानस्य शक्यमेतेन जीवितुम् ।
यदहं सा च वामोरूरेकां धरणिमाश्रितौ ॥ १० ॥

मुझ विरही को जीवित रखने के लिये इतना ही पर्याप्त है कि, मैं और वह सीता एक पृथिवी पर तो सोते हैं ॥ १० ॥

केदारस्येव केदारः सोदकस्य निरूदकः ।
उपस्नेहेन जीवामि जीवन्तीं यच्छृणोमि ताम् ॥ ११ ॥

जिस तरह पानी से पूर्ण क्यारी की समीपवर्तिनी सूखी क्यारी, जलपूर्ण क्यारी की ठंढक से अपने पौधों को सींचती है, उसी तरह सीता को जीती जागती सुन कर, मैं भी जीता हूँ ॥ ११ ॥

कदा नु खलु सुश्रोणीं शतपत्रायतेक्षणाम् ।
विजित्य शत्रून्द्रक्ष्यामि सीतां स्फीतामिव श्रियम् ॥१२॥

हे लक्ष्मण ! मैं शत्रु को मार कर, उस सुन्दरी और कमलनयनी सीता को, धनधान्य से भरी पूरी राज्यलक्ष्मी के तुल्य, कब देखूँगा ॥ १२ ॥

कदा नु चारुबिम्बोष्ठं तस्याः पद्ममिवाननम् ।
ईषदुन्नम्य पास्यामि रसायनमिवातुरः ॥ १३ ॥

मैं उसके बिम्बोष्ठ तथा कमल के तुल्य मुँह को अपने हाथों से ऊँचा कर, उसका अधरामृत पान वैसे ही कब करूँगा, जैसे रोगी रसायन को पीता है ? ॥ १३ ॥

तस्यास्तु संहतौ पीनौ स्तनौ तालफलोपमौ ।
कदा नु खलु सोत्कम्पौ श्लिष्यन्त्या मां भजिष्यतः ॥१४॥

उस हँसती हुई सीता के तालफल के समान काँपते हुए स्तन-युगल, मेरे शरीर का स्पर्श कब करेंगे ॥ १४ ॥

सा नूनमसितापाङ्गी रक्षोमध्यगता सती ।
मन्नाथा नाथहीनेव त्रातारं नाधिगच्छति ॥ १५ ॥

हाय ! वह श्याम नयनवाली जनककुमारी मेरे जैसे स्वामी के रहते राक्षसों के वश में हो, अनाथिनी की तरह, अपना रक्षक कोई नहीं पाती होगी ॥ १५ ॥

कथं जनकराजस्य दुहिता सा मम प्रिया ।
राक्षसीमध्यगा शेते स्नुषा दशरथस्य च ॥ १६ ॥

हा ! जनकराज की पुत्री, मेरी प्यारी और दशरथ की वह पुत्रवधू राक्षसियों के बीच कैसे सोती होगी ॥ १६ ॥

कदाऽविक्षोभ्यरक्षांसि सा विधूयोत्पतिष्यति ।
विधूय जलदान्नीलाञ्शशिरेखा शरत्स्विव ॥ १७ ॥

इन दुर्धर्ष राक्षसों का विध्वंस हो कर, उसका उद्धार वैसे कब होगा, जैसे शरत्काल की चन्द्ररेखा नील मेघों के तितिर बितिर हो जाने पर प्रकाशित होती है ॥ १७ ॥

स्वभावतनुका नूनं शोकेनानशनेन च ।
भूयस्तनुतरा सीता देशकालविपर्ययात् ॥ १८ ॥

हाय ! वह तो पहले ही बहुत लटी हुई थी और अब तो शोक और कड़ाके करते करते तथा देश और काल के विपर्यास से (स्थान और समय के परिवर्तन से) अत्यन्त ही लट गयी होगी ॥ १८ ॥

कदा नु राक्षसेन्द्रस्य निधायोरसि सायकान् ।
सीतां प्रत्याहरिष्यामि शोकमुत्सृज्य मानसम् ॥ १९ ॥

हे लक्ष्मण ! रावण की छाती को तीरों से चीर कर, मैं अपने मन का शोक दूर कर, सीता को कब फिर पाऊँगा १९ ॥

कदा नु खलु मां साध्वी सीता सुरसुतोपमा ।
सोत्कण्ठा कण्ठमालम्ब्य मोक्ष्यत्यानन्दजं पयः ॥ २० ॥

वह देवकन्या के समान पतिव्रता सीता, उत्कण्ठा पूर्वक मेरे गले में लिपट, आँखों से आनन्द के आँसू कब बहावेगी ? ॥ २० ॥

कदा शोकमिमं घोरं मैथिली विप्रयोगजम् ।
सहसा विप्रमोक्ष्यामि वासः शुक्लेतरं यथा ॥ २१ ॥

हे लक्ष्मण ! मैं सीता के विरह से उत्पन्न हुए, इस घोर शोक को, मलिन वस्त्र की तरह कब छोड़ूँगा ॥ २१ ॥

एवं विलपतस्तस्य तत्र रामस्य धीमतः ।
दिनक्षयान्मन्दरुचिर्भास्करोऽस्तमुपागमत् ॥ २२ ॥

बुद्धिमान श्रीरामचन्द्र जी सीता के शोक में अधीर हो, इस प्रकार विलाप कर ही रहे थे कि, इतने में शाम हो गयी और भगवान् सूर्य कान्तिहीन हो, अस्ताचलगामी हुए ॥ २२ ॥

आश्वासितो लक्ष्मणेन रामः सन्ध्यामुपासत ।
स्मरन्कमलपत्राक्षीं सीतां शोकाकुलीकृतः ॥ २३ ॥

इति पञ्चमः सर्गः ॥

लक्ष्मण ने श्रीरामचन्द्र जी को समझाया—तब उन्होंने सन्ध्योपासन किया, किन्तु वे अपने मन में सीता का स्मरण करते हुए, शोक से विकल हो रहे थे ॥ २३ ॥

युद्धकाण्ड का पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—*—

षष्ठः सर्गः

—*—

लङ्कायां तु कृतं कर्म घोरं दृष्ट्वा भयावहम् ।
राक्षसेन्द्रो हनुमता शक्रेणेव महात्मना ॥ १ ॥
अब्रवीद्राक्षसान्सर्वान्ह्रिया किञ्चिदवाङ्मुखः ।
धर्षिता च प्रविष्टा च लङ्का दुष्प्रसहा पुरी ॥ २ ॥
तेन [1]वानरमात्रेण दृष्टा सीता च जानकी ।
प्रासादो धर्षितश्चैत्यः प्रबला राक्षसा हताः ॥ ३ ॥

उधर लङ्का में, राक्षसराज रावण, महाबली इन्द्र के समान हनुमान जी का किया हुआ घोर भयङ्कर कार्य देख, लज्जा के मारे उदास हो, राक्षसों से बोला। देखो—एक बन्दर ने अजेय लङ्का में आकर लङ्कापुरी की कैसी दुर्दशा की। उस बन्दर ने जनकनन्दिनी सीता से बातचीत की, महलों को नष्ट भ्रष्ट कर डाला और बड़े बड़े बलवान राक्षसों को मार डाला ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

आकुला च पुरी लङ्का सर्वा हनुमता कृता ।
किं करिष्यामि भद्रं वः किं वा युक्तमनन्तरम् ॥ ४ ॥

हनुमान ने तो सारी लङ्कापुरी में हलचल मचा दी। तुम्हारा भला हो—अब तुम सब यह तो बतलाओ कि, मुझे क्या करना चाहिये और क्या करना ठीक होगा ॥ ४ ॥

---

१ वानरमात्रेण—वानरजातीयेन। (गो०)

उच्यतां नः समर्थं यत्कृतं च सुकृतं भवेत् ।
मन्त्रमूलं हि विजयं प्राहुरार्या मनस्विनः ॥ ५ ॥

तुम लोग कोई ऐसा उपाय बतलाओ जिसके करने से अन्त में भलाई हो और जिसे हम लोग कर भी सकें। क्योंकि पण्डित लोग विजय की कुंजी विचार ही को बतलाते हैं ॥ ५ ॥

तस्माद्वै रोचये मन्त्रं रामं प्रति महाबलाः ।
त्रिविधाः पुरुषा लोके उत्तमाधममध्यमाः ॥ ६ ॥

हे राक्षसो ! इस समय मुझे श्रीरामचन्द्र के विषय में परामर्श करना ठीक जान पड़ता है। संसार में उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार के लोग हुआ करते हैं ॥ ६ ॥

तेषां तु समवेतानां गुणदोषौ वदाम्यहम् ।
मन्त्रिभिर्हितसंयुक्तैः समर्थैर्मन्त्रनिर्णये ॥ ७ ॥

सो मैं उन तीनों प्रकार के लोगों के गुण दोषों को कहता हूँ। जो मनुष्य हितैषी और सलाह देने की योग्यता रखने वालों ॥ ७ ॥

मित्रैर्वापि समानार्थैर्बान्धवैरपिवाधिकैः ।
सहितो मन्त्रयित्वा यः कर्मारम्भान्प्रवर्तयेत् ॥ ८ ॥

अथवा अपनी तरह दुःख सुख भोगने वाले मित्रों अथवा भाई बंदों अथवा अपने से अधिक योग्य व्यक्तियों के साथ सलाह कर कार्य आरम्भ करता है ॥ ८ ॥

[1]दैवे च कुरुते यत्नं तमाहुः पुरुषोत्तमम् ।
एकोऽर्थं विमृशेदेको धर्मे प्रकुरुते मनः ॥ ९ ॥

---

१ दैवे—दैवसहाये च। (रा०) दैवसमाश्रयणे। (गो०)

एकः कार्याणि कुरुते तमाहुर्मध्यमं नरम् ।
गुणदोषावनिश्चित्य त्यक्त्वा धर्मव्यपाश्रयम् ॥ १० ॥

और दैवबल के सहारे अथवा ईश्वर की सहायता पाने के लिये यत्न करता है, पण्डित लोग—ऐसे पुरुष को उत्तम पुरुष कहते हैं। जो मनुष्य अकेला ही अर्थ का विचार कर और धर्म में मन लगा स्वयं ही कार्य आरम्भ करता है, वह अधम पुरुष कहलाता है। जो गुण दोषों को भली भाँति बिचारे बिना और धर्म का सहारा त्याग कर ॥ ९ ॥ १० ॥

करिष्यामीति यः कार्यमुपेक्षेत्स नराधमः ।
यथेमे पुरुषा नित्यमुत्तमाधममध्यमाः ॥ ११ ॥

तथा मैं अकेला अथवा स्वयं ही इस कार्य को कर लूँगा—ऐसा सोच कर, फिर भी ढीला पड़ जाता है; वह मनुष्य अधम है। जिस प्रकार तीन प्रकार के उत्तम, मध्यम और अधम पुरुष होते हैं ॥ ११ ॥

एवं मन्त्रा हि विज्ञेया उत्तमाधममध्यमाः ।
ऐकमत्यमुपागम्य शास्त्रदृष्टेन चक्षुषा ॥ १२ ॥
मन्त्रिणो यत्र निरतास्तमाहुर्मन्त्रमुत्तमम् ।
वह्वयोऽपि मतयो भूत्वा मन्त्रिणामर्थनिर्णये ॥ १३ ॥
पुनर्यत्रैकतां प्राप्ताः स मन्त्रो मध्यमः स्मृतः ।
अन्योन्यं मतिमास्थाय यत्र सम्प्रतिभाष्यते ॥ १४ ॥
न चैकमत्ये श्रेयोऽस्ति मन्त्रः सोऽधम उच्यते ।
तस्मात्सुमन्त्रितं साधु भवन्तो मतिसत्तमाः ॥ १५ ॥

इसी प्रकार मंत्र (सलाह) भी उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार के जानने चाहिये। शास्त्रानुसार जहाँ एक मत होकर मंत्रिगण जो सलाह करते हैं, वह उत्तम सलाह कही जाती है। जिस विचार का निर्णय करने के लिये मंत्री अनेक मत होकर, फिर अन्त में एक मत हो जाँय, उस सलाह को पण्डित मध्यम सलाह बतलाते हैं और जिस मंत्र में सब मंत्रदाताओं का मत अलग अलग हो और सब एक मत न हों और एक मत होने पर भी जिसमें कल्याण होना सम्भव न देख पड़े, वह मंत्र अधम कहलाता है। अतएव हे मंत्रिश्रेष्ठो! आप लोग भली भाँति विचार करो—क्योंकि आप लोग बड़े बुद्धिमान हैं॥ १२॥ १३॥ १४॥ १५॥

कार्यं सम्प्रतिपद्यन्तामेतत्कृत्यं मतं मम।
वानराणां हि वीराणां सहस्रैः परिवारितः॥ १६॥

जो कर्त्तव्य (और श्रेष्ठ) हो, उसे एक मत होकर निश्चित करो—बस, वही मेरा कर्त्तव्य होगा। देखो हज़ारों वीर वानरों को साथ ले कर॥ १६॥

रामोऽभ्येति पुरीं लङ्कामस्माकमुपरोधकः।
तरिष्यति च सुव्यक्तं राघवः सागरं सुखम्॥ १७॥
[1]तरसा युक्तरूपेण सानुजः सबलानुगः।
समुद्रमुच्छोषयति वीर्येणान्यत्करोति वा॥ १८॥

श्रीरामचन्द्र जी लङ्कापुरी का अवरोध करने आ रहे हैं। यह भी निश्चित है कि, श्रीरामचन्द्र जी अपने नये बल अथवा दिव्य अस्त्रों के बल से, अनुज लक्ष्मण और समस्त वानरी सेना सहित समुद्र के इस पार आसानी से आ जाँयगे। चाहे वे समुद्र के जल

१ तरसा—बलेन। (रा०)

को सुखा कर आवें अथवा पराक्रम द्वारा कोई अन्य उपाय करें ॥ १७ ॥ १८ ॥

[1]अस्मिन्नेवं गते कार्ये विरुद्धे वानरैः सह ।
हितं पुरे च सैन्ये च सर्वं सम्मन्त्र्यतां मम ॥ १९ ॥

इति षष्ठः सर्गः ॥

लङ्का पर चढ़ाई होने की और वानरों के साथ विरोध हो जाने की बात को ध्यान में रख, सब लोग मिल कर ऐसी सलाह करो, जिससे लङ्कापुरी और राक्षसी सेना की रक्षा हो ॥ १९ ॥

युद्धकाण्ड का छठवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—※—

सप्तमः सर्गः

—※—

इत्युक्ता राक्षसेन्द्रेण राक्षसास्ते महाबलाः ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ १ ॥

जब राक्षसेन्द्र ने यह कहा, तब वे सब महाबली राक्षस हाथ जोड़ कर राक्षसराज रावण से बोले ॥ १ ॥

द्विषत्पक्षमविज्ञाय नीतिबाह्यास्त्वबुद्धयः ॥ २ ॥

महाराज जब तक शत्रु का बलाबल न मालूम हो, तब तक परामर्श देना नीति विरुद्ध और निर्बुद्धियों का काम है ॥ २ ॥

राजन्परिघशक्त्यृष्टिशूलपट्टससङ्कुलम् ।
सुमहन्नो बलं कस्माद्विषादं भजते भवान् ॥ ३ ॥

---

१ अस्मिन्—लङ्कानिरोधनरूपे कार्ये । (गो०)

हे राजन् ! हम लोगों के पास परिघ, शक्ति, यष्टि, शूल और पटाधारिणी एक महती सेना है। अतः आप विषाद क्यों करते हैं ॥ ३ ॥

त्वया भोगवतीं गत्वा निर्जिताः पन्नगा युधि ।
कैलासशिखरावासी यक्षैर्बहुभिरावृतः ॥ ४ ॥

तुमने भोगवती में जाकर सर्पों को जीता है। कैलासवासी बहुत से यक्षों से युक्त, ॥ ४ ॥

सुमहत्कदनं[1] कृत्वा वश्यस्ते धनदः कृतः ।
स महेश्वरसख्येन श्लाघमानस्त्वया विभो ॥ ५ ॥

कुवेर से घोर युद्ध कर, उसे अपने वश में किया है। महादेव का मित्र कह कर, जो कुवेर स्वयं अपनी बड़ाई किया करते हैं ॥ ५ ॥

निर्जितः समरे रोषाल्लोकपालो महाबलः ।
विनिहत्य च यक्षौघान्विक्षोभ्य च विगृह्य च ॥ ६ ॥

तुमने रोष में भर रणभूमि में उस लोकपाल को भी जीत लिया। दल के दल यक्षों को मार और कैद कर उनको क्षुब्ध कर दिया ॥ ६ ॥

त्वया कैलासशिखराद्विमानमिदमाहृतम् ।
मयेन दानवेन्द्रेण त्वद्भयात्सख्यमिच्छता ॥ ७ ॥

तुम कैलासपर्वत से यह पुष्पक विमान ले आये। मय नामक दैत्यराज ने भयभीत हो तुमसे मैत्री करने के लिये ॥ ७ ॥

दुहिता तव भार्यार्थे दत्ता राक्षसपुङ्गव ।
दानवेन्द्रो मधुर्नाम वीर्योत्सिक्तो दुरासदः ॥ ८ ॥

---

१ कदनं—युद्धं ।

विगृह्य वशमानीतः कुम्भीनस्याः सुखावहः ।
निर्जितास्ते महाबाहो नागा गत्वा रसातलम् ॥ ९ ॥

हे राक्षसश्रेष्ठ ! अपनी कन्या भार्या बनाने को तुम को दे दी। कुम्भीनसी के प्यारे स्वामी, वीर्यवान, अजीत और दानवों के स्वामी मधुदैत्य के साथ युद्ध कर, तुमने उसको अपने वशीभूत कर लिया। फिर हे महाबाहो ! तुमने रसातल में जा नागों को परास्त किया ॥ ८ ॥ ९ ॥

वासुकिस्तक्षकः शङ्खो जटी च वशमाहृताः ।
अक्षया बलवन्तश्च शूरा लब्धवराः पुरा ॥ १० ॥

वासुकी, तक्षक, शङ्ख और जटी, इन प्रधान नागों को अपने वश में कर लिया। कभी न मरने वाले, बलवान, शूर और पूर्व में वर पाये हुए ॥ १० ॥

त्वया सम्वत्सरं युद्ध्वा समरे दानवा विभो ।
स्वबलं समुपाश्रित्य नीता वशमरिन्दम ॥ ११ ॥

दानवों को एक वर्ष तक युद्ध कर, हे अरिन्दम ! तुमने अपने बल से अपने काबू में कर लिया ॥ ११ ॥

मायाश्चाधिगतास्तत्र बहवो राक्षसाधिप ।
निर्जिताः समरे रोषाल्लोकपाला महाबलाः ॥ १२ ॥

हे राक्षसराज ! बहुत माया जानने वाले महाबली लोकपालों को तुमने युद्ध में जीता ॥ १२ ॥

देवलोकमितो गत्वा शक्रश्चापि विनिर्जितः ।
शूराश्च बलवन्तश्च वरुणस्य सुता रणे ॥ १३ ॥

फिर स्वर्ग तक में जा इन्द्र को परास्त किया । फिर युद्ध में वरुण के उन पुत्रों को जो बड़े शूर बलवान ॥ १३ ॥

निर्जितास्ते महाबाहो चतुर्विधबलानुगाः ।
मृत्युदण्डमहाग्राहं शाल्मलिद्रुममण्डितम् ॥ १४ ॥
कालपाशमहावीचिं यमकिङ्करपन्नगम् ।
अवगाह्य त्वया राजन्यमस्य बलसागरम् ॥ १५ ॥

जयश्च विपुलः प्राप्तो मृत्युश्च प्रतिषेधितः ।
सुयुद्धेन च ते सर्वे लोकास्तत्र *सुतोषिताः ॥ १६ ॥

और चतुरंगिणी सेना से युक्त थे, तुमने जीता । हे राजन् ! तुमने मृत्युदण्डरूप महानक्रों से युक्त, यातनारूपी शाल्मलीद्रुम-मण्डित, कालपाशरूपी महातरङ्ग से लहराते, यम के किङ्कररूपी सर्पों के कारण भयङ्कर और महाज्वर से दुर्धर्ष, यमलोकरूपी महासागर में डुबकी मार तुमने बड़ी भारी विजय प्राप्त की और तुमने मौत को भी रोक दिया । वहाँ पर घोर युद्ध कर आपने सब लोकों को भली भाँति सन्तुष्ट कर दिया ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

क्षत्रियैर्बहुभिर्वीरैः शक्रतुल्यपराक्रमैः ।
आसीद्वसुमती पूर्णा महद्भिरिव पादपैः ॥ १७ ॥

इन्द्र के समान पराक्रमी बहुत से वीर क्षत्रियों से यह पृथिवी, बड़े बड़े वृक्षों की तरह, पूर्ण थी ॥ १७ ॥

तेषां वीर्यगुणोत्साहैर्न समो राघवो रणे ।
प्रसह्य ते त्वया राजन्हताः परमदुर्जयाः ॥ १८ ॥

---

* पाठान्तरे—"विलोलिताः ।"

उनके पराक्रम, बल, उत्साह और गुण ऐसे थे कि, रामचन्द्र रण में उनका सामना कभी नहीं कर सकते; परन्तु हे राजन्! तुमने उन परम दुर्जेय क्षत्रियों को भी मार डाला॥ १८॥

तिष्ठ वा किं महाराज श्रमेण तव वानरान्।
अयमेको महाबाहुरिन्द्रजित्क्षपयिष्यति॥ १९॥

हे महाराज! आप बैठे भर रहें। आप ज़रा भी श्रम न करें। यह इन्द्रजीत अकेला ही सब वानरों को मार डालेगा॥ १९॥

अनेन हि महाराज माहेश्वरमनुत्तमम्।
इष्ट्वा यज्ञं वरो लब्धो लोके परमदुर्लभः॥ २०॥

क्योंकि हे महाराज! इसने अत्युत्कृष्ट माहेश्वर यज्ञ कर, परम दुर्लभ वर प्राप्त किया है॥ २०॥

शक्तितोमरमीनं च विनिकीर्णान्त्रशैवलम्।
गजकच्छपसम्बाधमश्वमण्डूकसङ्कुलम्॥ २१॥
रुद्रादित्यमहाग्राहं मरुद्वसुमहोरगम्।
रथाश्वगजतोयौघं पदातिपुलिनं महत्॥ २२॥

युद्धरूपी महासागर में शक्तिरूपी मत्स्य, बिखरी हुई अंतड़ी रूपी सिवार, हाथरूपी कछुवे, घोड़ेरूपी मेंढक, रुद्र आदित्य रूपी बड़े बड़े घड़ियाल, मरुतवसु रूपी बड़े बड़े साँप, रथ अश्वगज रूपी जल और पैदल सैनिक रूपी बड़े बड़े टापू थे॥ २१॥ २२॥

अनेन हि समासाद्य देवानां बलसागरम्।
गृहीतो दैवतपतिर्लङ्कां चापि प्रवेशितः॥ २३॥

इसने देवताओं के सैन्यरूपी महासागर में घुस कर, देवराज को पकड़ कर, लङ्का में बंदीगृह में डाल चुका है॥ २३॥

पितामहनियोगाच्च मुक्तः शम्बरवृत्रहा ।
गतस्त्रिविष्टपं राजन्सर्वदेवनमस्कृतः ॥ २४ ॥

पितामह ब्रह्मा जी के कहने से शंवरासुर और वृत्रासुर का मारने वाला सर्वदेव नमस्कृत इन्द्र छोड़ दिया गया। तब वह स्वर्ग की राजधानी में गया था ॥ २४

तमेव त्वं महाराज विसृजेन्द्रजितं सुतम् ।
यावद्वानरसेनां तां सरामां नयति क्षयम् ॥ २५ ॥

हे महाराज ! आप उसी अपने पुत्र इन्द्रजीत को आज्ञा दीजिये। वह समस्त वानरी सेना सहित राम को मार डालेगा ॥ २५ ॥

राजन्नापदयुक्तेयमागता प्राकृताज्जनात् ।
हृदि नैव त्वया कार्या त्वं वधिष्यसि राघवम् ॥ २६ ॥

इति सप्तमः सर्गः ॥

हे राजन् ! तुम नर वानर रूप नगण्य लोगों से, जो विपद की शङ्का कर रहे हैं—सो, तुमको अपने मन में इसकी चिन्ता तो करनी ही नहीं चाहिये। तुम निश्चय ही रामचन्द्र को मारोगे ॥२६॥

युद्धकाण्ड का सप्तम सर्ग पूरा हुआ।

—※—

अष्टमः सर्गः

—※—

ततो नीलाम्बुदनिभः प्रहस्तो नाम राक्षसः ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं शूरः सेनापतिस्तदा ॥ १ ॥

तदनन्तर काले बादलों जैसी रंगत वाला प्रहस्त नामक शूरवीर सेनापति राक्षस, हाथ जोड़ कर बोला ॥ १ ॥

देवदानवगन्धर्वाः पिशाचपतगोरगाः ।
न त्वां धर्षयितुं शक्ताः किं पुनर्वानरा रणे ॥ २ ॥

हे राजन्! दो मनुष्यों और वानरों की तो बात ही क्या—हम लोग तो रणक्षेत्र में देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पक्षी और नागों तक को परास्त कर सकते हैं ॥ २ ॥

सर्वे प्रमत्ता विश्वस्ता वञ्चिताः स्म हनूमता ।
न हि मे जीवतो गच्छेज्जीवन्स वनगोचरः ॥ ३ ॥

हम सब ने तो, असावधानी और विश्वास के कारण हनुमान से धोखा खाया। (अर्थात् हम लोग समझते रहे कि, यह वानर हमारा क्या कर सकता है) यदि हम लोग सावधान होते तो क्या वह वन का जीव वहाँ से जीता जागता लौट कर जा सकता था ॥ ३ ॥

सर्वां सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम् ।
करोम्यवानरां भूमिमाज्ञापयतु मां भवान् ॥ ४ ॥

आप मुझे आज्ञा भर दे दीजिये। मैं सागर, पहाड़, वन, जंगल सहित इस पृथिवी को अभी वानरशून्य कर दूँ ॥ ४ ॥

रक्षां चैव विधास्यामि वानराद्रजनीचर ।
नागमिष्यति ते दुःखं किञ्चिदात्मापराधजम् ॥ ५ ॥

हे राजन्! मैं वानरों से राक्षसों की रक्षा करूँगा। सीताहरण करने से आपके ऊपर कोई विपत्ति न आने पावेगी ॥ ५ ॥

अब्रवीत्तु सुसंक्रुद्धो दुर्मुखो नाम राक्षसः।
इदं न क्षमणीयं हि सर्वेषां नः प्रधर्षणम् ॥ ६ ॥

इसके बाद दुर्मुख नामक राक्षस अत्यन्त क्रोध कर के, बोला— हनुमान का काम इस योग्य नहीं कि, उसकी उपेक्षा की जा सके। क्योंकि उसने यहाँ आकर हमारा सब का ही अपमान किया है ॥६॥

अयं परिभवो भूयः पुरस्यान्तःपुरस्य च।
श्रीमतो राक्षसेन्द्रस्य वानरेण प्रधर्षणम् ॥ ७ ॥

हम लोग अपना अपमान सह लेते पर नगरी और रनवास को दहन कर इस बन्दर ने राक्षसराज का अपमान किया है ॥ ७ ॥

अस्मिन्मुहूर्ते हत्वैको निवर्तिष्यामि वानरान्।
प्रविष्टान्सागरं भीममम्बरं वा रसातलम् ॥ ८ ॥

अतः मैं अभी जाकर वानरों की इतिश्री कर दूँगा। वे वानर भले ही समुद्र में, आकाश में, रसातल में या अन्यत्र कहीं भी जा छिपें, मैं उनका नाश किये बिना न मानूँगा ॥ ८ ॥

ततोऽब्रवीत्सुसंक्रुद्धो वज्रदंष्ट्रो महाबलः।
प्रगृह्य परिघं घोरं मांसशोणितरूषितम् ॥ ९ ॥

तदनन्तर मांस और रुधिर से सने हुए भयानक परिघ को उठा, वज्रदंष्ट्र क्रुद्ध हो कहने लगा—॥ ९ ॥

किं वो हनुमता कार्यं कृपणेन *दुरात्मना।
रामे तिष्ठति दुर्धर्षे ससुग्रीवे सलक्ष्मणे ॥ १० ॥

---

* पाठान्तरे—"तपस्विना"।

दुर्धर्ष राम लक्ष्मण और सुग्रीव के जीते रहते, उस दीन और दुष्ट हनुमान को मार डालने से हमें क्या लाभ होगा ॥ १० ॥

अद्य रामं ससुग्रीवं परिघेण सलक्ष्मणम् ।
आगमिष्यामि हत्वैको विक्षोभ्य हरिवाहिनीम् ॥ ११ ॥

मैं आज अकेला ही उस वानरी सेना को विकल कर, इस परिघ से राम लक्ष्मण और सुग्रीव का नाश कर लौट आऊँगा ॥ ११ ॥

इदं ममापरं वाक्यं शृणु राजन्यदीच्छसि ।
उपायकुशलो ह्येवं जयेच्छत्रूनतन्द्रितः ॥ १२ ॥

हे राजन्! यदि आप चाहें तो मेरी एक और बात सुन लें। वह यह कि, जो उपाय करने में कुशल और आलस्य रहित होता है, विजयलक्ष्मी उसीको प्राप्त होती है ॥ १२ ॥

कामरूपधराः शूराः सुभीमा भीमदर्शनाः ।
राक्षसा वै सहस्राणि राक्षसाधिप निश्चिताः ॥ १३ ॥

काकुत्स्थमुपसङ्गम्य बिभ्रतो मानुषं वपुः ।
सर्वे ह्यसम्भ्रमा भूत्वा ब्रुवन्तु रघुसत्तमम् ॥ १४ ॥

प्रेषिता भरतेन स्म तव भ्रात्रा यवीयसा ।
[तवागमनमुद्दिश्य कृत्यमात्ययिकं त्विति] ॥ १५ ॥

अतः इस सम्बन्ध में यह उपाय करना उचित है, कामरूपी, शूर, भयङ्कर आकार वाले और राक्षसराज के अनुभूत एक हज़ार राक्षस मनुष्य का रूप धर और एक निश्चय कर रामचन्द्र के पास जाँय और निर्भीक हो सब यह कहें कि, हम लोगों को तुम्हारे छोटे भाई

भरत ने भेजा है और हमारे द्वारा यह सन्देस तुम्हारे लिये भेजा है कि, ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

स हि सेनां समुत्थाप्य क्षिप्रमेवोपयास्यति ।
ततो वयमितस्तूर्णं शूलशक्तिगदाधराः ॥ १६ ॥
चापबाणासिहस्ताश्च त्वरितास्तत्र यामहे ।
आकाशे गणशः स्थित्वा हत्वा तां हरिवाहिनीम् ॥१७॥
अश्मशस्त्रमहावृष्ट्या प्रापयामं यमक्षयम् ।
एवं चेदुपसर्पेतामनयं रामलक्ष्मणौ ॥ १८ ॥
अवश्यमपनीतेन जहतामेव जीवितम् ।
कौम्भकर्णिस्ततो वीरो निकुम्भो नाम वीर्यवान् ॥१९॥

सेना लेकर बहुत शीघ्र यहाँ हम आते हैं। इस बीच में हम लोग बड़ी फुर्ती से शूल, शक्ति, गदा, कमान, तीर, तलवार हाथों में लिये हुए वहाँ पहुँच जाँय और आकाश में खड़े हुए पत्थरों और शस्त्रों की महावृष्टि कर वानरी सेना को यमलोक भेज दें। ऐसा करने पर राम और लक्ष्मण निश्चय ही हमारी इस अनीति भरी चाल में आ जाँयगे। तदनन्तर जब वानरी सेना का नाश हो जायगा, तब यह दोनों जन स्वयं ही मर जाँयगे। तदनन्तर कुम्भकर्ण का बेटा निकुम्भ जो बड़ा प्रतापी और बली था ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

अब्रवीत्परमक्रुद्धो रावणं लोकरावणम् ।
सर्वे भवन्तस्तिष्ठन्तु महाराजेन सङ्गताः ॥ २० ॥

अति क्रुद्ध हो, लोकों के रुलाने वाले रावण से बोला—तुम सब लोग महाराज के साथ यहीं रहो ॥ २० ॥

अहमेको हनिष्यामि राघवं सहलक्ष्मणम् ।
सुग्रीवं च हनूमन्तं सर्वानेव च वानरान् ॥ २१ ॥

मैं अकेला ही राम लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमानादि समस्त वानरों को मार डालूँगा ॥ २१ ॥

ततो वज्रहनुर्नाम राक्षसः पर्वतोपमः ।
क्रुद्धः परिलिहन्वक्त्रं जिह्वया वाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥

तदनन्तर पर्वत के समान लंबा तड़ंगा वज्रहनु नामक राक्षस मारे क्रोध के जीभ से अधरों को चाटता हुआ बोला कि, ॥ २२ ॥

स्वैरं कुर्वन्तु कार्याणि भवन्तो विगतज्वराः ।
एकोऽहं भक्षयिष्यामि तान्सर्वान्हरियूथपान् ॥ २३ ॥

आप लोग इस बात की चिन्ता न कर अपने अपने कामों में लगिये । मैं अकेला ही उन सब वानर यूथपतियों को खा डालूँगा ॥ २३ ॥

स्वस्थाः क्रीडन्तु निश्चिन्ताः पिबन्तो मधुवारुणीम् ।
अहमेको वधिष्यामि सुग्रीवं सहलक्ष्मणम् ।
साङ्गदं च हनूमन्तं रामं च रणकुञ्जरम् ॥ २४ ॥

इति अष्टमः सर्गः ॥

आप सब लोग सावधान और निश्चिन्त हो कर खेलिये कूदिये तथा वारुणी और मधुपान कीजिये । मैं अकेला ही सुग्रीव, लक्ष्मण, अङ्गद, हनुमान सहित उस रणकुञ्जर राम को मार डालूँगा ॥२४॥

युद्धकाण्ड का आठवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—※—

नवमः सर्गः

—※—

ततो निकुम्भो रभसः सूर्यशत्रुर्महाबलः ।
सुप्तघ्नो यज्ञहा रक्षो महापार्श्वो महोदरः ॥ १ ॥
अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च वीर्यवान्* ।
इन्द्रजिच्च महातेजा बलवान्रावणात्मजः ॥ २ ॥
प्रहस्तोऽथ विरूपाक्षो वज्रदंष्ट्रो महाबलः ।
धूम्राक्षश्चातिकायश्च दुर्मुखश्चैव राक्षसः ॥ ३ ॥

तदनन्तर निकुम्भ, रभस, सूर्यशत्रु, सुप्तघ्न, यज्ञहा, महापार्श्व, महोदर, दुर्धर्ष, अग्निकेतु, बलवान रश्मिकेतु, महातेजस्वी और बलवान रावणतनय इन्द्रजीत, प्रहस्त, विरूपाक्ष, बलवान वज्रदंष्ट्र, धूम्राक्ष, अतिकाय, दुर्मुख आदि राक्षसगण ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

परिघान्पट्टशान्प्रासाञ्शक्तिशूलपरश्वधान् ।
चापानि च सबाणानि खड्गांश्च विपुलाञ्शितान् ॥ ४ ॥

परिघ, पट्ट, प्रास, शक्ति, शूल, परशु, बाणों सहित धनुष और बड़ी पैनी पैनी तलवारें ॥ ४ ॥

प्रगृह्य परमक्रुद्धाः समुत्पत्य च राक्षसाः ।
अब्रुवन्रावणं सर्वे प्रदीप्ता इव तेजसा ॥ ५ ॥

ले ले कर और उठ उठ कर तथा क्रोध में भर और अग्नि की तरह लाल हो, सब रावण से बोले ॥ ५ ॥

* पाठान्तरे—" राक्षसः " ।

अद्य रामं वधिष्यामः सुग्रीवं च सलक्ष्मणम् ।
कृपणं च हनूमन्तं लङ्का येन प्रदीपिता* ॥ ६ ॥

हम लोग आज ही राम, सुग्रीव, लक्ष्मण तथा उस बापुरे हनुमान को, जो यहाँ आकर लङ्का जला गया था—मार डालेंगे ॥ ६ ॥

तान्गृहीतायुधान्सर्वान्वारयित्वा विभीषणः ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं पुनः प्रत्युपवेश्य तान् ॥ ७ ॥

उन आयुध लिये हुए समस्त राक्षसों को वर्ज कर और बैठा कर विभीषण ने रावण से हाथ जोड़ कर विनती की ॥ ७ ॥

अप्युपायैस्त्रिभिस्तात योऽर्थः प्राप्तुं न शक्यते ।
तस्य विक्रमकालांस्तान्युक्तानाहुर्मनीषिणः ॥ ८ ॥

हे तात ! पण्डितों का कथन है कि, जहाँ तीन उपायों से काम न चले वहाँ पराक्रम प्रदर्शित करना चाहिये ॥ ८ ॥

प्रमत्तेष्वभियुक्तेषु दैवेन प्रहृतेषु च ।
विक्रमास्तात सिध्यन्ति परीक्ष्य विधिना कृताः ॥ ९ ॥

हे तात ! जो प्रमत्त हैं, जो दूसर दूसरे कामों में लगे हुए हैं और जो रोगादि तथा दैवी आपत्तियों से ग्रस्त हैं, उन्हीं पर बल प्रदर्शित करने से काम सिद्ध हो सकता है; सो भी तब, जब भली भाँति समझ बूझ कर काम किया जाय ॥ ९ ॥

अप्रमत्तं कथं तं तु विजिगीषं बले स्थितम् ।
जितरोषं दुराधर्षं प्रधर्षयितुमिच्छथ ॥ १० ॥

---

* पाठान्तरे—"प्रधर्षिता ।"

परन्तु तुम लोग तो उन प्रमादरहित, जयेच्छु, देवसहाय्य प्राप्त, (अथवा सैनिक बल से युक्त) क्रोध को जीते हुए और अजेय रामचन्द्र को किस प्रकार जीतने की इच्छा करते हो ॥ १० ॥

समुद्रं लङ्घयित्वा तु घोरं नदनदीपतिम् ।
गतिं हनुमतो लोके को विद्यात्तर्कयेत वा ॥ ११ ॥

क्या पहिले किसी ने जान पाया था या किसी ने कल्पना भी की थी कि, हनुमान नदीपति भयङ्कर समुद्र को लाँघ, (दो घड़ी में) यहाँ चला आवेगा ॥ ११ ॥

बलान्यपरिमेयानि वीर्याणि च निशाचराः ।
परेषां सहसाऽवज्ञा न कर्तव्या कथञ्चन ॥ १२ ॥

हे निशाचरों ! शत्रु की पराक्रमी अगणित भयङ्कर सेना है—सो ऐसे शत्रुओं की सहसा अवज्ञा करना कभी उचित नहीं ॥ १२ ॥

किं च राक्षसराजस्य रामेणापकृतं पुरा ।
आजहार जनस्थानाद्यस्य भार्यां यशस्विनीम् ॥ १३ ॥

आप लोग यह तो बतलावें कि, राम ने राक्षसराज का क्या बिगाड़ा था, जो इन्होंने उनकी यशस्विनी भार्या को जनस्थान से हर कर, यहाँ रख छोड़ा है ॥ १३ ॥

खरो यद्यतिवृत्तस्तु रामेण निहतो रणे ।
अवश्यं प्राणिनां प्राणा रक्षितव्या यथाबलम् ॥ १४ ॥

यदि राम ने खर को मारा तो क्या अनुचित किया। क्योंकि वह इनका अपमान करना चाहता था । इसीसे उन्होंने ऐसा किया। क्योंकि प्रत्येक जीवधारी को अपने बलानुरूप अपनी प्राण-रक्षा करनी ही चाहिये ॥ १४ ॥

अयशस्यमनायुष्यं परदाराभिमर्शनम् ।
अर्थक्षयकरं घोरं पापस्य च पुनर्भवम् ॥ १५ ॥

दूसरे की स्त्री को हर लेना केवल बदनामी का ही कारण नहीं है, बल्कि आयु को क्षीण करने वाला भी है। ऐसा करने से धन का नाश होता है और फिर बड़ा भारी पाप भी लगता है ॥ १५ ॥

एतन्निमित्तं वैदेही भयं नः सुमहद्भवेत् ।
आहृता सा परित्याज्या कलहार्थे कृतेन किम् ॥ १६ ॥

यह हर कर लायी हुई सीता हम लोगों के लिये बड़े भय की वस्तु है। सो हमें उचित है कि इसका परित्याग करें। व्यर्थ लड़ाई झगड़ा करने से लाभ ही क्या है ॥ १६ ॥

न नः क्षमं वीर्यवता तेन धर्मानुवर्तिना ।
वैरं निरर्थकं कर्तुं दीयतामस्य मैथिली ॥ १७ ॥

श्रीरामचन्द्र जी बड़े पराक्रमी और धर्मात्मा हैं, अकारण उनके साथ वैर बाँधना अनावश्यक है। अतएव पहिले ही उनको सीता दे देनी चाहिये ॥ १७ ॥

यावन्न सगजां साश्वां बहुरत्नसमाकुलाम् ।
पुरीं दारयते बाणैर्दीयतामस्य मैथिली ॥ १८ ॥

घोड़ों, हाथियों तथा बहुत से रत्नों से भरी पूरी इस लङ्का को रामचन्द्र अपने बाणों से नष्ट भ्रष्ट करें, इसके पूर्व ही, उनको सीता दे देनी चाहिये ॥ १८ ॥

यावत्सुघोरा महती दुर्धर्षा हरिवाहिनी ।
नावस्कन्दति नो लङ्कां तावत्सीता प्रदीयताम् ॥ १९ ॥

उस महाभयङ्कर महती एवं दुर्जेय वानरी सेना का लङ्का पर आक्रमण हो, इसके पूर्व ही उनको सीता दे देनी चाहिये ॥ १९ ॥

विनश्येद्धि पुरी लङ्का शूराः सर्वे च राक्षसाः ।
रामस्य दयिता पत्नी स्वयं न यदि दीयते ॥ २० ॥

यदि आप राम की प्यारी भार्या सीता को न देंगे, तो यह लङ्का उजड़ जायगी और समस्त शूरवीर राक्षस भी मारे जाँयगे ॥ २० ॥

प्रसादये त्वां बन्धुत्वात्कुरुष्व वचनं मम ।
हितं तथ्यमहं ब्रूमि दीयतामस्य मैथिली ॥ २१ ॥

हे राजन् ! आप मेरे भाई हैं इसीसे मैं आपको मना रहा हूँ और आपसे हितकर तथा यथार्थ बातें कहता हूँ कि, आप सीता को अवश्य लौटा दें ॥ २१ ॥

पुरा शरत्सूर्यमरीचिसन्निभा-
न्नवान्सुपुङ्खान्सुदृढान्नृपात्मजः ।
सृजत्यमोघान्विशिखान्वधाय ते
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥ २२ ॥

हे महाराज ! राजकुमार श्रीरामचन्द्र जी जब तक आप के वध के लिये, सूर्य की किरणों को तरह चमचमाते पंख लगे हुए बड़े मज़बूत और अमोघ बाण नहीं छोड़ते, उसके पूर्व ही आप उन्हें सीता दे दें ॥ २२ ॥

त्यजस्व कोपं सुखधर्मनाशनं
भजस्व धर्मं [1]रतिकीर्तिवर्धनम् ।
प्रसीद जीवेम सपुत्रबान्धवाः
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥ २३ ॥

---

१ रतिः—सुखं । (गो०)

आप उस क्रोध को, जो सुख और धर्म को नष्ट करने वाला है, त्याग दें और सुख तथा कीर्ति को बढ़ाने वाले धर्म का आश्रय लें। आप प्रसन्नता पूर्वक सीता श्रीरामचन्द्र को दे दें, जिससे हम लोग बाल बच्चों और भाई बन्धुओं सहित जीते बच जाँय ॥ २३ ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
विसर्जयित्वा तान्सर्वान्प्रविवेश स्वकं गृहम् ॥ २४ ॥

इति नवमः सर्गः ॥

विभीषण के इन वचनों को सुन, राक्षसेश्वर रावण ने उन सब राक्षसों को बिदा किया और वह स्वयं अपने भवन में चला गया ॥ २४ ॥

युद्धकाण्ड का नवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—※—

दशमः सर्गः

—※—

ततः प्रत्युषसि प्राप्ते प्राप्तधर्मार्थनिश्चयः ।
राक्षसाधिपतेर्वेश्म भीमकर्मा विभीषणः ॥ १ ॥

अगले दिन सवेरा होते ही, धर्म और अर्थ का विचार रखने वाले विभीषण, भीमकर्मा राक्षसराज रावण के भवन में गये ॥ १ ॥

शैलाग्रचयसङ्काशं शैलशृङ्गमिवोन्नतम् ।
सुविभक्तमहाकक्ष्यं [1]महाजनपरिग्रहम् ॥ २ ॥

---

१ महाजनैः—विद्वद्भिः । (गो०)

वह रावण का भवन, पर्वतशिखर के समूह के समान और पर्वतशिखर की तरह ऊँचा था। उसकी ड्योढ़ियाँ बड़ी अच्छी तरह बनायी गयी थीं। उस भवन में बड़े बड़े विद्वान् रहते थे ॥ २ ॥

मतिमद्भिर्महामात्रैरनुरक्तैरधिष्ठितम् ।
राक्षसैश्चाप्तपर्याप्तैः सर्वतः परिरक्षितम् ॥ ३ ॥

वह बुद्धिमान, अनुरागी, हितैषी और कार्यसाधन में समर्थ, मंत्रियों से सेवित और सब ओर से राक्षसों द्वारा रक्षित था ॥ ३ ॥

मत्तमातङ्गनिःश्वासैर्व्याकुलीकृतमारुतम् ।
शङ्खघोषमहाघोषं तूर्यनादानुनादितम् ॥ ४ ॥

वह मतवाले गजेन्द्रों के श्वास के वायु से पूर्ण रहता था तथा शङ्ख और नगाड़ों के शब्दों से प्रतिध्वनित हुआ करता था ॥ ४ ॥

प्रमदाजनसम्बाधं प्रजल्पितमहापथम् ।
तप्तकाञ्चननिर्यूहं[1] भूषणोत्तमभूषितम् ॥ ५ ॥

उसमें स्त्रियों के दल के दल रहा करते थे, राजमार्ग में लोगों की बातचीत से सदा चहल पहल रहा करती थी। उसमें सुवर्ण के द्वार बने हुए थे और वह उत्तम उत्तम सजावटी सामान से सजा हुआ था ॥ ५ ॥

गन्धर्वाणामिवावासमालयं मरुतामिव ।
रत्नसञ्चयसम्बाधं भवनं [2]भोगिनामिव ॥ ६ ॥

---

१ निर्यूहः शिखरे द्वारे इति विश्वः। (रा०) २ भोगिनां—सर्पणां। (गो०)

वह गन्धर्वों तथा देवताओं की तरह उत्तम रत्नों से पूर्ण था। ऐसा जान पड़ता था मानों वह सर्पों का भवन हो (अर्थात् सर्पों के भवन में जैसे रत्नों का ढेर लगा रहता है वैसा ही रावण के भवन में भी था) ॥ ६ ॥

तं महाभ्रमिवादित्यस्तेजोविस्तृतरश्मिमान् ।
अग्रजस्यालयं वीरः प्रविवेश महाद्युतिः ॥ ७ ॥

इस प्रकार के बड़े भाई के भवन में महाद्युतिमान वीर विभीषण वैसे ही घुसे जैसे बादलों में सूर्य घुसते हैं ॥ ७ ॥

पुण्यान्पुण्याहघोषांश्च वेदविद्भिरुदाहृतान् ।
शुश्राव सुमहातेजा भ्रातुर्विजयसंश्रितान् ॥ ८ ॥

भवन के भीतर पहुँच, विभीषण ने वेदज्ञों द्वारा उच्चारित पुण्याहवाचन के मंत्रों का पवित्र घोष अपने भाई की विजय सूचकता में सुना ॥ ८ ॥

पूजितान्दधिपात्रैश्च सर्पिभिः सुमनोक्षतैः ।
मन्त्रवेदविदो विप्रान्ददर्श सुमहाबलः ॥ ९ ॥

विभीषण ने वहाँ वेद मंत्र जानने वाले ब्राह्मणों को पुष्प, अक्षत, घी, दही आदि शुभ वस्तुओं से पूजित होते देखा ॥ ९ ॥

स पूज्यमानो रक्षोभिर्दीप्यमानः स्वतेजसा ।
आसनस्थं महाबाहुर्ववन्दे धनदानुजम् ॥ १० ॥

राक्षसों से आदर पा, विभीषण ने रावण को, जो सिंहासन पर बैठा हुआ था और मारे तेज के चमचमा रहा था, जाते ही प्रणाम किया ॥ १० ॥

स राजदृष्टिसम्पन्नमासनं हेमभूषितम् ।
जगाम समुदाचारं प्रयुज्याचारकोविदः ॥ ११ ॥

शिष्टाचारपटु रावण ने भी शिष्टाचार के अनुसार विभीषण को आशीर्वाद दिया और आँख के सङ्केत से बैठने को कहा। तब विभीषण "जय हो" कह, सुवर्णभूषित आसन पर बैठ गये ॥ ११ ॥

स रावणं महात्मानं विजने मन्त्रिसन्निधौ ।
उवाच हितमत्यर्थं वचनं हेतुनिश्चितम् ॥ १२ ॥

उस समय मंत्रियों को छोड़ वहाँ और कोई न था। अतः विभीषण ने रावण से हितकर और युक्तियुक्त वचन कहे ॥ १२ ॥

प्रसाद्य भ्रातरं ज्येष्ठं सान्त्वेनोपस्थितक्रमः ।
देशकालार्थसंवादी दृष्टलोकपरावरः ॥ १३ ॥

बातचीत् के ढंग को जानने वाले और ऊँच नीच समझने वाले विभीषण ने स्तुतिवचन कह, प्रथम तो रावण को प्रसन्न किया, तदनन्तर सान्त्वनापूर्वक समयानुसार और देश काल के अनुरूप वचन कहे ॥ १३ ॥

यदाप्रभृति वैदेही सम्प्राप्तेमां पुरीं तव ।
तदाप्रभृति दृश्यन्ते निमित्तान्यशुभानि नः ॥ १४ ॥

हे भैया ! जब से सीता तुम्हारी इस पुरी में आयी है, तब से हम सब को नित्य ही अपशकुन दिखलाई पड़ रहे हैं ॥ १४ ॥

सस्फुलिङ्गः सधूमार्चिः सधूमकलुषोदयः ।
मन्त्रसन्धुक्षितोऽप्यग्निर्न सम्यगभिवर्धते ॥ १५ ॥

मंत्रपूर्वक आहुति पाकर भी आग अच्छी तरह नहीं जलती। आग जलाते समय आग धुआँ देती है, उसमें से चिनगारियाँ उड़ती हैं और आग की शिखा से बराबर धुआँ निकलता रहता है॥ १५॥

अग्निष्ठेष्वग्निशालासु तथा ब्रह्मस्थलीषु च।
सरीसृपाणि दृश्यन्ते हव्येषु च पिपीलिकाः॥ १६॥

रसोई घर, अग्निशालाओं और वेदाध्ययन शालाओं में नित्य साँप दिखलाई पड़ते हैं। होम की द्रव्य में चीटियाँ रेंगती हुई देख पड़ती हैं॥ १६॥

गवां पयांसि स्कन्नानि विमदा वीरकुञ्जराः।
दीनमश्वाः प्रहेषन्ते न च ग्रासाभिनन्दिनः॥ १७॥

गौओं का दूध कम हो गया है, हाथियों का मद बहना बंद हो गया है। घोड़े दीनता सूचक हिनहिनाहट किया करते हैं और अपने चारे से तृप्त नहीं होते॥ १७॥

खरोष्ट्राश्वतरा राजन्भिन्नरोमाः स्रवन्ति नः।
न स्वभावेऽवतिष्ठन्ते विधानैरपि चिन्तिताः॥ १८॥

हे राजन्! गधों, ऊँटों, खच्चरों के रोंगटे गिर पड़े हैं और वे आँसू बहाया करते हैं। चिकित्सा करने पर भी वे प्रकृतिस्थ नहीं होते॥ १८॥

वायसाः सङ्घशः क्रूरा व्याहरन्ति समन्ततः।
समवेताश्च दृश्यन्ते विमानाग्रेषु सङ्घशः॥ १९॥

कौवे एकत्र हो चारों ओर काँव काँव करते हैं और अटारियों पर झुंड के झुंड एकत्र हो बैठे हुए देख पड़ते हैं॥ १९॥

गृध्राश्च [1]परिलीयन्ते पुरीमुपरि [2]पिण्डिताः ।
उपपन्नाश्च सन्ध्ये द्वे व्याहरन्त्यशिवं शिवाः ॥ २० ॥

गीध इकट्ठे हो नगरी के ऊपर मँडराया करते हैं । सन्ध्या समय होने पर लुखरियाँ अमङ्गलसूचक चीत्कार किया करती हैं ॥ २० ॥

क्रव्यादानां मृगाणां च पुरद्वारेषु सङ्घशः ।
श्रूयन्ते विपुला घोषाः [3]सविस्फूर्जथुनिःस्वनाः ॥ २१ ॥

पुरी के द्वार पर व्याघ्रादि माँस खाने वाले जीवों के दहाड़ने का शब्द वैसा ही सुन पड़ता है, जैसा कि, बिजली गिरने का शब्द सुन पड़ता है ॥ २१ ॥

तदेवं प्रस्तुते कार्ये प्रायश्चित्तमिदं क्षमम् ।
रोचते यदि वैदेही राघवाय प्रदीयताम् ॥ २२ ॥

इन सब अपशकुनों का प्रायश्चित्त अथवा शान्तिविधान मुझे तो यही अच्छा लगता है कि, श्रीरामचन्द्र जी को सीता दे दी जाँय ॥ २२ ॥

इदं च यदि वा मोहाल्लोभाद्वा व्याहृतं मया ।
तत्रापि च महाराज न दोषं कर्तुमर्हसि ॥ २३ ॥

हे महाराज ! यदि मैंने कोई बात लोभवश, या मोहवश कही हो, तो भी आप मेरा अपराध क्षमा कर दीजियेगा ॥ २३ ॥

---

१ परिलीयन्ते—श्लिष्यन्ते । (गो०) २ पिण्डिताः—मण्डलीभूता सन्तः । (गो०) ३ सविस्फूर्जथुनिःस्वनाः—अशनिघोषः । (गो०)

अयं च दोषः सर्वस्य जनस्यास्योपलक्ष्यते ।
रक्षसां राक्षसीनां च पुरस्यान्तःपुरस्य च ॥ २४ ॥

क्योंकि यह दोष तो इस नगर के समस्त निवासियों राक्षसों राक्षसियों तथा अन्तःपुर वालों का है ॥ २४ ॥

श्रावणे चास्य मन्त्रस्य निवृत्ताः सर्वमन्त्रिणः ।
अवश्यं च मया वाच्यं यद्दृष्टमपि वा श्रुतम् ॥ २५ ॥

आपके मंत्रियों ने ये समाचार नहीं पहुँचाये । किन्तु मैंने जो कुछ सुना और देखा है—सो सब आपकी सेवा में अवश्य निवेदन करना ही चाहिये ॥ २५ ॥

सम्प्रधार्य यथान्यायं तद्भवान्कर्तुमर्हति ।
इति स्म मन्त्रिणां मध्ये भ्राता भ्रातरमूचिवान् ।
रावणं राक्षसश्रेष्ठं पथ्यमेतद्विभीषणः ॥ २६ ॥

आप न्यायानुसार समझ बूझ कर जैसा उचित समझें वैसा करें । इस प्रकार मंत्रियों के बीच बैठे हुए राक्षसश्रेष्ठ रावण से विभीषण ने ये हितकर वचन कहे ॥ २६ ॥

हितं महार्थं मृदु हेतुसंहितं
व्यतीतकालायतिसम्प्रतिक्षमम् ।
निशम्य तद्वाक्यमुपस्थितज्वरः[1]
प्रसङ्गवानुत्तरमेतदब्रवीत् ॥ २७ ॥

विभीषण के हितकर, अर्थयुक्त, मृदु, युक्तियुक्त और तीनों कालों में लाभप्रद वचन सुन कर, रावण बहुत क्रुद्ध हो, बोला ॥२७॥

---

१ उपस्थितज्वरः—प्राप्तक्रोधः । (गो०)

भयं न पश्यामि कुतश्चिदप्यहं
न राघवः प्राप्स्यति जातु मैथिलीम् ।
सुरैः सहेन्द्रैरपि सङ्गतः कथं
ममाग्रतः स्थास्यति लक्ष्मणाग्रजः ॥ २८ ॥

मुझे तो भय कहीं भी नहीं देख पड़ता, रामचन्द्र को जानकी किसी भी तरह नहीं मिल सकेगी। क्योंकि लक्ष्मण के बड़े भाई रामचन्द्र इन्द्रादि देवताओं के साथ मिल कर भी रणभूमि में मेरे सामने नहीं ठहर सकते ॥ २८ ॥

इतीदमुक्त्वा सुरसैन्यनाशनो
महाबलः संयति चण्डविक्रमः ।
दशाननो भ्रातरमाप्तवादिनं
विसर्जयामास तदा विभीषणम् ॥ २९ ॥

इति दशमः सर्गः ॥

महाबली, देवसेना के नाशक और संग्राम में घोर पराक्रम करने वाले रावण ने, यह कह कर युक्तियुक्त वचन कहने वाले विभीषण को बिदा किया ॥ २९ ॥

युद्धकाण्ड का दसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—※—

एकादशः सर्गः

—※—

स बभूव कृशो राजा मैथिलीकाममोहितः ।
असम्मानाच्च सुहृदां पापः पापेन कर्मणा ॥ १ ॥

सीता पर आसक्त, विभीषणादि सुहृदों का निरादर करने वाले और भार्याहरण का पापकर्म करने वाले रावण का शरीर दुबला होने लगा। क्योंकि पापी अपने पापकर्मों द्वारा ऐसी ही दशा को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

अतीतसमये काले तस्मिन्वै युधि रावणः ।
अमात्यैश्च सुहृद्भिश्च प्राप्तकालममन्यत ॥ २ ॥

रावण ने असमय में मंत्रियों और मित्रों के साथ परामर्श कर श्रीरामचन्द्र जी के साथ युद्ध करना ही ठीक समझा ॥ २ ॥

स हेमजालविततं मणिविद्रुमभूषितम् ।
उपगम्य विनीताश्वमारुरोह महारथम् ॥ ३ ॥

तदुपरान्त, सुवर्ण की जालियों से भूषित, मूँगों और मणियों से शोभित और शिक्षित घोड़ों से युक्त बड़े रथ पर रावण सवार हुआ ॥ ३ ॥

तमास्थाय रथश्रेष्ठं महामेघसमस्वनम् ।
प्रययौ राक्षसश्रेष्ठो दशग्रीवः सभां प्रति ॥ ४ ॥

उस मेघ के समान शब्द करते हुए श्रेष्ठ रथ पर चढ़ कर, दशवदन राक्षसश्रेष्ठ रावण सभाभवन की ओर चला ॥ ४ ॥

असिचर्मधरा योधाः सर्वायुधधरास्तथा ।
राक्षसा राक्षसेन्द्रस्य पुरस्तात्सम्प्रतस्थिरे ॥ ५ ॥

उस समय कुछ तो ढाल तलवारधारी तथा कुछ सब अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित योधा राक्षसराज रावण के आगे चले ॥ ५ ॥

नानाविकृतवेषाश्च नानाभूषणभूषिताः ।
पार्श्वतः पृष्ठतश्चैनं परिवार्य ययुस्तदा ॥ ६ ॥

विकट वेशधारी अनेक भूषण पहने हुए अनेक राक्षस अगल बगल और पीछे रावण को घेर कर चले ॥ ६ ॥

रथैश्चातिरथाः शीघ्रं मत्तैश्च वरवारणैः ।
अनूत्पेतुर्दशग्रीवमाक्रीडद्भिश्च वाजिभिः ॥ ७ ॥

महारथी राक्षस शीघ्रता पूर्वक रथों और मतवाले हाथियों पर तथा खेल कूद करने वाले घोड़ों पर सवार हो रावण के साथ चले ॥ ७ ॥

गदापरिघहस्ताश्च शक्तितोमरपाणयः ।
परश्वधधराश्चान्ये तथाऽन्ये शूलपाणयः ॥ ८ ॥

वे लोग हाथों में गदा, परिघ, शक्ति, तोमर, परश्वध और शूल आदि हथियार लिये हुए थे ॥ ८ ॥

ततस्तूर्यसहस्राणां सञ्जज्ञे निस्वनो महान् ।
तुमुलः शङ्खशब्दश्च सभां गच्छति रावणे ॥ ९ ॥

उस समय सभाभवन की ओर रावण के जाने पर हज़ारों तुरहियों और महाघोर शङ्खों के शब्द हुए ॥ ९ ॥

स नेमिघोषेण *महान्महताभिविनादयन् ।
राजमार्गं श्रिया जुष्टं प्रतिपेदे महारथः ॥ १० ॥

---

* पाठान्तरे—" महान्सहसाऽभिविनादयन् ।" अथवा " महान्दिशोदशविलोकयन् ।"

तदनन्तर रथ के घर घर शब्द से व्याप्त रमणीय राजमार्ग पर रावण शीघ्रता पूर्वक जा पहुँचा ॥ १० ॥

विमलं चातपत्राणं प्रगृहीतमशोभत ।
पाण्डरं राक्षसेन्द्रस्य पूर्णस्ताराधिपो यथा ॥ ११ ॥

राक्षसराज रावण के मस्तक पर श्वेतवर्ण का प्रकाशमान छत्र, विमल पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह शोभायमान हो रहा था ॥ ११ ॥

हेममञ्जरिगर्भे च शुद्धस्फटिकविग्रहे ।
चामरव्यजने चास्य रेजतुः सव्यदक्षिणे ॥ १२ ॥

रावण के अगल बगल सोने के सूत्रों से भूषित और उज्वल डंडी से बने हुए दो चमर और पंखे डुलाये जा रहे थे ॥ १२ ॥

ते कृताञ्जलयः सर्वे रथस्थं पृथिवीस्थिताः ।
राक्षसा राक्षसश्रेष्ठं शिरोभिस्तं ववन्दिरे ॥ १३ ॥

रास्ते में बहुत से राक्षस हाथ जोड़े खड़े थे और जब रथ सामने आता तब वे रथ में सवार रावण को झुक झुक कर प्रणाम करते थे ॥ १३ ॥

राक्षसैः स्तूयमानः सञ्जयाशीर्भिररिन्दमः ।
आससाद महातेजाः सभां सुविहितां शुभाम् ॥ १४ ॥

इस प्रकार राक्षसों द्वारा सम्मानित और विजय के लिये आशीर्वाद सुनता हुआ शत्रुदमनकारी एवं महातेजस्वी रावण सुन्दर बने हुए शुभ सभाभवन में पहुँचा ॥ १४ ॥

सुवर्णरजतस्थूणां विशुद्धस्फटिकान्तराम् ।
विराजमानो वपुषा रुक्मपट्टोत्तमच्छदाम् ॥ १५ ॥

तां पिशाचशतैः षड्भिरभिगुप्तां सदा शुभाम् ।
प्रविवेश महातेजाः सुकृतां विश्वकर्मणा ॥ १६ ॥

सभाभवन के फर्श का मध्यभाग स्फटिक पत्थर का बना हुआ था और उसके ऊपर सुनहले रुपहले काम का फर्श बिछा हुआ था । शरीर को सजाये हुए और छः सौ पिशाचों द्वारा रक्षित वह महातेजस्वी रावण विश्वकर्मा के बनाये सभाभवन में गया ॥ १५ ॥ १६ ॥

तस्यां तु वैडूर्यमयं प्रियकाजिनसंवृतम् ।
महत्सोपाश्रयं[1] भेजे रावणः परमासनम् ॥ १७ ॥

सभाभवन में पहुँच रावण पन्नों के जड़ाऊ सिंहासन पर, जिसके ऊपर प्रियक जाति के हिरन का कोमल चर्म बिछा हुआ था और मसनद लगा हुआ था—जा बैठा ॥ १७ ॥

ततः शशासेश्वरवद्दूताँल्लघुपराक्रमान् ।
समानयत मे क्षिप्रमिहैतान्राक्षसानिति ॥ १८ ॥
कृत्यमस्ति महज्जातं समर्थ्यमिह नो महत् ।
राक्षसास्तद्वचः श्रुत्वा लङ्कायां परिचक्रमुः ॥ १९ ॥

राजा की हैसियत से उसने दूतों को बुला कर आज्ञा दी—जाओ और शीघ्र ही लङ्कावासी राक्षसों को मेरे पास लिवा लाओ । क्योंकि शत्रु के साथ मुझे बड़ा काम आ पड़ा है । राक्षसराज रावण की ऐसी आज्ञा पा, वे दूत लङ्कापुरी में घूम घूम कर, ॥ १८ ॥ १९ ॥

---

१ सोपाश्रयं—सावष्टम्भं । (गो०)

अनुगेहमवस्थाय विहारशयनेषु च ।
उद्यानेषु च रक्षांसि चोदयन्तो ह्यभीतवत् ॥ २० ॥

विहार में रत, सोते हुए, उद्यानों में खेलते हुए, राक्षसों में राक्षसेश्वर की आज्ञा का प्रचार निर्भीक हो करने लगे ॥ २० ॥

ते रथान्रुचिरानेके दृप्तानेके पृथग्घयान् ।
नागानन्येऽधिरुरुहुर्जग्मुश्चैके पदातयः ॥ २१ ॥

राक्षसेश्वर की आज्ञा पाते ही उन राक्षसों में से कोई रथों पर, कोई अलग घोड़ों पर, कोई हाथियों पर और कोई पैदल ही चल दिये ॥ २१ ॥

सा पुरी परमाकीर्णा रथकुञ्जरवाजिभिः ।
सम्पतद्भिर्विरुरुचे गरुत्मद्भिरिवाम्बरम् ॥ २२ ॥

उस समय लङ्कापुरी रथ, हाथी और घोड़ों से ऐसी शोभा पा रही थी ; जैसे गरुड़ों से आकाश शोभायमान होता है ॥ २२ ॥

ते वाहनान्यवस्थाप्य यानानि विविधानि च ।
सभां पद्भिः प्रविविशुः सिंहा गिरिगुहामिव ॥ २३ ॥

वे राक्षस अपनी विविध प्रकार की सवारियों को सभाभवन के फाटक पर छोड़ पैदल ही सभाभवन के अंदर उसी प्रकार गये ; जैसे सिंह पहाड़ी गुफा में जाता है ॥ २३ ॥

राज्ञः पादौ गृहीत्वा तु राज्ञा ते प्रतिपूजिताः ।
पीठेष्वन्ये [1]बृसीष्वन्ये भूमौ केचिदुपाविशन् ॥ २४ ॥

---

१ बृसीषु—दर्भमयासनेषु । (गो०)

सभाभवन में पहुँच राक्षसों ने राक्षसराज के चरणों में सीस नवाया। सम्मान पा उनमें से कोई कुरसी पर, कोई कुशासन पर और कोई ज़मीन पर ही बैठ गये ॥ २४ ॥

ते समेत्य सभायां वै राक्षसा राजशासनात् ।
यथार्हमुपतस्थुस्ते रावणं राक्षसाधिपम् ॥ २५ ॥

इस प्रकार राक्षसराज की आज्ञा से वे सब वहाँ एकत्र हो यथाक्रम रावण के समीप बैठ गये ॥ २५ ॥

मन्त्रिणश्च यथा मुख्या निश्चितार्थेषु पण्डिताः ।
अमात्याश्च गुणोपेताः सर्वज्ञा बुद्धिदर्शनाः ॥ २६ ॥

अच्छे अच्छे मंत्री सब विषयों में निपुण और गुणज्ञ, सर्वज्ञ और अत्यन्त बुद्धिमान यथाक्रम उस सभा में बैठे हुए थे ॥ २६ ॥

समेयुस्तत्र शतशः शूराश्च बहवस्तदा ।
सभायां हेमवर्णायां सर्वार्थस्य [1]सुखाय वै ॥ २७ ॥

उस सुवर्णमय सभाभवन में कोई क्षेमकर विचार करने के लिये बहुत से वीर भी एकत्र हुए थे ॥ २७ ॥

रम्यायां राक्षसेन्द्रस्य समेयुस्तत्र सङ्घशः ।
[राक्षसा राक्षसश्रेष्ठं परिवार्योपतस्थिरे] ॥ २८ ॥

राक्षसेन्द्र के उस रमणीक सभाभवन में राक्षसों के दल के दल एकत्र हुए। वे राक्षस राक्षसराज रावण को घेर कर बैठ गये ॥ २८ ॥

---

१ सुखायवै—क्षेमुं विचारयितुं (गो०)

ततो महात्मा विपुलं सुयुग्यं
*वरार्हजाम्बूनदचित्रिताङ्गम् ।
†रथं समास्थाय ययौ यशस्वी
विभीषणः संसदमग्रजस्य ॥ २९ ॥

तदनन्तर यशस्वी महात्मा विभीषण, सुन्दर घोड़ों से युक्त, सुवर्णभूषित और मङ्गलचिन्हों से युक्त एक बड़े रथ पर सवार हो, अपने बड़े भाई के सभाभवन में पहुँचे ॥ २९ ॥

स पूर्वजायावरजः शशंस
नामाथ पश्चाच्चरणौ ववन्दे ।
शुकः प्रहस्तश्च तथैव तेभ्यो
ददौ यथार्हं पृथगासनानि ॥ ३० ॥

विभीषण ने सभाभवन में अपना नाम ले बड़े भाई के चरणों में प्रणाम किया। शुक और प्रहस्त सभा में समागत सभासदों को यथाक्रम अलग अलग आसनों पर बिठाते थे ॥ ३० ॥

सुवर्णनानामणिभूषणानां
सुवाससां संसदि राक्षसानाम् ।
तेषां पराध्यार्गरुचन्दनानां
स्रजश्च ‡गन्धाः प्रववुः समन्तात् ॥ ३१ ॥

उस समय वहाँ सोने के और अनेक प्रकार के मणि भूषणों को धारण किये हुए जो राक्षस बैठे थे, उनके शरीरों में अगर और

---

* पाठान्तरे—"वरं रथं हेमविचित्रताङ्गम् ।" † पाठान्तरे—"शुभं ।"
‡ पाठान्तरे—"गन्धाश्च वबुः ।"

चन्दन लगे हुए थे। उनसे निकली हुई तथा सुगन्धित पुष्प मालाओं से निकली हुई सुगन्धि, सभाभवन में चारों ओर फैल गयी ॥ ३१ ॥

न चुक्रुशुर्नानृतमाह कश्चि-
त्सभासदो नैव जजल्पुरुच्चैः ।
संसिद्धार्थाः सर्व एवोग्रवीर्या
भर्तुः सर्वे ददृशुश्चाननं ते ॥ ३२ ॥

वहाँ सभा में बैठे सब चुपचाप थे—न तो कोई कुछ कहता था और न कोई बकवाद ही करता था। किसी के मुख से उच्च स्वर से कोई बात नहीं निकलती थी। क्योंकि वे सब राक्षस सफल मनोरथ तेजस्वी और पराक्रमी थे। वे तो रावण के मुख को ताक रहे थे ॥ ३२ ॥

स रावणः शस्त्रभृतां मनस्विनां
महाबलानां समितौ मनस्वी ।
तस्यां सभायां प्रभया चकाशे
मध्ये वसूनामिव वज्रहस्तः ॥ ३३ ॥

इति एकादशः सर्गः ॥

उस सभा में विराजमान शस्त्रधारी और मनस्वी राक्षसों के बीच में बैठा हुआ चिन्ताशील रावण, सभा में बैठा हुआ ऐसा शोभायमान हो रहा था, जैसे आठ वसुओं के बीच में बैठे हुए इन्द्र की शोभा होती है ॥ ३३ ॥

युद्धकाण्ड का ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

द्वादशः सर्गः

—*—

स तां परिषदं कृत्स्नां समीक्ष्य समितिञ्जयः ।
प्रचोदयामास तदा प्रहस्तं वाहिनीपतिम् ॥ १ ॥

रणविजयी रावण ने समस्त सभा को देख कर, सेनापति प्रहस्त को इस प्रकार आज्ञा दी ॥ १ ॥

सेनापते यथा ते स्युः कृतविद्याश्चतुर्विधाः ।
*योधा नगररक्षायां तथा व्यादेष्टुमर्हसि ॥ २ ॥

हे सेनापते ! सेना में चार तरह के मनुष्य हैं, रथसवार, हाथी-सवार, घुड़सवार और पैदल । इन चारों तरह के सैनिकों को, नगर रक्षा के लिये तुम यथास्थान नियत कर दो ॥ २ ॥

स प्रहस्तः प्रणीतात्मा चिकीर्षन्राजशासनम् ।
विनिक्षिपद्बलं सर्वं बहिरन्तश्च मन्दिरे ॥ ३ ॥
ततो विनिक्षिप्य बलं पृथङ्नगरगुप्तये ।
प्रहस्तः प्रमुखे राज्ञो निषसाद जगाद च ॥ ४ ॥

तब सावधानचित्त प्रहस्त ने रावण के आज्ञानुसार यथाविधान सैनिकों को नियुक्त कर दिया । नगर की रक्षा के लिये अलग अलग सेना नियत कर, फिर आकर सभा में रावण के सामने बैठ गया और यह बोला ॥ ३ ॥ ४ ॥

* पाठान्तरे—"योधानधिकरक्षायां ।"

निहितं बहिरन्तश्च बलं बलवतस्तव ।
कुरुष्वाविमनाः कृत्यं यदभिप्रेतमस्ति ते ॥ ५ ॥

मैंने आपके आज्ञानुसार नगर के बाहिर और भीतर बलवान् सेना नियत कर दी है । अब आपकी जो इच्छा हो सो आप स्वस्थ मन से करें ॥ ५ ॥

प्रहस्तस्य वचः श्रुत्वा राजा राज्यहिते रतः ।
सुखेप्सुः सुहृदां मध्ये व्याजहार स रावणः ॥ ६ ॥

प्रहस्त के ये वचन सुन रावण राज्य के हित में रत, सुहृदों के बीच, अपने सुख की चाहना से कहने लगा ॥ ६ ॥

प्रियाप्रिये सुखं दुःखं लाभालाभौ हिताहिते ।
धर्मकामार्थकृच्छ्रेषु यूयमर्हथ वेदितुम् ॥ ७ ॥

भाइयो ! विपत्ति में, प्रिय अप्रिय, सुख दुःख, हानि लाभ, हिताहित तथा धर्मार्थ काम की सब बातें तुम लोग जानते हो ॥ ७ ॥

सर्वकृत्यानि युष्माभिः समारब्धानि सर्वदा ।
मन्त्रकर्मनियुक्तानि न जातु विफलानि मे ॥ ८ ॥

तुम आपस में परामर्श कर और एकमत हो जो काम करते हो, वह कभी निष्फल नहीं होता । क्योंकि मैं भी कई काम तुम लोगों की सम्मति से पूरे कर चुका हूँ ॥ ८ ॥

ससोमग्रहनक्षत्रैर्मरुद्भिरिव वासवः ।
भवद्भिरहमत्यर्थं वृतः श्रियमवाप्नुयाम् ॥ ९ ॥

इन्द्र, जिस प्रकार चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और मरुद्गणों से सेवित हो कर, स्वर्गसुख भोगा करते हैं, उसी प्रकार मैं आप लोगों के साथ लङ्कापुरी का राज्य करता हूँ ॥ ९ ॥

अहं तु खलु सर्वान्वः [1]समर्थयितुमुद्यतः ।
कुम्भकर्णस्य तु स्वप्नान्नेसमर्थमचोदयम् ॥ १० ॥
अयं हि सुप्तः षण्मासान्कुम्भकर्णो महाबलः ।
सर्वशस्त्रभृतां मुख्यः स इदानीं समुत्थितः ॥ ११ ॥

मैं सब प्रकार के कार्यों को आप लोगों को सूचित कर देना चाहता था । परन्तु कुम्भकर्ण की निद्रा के कारण मैं इसे आप सब के सामने प्रकट करने का अवसर प्राप्त न कर सका । यह महाबली कुम्भकर्ण जो सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ है, छः मास बाद अब सो कर जागा है ॥ १० ॥ ११ ॥

इयं च दण्डकारण्याद्रामस्य महिषी प्रिया ।
रक्षोभिश्चरिताद्देशादानीता जनकात्मजा ॥ १२ ॥

वह बात जो मैं आप लोगों के सामने प्रकट करना चाहता था, यह है कि, जनक की पुत्री और राम की प्यारी पटरानी सीता को मैं दण्डकवन में जनस्थान से ले आया था ॥ १२ ॥

[नोट—रावण सब के सामने यह स्पष्ट रूप से नहीं कहता कि, मैं दण्डक वन से सीता को बरजोरी हर लाया हूँ । वह कहता है "आनीता" अर्थात् ले आया हूँ ।]

सा मे न शय्यामारोढुमिच्छत्यलसगामिनी[2] ।
त्रिषु लोकेषु चान्या मे न सीतासदृशी मता ॥ १३ ॥

किन्तु वह मन्दगामिनी मेरी सेज पर सोना नहीं चाहती । मेरी समझ में सीता के समान सुन्दरी स्त्री तीनों लोकों में नहीं है ॥१३॥

---

१ समर्थयितुं—ज्ञापयितुं । (गो०) २ अलसगामिनी—मन्दगामिनी । (गो०)

तनुमध्या पृथुश्रोणी शारदेन्दुनिभानना ।
हेमबिम्बनिभा सौम्या मायेव मयनिर्मिता ॥ १४ ॥

क्योंकि उसकी पतली कमर है, मोटी जाँघ हैं, शरदऋतु के चन्द्रमा जैसा उसका मुख है। सुवर्ण प्रतिमातुल्य, वह मय निर्मित माया की तरह (मन को मोहने वाला है) ॥ १४ ॥

सुलोहिततलौ श्लक्ष्णौ चरणौ सुप्रतिष्ठितौ ।
दृष्ट्वा ताम्रनखौ तस्या दीप्यते मे शरीरजः ॥ १५ ॥

उसके पैरों के तलवे लाल, चिकने हैं और पैर बड़े सुडौल हैं। उसके लाल लाल नखों को देख कर मेरा शरीरस्थ काम उत्तेजित हो जाता है ॥ १५ ॥

हुताग्नेरर्चिसङ्काशामेनां सौरीमिव प्रभाम् ।
[दृष्ट्वा सीतां विशालाक्षीं कामस्य वशमेयिवान् ॥ १६ ॥

हवन की प्रज्वलित आग अथवा सूर्य की प्रभा की तरह विशाल नयनी सीता को देख, मैं काम के वश में हो गया हूँ ॥ १६ ॥

उन्नसं वदनं वल्गु विपुलं चारु लोचनम् ।
पश्यंस्तदाऽवशस्तस्याः कामस्य वशमेयिवान् ॥ १७ ॥

सीता की ऊँची नाक और उसके मनोहर नेत्रों से सुशोभित मुखमण्डल को देख, मैं काम के वशवर्ती हो, उस (सीता) के अधीन हो गया हूँ ॥ १७ ॥

*क्रोधहर्षसमानेन दुर्वर्णकरणेन च ।
शोकसन्तापनित्येन कामेन कलुषीकृतः ॥ १८ ॥

---

* पाठान्तरे—" क्रोधहर्षसहायेन ।"

मेरे लिये क्रोध और हर्ष समान हो रहे हैं, मेरे शरीर का रंग भदरंग हो रहा है। सदा शोक सन्तप्त रहने से, काम ने मुझे बहुत विकल रखा है ॥ १८ ॥

सा तु संवत्सरं कालं मामयाचत भामिनी ।
प्रतीक्षमाणा भर्तारं राममायतलोचना ॥ १९ ॥

अपने पति श्रीरामचन्द्र जी की प्रतीक्षा करने के लिये उस बड़े बड़े नेत्रों वाली भामिनी (सीता) ने, मुझसे एक वर्ष का समय माँगा है ॥ १६ ॥

तन्मया चारुनेत्रायाः प्रतिज्ञातं वचः शुभम् ।
श्रान्तोऽहं सततं कामाद्यातो हय इवाध्वनि ॥ २० ॥

सो उस सुन्दर नेत्र वाली से मैं सत्यप्रतिज्ञा कर चुका हूँ। किन्तु निरन्तर की कामपीड़ा से मैं वैसे ही शान्त हो गया हूँ जैसे—बहुत दूर चला हुआ घोड़ा थक जाता है ॥ २० ॥

कथं सागरमक्षोभ्यं *तरिष्यन्ति वनौकसः ।
बहुसत्त्वसमाकीर्णं तौ वा दशरथात्मजौ ॥ २१ ॥

मेरी समझ में यह बात भी नहीं आती कि, वे सब वानर और दशरथ के दोनों पुत्र बहुत से जलजीवों से पूर्ण एवं अक्षोभ्य सागर को, किस तरह पार करेंगे ॥ २१ ॥

अथवा कपिनैकेन कृतं नः कदनं महत् ।
दुर्ज्ञेयाः कार्यगतयो ब्रूत यस्य यथामति ॥ २२ ॥

साथ ही यह भी विचार उत्पन्न होता है कि, जब एक ही वानर ने इतना बड़ा मेरा अपमान और मेरी सेना का नाश कर डाला

---

* पाठान्तरे—" उत्तरन्ति ।"

तब उनके कार्यक्रम का जानना कठिन है। अच्छा अब आप लोग जैसा आपकी समझ में आवे, वैसा कहें॥ २२॥

मानुषान्मे भयं नास्ति तथाऽपि तु विमृश्यताम्।
तदा देवासुरे युद्धे युष्माभिः सहितोऽजयम्॥ २३॥

यद्यपि हम लोगों को मनुष्य से डर नहीं है, तथापि विचार करना उचित है। मैंने पहिले देवासुरसंग्राम में तुम लोगों की सहायता से विजय ही पायी थी॥ २३॥

ते मे भवन्तश्च तथा सुग्रीवप्रमुखान्हरीन्।
परे पारे समुद्रस्य पुरस्कृत्य नृपात्मजौ॥ २४॥

अतः अब उपस्थित कार्य में भी तुम लोग सहायता करो। यह भी समाचार मिला है कि, सुग्रीव आदि वानर और वे दोनों वीर राजकुमार समुद्र के उस पार आ पहुँचे हैं॥ २४॥

सीतायाः पदवीं प्राप्तौ सम्प्राप्तौ वरुणालयम्।
अदेया च यथा सीता वध्यौ दशरथात्मजौ॥ २५॥

वे सीता के यहाँ होने का समाचार पा कर ही समुद्रतट पर आये हैं। सीता तो देना न पड़े और वे दोनों राजकुमार मारे जाँय॥ २५॥

भवद्भिर्मन्त्र्यतां मन्त्रः [1]सुनीतिश्चाभिधीयताम्।
न हि शक्तिं प्रपश्यामि जगत्यन्यस्य कस्यचित्।
सागरं वानरैस्तीर्त्वा निश्चयेन जयो मम॥ २६॥

इस विषय में आप लोग विचार लें और भली प्रकार से निश्चय कर निश्चित बात बतलावें। मैं तो इस संसार में दूसरे

---

[1] सुनीत—सुनिश्चित। (रा०)

किसी में ऐसी शक्ति नहीं देखता कि, वानरों के साथ समुद्र के इस पार आ सके। फिर जीत तो मेरी निश्चित ही है॥ २६॥

तस्य कामपरीतस्य निशम्य परिदेवितम् ।
कुम्भकर्णः प्रचुक्रोध वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २७ ॥

कामासक्त होने के कारण रावण की बुद्धि बिगड़ गयी थी—सो उसकी ये उल्टी पुल्टी बातें सुन कुम्भकर्ण को बड़ा क्रोध चढ़ आया और वह वैसी ही अटपटी बातें कहने लगा॥ २७॥

यदा तु रामस्य सलक्ष्मणस्य
प्रसह्य सीता खलु सा इहाहृता ।
सकृत्समीक्ष्यैव सुनिश्चितं तदा
भजेत चित्तं यमुनेव यामुनम् ॥ २८ ॥

हे राजन्! जब आप राम और लक्ष्मण के पास से बरजोरी सीता को हर लाये, उसके पूर्व एक बार भी इस विषय में भली भाँति विचार कर कुछ निश्चय किया था? जिस प्रकार यमुना पर्वत के नीचे उतरने के समय अपने कुण्डों के आश्रित रहती है वैसे ही तुमको भी काम करने के पूर्व हमारे मत के आश्रित रहना था। (अब जब इस कर्म के विपाक का समय उपस्थित है, तब हम लोगों की सम्मति से लाभ ही क्या है)?॥ २८॥

सर्वमेतन्महाराज कृतमप्रतिमं तव ।
विधीयेत सहास्माभिरादावेवास्य कर्मणः ॥ २९ ॥

हे महाराज! आपने ये सब काम अनुचित किये हैं। करने के पूर्व हम से सलाह ले लेनी थी?॥ २६॥

[1]न्यायेन राजा कार्याणि यः करोति दशानन ।
न स सन्तप्यते पश्चान्निश्चितार्थमतिर्नृपः ॥ ३० ॥

हे दशानन ! जो राजा विचारपूर्वक काम करता है, उसको पीछे कभी सन्ताप नहीं होता, क्योंकि शास्त्रानुसार वह अपनी बुद्धि से उसका निश्चय कर लेता है ॥ ३० ॥

अनुपायेन कर्माणि विपरीतानि यानि च ।
क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्यप्रयतेष्विव[2] ॥ ३१ ॥

परन्तु उपाय का अवलंबन किये बिना जो काम मनमाने उल्टे सीधे किये जाते हैं, वे सब उसी प्रकार दूषित होते हैं, जिस प्रकार अपवित्र हव्य की आहुति ॥ ३१ ॥

यः पश्चात्पूर्वकार्याणि कुरुते बुद्धिमोहितः ।
पूर्वं चोत्तरकार्याणि न स वेद नयानयौ ॥ ३२ ॥

जो बुद्धि से मोहित राजा प्रथम करने योग्य कार्य को पीछे और पीछे करने योग्य कार्य को पहिले करता है, वह नीति और अनीति को कुछ भी नहीं जानता ॥ ३२ ॥

चपलस्य तु कृत्येषु प्रसमीक्ष्याधिकं बलम् ।
क्षिप्रमन्ये प्रपद्यन्ते क्रौञ्चस्य खमिव द्विजाः[3] ॥ ३३ ॥

जो चंचल स्वभाव के लोग होते हैं, उनके कामों में उनके शत्रु वैसे ही छिद्र ढूँढ़ा करते हैं, जैसे क्रौंच पर्वत के छिद्र, हंस ढूँढ़ते हैं ॥ ३३ ॥

---

१ न्यायेन — विचारेण । (गो०) २ अप्रयतेषु — अशुचिषु अपात्रेषु । (गो०)
३ द्विजाः — हंसाः । (गो०)

त्वयेदं महदारब्धं कार्यमप्रतिचिन्तितम् ।
दिष्ट्या त्वां नावधीद्रामो विषमिश्रमिवामिषम् ॥ ३४ ॥

तुमने बिना सोचे विचारे यह बड़ा भारी काम छेड़ दिया है। यह बड़े सौभाग्य की बात है कि, राम ने अभी तक तुम्हें वैसे ही मार नहीं डाला, जैसे विष मिला हुआ माँस, खाने वाले को मार डालता है ॥ ३४ ॥

तस्मात्त्वया समारब्धं कर्म ह्यप्रतिमं परैः ।
अहं समीकरिष्यामि हत्वा शत्रूंस्तवानघ ॥ ३५ ॥

हे अनघ ! जब कि, तुमने इस अनुचित कार्य को कर रामचन्द्र जी के साथ शत्रुता कर ली है, तब मैं ही तुम्हारे शत्रुओं को मार कर, इसे ठीक करूँगा ॥ ३५ ॥

यदि शक्रविवस्वन्तौ यदि पावकमारुतौ ।
तावहं योधयिष्यामि कुबेरवरुणावपि ॥ ३६ ॥

यदि इन्द्र, यम, अग्नि, पवन, कुबेर, अथवा वरुण ही क्यों न आवें, मैं उनके साथ भी लड़ूँगा ॥ ३६ ॥

गिरिमात्रशरीरस्य शितशूलधरस्य च ।
नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्य बिभियाद्वै पुरन्दरः ॥ ३७ ॥

मेरा पर्वताकार शरीर है, पैना त्रिशूल मेरा आयुध है। पैने पैने मेरे दाँत हैं। मैं जब रणक्षेत्र में खड़ा हो गर्जना करूँगा; तब इन्द्र भी भयभीत हो जाँयगे ॥ ३७ ॥

पुनर्मां स द्वितीयेन शरेण निहनिष्यति ।
ततोऽहं तस्य पास्यामि रुधिरं काममाश्वस ॥ ३८ ॥

यह निश्चित ही है कि, रामचन्द्र एक बाण छोड़ कर दूसरा बाण न छोड़ने पावेंगे। दूसरा बाण वे छोड़े ही छोड़ें तब तक मैं उनका खून पी लूँगा। तुम निश्चिन्त रहो ॥ ३८ ॥

वधेन ते दाशरथेः सुखावहं
जयं तवाहर्तुमहं यतिष्ये।
हत्वा च रामं सह लक्ष्मणेन
खादामि सर्वान्हरियूथमुख्यान् ॥ ३९ ॥

दशरथ के बेटे को मार कर, मैं तुम्हारे लिये सुखदायिनी जय सम्पादन करने का प्रयत्न करूँगा। लक्ष्मण सहित रामचन्द्र को मार कर, मैं सब वानर-यूथपतियों को खा डालूँगा ॥ ३९ ॥

रमस्व कामं पिब चाग्र्यवारुणीं
कुरुष्व कार्याणि हितानि विज्वरः।
मया तु रामे गमिते यमक्षयं
चिराय सीता वशगा भविष्यति ॥ ४० ॥

इति द्वादशः सर्गः ॥

मौज उड़ाओ, मनमानी शराब पीओ और निश्चिन्त हो ऐसे काम करो, जिनके करने से भलाई हो। जब मैं राम को यमालय भेज दूँगा, तब सीता सदा के लिये तुम्हारे वश हो जायगी ॥ ४० ॥

युद्धकाण्ड का बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

त्रयोदशः सर्गः

—※—

रावणं क्रुद्धमाज्ञाय महापार्श्वो महाबलः ।
मुहूर्तमनुसञ्चिन्त्य प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

रावण को क्रुद्ध देख, महाबली राक्षस महापार्श्व थोड़ी देर कुछ सोच विचार कर, हाथ जोड़े हुए बोला ॥ १ ॥

यः खल्वपि वनं प्राप्य मृगव्यालसमाकुलम् ।
न पिबेन्मधु सम्प्राप्तं स नरो बालिशो भवेत् ॥ २ ॥

जिस वन में व्याघ्र सिंहादि तथा बड़े बड़े अजगर रहते हैं, उस वन में जा कर भी जो मधुपान न करे वह मूर्ख है ॥ २ ॥

ईश्वरस्येश्वरः कोऽस्ति तव शत्रुनिबर्हण ।
रमस्व सह वैदेह्या शत्रूनाक्रम्य मूर्धसु ॥ ३ ॥

हे शत्रुनिबर्हण ! तुम सब के स्वयं नियन्ता हो, तुम्हारा नियन्ता कौन हो सकता है । तुम तो अपने बैरी के सीस पर पैर रख कर वैदेही के संग बिहार करो ॥ ३ ॥

बलात्कुक्कुटवृत्तेन वर्तस्व सुमहाबल ।
*आक्रम्य सीतां वैदेहीं तथा भुङ्क्ष्व रमस्व च ॥ ४ ॥

हे महाबली ! यदि तुमसे सीता राज़ी न हो तो तुम मुर्गे की तरह बरजोरी उसके साथ बर्ताव करो और मज़े में भोगविलास करो ॥ ४ ॥

---

* पाठान्तरे—"आक्रम्याक्रम्य सीतां वै ।"

लब्धकामस्य ते पश्चादागमिष्यति यद्भयम् ।
प्राप्तमप्राप्तकालं वा सर्वं प्रतिसहिष्यसि ॥ ॥ ५ ॥

जब तुम्हारी मनोकामना पूरी हो जायगी, तब तुमको डर ही क्या रह जायगा और यदि पीछे सावधानी असावधानी की दशा में कुछ होगा ही तो उसे भी देख लेंगे ॥ ५ ॥

कुम्भकर्णः सहास्माभिरिन्द्रजिच्च महाबलः ।
प्रतिषेधयितुं शक्तौ सवज्रमपि वज्रिणम् ॥ ६ ॥

जब इन्द्रजीत और कुम्भकर्ण मेरी सहायता को कमर कस कर खड़े हो जाँयगे, तब हम वज्रधारी इन्द्र का भी सामना कर सकते हैं ॥ ६ ॥

उपप्रदानं सान्त्वं वा भेदं वा कुशलैः कृतम् ।
समतिक्रम्य दण्डेन सिद्धिमर्थेषु रोचय ॥ ७ ॥

नीतिकुशलजनों ने शत्रु को मुट्ठी में करने के लिये साम, दान, भेद और दण्ड, ये चार उपाय बतलाये हैं, सो मुझे तो पिछला उपाय दण्ड ही पसन्द है ॥ ७ ॥

इह प्राप्तान्वयं सर्वाञ्शत्रूंस्तव महाबल ।
वशे शस्त्रप्रपातेन करिष्यामो न संशयः ॥ ८ ॥

हे महाबली ! मैं प्रथम के तीन उपायों को छोड़, केवल दण्ड द्वारा ही, तुम्हारे समस्त शत्रुओं को निस्सन्देह वश में कर लूँगा ॥ ८ ॥

एवमुक्तस्तदा राजा महापार्श्वेन रावणः ।
तस्य सम्पूजयन्वाक्यमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥

महापार्श्व के ये वचन सुन कर, रावण ने उस कथन की प्रशंसा करते हुए, ये वचन कहे ॥ ९ ॥

महापार्श्व निबोध त्वं रहस्यं किञ्चिदात्मनः ।
चिरवृत्तं तदाख्यास्ये यदवाप्तं मया पुरा ॥ १० ॥

हे महापार्श्व ! मैं अपना कुछ पुराना रहस्ययुक्त वृत्तान्त तुमको सुनाता हूँ । उसे अभी तक कोई नहीं जानता । यह बहुत पुरानी घटना है ॥ १० ॥

पितामहस्य भवनं गच्छन्तीं पुञ्जिकस्थलाम् ।
चञ्चूर्यमाणामद्राक्षमाकाशेऽग्निशिखामिव ॥ ११ ॥

पुञ्जिकस्थली नाम की एक अप्सरा ब्रह्मलोक में ब्रह्मा जी को प्रणाम करने जा रही थी । वह भय के मारे आकाश में छिपी हुई जा रही थी और अग्निशिखा की तरह दमक रही थी ॥ ११ ॥

सा प्रसह्य मया भुक्ता कृता विवसना ततः ।
स्वयम्भूभवनं प्राप्ता लोलिता नलिनी यथा ॥ १२ ॥

मैंने बलपूर्वक उसे नंगी कर उसके साथ भोग किया । तदनन्तर वह ब्रह्मलोक में कमलिनी की तरह काँपती हुई पहुँची ॥ १२ ॥

तस्य तच्च तदा मन्ये ज्ञातमासीन्महात्मनः ।
अथ सङ्कुपितो देवो मामिदं वाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥

मैं समझता हूँ कि, ब्रह्मा जी को यह हाल मालूम हो गया और उन्होंने अत्यन्त क्रुद्ध हो मुझको यह शाप दिया ॥१३॥

अद्यप्रभृति यामन्यां बलान्नारीं गमिष्यसि ।
तदा ते शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ॥ १४ ॥

यदि आज से तू किसी स्त्री के साथ बरजोरी भोग करेगा, तो तेरे सिर के निस्सन्देह सौ टुकड़े हो जाँयगे ॥ १४ ॥

इत्यहं तस्य शापस्य भीतः प्रसभमेव ताम् ।
नारोपये बलात्सीतां वैदहीं शयने *स्वके ॥ १५ ॥

मैं उसी शाप से डर कर, सीता को अपनी उत्तम सेज पर बरजोरी चढ़ाने का प्रयत्न नहीं करता ॥ १५ ॥

सागरस्येव मे वेगो मारुतस्येव मे गतिः ।
नैतद्दाशरथिर्वेद ह्यासादयति तेन माम् ॥ १६ ॥

मेरा समुद्र के समान वेग है और पवन की तरह गति है। क्या वह दशरथ का बेटा यह बात नहीं जानता, जो मुझ पर चढ़ाई करता है ॥१६॥

†को हि सिंहमिवासीनं सुप्तं गिरिगुहाशये ।
क्रुद्धं मृत्युमिवासीनं प्रबोधयितुमिच्छति ॥ १७ ॥

गिरिगुहा में सोते हुए और मृत्यु के समान क्रुद्ध सिंह को कौन जगाना चाहता है ॥ १७ ॥

न मत्तो ‡निर्गतान्बाणान्द्विजिह्वानिव पन्नगान् ।
रामः पश्यति संग्रामे तेन मामभिगच्छति ॥ १८ ॥

रामचन्द्र ने संग्राम में दो जीभ वाले सर्पों के समान मेरे धनुष से छोड़े हुए बाण नहीं देखे, इसीसे वे मेरे ऊपर चढ़ाई करने आ रहे हैं ॥ १८ ॥

---

* पाठान्तरे—"शुभे।" † पाठान्तरे—"यस्तु।" ‡ पाठान्तरे—"निशितान्।"

क्षिप्रं वज्रोपमैर्बाणैः शतधा कार्मुकच्युतैः ।
राममादीपयिष्यामि उल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ १९ ॥

वज्र के तुल्य और धनुष से एक साथ सौ सौ बाण छोड़ कर, मैं राम को वैसे ही भगा दूँगा, जैसे हाथी मशाल दिखा कर भगा दिया जाता है ॥ १६ ॥

तच्चास्य बलमादास्ये बलेन महता वृतः ।
उदयन्सविताकाले नक्षत्राणामिव प्रभाम् ॥ २० ॥

मैं अपनी महती सेना से उनकी सेना को ऐसे दबा दूँगा जैसे सूर्य अपने प्रकाश से नक्षत्रों के प्रकाश को दबा देते हैं ॥२०॥

न वासवेनापि सहस्रचक्षुषा
युधाऽस्मि शक्यो वरुणेन वा पुनः ।
मया त्वियं बाहुबलेन निर्जिता
पुरी पुरा वैश्रवणेन पालिता ॥ २१ ॥

इति त्रयोदशः सर्गः ॥

देखो, न तो मुझे सहस्र नेत्रवाला इन्द्र ही जीत सकता है और न वरुण ही मुझे हरा सकता है । पूर्वकाल में कुबेर द्वारा पालित यह लङ्कापुरी मैंने अपने बाहुबल से जीती है ॥ २१ ॥

युद्धकाण्ड का तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—※—

चतुर्दशः सर्गः

—※—

निशाचरेन्द्रस्य निशम्य वाक्यं
स कुम्भकर्णस्य च गर्जितानि ।
विभीषणो राक्षसराजमुख्यम्
उवाच वाक्यं हितमर्थयुक्तम् ॥ १ ॥

राक्षसराज की डींगे और कुम्भकर्ण की निरर्थक बातें सुन, विभीषण ने रावण से कर्त्तव्यार्थबोधयुक्त वचन कहा ॥ १ ॥

वृतो हि वाह्वन्तरभोगराशि-
श्चिन्ताविषः सुस्मिततीक्ष्णदंष्ट्रः ।
पञ्चाङ्गुलीपञ्चशिरोतिकायः
सीतामहाहिस्तव केन राजन् ॥ २ ॥

हे महाराज! वक्षस्थलरूप फनधारी, चिन्तारूपी विष से युक्त, हास्यरूपी तीक्ष्ण दाँतों वाले और पञ्चाङ्गुलिरूपी पाँच सिरों वाले सीतारूपी बड़े भारी सर्प को आप क्यों यहाँ ले आये हैं? ॥ २ ॥

यावन्न लङ्कां समभिद्रवन्ति
वलीमुखाः पर्वतकूटमात्राः ।
दंष्ट्रायुधाश्चैव नखायुधाश्च
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥ ३ ॥

हे राजन्! जब तक पर्वतशिखर के समान, नखों और दांतों के आयुध वाले वानर, लङ्कापुरी पर घेरा नहीं डालते, इसके पूर्व ही आप श्रीरामचन्द्र जी को सीता दे दें ॥ ३ ॥

यावन्न गृह्णन्ति शिरांसि बाणा
रामेरिता राक्षसपुङ्गवानाम् ।
वज्रोपमा वायुसमानवेगाः
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥ ४ ॥

जब तक श्रीरामचन्द्र जी के वज्र के समान भयङ्कर और वायु के समान वेगवान् बाण राक्षसों के सिर नहीं काटते—उसके पूर्व ही श्रीरामचन्द्र जी को आप सीता दे दें ॥ ४ ॥

न कुम्भकर्णेन्द्रजितौ न राजा
तथा महापार्श्वमहोदरौ वा ।
निकुम्भकुम्भौ च तथातिकायः
स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य ॥ ५ ॥

हे राजन्! क्या कुम्भकर्ण, क्या इन्द्रजीत्, क्या महापार्श्व, क्या महोदर, क्या कुम्भ, क्या निकुम्भ और क्या अतिकाय—इनमें से कोई भी रणक्षेत्र में श्रीरामचन्द्र जी के सामने नहीं खड़े रह सकते ॥ ५ ॥

जीवंस्तु रामस्य न मोक्ष्यसे त्वं
गुप्तः सवित्राऽप्यथ वा मरुद्भिः ।
न वासवस्याङ्कगतो न *मृत्यो-
र्न खं न पातालमनुप्रविष्टः ॥ ६ ॥

तुम चाहो कि, हम जीते जी राम से बच जायँ, सो नहीं होने का। तुम्हें सूर्य और देवता भी यदि बचाना चाहे, तो भी तुम नहीं बच सकते। तुम भले ही इन्द्र की अथवा मृत्यु ही की गोद में

---

* पाठान्तरे—"मृत्योर्नभो न पातालमनुप्रवृष्टिः।"

क्यों न जा बैठो ; अथवा आकाश या पाताल में कहीं जा छिपो, पर श्रीरामचन्द्र से तुम्हारा बचना असम्भव है ॥ ६ ॥

निशम्य वाक्यं तु विभीषणस्य
ततः प्रहस्तो वचनं बभाषे ।
न नो भयं विद्म न दैवतेभ्यो
न दानवेभ्यो ह्यथवा कुतश्चित् ॥ ७ ॥

विभीषण के ये वचन सुन, प्रहस्त कहने लगा, हमें देवताओं असुरों अथवा अन्य किसी से कुछ भी भय नहीं है ॥ ७ ॥

न यक्षगन्धर्वमहोरगेभ्यो
भयं न संख्ये पतगोत्तमेभ्यः ।
कथं नु रामाद्भविता भयं नो
नरेन्द्रपुत्रात्समरे कदाचित् ॥ ८ ॥

जब युद्ध में हम लोगों को यक्षों, गन्धर्वों, सर्पों और गरुड़ादि पक्षियों से कुछ भी भय नहीं है, तब एक राजकुमार रामचन्द्र से हमको भयभीत क्यों होना चाहिये ॥ ८ ॥

प्रहस्तवाक्यं त्वहितं निशम्य
विभीषणो राजहितानुकाङ्क्षी ।
ततो [1]महात्मा वचनं बभाषे
धर्मार्थकामेषु निविष्टबुद्धिः ॥ ९ ॥

प्रहस्त के इन अहितकर वचनों को सुन, रावण के हितैषी महाबुद्धिमान् और धर्मार्थ काम को भलीभाँति समझने वाले विभीषण ने कहा ॥ ९ ॥

---

१ महात्मा—महाबुद्धिः । (गो०)

प्रहस्त राजा च महोदरश्च
त्वं कुम्भकर्णश्च *यदर्थजातम् ।
ब्रवीथ रामं प्रति तन्न शक्यं
यथा गतिः स्वर्गमधर्मबुद्धेः ॥ १० ॥

हे प्रहस्त ! देखो, रावण ने, महोदर ने, तुमने और कुम्भकर्ण ने रामचन्द्र के विषय में जो समझ रखा है सो ठीक नहीं है। तुम लोगों का कथन उसी प्रकार अलीक है ; जिस प्रकार किसी पापी का स्वर्ग में जाना ॥ १० ॥

वधस्तु रामस्य मया त्वया वा
प्रहस्त सर्वैरपि राक्षसैर्वा ।
कथं भवेदर्थविशारदस्य[1]
महार्णवं तर्तुमिवाप्लुवस्य ॥ ११ ॥

उन कार्यदक्ष राम को मैं या तुम अथवा समस्त राक्षस मिलकर भी भला कैसे मार सकते हैं ? तुम्हारा कथन तो ऐसा ही है, जैसा बिना नाव के कोई मनुष्य समुद्र पार जाने की तैयारी करता हो ॥११॥

धर्मप्रधानस्य महारथस्य
इक्ष्वाकुवंशप्रभवस्य राज्ञः ।
प्रहस्त देवाश्च तथाविधस्य
कृत्येषु शक्तस्य भवन्ति मूढाः ॥ १२ ॥

---

१ अर्थविशारदस्य—कार्यदक्षस्य । (गो०) * पाठान्तरे—"यथार्थजातम् ।"

हे प्रहस्त ! विशेष कर यह इक्ष्वाकुवंशोद्भव महारथी श्रीरामचन्द्र जी बड़े धर्मात्मा हैं। मेरी तो बिसाँत ही क्या है। ऐसे सब कार्यों के करने की शक्ति रखने वाले अथवा विराध कवन्ध बालि आदि को मारने वाले पुरुष के साथ युद्ध करते समय देवताओं की भी बुद्धि चकराने लगती है॥ १२॥

[नोट—महारथी की परिभाषा यह है :—

" आत्मानं सारथिं चाश्वान्रक्षन्युध्येतयो नरः।
स महारथसंज्ञः स्यादित्याहुर्नीतिकोविदः॥ "

अर्थात् अपनी, अपने सारथी की तथा अपने रथ के घोड़ों की रक्षा करता हुआ जो वीर, शत्रु से लड़ सकता है : उसे रणनीतिविशारद "महारथी" कहते हैं।]

तीक्ष्णा नता यत्तव कङ्कपत्रा
दुरासदा राघवविप्रमुक्ताः।
भित्त्वा शरीरं प्रविशन्ति बाणाः
प्रहस्त तेनैव विकत्थसे त्वम्॥ १३॥

हे प्रहस्त ! श्रीरामचन्द्र जी के पैने सीधे और पंखदार असह्य बाण जब तक तुम्हारे शरीर को विदीर्ण नहीं करते, तब तक तुम भले ही जो चाहो सो बढ़ बढ़ कर बातें कह लो॥ १३॥

न रावणो नातिबलस्त्रिशीर्षो
न कुम्भकर्णस्य सुतो निकुम्भः।
न चेन्द्रजिद्दाशरथिं प्रसोढुं
त्वं वा रणे शक्रसमं समर्थाः॥ १४॥

बलवान् रावण, त्रिशीर्ष, मेघनाद, तुम, कुम्भकर्ण, और उसका पुत्र निकुम्भ में से कोई भी रणक्षेत्र में इन्द्र के समान पराक्रमी

श्रीरामचन्द्र जी का पराक्रम सह नहीं सकता। अर्थात् उनके सामने इनमें से कोई भी खड़ा रह नहीं सकता ॥ १४ ॥

देवान्तको वाऽपि नरान्तको वा
तथाऽतिकायोऽतिरथो [1]महात्मा ।
अकम्पनश्चाद्रिसमानसारः
स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य ॥ १५ ॥

देवान्तक, नरान्तक, अतिकाय, बड़े शरीर वाला अतिरथ, और पहाड़ के समान बलवाला अकम्पन, इनमें से कोई भी राम के सामने युद्धक्षेत्र में खड़ा नहीं रह सकता ॥१५॥

अयं हि राजा व्यसनाभिभूतो
मित्रैरमित्रप्रतिमैर्भवद्भिः ।
अन्वास्यते राक्षसनाशनाय
तीक्ष्णः प्रकृत्या ह्यसमीक्ष्यकारी ॥ १६ ॥

ये राजा तो कामान्ध हो रहे हैं और आप लोग इनके साथ मित्र के रूप में शत्रुता कर रहे हैं अथवा आप लोग इनके मित्ररूपी शत्रु हैं। आप ही लोगों की सलाह से राक्षसजाति का नाश होगा। यह राजा उग्रप्रकृति का है और बिना समझे बूझे काम कर बैठता है ॥ १६ ॥

अनन्तभोगेन सहस्रमूर्ध्ना
नागेन भीमेन महाबलेन ।
बलात्परिक्षिप्तमिमं भवन्तो
राजानमुत्क्षिप्य विमोचयन्तु ॥ १७ ॥

१ महात्मा—महाकायः । (गो०)

मैं तो आप सब से यही कहूँगा कि, अपरिच्छिन्न काया वाले, हज़ार फनों से युक्त भयङ्कर बलवाले श्रीरामचन्द्र रूपी सर्प के मुख में फँसे हुए, रावण को आप लोग किसी तरह बचाइये ॥ १७॥

यावद्धि केशग्रहणं सुहृद्भिः
समेत्य सर्वैः परिपूर्णकामैः ।
निगृह्य राजा परिरक्षितव्यो
भूतैर्यथा भीमबलैर्गृहीतः ॥ १८ ॥

जिनके समस्त मनोरथ राजा द्वारा पूर्ण हो चुके हैं; वे राजा को शत्रु द्वारा चोटी पकड़ कर खींचे जाने से वैसे ही बचावें और मान अपमान का विचार न करें, जैसे भयानक भूत लगे हुए पुरुष को, उसके हितैषी बाल पकड़ कर या बरजोरी बाँध कर बचाते हैं। अगर यह डरते हों कि, राजा बलवान है, तो सब लोग मिल कर ऐसा करें ॥ १८ ॥

*[1]सुवारिणा राघवसागरेण
प्रच्छाद्यमानस्तरसा[2] भवद्भिः ।
युक्तस्त्वयं तारयितुं समेत्य
काकुत्स्थपातालमुखे पतन्सः ॥ १९ ॥

सच्चरित्ररूप जल से पूर्ण, श्रीरामचन्द्ररूपी सागर, रावण पर आक्रमण करना चाहता है अथवा श्रीरामचन्द्ररूपी पाताल में यह राक्षसराज गिरने ही वाला है। अतः आप लोगों को चाहिये कि, आप सब मिल कर, इसे बचावें ॥ १९ ॥

---

१ सुवारिणा—सुचरित्ररूप वारिमता। (रा०) २ तरसा—आरम्भकाल एव। (गो०) * पाठान्तरं—"संहारिणा।"

इदं पुरस्यास्य स राक्षसस्य
राज्ञश्च पथ्यं ससुहृज्जनस्य
सम्यग्घि वाक्यं *स्वमतं ब्रवीमि
नरेन्द्रपुत्राय ददाम पत्नीम् ॥ २० ॥

इस लङ्कापुरी के, राक्षसों के, रावण के और उसके हितैषियों के हित के लिये, मैं भलीभाँति सोच विचार कर अपनी यह सम्मति देता हूँ कि, राक्षसराज, श्रीरामचन्द्र जी को सीता दे डालें ॥ २० ॥

परस्य वीर्यं स्वबलं च बुद्ध्वा
स्थानं क्षयं चैव तथैव वृद्धिम् ।
तथा स्वपक्षेऽप्यनुमृश्य बुद्ध्या
वदेत्क्षमं स्वामिहितं च मन्त्री ॥ २१ ॥

इति चतुर्दशः सर्गः ॥

यथार्थ मंत्री वही है, जो अपने और शत्रु के बल, स्थिति, अवनति और उन्नति को अच्छी तरह समझ बूझ कर, स्वामी के लिये हितकर सम्मति देता है ॥ २१ ॥

युद्धकाण्ड का चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—*—

* पाठान्तरे—"सततं ।"

पञ्चदशः सर्गः

—※—

बृहस्पतेस्तुल्यमतेर्वचस्त-
न्निशम्य यत्नेन विभीषणस्य ।
ततो महात्मा वचनं बभाषे
तत्रेन्द्रजिन्नैर्ऋतयोधमुख्यः ॥ १ ॥

बृहस्पति के समान बुद्धिसम्पन्न विभीषण की बातें बड़े ध्यान से सुन, निशाचर यूथपतियों में मुख्य महाबलवान् मेघनाद बोला ॥ १ ॥

किं नाम ते तात कनिष्ठवाक्य-
मनर्थकं चैव सुभीतवच्च ।
अस्मिन्कुले योऽपि भवेन्न जातः
सोऽपीदृशं नैव वदेन्न कुर्यात ॥ २ ॥

हे चाचा ! तुम भीरुजनों जैसी अनर्थ करने वाली ये बातें क्या कह रहे हो । जो पुलस्त्य के कुल में उत्पन्न नहीं हुआ, वह भी ऐसी बातें न तो कहेगा और न तदनुसार काम ही करेगा ॥ २ ॥

सत्त्वेन वीर्येण पराक्रमेण
शौर्येण धैर्येण च तेजसा च ।
एकः कुलेऽस्मिन्पुरुषो विमुक्तो
विभीषणस्तात कनिष्ठ एषः ॥ ३ ॥

देखो महानुभावो ! मेरे पिता के छोटे भाई यह अकेले विभीषण इस वंश में ऐसे उपजे जो बल, प्रभाव, पराक्रम, शौर्य, धैर्य और तेज से हीन हैं ॥ ३ ॥

किं नाम तौ राक्षस राजपुत्रा-
वस्माकमेकेन हि राक्षसेन ।
सुप्राकृतेनापि *रणे निहन्तुं
शक्यौ कुतो भीषयसे स्म भीरो ॥ ४ ॥

अरे डरपोंक विभीषण ! उन दो मनुष्य राजपुत्रों की मजाल ही क्या है । उन दोनों को तो हमारे यहाँ का एक मामूली राक्षस युद्ध में मार डाल सकता है । तुम इतना क्यों डरा रहे हो ? ॥ ४ ॥

त्रिलोकनाथो ननु देवराजः
शक्रो मया भूमितले निविष्टः ।
भयार्दिताश्चापि दिशः प्रपन्नाः
सर्वे तथा देवगणाः समग्राः ॥ ५ ॥

अरे जो तीनों लोकों का नाथ इन्द्र है, उसे तो मैं पकड़ कर पृथिवी पर ले आया था । क्या तुमको याद नहीं कि, उस समय सारे के सारे देवता मुझसे भयभीत हो इधर उधर भाग गये थे ॥ ५ ॥

ऐरावतो विस्वरमुन्नदन्स
निपातितो भूमितले मया तु ।
निकृष्य दन्तौ तु मया प्रसह्य
वित्रासिता देवगणाः समग्राः ॥ ६ ॥

---

* पाठान्तरे—" मतौ ।"

ज़ोर से चिल्लाते हुए ऐरावत को मैंने उठा कर पटक दिया और दाँतों को उखाड़ कर, सब देवताओं को भी भयभीत कर दिया था ॥ ६ ॥

सोऽहं सुराणामपि दर्पहन्ता
दैत्योत्तमानामपि शोकदाता ।
कथं नरेन्द्रात्मजयोर्न शक्तो
मनुष्ययोः प्राकृतयोः सुवीर्यः ॥ ७ ॥

सो मैं वही देवताओं का दर्प दलन करने वाला, बड़े बड़े दैत्यों को शोकान्वित करने वाला हो कर भी, क्या उन राजकुमारों के साथ, जो मामूली आदमी हैं, युद्ध न कर सकूँगा ? ॥ ७ ॥

अथेन्द्रकल्पस्य दुरासदस्य
महौजसस्तद्वचनं निशम्य ।
ततो महार्थं वचनं बभाषे
विभीषणः शस्त्रभृतां वरिष्ठः ॥ ८ ॥

इन्द्र के समान अजेय महातेजस्वी इन्द्रजीत के ये वचन सुन कर, धनुषधारियों में श्रेष्ठ विभीषण ने महाअर्थयुक्त ये वचन कहे ॥ ८ ॥

न तात मन्त्रे तव निश्चयोऽस्ति
बालस्त्वमद्याप्यविपक्वबुद्धिः ।
तस्मात्त्वया ह्यात्मविनाशनाय
वचोऽर्थहीनं बहु विप्रलप्तम् ॥ ९ ॥

हे बेटा ! तुम करने अनकरने कामों का विचार करने में अत्यन्त अज्ञानी हो ; क्योंकि अब तक तुम्हारी बालकों जैसी अपक्व बुद्धि है। इसीसे तुम अपना सत्यानाश करने के लिये, निष्प्रयोजन बकवाद कर रहे हो ॥ ९ ॥

पुत्रप्रवादेन तु रावणस्य
त्वमिन्द्रजिन्मित्रमुखोऽसि शत्रुः ।
यस्येदृशं राघवतो विनाशं
निशम्य मोहादनुमन्यसे त्वम् ॥ १० ॥

तुम रावण के पुत्र इन्द्रजीत अवश्य कहलाते हो, परन्तु हो तुम राक्षसराज के मित्ररूपी शत्रु । क्योंकि राक्षसराज को घोर विपत्ति में फँसे हुए देख कर भी, तुम मोहवश उनको नहीं रोकते ॥ १० ॥

त्वमेव वध्यश्च सुदुर्मतिश्च
स चापि बध्यो य इहानयत्त्वाम् ।
बालं दृढं साहसिकं न योऽद्य
प्रावेशयन्मन्त्रकृतां समीपम् ॥ ११ ॥

तुम बड़े कुबुद्धि हो और इसलिये मार डालने के योग्य हो और वह भी मार डालने के योग्य है, जिसने तुम जैसे बालक और अत्यन्त साहसी को लाकर इस मंत्रणा सभा में बैठाया ॥ ११ ॥

मूढः प्रगल्भोऽविनयोपपन्न-
स्तीक्ष्णस्वभावोऽल्पमतिर्दुरात्मा ।
मूर्खस्त्वमत्यन्तसुदुर्मतिश्च
त्वमिन्द्रजिद्बालतया ब्रवीषि ॥ १२ ॥

तू बड़ा अविवेकी, ढीठ, अशिक्षित, क्रूरस्वभाव, कमअक्ल, दुरात्मा बिना समझे बूझे काम करने वाला और अत्यन्त कुबुद्धि है। तू लड़कों जैसी बातें करता है ॥ १२ ॥

को ब्रह्मदण्डप्रतिमप्रकाशा-
नर्चिष्मतः कालनिकाशरूपान् ।
सहेत बाणान्यमदण्डकल्पान्
समक्ष मुक्तान्युधि राघवेण ॥ १३ ॥

जब श्रीरामचन्द्र जी रणभूमि में समीप खड़े हो कर, ब्रह्मदण्ड अथवा कालाग्नि के समान चमकते हुए तीखे बाण छोड़ेंगे, तब उनको कौन सह सकेगा ॥ १३ ॥

धनानि रत्नानि विभूषणानि
वासांसि दिव्यानि मणींश्च चित्रान् ।
सीतां च रामाय निवेद्य देवीं
वसेम राजन्निह वीतशोकाः ॥ १४ ॥

इति पञ्चदशः सर्गः ॥

हे राजन् ! धन, रत्न, आभूषण, बढ़िया वस्त्र और रंग बिरंगी मणियों सहित तुम श्रीरामचन्द्र जी को सीता दे डालो जिससे हम लोग आनन्द पूर्वक इस पुरी में रह सकें ॥ १४ ॥

युद्धकाण्ड का पन्द्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—※—

षोडशः सर्गः

—※—

सुनिविष्टं हितं वाक्यमुक्तवन्तं विभीषणम् ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं रावणः कालचोदितः ॥ १ ॥

जब धर्मात्मा विभीषण ने इस प्रकार के अर्थयुक्त हितकारी वचन कहे, तब रावण ने विभीषण से बड़े कठोर वचन कहे। क्योंकि उसके सिर पर तो काल खेल रहा था ॥ १ ॥

वसेत्सह सपत्नेन क्रुद्धेनाशीविषेण वा ।
न तु मित्रप्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना ॥ २ ॥

भले ही कोई शत्रु के अथवा ज़हरीले सांप के साथ रह ले, किन्तु शत्रु के पक्षपाती मित्ररूपी शत्रु के साथ कभी न रहै ॥ २ ॥

जानामि शीलं ज्ञातीनां सर्वलोकेषु राक्षस ।
हृष्यन्ति व्यसनेष्वेते ज्ञातीनां ज्ञातयः सदा ॥ ३ ॥

मैं सब लोकों के जाति वालों का स्वभाव भली भांति जानता हूँ कि, बिरादरी में जब एक पर विपत्ति पड़ती है, तब दूसरे प्रसन्न होते हैं ॥ ३ ॥

प्रधानं साधनं[1] वैद्यं[2] धर्मशीलं च राक्षस ।
ज्ञातयो ह्यवमन्यन्ते शूरं परिभवन्ति च ॥ ४ ॥

जाति के मुखिया, कार्यसाधक, विद्वान् और धर्मात्मा का, कुटुम्ब वाले सदा अपमान ही किया करते हैं और उनमें जो शूरवीर होता है, उसका वे तिरस्कार करना चाहते हैं ॥ ४ ॥

---

१ साधनं—कार्यसाधकं। (गो०) २ वैद्यं—विद्वांसं। (गो०)

नित्यमन्योन्यसंहृष्टा व्यसनेष्वाततायिनः ।
प्रच्छन्नहृदया घोरा ज्ञातयस्तु भयावहाः ॥ ५ ॥

जाति वाले बड़े निर्दयी होते हैं। क्योंकि नित्य भले ही वे आपस में हर्षित हो कर रहें, किन्तु विपत्ति पड़ने पर वे आततायी हो जाते हैं। वे अपने मन का भाव मन ही में छिपाये रखते हैं ॥ ५ ॥

श्रूयन्ते हस्तिभिर्गीताः श्लोकाः पद्मवने क्वचित् ।
पाशहस्तान्नरान्दृष्ट्वा शृणु तान्गदतो मम ॥ ६ ॥

सुना जाता है कि, पद्मवन के हाथियों ने उस समय एक बार कुछ श्लोक कहे थे, जिस समय बहुत से लोग उनको बाँधने के लिये रस्से लिये हुए चले आते थे। मैं कहता हूँ—तुम सुनो ॥ ६ ॥

नाग्निर्नान्यानि शस्त्राणि न नः पाशा भयावहाः ।
घोराः स्वार्थप्रयुक्तास्तु ज्ञातयो नो भयावहाः ॥ ७ ॥

हाथियों ने कहा था कि, अग्नि, शस्त्र और फन्दों से हम ज़रा भी नहीं डरते, हम तो स्वार्थपरायण एवं भयङ्कर अपने जाति वालों से डरते हैं ॥ ७ ॥

उपायमेते वक्ष्यन्ति ग्रहणे नात्र संशयः ।
कृत्स्नाद्भयाज्ज्ञातिभयं सुकष्टं विदितं च नः ॥ ८ ॥

क्योंकि पकड़ने का उपाय ये ही बतलाते हैं। मुझे यह बात भली भाँति मालूम है कि, सब भयों से बढ़ कर बिरादरी वालों का भय कष्टदायक है ॥ ८ ॥

विद्यते गोषु सम्पन्नं विद्यते ब्राह्मणे दमः ।
विद्यते स्त्रीषु चापल्यं विद्यते ज्ञातितो भयम् ॥ ९ ॥

जिस प्रकार गौओं में हव्य कव्यादि के लिये दुग्ध, ब्राह्मणों में इन्द्रिय निग्रहत्व और स्त्रियों में चपलता विद्यमान रहती है, उसी प्रकार जातिवालों से भय सदा रहता है ॥ ६ ॥

ततो नेष्टमिदं सौम्य यदहं लोकसत्कृतः ।
ऐश्वर्येणाभिजातश्च रिपूणां मूर्ध्नि च स्थितः ॥ १० ॥

मैंने शत्रुओं को पराजित कर अतुलित यश प्राप्त किया है व तीनों लोक मेरा सम्मान करते हैं, सो हे सौम्य! मैं जान गया कि, मेरा यह सौभाग्य तुमको अच्छा नहीं लगता ॥ १० ॥

यथा पुष्करपर्णेषु पतितास्तोयबिन्दवः ।
न श्लेषमुपगच्छन्ति तथाऽनार्येषु सौहृदम् ॥ ११ ॥

जैसे कमल के पत्ते पर जल की बूंदें नहीं ठहर सकतीं, वैसे ही क्रूरस्वभाव वाले पुरुष के साथ मैत्री करने से, वह मैत्री उसके मन में किसी प्रकार भी नहीं ठहरती ॥ ११ ॥

[यथा मधुकरस्तर्षात्काशपुष्पं पिबन्नपि ।
रसमत्र न विन्देत तथाऽनार्येषु सौहृदम्] ॥ १२ ॥

जिस प्रकार भौंरे फूलों का रस भली भांति पीकर भी वहाँ नहीं रहते—वैसे ही दुर्जनजन काम निकल जाने पर मैत्री का ख्याल नहीं रखते ॥ १२ ॥

यथा पूर्वं गजः स्नात्वा गृह्य हस्तेन वै रजः ।
दूषयत्यात्मनो देहं तथाऽनार्येषु सौहृदम् ॥ १३ ॥

जिस तरह हाथी जल में स्नान कर फिर सूँड़ में धूल भर उस से अपने शरीर को मलिन कर डालता है, उसी तरह दुर्जन के साथ की हुई मैत्री का परिणाम होता है ॥ १३ ॥

यथा *शारदि मेघानां सिञ्चतामपि गर्जताम् ।
न भवत्यम्बुसंक्लेदस्तथाऽनार्येषु सौहृदम् ॥ १४ ॥

जिस प्रकार शरदऋतु में बादलों के गरजने और बरसने से पृथिवी का कुछ भी उपकार नहीं होता उसी प्रकार दुर्जन के साथ मैत्री करने से कुछ भी लाभ नहीं होता ॥ १४ ॥

अन्यस्त्वेवंविधं ब्रूयाद्वाक्यमेतन्निशाचर ।
अस्मिन्मुहूर्ते न भवेत्त्वां तु धिक्कुलपांसनम् ॥ १५ ॥

हे विभीषण ! तूने जैसी बातें अभी कही हैं, यदि वैसी बातें कोई दूसरा कहता तो तत्काल उसे मैं मरवा डालता, (पर तू भाई है, इसका विचार है) विभीषण ! तुझ कुलकलङ्क को धिक्कार है ॥१५॥

इत्युक्तः परुषं वाक्यं न्यायवादी विभीषणः ।
उत्पपात गदापाणिश्चतुर्भिः सह राक्षसैः ॥ १६ ॥

अब्रवीच्च तदा वाक्यं जातक्रोधो विभीषणः ।
अन्तरिक्षगतः श्रीमान्भ्रातरं राक्षसाधिपम् ॥ १७ ॥

जब न्यायवादी (ठीक ठीक कहने वाले) विभीषण को रावण ने इस प्रकार धिक्कारा ; तब वह चार राक्षसों के साथ हाथ में गदा लिये हुए उड़ कर आकाश में पहुँचा । आकाश में पहुँच और क्रोध में भर विभीषण ने अपने भाई राक्षसराज रावण से ये वचन कहे ॥ १६ ॥ १७ ॥

स त्वं भ्राताऽसि मे राजन्ब्रूहि मां यद्यदिच्छसि ।
ज्येष्ठो मान्यः पितृसमो न च धर्मपथे स्थितः ॥ १८ ॥

---

* पाठान्तरे—" शरदि ।"

हे राजन्! तुम मेरे भाई हो, इससे जो चाहो सो कह लो। बड़े भाई होने के कारण तुम पितृतुल्य और पूज्य हो; किन्तु तुम धर्मपथारूढ़ नहीं हो॥ १८॥

इदं तु परुषं वाक्यं न क्षमाम्यहितं* तव।
¹सुनीतं हितकामेन वाक्यमुक्तं दशानन॥ १९॥

अतः मैं तुम्हारे इन कठोर और अप्रिय वचनों को न सहूँगा। हे दशानन! मैंने जो कहा था सो तुम्हारी भलाई के लिये ही कहा था और वह कहा था जो निश्चय ही आगे होने वाला है, किन्तु तुमने उन बातों पर ध्यान न दिया॥ १९॥

न गृह्णन्त्यकृतात्मानः कालस्य वशमागताः।
सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः॥ २०॥

तुम ध्यान देते भी क्यों? तुम्हारे सिर पर तो काल खेल रहा है। जो अनात्मज्ञ पुरुष होते हैं, वे ऐसी बातों पर ध्यान नहीं देते। हे राजन्! सदैव चिकनी चुपड़ी बातें कहने वाले मनुष्य बहुत मिलते हैं॥२०॥

अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।
बद्धं कालस्य पाशेन सर्वभूतापहारिणा॥ २१॥

अप्रिय, किन्तु न्याययुक्त बातें कहने वाले और सुनने वाले मनुष्यों का मिलना कठिन है। सब प्राणियों को हरण करने वाले काल के पाश में तुमको फँसा हुआ॥ २१॥

न नश्यन्तमुपेक्षेयं प्रदीप्तं शरणं यथा।
दीप्तपावकसङ्काशैः शितैः काञ्चनभूषणैः॥ २२॥

---

१ सुनीतं—सुनिश्चितागामिफलबोधकंवाक्यं। (रा०) पाठान्तरे—
"क्षमाम्यनृतं।"

और नष्ट होते देख, मुझसे न रहा गया। भला घर को जलते देख कौन चुपचाप बैठा रह सकता है। प्रज्वलित अग्नि की तरह चमकते, पैने और सुवर्णभूषित ॥ २२ ॥

न त्वामिच्छाम्यहं द्रष्टुं रामेण निहतं शरैः ।
शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्राश्च रणाजिरे ॥ २३ ॥
कालाभिपन्नाः सीदन्ति यथा वालुकसेतवः ।
तन्मर्षयतु यच्चोक्तं गुरुत्वाद्धितमिच्छता ॥ २४ ॥

बाणों से, राम द्वारा तेरा मारा जाना मैं देखना नहीं चाहता। बड़े बड़े शूर, बलवान और अस्त्र चलाने में चतुर लोग भी काल के वशवर्ती हो, बालू की भीत की तरह, युद्ध में बहुत शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। हे भाई! जो कुछ भी हो, तुम पूज्य हो। अतः मैंने तुम्हारे हित की कामना से, जो कुछ कहा है उसे क्षमा करना ॥ २३ ॥ २४ ॥

आत्मानं सर्वथा रक्ष पुरीं चेमां सराक्षसाम् ।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि सुखी भव मया विना ॥२५॥

अपनी और राक्षसों सहित इस लङ्कापुरी की रक्षा करना। तुम्हारा मङ्गल हो, मैं अब जाऊँगा। अब मेरे न रहने से तुम सुखी हो ॥ २५ ॥

नूनं न ते *राक्षस कश्चिदस्ति
रक्षोनिकायेषु सुहृत्सखा वा ।
हितोपदेशस्य न मन्त्रवक्ता
यो वारयेत्त्वां स्वयमेव पापात् ॥ २६ ॥

---

* पाठान्तरे – "रावण।"

हे निशाचर ! मुझे दुःख है कि, इस राक्षसपुरी में निश्चय ही तुम्हारा कोई ऐसा हितैषी अथवा मित्र नहीं है, जो तुमसे तुम्हारे हित की बातें कह तुम्हें सत्परामर्श देता हुआ, तुमको बुरे कामों के करने से रोकता ॥ २६ ॥

निवार्यमाणस्य मया हितैषिणा
न रोचते ते वचनं निशाचर ।
[1]परीतकाला हि गतायुषो नरा
हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम् ॥ २७ ॥

इति षोडशः सर्गः ॥

हे निशाचर ! मैं तो तुम्हें तुम्हारी भलाई के लिये ही रोकता था, किन्तु मेरी बात तुम्हें अच्छी ही नहीं लगी। ठीक है, जिन लोगों की आयु पूरी होने को होती है और जिनके सिर पर काल खेलता है, वे मित्रों की कही हुई हितकर बातों को नहीं मानते ॥ २७ ॥

युद्धकाण्ड का सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—*—

सप्तदशः सर्गः

—*—

इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणं रावणानुजः ।
आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥ १ ॥

रावण का छोटा भाई विभीषण, रावण से इस प्रकार कठोर वचन कह, एक मुहूर्त में वहाँ जा पहुँचा, जहाँ लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी थे ॥ १ ॥

---

१ परीतकालाः—परीतः प्रत्यासन्नः कालोयेषां ते तथोक्ताः । (रा०)

तं मेरुशिखराकारं दीप्तामिव शतह्रदाम् ।
गगनस्थं महीस्थास्ते ददृशुर्वानराधिपाः ॥ २ ॥

बिजली की तरह चमचमाते, सुमेरु पर्वत की चोटी की तरह आकाशस्थित विभीषण को, नीचे से वानर यूथपतियों ने देखा ॥२॥

स हि मेघाचलप्रख्यो वज्रायुधसमप्रभः ।
वरायुधधरो वीरो दिव्याभरणभूषितः ॥ ३ ॥

मेघ अथवा पहाड़ की तरह विशालवपुधारी और इन्द्र के वज्र की तरह प्रभायुक्त, उत्तम आयुधों को लिये हुए और सुन्दर आभूषणों से शोभित वीर विभीषण को वानरों ने आकाश में देखा ॥३॥

ये चाप्यनुचरास्तस्य चत्वारो भीमविक्रमाः ।
तेऽपि वर्मायुधोपेता भूषणैश्च विभूषिताः ॥ ४ ॥

विभीषण के जो भीम पराक्रमी चार अनुचर थे, वे भी कवच पहिने हुए थे, अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित थे और भूषणों से भूषित थे ॥ ४ ॥

तमात्मपञ्चमं दृष्ट्वा सुग्रीवो वानराधिपः ।
वानरैः सह दुर्धर्षश्चिन्तयामास बुद्धिमान् ॥ ५ ॥

दुर्धर्ष, बुद्धिमान् एवं वानरराज सुग्रीव इन पांच व्यक्तियों को देख, अन्य वानरों सहित सोचने लगे ॥ ५ ॥

चिन्तयित्वा मुहूर्तं तु वानरांस्तानुवाच ह ।
हनुमत्प्रमुखान्सर्वानिदं वचनमुत्तमम् ॥ ६ ॥

तदनन्तर एक मुहूर्त तक कुछ सोच विचार कर, हनुमानादि वानरों से सुग्रीव ने ये उत्तम वचन कहे ॥ ६ ॥

एष सर्वायुधोपेतश्चतुर्भिः सह राक्षसैः ।
राक्षसोऽभ्येति पश्यध्वमस्मान्हन्तुं न संशयः ॥ ७ ॥

देखो, यह कोई राक्षस है, जो सब आयुधों से लैस अपने चार साथियों के साथ, निस्सन्देह हम सब लोगों को मारने के लिये आ रहा है ॥ ७ ॥

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा सर्वे ते वानरोत्तमाः ।
सालानुद्यम्य शैलांश्च इदं वचनमब्रुवन् ॥ ८ ॥

जब सुग्रीव ने इस प्रकार कहा, तब उन सब वानरश्रेष्ठों ने बड़े बड़े शालवृक्ष और शिलाएँ हाथों में ले सुग्रीव से यह कहा ॥ ८ ॥

शीघ्रं व्यादिश नो राजन्वधायैषां दुरात्मनाम् ।
निपतन्ति हता यावद्धरण्यामल्पतेजसः ॥ ९ ॥

हे राजन्! इस दुरात्मा को मारने की हम लोगों को आप शीघ्र आज्ञा दें। हम इस अल्पबल वाले को मार कर अभी नीचे गिराये देते हैं ॥ ९ ॥

तेषां सम्भाषमाणानामन्योन्यं स विभीषणः ।
उत्तरं तीरमासाद्य खस्थ एव व्यतिष्ठत ॥ १० ॥

इधर तो वानर इस प्रकार आपस में बातचीत कर रहे थे, उधर विभीषण समुद्र के उत्तरतट के ऊपर पहुँच आकाश ही में रुक गया ॥ १० ॥

उवाच च महाप्राज्ञः स्वरेण महता महान् ।
सुग्रीवं तांश्च सम्प्रेक्ष्य सर्वान्वानरयूथपान् ॥ ११ ॥

सुग्रीव तथा अन्य समस्त वानर यूथपतियों की ओर देख बुद्धिमान विभीषण ने बड़े उच्च स्वर से कहा ॥ ११ ॥

रावणो नाम दुर्वृत्तो राक्षसो राक्षसेश्वरः ।
तस्याहमनुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः ॥ १२ ॥

राक्षसों का राजा रावण नामक एक राक्षस है जो बड़ा दुराचारी है। मैं उसीका छोटा भाई हूँ और मेरा नाम विभीषण है ॥ १२ ॥

तेन सीता जनस्थानाद्धृता हत्वा जटायुषम् ।
रुद्धा च विवशा दीना राक्षसीभिः सुरक्षिता ॥ १३ ॥

वही जटायु को मार कर जनस्थान से सीता को हर लाया था। वह बेचारी सीता राक्षसियों के बीच विवश और दीन हो कैद में है ॥ १३ ॥

तमहं हेतुभिर्वाक्यैर्विविधैश्च न्यदर्शयम् ।
साधु निर्यात्यतां सीता रामायेति पुनः पुनः ॥ १४ ॥

मैंने रावण को कितनी ही युक्तियों से समझाया और कितनी ही बार कहा कि, अच्छा हो तू सीता रामचन्द्र को दे दे ॥ १४ ॥

स च न प्रतिजग्राह रावणः कालचोदितः ।
उच्यमानं हितं वाक्यं विपरीत इवौषधम् ॥ १५ ॥

किन्तु उसने मेरी बात न मानी, क्योंकि उसके सिर पर तो काल खेल रहा है। जिस प्रकार रोगी को दवा बुरी लगती है, उसी प्रकार रावण को मेरी कही हुई हितकर बातें उलटी लगीं ॥ १५ ॥

सोऽहं परुषितस्तेन दासवच्चावमानितः ।
त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः ॥ १६ ॥

उसने मुझसे बड़े कठोर वचन कहे और टहलुए की तरह मेरा अनादर किया। अतः अब मैं पुत्र कलत्रादि सब को त्याग श्रीरामचन्द्र जी की शरण में आया हूँ ॥ १६ ॥

सर्वलोकशरण्याय राघवाय महात्मने ।
निवेदयत मां क्षिप्रं विभीषणमुपस्थितम् ॥ १७ ॥

सब लोकों के रक्षक महात्मा श्रीरामचन्द्र जी से आप लोग शीघ्र निवेदन कर दें कि, विभीषण आया है ॥ १७ ॥

एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो लघुविक्रमः[1] ।
लक्ष्मणस्याग्रतो रामं [2]संरब्धमिदमब्रवीत् ॥ १८ ॥

विभीषण के ये वचन सुन, सुग्रीव शीघ्रता पूर्वक गये और लक्ष्मण के सामने श्रीरामचन्द्र जी से प्रेम में भर शीघ्रता पूर्वक कहने लगे ॥ १८ ॥

रावणस्यानुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः ।
चतुर्भिः सह रक्षोभिर्भवन्तं शरणं गतः ॥ १९ ॥

रावण का छोटा भाई जिसका नाम विभीषण है, चार राक्षसों को लेकर आपके शरण में आया है ॥ १९ ॥

मन्त्रे व्यूहे नये चारे युक्तो भवितुमर्हसि ।
वानराणां च भद्रं ते परेषां च परन्तप ॥ २० ॥

हे शत्रुतापन ! जिस प्रकार वानरों की भलाई हो, उस प्रकार आप करने अनकरने कामों का विचार करें, व्यूह रचना करवावें और शत्रुसैन्य का वृत्तान्त जानने को जासूस नियत कर, सावधान हो जाँय ॥ २० ॥

---

१ लघुविक्रमः—शीघ्रगमनः । (गो०) २ संरब्धं—प्रेमभरात्त्वरितोदिताक्षरं । (गो०)

[1]अन्तर्धानगता ह्येते राक्षसाः कामरूपिणः ।
शूराश्च निकृतिज्ञाश्च[2] तेषु जातु न विश्वसेत् ॥ २१ ॥

हे राघव ! ये राक्षस हैं । ये जब चाहें तब इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं, ये अदृश्यचारी तथा बड़े वीर और बड़े कपटी हैं ॥ २१ ॥

[3]प्रणधी राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य भवेदयम् ।
अनुप्रविश्य सोऽस्मासु भेदं कुर्यान्न संशयः ॥ २२ ॥

मुझे तो यह राक्षसराज रावण का जासूस जान पड़ता है। निश्चय ही यह हम लोगों से हिलमिल कर, हम लोगों ही में परस्पर भेदभाव उत्पन्न कर देगा ॥ २२ ॥

अथवा स्वयमेवैष छिद्रमासाद्य बुद्धिमान् ।
अनुप्रविश्य विश्वस्ते कदाचित्प्रहरेदपि ॥ २३ ॥

अथवा जब कभी हम इस पर विश्वास कर असावधान होंगे, तब यह अवसर पाते ही हम लोगों पर आक्रमण कर देगा—क्योंकि यह है बुद्धिमान् ॥ २३ ॥

मित्राटवीबलं चैव [4]मौलं भृत्यबलं तथा ।
सर्वमेतद्बलं ग्राह्यं वर्जयित्वा द्विषद्बलम् ॥ २४ ॥

मित्रों, वनवासियों, परंपरागत सैनिकों अथवा अपने अधीनस्थ राजाओं की तथा नौकर रखी हुई सेना – इन सब से काम ले ले, किन्तु शत्रुसैन्य पर सहायता के लिये कभी विश्वास न करे ॥ २४ ॥

---

१ अन्तर्धानगताः—अदृश्यचारिणः । (गो०) २ निकृतिज्ञाः—कपटोपायवेदिनः । (गो०) ३ प्रणिधिः—चारः । (गो०) ४ मौलं—परंपरागतं सैन्यं । (गो०)

प्रकृत्या राक्षसो ह्येषं भ्राताऽमित्रस्य वै प्रभो ।
आगतश्च रिपोः पक्षात्कायमस्मिन्हि विश्वसेत् ॥ २५ ॥

हे प्रभो ! एक तो यह स्वभाव ही से राक्षस ठहरा, दूसरे शत्रु का भाई है। तीसरे हाल ही में शत्रु के पास से चला आ रहा है। मैं इसका कैसे विश्वास करूँ ॥ २५ ॥

रावणेन प्रणिहितं तमवेहि विभीषणम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये क्षमं क्षमवतां वर ॥ २६ ॥

यह विभीषण, रावण ही का भेजा हुआ आया है। हे सर्वसमर्थ राघव ! मैं तो इसे दण्ड देना ही ठीक समझता हूँ ॥ २६ ॥

राक्षसो जिह्मया बुद्ध्या सन्दिष्टोऽयमुपस्थितः ।
प्रहर्तुं मायया च्छन्नो विश्वस्ते त्वयि राघव ॥ २७ ॥

हे राघव ! यह कपटी मायावी राक्षस प्रथम आपके मन में अपनी ओर से विश्वास उत्पन्न कर, अवसर हाथ लगने पर, आप के ऊपर प्रहार करने के लिये ही रावण का भेजा हुआ, यहाँ आया है ॥ २७ ॥

प्रविष्टः शत्रुसैन्यं हि प्राज्ञः शत्रुरतर्कितः ।
निहन्यादन्तरं लब्ध्वा उलूक इव वायसान् ॥ २८ ॥

हे प्राज्ञ ! यह शत्रुसैन्य में इसलिये घुसना चाहता है कि, जब अवसर हाथ लगने पर शत्रु को असावधान पावे, तब उनको उसी प्रकार मार डाले, जिस प्रकार एक घुग्घू बहुत से कौओं को मार डालता है ॥ २८ ॥

वध्यतामेष दण्डेन तीव्रेण सचिवैः सह ।
रावणस्य नृशंसस्य भ्राता ह्येष विभीषणः ॥ २९ ॥

अतएव इसे मय इसके मंत्रियों के कड़ी सज़ा दे कर मार डालना चाहिये । क्योंकि यह उस कसाई रावण का भाई है ॥ २६ ॥

एवमुक्त्वा तु तं रामं संरब्धो वाहिनीपतिः ।
वाक्यज्ञो वाक्यकुशलं ततो मौनमुपागतम् ॥ ३० ॥

इस प्रकार कुपित हो वाक्यविशारद वानरराज सुग्रीव, वाक्य-कुशल श्रीरामचन्द्र जी से वचन कह, चुप हो गये ॥ ३० ॥

सुग्रीवस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा रामो महायशाः ।
समीपस्थानुवाचेदं हनुमत्प्रमुखान्हरीन् ॥ ३१ ॥

सुग्रीव के ये वचन सुन, महायशस्वी श्रीरामचन्द्र, पास बैठे हुए हनुमानादि मुख्य मुख्य वानरों से बोले ॥ ३१ ॥

यदुक्तं कपिराजेन रावणावरजं प्रति ।
वाक्यं हेतुमदर्थ्यं च भवद्भिरपि तच्छ्रुतम् ॥ ३२ ॥

रावण के छोटे भाई के सम्बन्ध में कपिराज ने जो युक्तियुक्त मतलब की बातें कही हैं, वे सब आप लोगों ने भी सुनी ही हैं ॥३२॥

सुहृदा ह्यर्थकृच्छ्रेषु[1] युक्तं बुद्धिमता सता ।
समर्थेनापि सन्देष्टुं शाश्वतीं भूतिमिच्छता ॥ ३३ ॥

सदैव मङ्गलाभिलाषी बुद्धिमान, समर्थ और हितैषी को यही चाहिये कि, सुहृद को, कार्या करने में सन्देह उपस्थित होने पर या

---

१ अर्थकृच्छ्रेषु—सङ्कटेषु । (गो०)

सङ्कट पड़ने पर, इसी तरह सम्मति देनी चाहिये। अतः आप लोग भी अपनी अपनी राय दें ॥ ३३ ॥

इत्येवं परिपृष्टास्ते स्वं स्वं मतमतन्द्रिताः ।
[1]सोपचारं तदा राममूचुर्हितचिकीर्षवः ॥ ३४ ॥

जब श्रीरामचन्द्र जी ने इस प्रकार पूँछा ; तब बड़ी मुस्तैदी के साथ वानरों ने श्रीरामचन्द्र जी की भलाई की कामना से, प्रशंसा पूर्वक अपनी अपनी सम्मति दी ॥ ३४ ॥

अज्ञातं नास्ति ते किञ्चित्त्रिषु लोकेषु राघव ।
आत्मानं सूचयन्राम पृच्छस्यस्मान्सुहृत्तया ॥ ३५ ॥

हे राघव ! तीनों लोकों में ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो आपको मालूम न हो। आपने सुहृद्भाव से जो पूँछा है—यह केवल हम लोगों को आपने अपनाया है ॥ ३५ ॥

त्वं हि सत्यव्रतः शूरो धार्मिको दृढविक्रमः ।
परीक्ष्यकारी स्मृतिमान्निसृष्टात्मा सुहृत्सु च ॥ ३६ ॥

आप सत्यव्रतधारी, शूर, धार्मिक, दृढ़विक्रमी, भली भाँति जाँच पड़ताल कर काम करने वाले, स्मृतिमान्, इष्टमित्रों के प्रति विश्वास रखने वाले और हितैषी हैं ॥ ३६ ॥

तस्मादेकैकशस्तावद्ब्रुवन्तु सचिवास्तव ।
हेतुतो मतिसम्पन्नाः समर्थाश्च पुनः पुनः ॥ ३७ ॥

इस समय आपके समीप बुद्धिमान और समर्थ मंत्री हैं। वे अलग अलग युक्तिप्रदर्शन पूर्वक अपनी अपनी सम्मति प्रकट करें ॥ ३७ ॥

---

१ सोपचारं—प्रशंसावाक्यमेवाह। (गो०)

इत्युक्ते राघवायाथ मतिमानङ्गदोऽग्रतः ।
विभीषणपरीक्षार्थमुवाच वचनं हरिः ॥ ३८ ॥

वानरों ने श्रीरामचन्द्र जी से इस प्रकार कहा तब बुद्धिमान् अंगद ने सब से प्रथम विभीषण की परिस्थिति का विवेचन करते हुए, अपनी सम्मति दी ॥ ३८ ॥

शत्रोः सकाशात्सम्प्राप्तः सर्वथा शङ्क्य एव हि ।
विश्वासयोग्यः सहसा न कर्तव्यो विभीषणः ॥ ३९ ॥

विभीषण, शत्रु के पास से आ रहा है, अतः इसकी ओर से शङ्का उत्पन्न होना स्वाभाविक बात है। अतएव यह सहसा विश्वास करने योग्य नहीं है ॥ ३९ ॥

छादयित्वाऽऽत्मभावं हि चरन्ति शठबुद्धयः ।
प्रहरन्ति च रन्ध्रेषु सोऽनर्थः सुमहान्भवेत् ॥ ४० ॥

क्योंकि क्रूर स्वभाव वाले राक्षस सदा अपने मन का भाव छिपाये घूमा करते हैं और अवसर हाथ आते ही प्रहार कर बैठते हैं। जहाँ ऐसा होता है, वहाँ बड़ा भारी अनर्थ होता है ॥ ४० ॥

[1]अर्थानर्थौ विनिश्चित्य व्यवसायं[2] भजेत ह ।
गुणतः संग्रहं कुर्याद्दोषतस्तु *विसर्जयेत् ॥ ४१ ॥

अतएव गुण और दोषों को विचारपूर्वक निश्चित कर त्याग अथवा संग्रहोचित अध्यवसाय में प्रवृत्त होना चाहिये। यदि विभीषण में गुण हों तो उसको मिला लेना चाहिये और यदि दोष हों तो उसका त्याग कर देना ही अच्छा है ॥ ४१ ॥

---

१ अर्थानर्थौ—गुणदोषौ। (गो०) २ व्यवसायं—त्यागसंग्रहोचिता व्यवसायं। (गो०) * पाठान्तरे—" विवर्जयेत्।"

यदि दोषो महांस्तस्मिंस्त्यज्यतामविशङ्कितम् ।
गुणान्वाऽपि बहूञ्ज्ञात्वा सङ्ग्रहः क्रियतां नृप ॥४२॥

यदि विभीषण में कोई बड़ा दोष देख पड़े, तो बिना सङ्कोच के इसको त्याग देना चाहिये। हे राजन्! यदि इसमें बहुत से गुण देख पड़ें, तो इसको अपने में मिला लेना चाहिये ॥ ४२ ॥

[नोट—किसी भी मनुष्य में गुण ही गुण या दोष ही दोष नहीं हुआ करते—प्रत्येक में गुण भी होते हैं और दोष भी। ऐसी दशा में तो विभीषण का त्याग व संग्रह का विचार दुरूह है। यह सोच कर ही अंगद ने ४२वें श्लोक में "बड़ा दोष" या "बड़ा गुण" कह कर अपनी पूर्वकथित बात का स्पष्टीकरण किया है।]

शरभस्त्वथ निश्चित्य सार्थं वचनमब्रवीत् ।
क्षिप्रमस्मिन्नरव्याघ्र चारः प्रतिविधीयताम् ॥ ४३ ॥

तदनन्तर शरभ ने कुछ सोच कर, यह सोपपत्तिक (ठिकाने की) बात कही। हे नरव्याघ्र! लङ्का में जासूस भेज कर इसका रहस्य जानना चाहिये ॥ ४३ ॥

प्रणिधाय हि चारेण यथावत्सूक्ष्मबुद्धिना ।
परीक्ष्य च ततः कार्यो यथान्याय्यं परिग्रहः ॥ ४४ ॥

किसी कुशाग्रबुद्धि वाले भेदिया द्वारा इसका ठीक ठीक वृत्तान्त जानना चाहिये। तदनन्तर भली भाँति जान कर, नीति शास्त्रानुसार इसको मिलाना चाहिये ॥ ४४ ॥

जाम्बवांस्त्वथ सम्प्रेक्ष्य शास्त्रबुद्ध्या विचक्षणः ।
वाक्यं विज्ञापयामास गुणवद्दोषवर्जितम् ॥ ४५ ॥

तदनन्तर विचक्षण बुद्धिमान् जाम्बवान ने यथाशास्त्र विचार कर, युक्तियुक्त और दोषवर्जित यह बात प्रकट की ॥ ४५ ॥

बद्धवैराच्च पापाच्च राक्षसेन्द्राद्विभीषणः ।
अदेशकाले सम्प्राप्तः सर्वथा शङ्क्यतामयम् ॥ ४६ ॥

हमारे कट्टर शत्रु और पापी रावण के पास से विभीषण ऐसे समय में आया है, जिस समय उसे आना उचित न था, फिर यह स्थान भी इस कार्य के उपयुक्त नहीं है, अतएव इससे सर्वथा सशङ्कित रहना ही उचित है ॥ ४६ ॥

ततो मैन्दस्तु सम्प्रेक्ष्य नयापनयकोविदः ।
वाक्यं वचनसम्पन्नो बभाषे हेतुमत्तरम् ॥ ४७ ॥

नीति अनीति की विवेचना करने में दक्ष मैन्द ने भली भाँति सोच विचार कर अत्यन्त युक्तियुक्त वचन कहा ॥ ४७ ॥

वचनं नाम तस्यैष रावणस्य विभीषणः ।
पृच्छयतां मधुरेणायं शनैर्नरवरेश्वर ॥ ४८ ॥

हे नरवरेश्वर ! यह विभीषण रावण का छोटा भाई है, अतः इससे शिघ्रता पूर्वक धीरे धीरे मधुर शब्दों में सब बातें पूछनी चाहिये ॥ ४८ ॥

भावमस्य तु विज्ञाय ततस्तत्त्वं करिष्यसि ।
यदि दुष्टो न दुष्टो वा बुद्धिपूर्वं नरर्षभ ॥ ४९ ॥

हे नरर्षभ ! फिर इसके मन की असली बात जान लेने के बाद, इसके दुष्ट अथवा साधु होने का विचार कर, जैसा ठीक जान पड़े वैसा आप करें ॥ ४९ ॥

अथ [1]संस्कारसम्पन्नो हनूमान्सचिवोत्तमः ।
उवाच वचनं श्लक्ष्णमर्थवन्मधुरं लघु ॥ ५० ॥

तदनन्तर सर्व-शास्त्र-विशारद, मंत्रिश्रेष्ठ हनुमान जी ने संक्षेप में, किन्तु स्पष्टार्थबोधक मधुर वचनों में कहा ॥ ५० ॥

न भवन्तं मतिश्रेष्ठं समर्थं वदतां वरम् ।
अतिशाययितुं शक्तो बृहस्पतिरपि ब्रुवन् ॥ ५१ ॥

हे स्वामिन्! आप बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, समर्थ और बोलने वाले में सर्वोत्तम हैं । बृहस्पति भी आपके सामने बहुत नहीं बोल सकते ॥ ५१ ॥

न वादान्नापि सङ्घर्षान्नाधिक्यान्न च कामतः ।
वक्ष्यामि वचनं राजन्यथार्थं रामगौरवात् ॥ ५२ ॥

हे राम! मैं आपसे तर्ककौशल से, सचिवों की स्पर्धा के वशवर्ती हो, अपने को बड़ा बुद्धिमान वक्ता होने के अभिमान से, भाषण की इच्छा से अथवा विभीषण का पक्षपाती बन कर कुछ नहीं कहता, किन्तु मैं जो कुछ कहूँगा ठीक ही ठीक और आपके गौरव का ध्यान रख कर ही कहूँगा ॥ ५२ ॥

अर्थानर्थनिमित्तं हि यदुक्तं सचिवैस्तव ।
तत्र दोषं प्रपश्यामि क्रिया न ह्युपपद्यते ॥ ५३ ॥

देखिये गुणों और दोषों के विषय में आपके मंत्रियों ने जो कुछ कहा है, उसमें मुझे दोष देख पड़ते हैं; क्योंकि उससे कोई काम होता नहीं जान पड़ता ॥ ५३ ॥

---

१ संस्कारसम्पन्नः—शास्त्राभ्यासदृढतरसंस्कारयुक्तः । (गो०)

ऋते नियोगात्सामर्थ्यमवबोद्धुं न शक्यते ।
सहसा विनियोगो हि दोषवान्प्रतिभाति मा ॥ ५४ ॥

बिना कोई काम सौंपे तो किसी की हित अनहित भावना का पता चल नहीं सकता। साथ ही सहसा कोई काम सौंप देना भी मेरी समझ में ठीक नहीं है ॥ ५४ ॥

चारप्रणिहितं युक्तं यदुक्तं सचिवैस्तव ।
अर्थस्यासम्भवात्तत्र कारणं नोपपद्यते ॥ ५५ ॥

भेदिया या चर भेजने के सम्बन्ध में आपके मंत्रियों ने जो कुछ कहा है, सो विना प्रयोजन चर भेजना भी मुझे ठीक नहीं जान पड़ता ॥ ५५ ॥

अदेशकाले सम्प्राप्त इत्ययं यद्विभीषणः ।
विवक्षा तत्र मेऽस्तीयं तां निबोध यथामति ॥ ५६ ॥

जाम्बवान ने कहा था कि, विभीषण ठीक समय और ठीक स्थान पर नहीं आया। इस विषय में मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ कहना चाहता हूँ, (आप लोग ध्यान देकर सुनें) ॥ ५६ ॥

स एष देशः कालश्च भवतीति यथातथा ।
पुरुषात्पुरुषं प्राप्य तथा दोषगुणावपि ॥ ५७ ॥

विभीषण के आने का यही (उपयुक्त) स्थान है और यही काल है। एक पुरुष के पास से दूसरे पुरुष के पास आने में जो बुराई भलाई हो सकती है—उसे मैं कहता हूँ ॥ ५७ ॥

दौरात्म्यं रावणे दृष्ट्वा विक्रमं च तथा त्वयि ।
युक्तमागमनं तस्य सदृशं तस्य बुद्धितः ॥ ५८ ॥

रावण में दुष्टता और आपमें पराक्रम देख, इसका यहाँ आना सर्वथा ठीक है और यह उसकी बुद्धिमानी को प्रकट करता है ॥ ५८ ॥

अज्ञातरूपैः पुरुषैः स राजन्पृच्छ्यतामिति ।
यदुक्तमत्र मे प्रेक्षा काचिदस्ति समीक्षिता ॥ ५९ ॥

अज्ञात कुलशील दूत के द्वारा विभीषण का हाल जानने के लिये मैन्द ने जो परामर्श दिया है, सो इस विषय में भी विचार कर मैं जिस परिणाम पर पहुँचा हूँ, उसे भी आप लोग सुनें ॥ ५९ ॥

पृच्छ्यमानो विशङ्केत सहसा बुद्धिमान्वचः ।
तत्र मित्रं प्रदुष्येत मिथ्या पृष्टं सुखागतम् ॥ ६० ॥

विभीषण बड़ा बुद्धिमान् है । अतः अज्ञातकुलशील किसी पुरुष के सहसा उनसे कुछ पूँछने पर, उसके मन में सन्देह उत्पन्न होगा और उत्तर न देगा । फिर सुखप्राप्ति की लालसा से वह आपसे मैत्री करने आया है—सो ऐसा करने से उस मैत्री में भेद पड़ जायगा ॥ ६० ॥

अशक्यः सहसा राजन्भावो वेत्तुं परस्य वै ।
अन्तःस्वभावैर्गीतैस्तैर्नैपुण्यं पश्यता भृशम् ॥ ६१ ॥

हे राजन्! फिर किसी दूसरे के मन की बात सहसा जानी भी नहीं जा सकती, किन्तु चतुरजन कण्ठस्वर के भेद से और कण्ठ-ध्वनि से बोलने वाले का अभिप्राय ताड़ जाते हैं ॥ ६१ ॥

न त्वस्य ब्रुवतो जातु लक्ष्यते दुष्टभावता ।
प्रसन्नं वदनं चापि तस्मान्मे नास्ति संशयः ॥ ६२ ॥

हे राम! मुझे तो इसकी बोली से इसकी बुरी भावना नहीं जान पड़ती। इसकी मुखाकृति भी हर्षित देख पड़ती है। अतः मुझे तो इस पर कुछ भी सन्देह नहीं है॥ ६२॥

अशङ्कितमतिः स्वस्थो न शठः परिसर्पति।
न चास्य दुष्टा वाक्चापि तस्मान्नास्तीह संशयः॥ ६३॥

जो धूर्त होता है वह निर्भीक और स्थिर चित्त होकर नहीं आता। इसकी बोली में भी मुझे कोई दोष नहीं जान पड़ता। अतएव मुझे तो उस पर कुछ भी सन्देह नहीं है॥ ६३॥

आकारश्छाद्यमानोऽपि न शक्यो विनिगूहितम्।
बलाद्धि विवृणोत्येव भावमन्तर्गतं नृणाम्॥ ६४॥

आकार को कोई भले ही छिपावे पर वह छिप नहीं सकता, बल्कि मनुष्य के अन्तःकरण की दुष्टता अथवा साधुता वह बरजोरी प्रकट कर देता है॥ ६४॥

देशकालोपपन्नं च कार्यं कार्यविदां वर।
स्वफलं कुरुते क्षिप्रं प्रयोगेणाभिसंहितम्॥ ६५॥

हे कर्मज्ञों में श्रेष्ठ! काल और देश का भली भाँति विचार कर, उचित पुरुष द्वारा जो कार्य किया जाता है, वह शीघ्र फल देता है॥ ६५॥

उद्योगं तव सम्प्रेक्ष्य मिथ्यावृत्तं च रावणम्।
वालिनश्च वधं श्रुत्वा सुग्रीवं चाभिषेचितम्॥ ६६॥

विभीषण आपको उद्योगी और रावण को मिथ्या उद्योग में लगा हुआ देख और यह सुन कि, आपने वाली को मार डाला और सुग्रीव को राज्य दिला दिया है॥ ६६॥

राज्यं प्रार्थयमानश्च बुद्धिपूर्वमिहागतः ।
एतावत्तु पुरस्कृत्य युज्यते त्वस्य संग्रहः ॥ ६७ ॥

लङ्का का राज्य पाने के लोभ से, भली भाँति समझ बूझ कर यहाँ आया है। इन बातों पर ध्यान देते हुए विभीषण का मिला लेना ही उचित है ॥ ६७ ॥

यथाशक्ति मयोक्तं तु राक्षसस्यार्जवं[1] प्रति ।
त्वं प्रमाणं तु शेषस्य श्रुत्वा बुद्धिमतां वर ॥ ६८ ॥

इति सप्तदशः सर्गः ॥

हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ! मैंने निज बुद्ध्यानुसार विभीषण के निर्दोषत्व के बारे में जो कुछ कहा—उसे आप सुन ही चुके, अब विभीषण को ग्रहण करना न करना आपकी इच्छा के ऊपर है ॥६८॥

युद्धकाण्ड का सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—*—

अष्टादशः सर्गः

—*—

अथ रामः प्रसन्नात्मा श्रुत्वा वायुसुतस्य ह ।
प्रत्यभाषत दुर्धर्षः [2]श्रुतवानात्मनि स्थितम् ॥ १ ॥

तदनन्तर सर्वशास्त्रवेत्ता, अजेय श्रीरामचन्द्र जी हनुमान जी की बातें सुन प्रसन्न हुए और स्वस्थ हो बोले ॥ १ ॥

---

१ आर्जवं—निर्दोषत्वं । (गो०)   २ श्रुतवान्—सकलशास्त्रश्रवणवान् ।

ममापि तु विवक्षाऽस्ति काचित्प्रति विभीषणम् ।
श्रुतमिच्छामि तत्सर्वं भवद्भिः श्रेयसि स्थितैः ॥ २ ॥

हे वानरो ! विभीषण के विषय में मुझे भी कुछ वक्तव्य है । आप सब मेरे हितैषी हैं, अतः मैं आपकी बातें सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन ।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात्सतामेतदगर्हितम् ॥ ३ ॥

यदि विभीषण मित्रभाव से आया हो तो मैं इसे कभी त्यागना नहीं चाहता । भले हो उसमें कोई दोष भी हो । क्योंकि शिष्टजनों का यही अनिन्दित कर्तव्य है ॥ ३ ॥

सुग्रीवस्त्वथ तद्वाक्यमाभाष्य च विमृश्य च ।
ततः शुभतरं वाक्यमुवाच हरिपुङ्गवः ॥ ४ ॥

तदनन्तर वानरराज सुग्रीव, श्रीरामचन्द्र जी के वचनों की विवृत्ति कर और मन में समझबूझ कर अपनी पहिली बात का अनुमोदन करते हुए बोले ॥ ४ ॥

सुदुष्टो वाऽप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः ।
ईदृशं व्यसनं प्राप्तं भ्रातरं यः परित्यजेत् ॥ ५ ॥
को नाम स भवेत्तस्य यमेष न परित्यजेत् ।
वानराधिपतेर्वाक्यं श्रुत्वा सर्वानुदीक्ष्य च ॥ ६ ॥

यह दुष्ट हो या साधु ; किन्तु है तो राक्षस ही । इसने ऐसी विपत्ति में पड़े हुए अपने भाई का साथ क्यों छोड़ा ? फिर जब इसने सङ्कट के समय अपने सगे भाई को ही छोड़ दिया तब यह किसका सगा हो सकता है । वानरराज के इन वचनों को सुन, श्रीरामचन्द्र जी ने सब की ओर देखा ॥ ५ ॥ ६ ॥

ईषदुत्स्मयमानस्तु लक्ष्मणं पुण्यलक्षणम् ।
इति होवाच काकुत्स्थो वाक्यं सत्यपराक्रमः ॥ ७ ॥

तदनन्तर मुसक्या कर सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी ने शुभ लक्षणों से युक्त लक्ष्मण जी से यह कहा ॥ ७ ॥

अनधीत्य च शास्त्राणि वृद्धाननुपसेव्य च ।
न शक्यमीदृशं वक्तुं यदुवाच हरीश्वरः ॥ ८ ॥

वानरराज सुग्रीव ने जैसा कहा है वैसा कोई दूसरा बिना शास्त्रों को पढ़े और बिना वृद्धों की सेवा किये नहीं कह सकता ॥८॥

अस्ति सूक्ष्मतरं किंचिद्यदत्र प्रतिभाति मे ।
प्रत्यक्षं लौकिकं वाऽपि विद्यते सर्वराजसु ॥ ९ ॥

इसमें एक बड़ी सूक्ष्म विचार की बात मुझे जान पड़ती है। वह प्रत्यक्ष है, लोकसिद्ध है और सब राजाओं में भी पायी जाती है ॥ ६ ॥

अमित्रास्तत्कुलीनाश्च[1] प्रातिदेश्याश्च कीर्तितः ।
व्यसनेषु प्रहर्तारस्तस्मादयमिहागतः ॥ १० ॥

शत्रु दो प्रकार के हुआ करते हैं। एक तो अपनी जाति बिरादरी वाले, दूसरे आसपास के देशों में रहने वाले। ये दोनों ही प्रकार के शत्रु विपत्ति के समय आक्रमण करते हैं। अतः सम्भव है, यह विभीषण, रावण को सङ्कटापन्न देख उसका संहार कराने को यहाँ आया हो ॥ १० ॥

---

१ कुलीनाः—ज्ञातयः। (गो०)

अपापास्तत्कुलीनाश्च मानयन्ति स्वकान्हितान् ।
एष प्रायो नरेन्द्राणां शङ्कनीयस्तु शोभनः[1] ॥ ११ ॥

जाति वाले लोग कितने ही निर्दोष और धर्मात्मा हों, किन्तु समय पड़ने पर वे सदा अपना स्वार्थ साधने के लिये यत्नवान होते हैं। अतः जाति वाले भले ही गुणवान् हों, राजा को उनसे सदा सशङ्कित रहना चाहिये ॥ ११ ॥

यस्तु दोषस्त्वया प्रोक्तो ह्यादानेऽरिबलस्य च ।
तत्र ते कीर्तयिष्यामि यथाशास्त्रमिदं शृणु ॥ १२ ॥

शत्रुपक्ष को मिलाने में आप लोगों ने जो दोष बतलाये हैं, उनका उत्तर मैं नीतिशास्त्रसम्मत देता हूँ, उसे आप लोग सुनें ॥ १२ ॥

न वयं तत्कुलीनाश्च राज्यकाङ्क्षी च राक्षसः ।
पण्डिता हि भविष्यन्ति तस्माद्ग्राह्यो विभीषणः ॥१३॥

हम लोग उसके जाति बिरादरी वाले नहीं, जो वह हमको नाश कर हमारा राज्य लेने को आया हो। किन्तु अपने भाई का नाश करा और उसका राज्य लेने की लालसा से, हमारे पास विभीषण का आना सम्भव है। फिर विभीषण पण्डित भी है—अतएव मेरी समझ में तो उसको मिला लेना चाहिये ॥ १३ ॥

अव्यग्राश्च प्रहृष्टाश्च न भविष्यन्ति सङ्गताः ।
प्रणादश्च महानेष ततोऽस्य भयमागतम् ॥ १४ ॥

यह प्रसिद्ध है कि, भाई लोग आपस में मिल कर अनुकूलता पूर्वक और प्रसन्नमन से वास करते हैं, परन्तु इस समय जब युद्ध

---

१ शोभनो—गुणवानेष । (गो०)

का डंका बज रहा है, तब उनके मन में एक दूसरे की ओर भय उत्पन्न हुआ होगा ॥ १४ ॥

इति भेदं गमिष्यन्ति तस्माद्ग्राह्यो विभीषणः ।
न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः ॥ १५ ॥
मद्विधा वा पितुः पुत्राः सुहृदो वा भवद्विधाः ।
एवमुक्तस्तु रामेण सुग्रीवः सहलक्ष्मणः ॥ १६ ॥
उत्थायेदं महाप्राज्ञः प्रणतो वाक्यमब्रवीत् ।
रावणेन प्रणिहितं तमवेहि विभीषणम् ॥ १७ ॥

और इससे इनके मन में भेद हो जाना भी सम्भव है। अतः विभीषण को मिला लेना ठीक है। हे तात! सब भाई, भरत जैसे और सब पुत्र मेरे समान पिता के आज्ञाकारी और सब मित्र आप लोगों जैसे नहीं हुआ करते। जब श्रीरामचन्द्र जी ने इस प्रकार कहा, तब लक्ष्मण सहित बड़े बुद्धिमान सुग्रीव उठे और प्रणाम कर बोले—हे राम! यह विभीषण, रावण का भेजा हुआ यहाँ आया है ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

तस्याहं निग्रहं मन्ये क्षमं क्षमवतां वर ।
राक्षसो जिह्मया बुद्ध्या सन्दिष्टोऽयमिहागतः ॥ १८ ॥

हे सर्व सामर्थ्यवान्! मैं तो इसे दण्ड देना ही उचित समझता हूँ। यह रावण का सिखलाया हुआ कपटबुद्धि से यहाँ आया है ॥ १८ ॥

प्रहर्तुं त्वयि विश्वस्ते प्रच्छन्नो मयि वाऽनघ ।
लक्ष्मणे वा महाबाहो स वध्यः सचिवैः सह ॥ १९ ॥

हे अनघ ! जब यह हम लोगों का अपने ऊपर विश्वास जमा लेगा, तब अवसर पा छिपे छिपे आपके, अथवा लक्ष्मण के अथवा मेरे ऊपर प्रहार करेगा। अतः मंत्रियों सहित इसको मरवा डालना ही उचित है ॥ १९ ॥

रावणस्य नृशंसस्य भ्राता ह्येष विभीषणः ।
एवमुक्त्वा रघुश्रेष्ठं सुग्रीवो वाहिनीपतिः ॥ २० ॥
वाक्यज्ञो वाक्यकुशलं ततो मौनमुपागमत् ।
सुग्रीवस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा रामो विमृश्य च ॥ २१ ॥

यह उस घातक रावण का भाई है। वचन बोलने में चतुर कपिसेनापति सुग्रीव, इस प्रकार रघुश्रेष्ठ एवं वाक्यविशारद श्रीरामचन्द्र जी से वचन कह कर, चुप हो गये। सुग्रीव के वचनों को सुन और उन पर विचार कर श्रीरामचन्द्र जी ने ॥ २० ॥ २१ ॥

ततः शुभतरं वाक्यमुवाच हरिपुङ्गवम् ।
सुदुष्टो वाप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः ॥ २२ ॥
सूक्ष्ममप्यहितं कर्तुं ममाशक्तः कथञ्चन ।
पिशाचान्दानवान्यक्षान्पृथिव्यां चैव राक्षसान् ॥ २३ ॥

कपिश्रेष्ठ सुग्रीव से ये शुभ वचन कहे। यह राक्षस दुष्ट हो या साधु, वह मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकता। क्योंकि इस पृथिवी पर जितने पिशाच, दानव, यक्ष और राक्षस हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

अङ्गुल्यग्रेण तान्हन्यामिच्छन्हरिगणेश्वर ।
श्रूयते हि कपोतेन शत्रुः शरणमागतः ॥ २४ ॥

हे कपिराज ! मैं चाहूँ तो अंगुली के पोरुए से मार डाल सकता हूँ। मैंने सुना है कि, शरण में आये हुए शत्रु को किसी कबूतर ने ॥ २४ ॥

अर्चितश्च यथान्यायं स्वैश्च मांसैर्निमन्त्रितः ।
स हि तं प्रतिजग्राह भार्याहर्तारमागतम् ॥ २५ ॥

यथाविधि सत्कार कर उसे अपने शरीर का मांस खिलाया था। यह अतिथि एक बहेलिया था, जिसने उसकी कबूतरी को पकड़ रखा था ॥ २५ ॥

कपोतो वानरश्रेष्ठ किं पुनर्मद्विधो जनः ।
ऋषेः कण्वस्य पुत्रेण कण्डुना परमर्षिणा ॥ २६ ॥
शृणु गाथां पुरा गीतां धर्मिष्ठां सत्यवादिनीम् ।
बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम् ॥ २७ ॥
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परन्तप ।
आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणागतः ॥ २८ ॥
अरिः प्राणान्परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना ।
स चेद्भयाद्वा मोहाद्वा कामाद्वाऽपि न रक्षति ॥ २९ ॥
त्वया शक्त्या *यथान्यायं तत्पापं लोकगर्हितम् ।
विनष्टः †पश्यतस्तस्यारक्षिणः शरणागतः ॥ ३० ॥

जब कबूतर ने शरण में आये हुए शत्रु का सत्कार किया, तब मुझ जैसा जन शरण में आये हुए विभीषण का परित्याग

---

* पाठान्तरे—" यथासत्त्वं ।" † पाठान्तरे—" पश्यतो यस्यारक्षितुः ।"

क्यों कर सकता है? महर्षि कण्व के सत्यवादी एवं धर्मिष्ठ पुत्र कण्डु ऋषि ने प्राचीनकाल में जो बात कही है, उसे भी सुनो। हे परन्तप! हाथ जोड़े, गिड़गिड़ाते हुए और दीन भाव से शरण में आये हुए शत्रु को भी, दयाधर्म की रक्षा करने के लिये न मारना चाहिये। दुखी हो अथवा अहंकारी, परन्तु अन्य शत्रु के भय से विकल हो कर, यदि शत्रु भी अपने शरण में आवे, तो उत्तम पुरुष को उचित है कि, अपने प्राणों को हथेली पर रख कर भी उसकी रक्षा करे। जो भय से, प्रमाद से अथवा अन्य किसी वासना से, शक्ति रहने पर भी, ऐसे की यथावत् रक्षा नहीं करता, वह पापी और लोकनिन्दित है। यदि रक्षक के सामने शरणागत मनुष्य मर जाय ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

आदाय सुकृतं तस्य सर्वं गच्छेदरक्षितः।
एवं दोषो महानत्र प्रपन्नानामरक्षणे ॥ ३१ ॥

तो वह रक्षक के समस्त पुण्यों को ले अरक्षित शरणागत व्यक्ति चला जाता है। अतएव शरण में आये हुए की रक्षा न करने से बड़ा भारी पाप लगता है ॥ ३१ ॥

अस्वर्ग्यं चायशस्यं च बलवीर्यविनाशनम्।
करिष्यामि यथार्थं तु कण्डोर्वचनमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

शरणागत की रक्षा न करने से स्वर्गप्राप्ति नहीं होती, बड़ी बदनामी होती है और बल एवं वीर्य का नाश होता है। अतः मैं कण्डु ऋषि के वचन का यथार्थ रीत्यापालन करूँगा ॥ ३२ ॥

धर्मिष्ठं च यशस्यं च स्वर्ग्यं स्यात्तु फलोदये।
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ॥ ३३ ॥

क्योंकि कराडु का वचन, फल देने का समय उपस्थित होने पर पुराय का, यश का और स्वर्ग का देने वाला है। जो एक बार भी मेरे शरण में आ जाय और वाणी से कह दे कि, मैं तुम्हारा हूँ ॥ ३३ ॥

अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ।
आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया ॥ ३४ ॥

तो तत्काल उसको, वह कोई भी क्यों न हो, निर्भय कर देना मेरा व्रत है। हे कपिश्रेष्ठ ! तुम विभीषण को ले आओ। मैंने उसे अभय कर दिया ॥ ३४ ॥

विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम् ।
रामस्य तु वचः श्रुत्वा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः ॥ ३५ ॥

हे सुग्रीव ! वह विभीषण हो चाहे स्वयं रावण ही क्यों न हो। श्रीरामचन्द्र जी के ये वचन सुन कपिराज सुग्रीव ॥ ३५ ॥

प्रत्यभाषत काकुत्स्थं *सौहार्देनाभिचोदितः ।
किमत्र चित्रं धर्मज्ञ लोकनाथ सुखावह ॥ ३६ ॥

सौहार्दभाव से प्रेरित हो श्रीरामचन्द्र जी से बोले—हे सुखदाता लोकनाथ ! हे धर्मज्ञ ! आपके इस कथन में आश्चर्य की कौन सी बात है ॥ ३६ ॥

यत्त्वमार्य[1] प्रभाषेथाः [2]सत्त्ववान्सत्पथे स्थितः ।
मम चाप्यन्तरात्माऽयं शुद्धं वेत्ति विभीषणम् ।
अनुमानाच्च भावाच्च सर्वतः सुपरीक्षितः ॥ ३७ ॥

---

१ आर्य—समीचीनं। (गो०) २ सत्त्ववान्—प्रशस्त अध्यवसायवान्। (गो०) * पाठान्तरे—" सौहार्देन प्रचोदितः ।।" अथवा " सौहार्देनाभिपूरितः ।"

आप जैसे प्रशस्त अध्यवसायवान्, धर्मसंस्थापनार्थ भूतल पर अवतीर्ण होने वाले को छोड़ और कौन इस तरह की उदारता दिखला सकता है। अनुमान से और भाव से तथा सब प्रकार से भलीभाँति परीक्षा लेकर मेरा अन्तःकरण भी विभीषण को अब शुद्ध ही समझ रहा है ॥ ३७ ॥

तस्मात्क्षिप्रं सहास्माभिस्तुल्यो भवतु राघव ।
विभीषणो महाप्राज्ञः सखित्वं चाभ्युपैतु नः ॥ ३८ ॥

अतएव हे राघव! महाबुद्धिमान् विभीषण शीघ्र ही हमारे समान हो और हम लोगों के साथ उसकी मैत्री हो ॥ ३८ ॥

ततस्तु सुग्रीववचो निशम्य
तद्धरीश्वरेणाभिहितं नरेश्वरः ।
विभीषणेनाशु जगाम सङ्गमं
पतत्रिराजेन यथा पुरन्दरः ॥ ३९ ॥

इति अष्टादशः सर्गः ॥

कपिराज के कथनानुसार श्रीरामचन्द्र जी ने विभीषण के साथ तुरन्त मैत्री कर ली, जैसे इन्द्र ने गरुड़ जी के साथ मैत्री की थी ॥३९॥

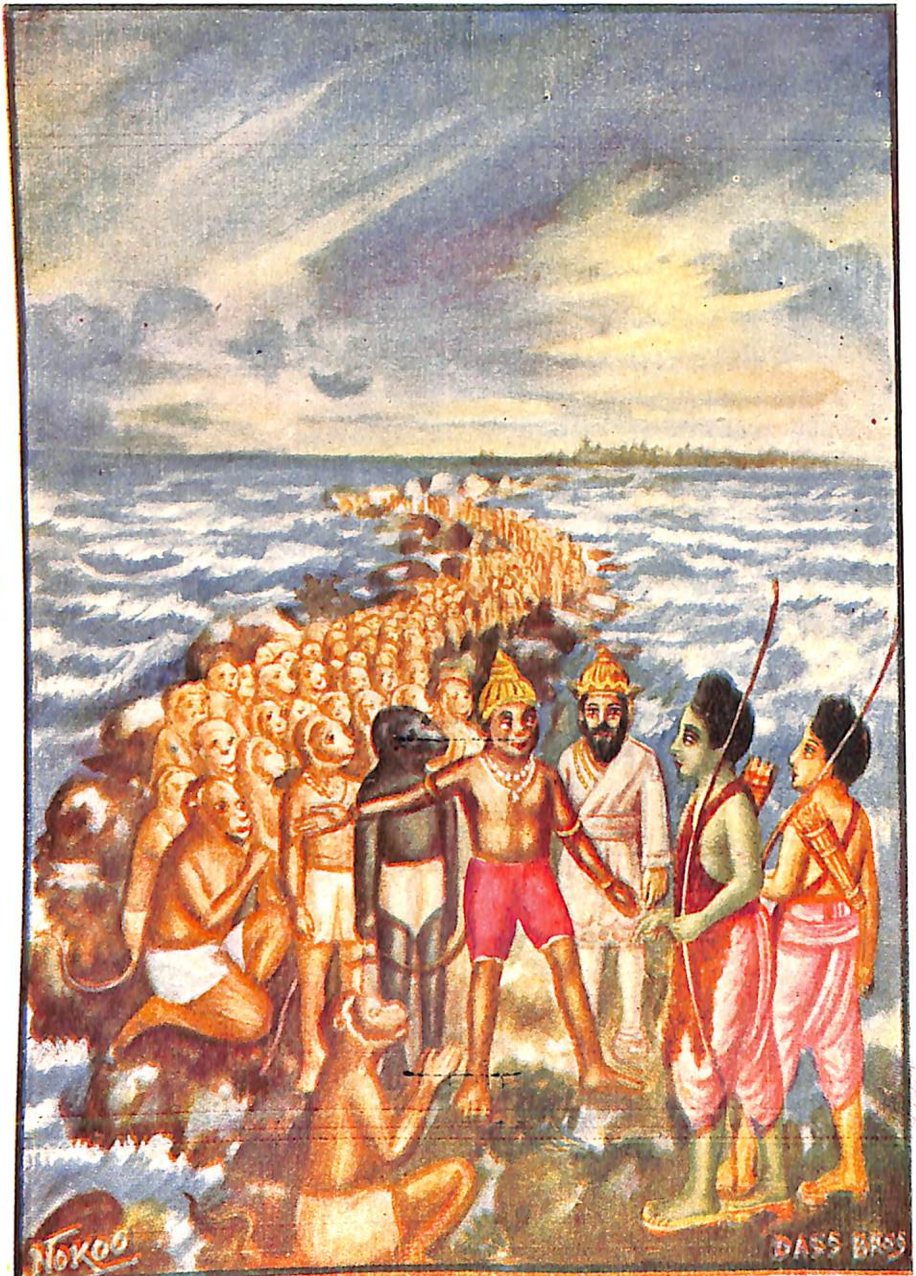
युद्धकाण्ड का अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

एकोनविंशः सर्गः

—*—

राघवेणाभये दत्ते सन्नतो रावणानुजः ।
विभीषणो महाप्राज्ञो भूमिं समवलोकयन् ॥ १ ॥



श्रीरामचन्द्र जी से विभीषण की भेंट

रघुनन्दन श्रीरामचन्द्र जी ने जब इस तरह विभीषण को अभयदान दिया ; तब महाबुद्धिमान रावण के छोटे भाई विभीषण पृथिवी की ओर देखते हुए ॥ १ ॥

खात्पपातावनीं हृष्टो भक्तैरनुचरैः सह ।
स तु रामस्य धर्मात्मा निपपात विभीषणः ॥ २ ॥

आकाश से अपने भक्तिभाव रखने वाले चार मंत्रियों को लिये हुए, आनन्द युक्त हो पृथिवी पर आये और धर्मात्मा विभीषण श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में गिर पड़े ॥ २ ॥

पादयोः शरणान्वेषी चतुर्भिः सह राक्षसैः ।
अब्रवीच्च तदा रामं वाक्यं तत्र विभीषणः ॥ ३ ॥

चारों राक्षसों सहित शरणान्वेषी विभीषण श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में गिर, श्रीरामचन्द्र जी से बोले ॥ ३ ॥

धर्मयुक्तं च युक्तं च साम्प्रतं सम्प्रहर्षणम् ।
अनुजो रावणस्याहं तेन चास्म्यवमानितः ॥ ४ ॥

विभीषण ने युक्तियुक्त, धर्मसङ्गत और तत्काल मन को अत्यन्त प्रसन्न करने वाले वचन श्रीरामचन्द्र जी से कहे । वे बोले—महाराज मैं रावण का छोटा भाई हूँ । उसने मेरा अनादर किया है ॥ ४ ॥

भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं *शरणं गतः ।
परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि वै ॥ ५ ॥

आप प्राणीमात्र के रक्षक हैं । अतः मैं लङ्का में मित्रों को और समस्त धन सम्पत्ति को त्याग कर, आपके शरण में आया हूँ ॥ ५ ॥

---

* पाठान्तरे—" शरणागतः ।"

भवद्गतं मे राज्यं च जीवितं च सुखानि च ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामो वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥

अब तो मेरा राजपाट जीवन और सुखादि समस्त ही आपके अधीन है। विभीषण के ये वचन सुन श्रीरामचन्द्र जी ने कहा ॥ ६ ॥

वचसा सान्त्वयित्वैनं लोचनाभ्यां पिबन्निव ।
आख्याहि मम तत्त्वेन राक्षसानां बलाबलम् ॥ ७ ॥

श्रीरामचन्द्र जी ने वचनों द्वारा विभीषण को धीरज बँधा बड़े आदर के साथ उनको देखा। तदनन्तर वे बोले—हे विभीषण ! अब तुम मुझे लङ्कावासी राक्षसों के बलाबल का ठीक ठीक वृत्तान्त सुनाओ ॥ ७ ॥

एवमुक्तं तदा रक्षो रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
रावणस्य बलं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ८ ॥

अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्र जी के इस प्रकार कहने पर, विभीषण ने रावण के सैनिक बल का वर्णन विस्तारपूर्वक करना आरम्भ किया ॥ ८ ॥

अवध्यः सर्वभूतानां *देवदानवरक्षसाम् ।
राजपुत्र दशग्रीवो वरदानात्स्वयंभुवः ॥ ९ ॥

हे राजकुमार ! दशग्रीव रावण ब्रह्मा जी के वरदान से देवता दानव राक्षसादि समस्त प्राणियों से अवध्य है ॥ ९ ॥

रावणानन्तरो भ्राता मम ज्येष्ठश्च वीर्यवान् ।
कुम्भकर्णो महातेजाः शक्रप्रतिबलो युधि ॥ १० ॥

* पाठान्तरं—"गन्धर्वासुररक्षसाम् ।" अथवा "गन्धर्वोरगपक्षिणां ।"

रावण से छोटा और मुझसे बड़ा मेरा मझला भाई कुम्भकर्ण बड़ा बलवान और तेजस्वी है और युद्ध में इन्द्र का सामना कर सकता है ॥ १० ॥

राम सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो यदि वा श्रुतः ।
कैलासे येन संग्रामे मणिभद्रः पराजितः ॥ ११ ॥

हे राम ! कदाचित् आपने रावण के सेनापति प्रहस्त का नाम सुना हो। इसने कैलास पर्वत पर युद्ध में मणिभद्र को पराजित किया था ॥ ११ ॥

बद्धगोधाङ्गुलित्राणस्त्ववध्यकवचो युधि ।
धनुरादाय यस्तिष्ठन्नदृश्यो भवतीन्द्रजित् ॥ १२ ॥

गोह के चमड़े के दस्ताने पहन, कवच धारण कर और धनुष लेकर संग्राम करते करते अदृश्य हो जाने वाला इन्द्रजीत मेघनाद है ॥ १२ ॥

संग्रामे सुमहद्व्यूहे तर्पयित्वा हुताशनम् ।
अन्तर्धानगतः शत्रूनिन्द्रजिद्धन्ति राघव ॥ १३ ॥

हे राघव ! ये बड़ी बड़ी लड़ाइयों में जहाँ बड़े बड़े व्यूहों की रचना हुआ करती है, हवन द्वारा अग्निदेव को तृप्त कर, अन्तर्द्धान हो शत्रुओं को मारा करता है ॥ १३ ॥

महोदरमहापार्श्वौ राक्षसश्चाप्यकम्पनः ।
अनीकस्थास्तु तस्यैते लोकपालसमा युधि ॥ १४ ॥

इनके अतिरिक्त रावण के सेनापति महोदर, महापार्श्व, अकम्पन नामक राक्षस ऐसे हैं, जो युद्ध में लोकपालों जैसा पराक्रम प्रदर्शित किया करते हैं ॥ १४ ॥

दशकोटिसहस्राणि रक्षसां कामरूपिणाम् ।
मांसशोणितभक्षाणां लङ्कापुरनिवासिनाम् ॥ १५ ॥

लङ्कापुरी में दस हज़ार करोड़ राक्षस बसते हैं। ये कामरूपी राक्षस माँस खाते और रक्त पिया करते हैं ॥ १५ ॥

*स तैः परिवृतो राजा लोकपालानयोधयत् ।
सह देवैस्तु ते भग्ना रावणेन महात्मना ॥ १६ ॥

उन सब को साथ ले धैर्यवान् रावण ने लोकपालों से युद्ध किया था और देवताओं सहित उनको परास्त किया था ॥ १६ ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा रामो दृढपराक्रमः ।
अन्वीक्ष्य मनसा सर्वमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥

दृढ़पराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी, विभीषण की ये बातें सुन और मन ही मन इन सब बातों पर विचार कर, कहने लगे ॥ १७ ॥

यानि [1]कर्मापदानानि रावणस्य विभीषण ।
आख्यातानि च तत्त्वेन ह्यवगच्छामि तान्यहम् ॥ १८ ॥

हे विभीषण ! रावण के जिन जिन कर्मों का तुमने बखान किया, वे सब मुझको यथार्थरीत्या विदित हैं ॥ १८ ॥

अहं हत्वा दशग्रीवं सप्रहस्तं †सहानुजम् ।
राजानं त्वां करिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ १९ ॥

---

१ कर्मापदानानि—" अपदानं कर्मवृत्तं " इत्यमरः । (गो०)

* पाठान्तरे—" स तैस्तु सहितो ।" † पाठान्तरे—" सबान्धवम् ।" वा " सहात्मजं ।"

मैं सत्य सत्य तुमसे कहता हूँ कि, मैं प्रहस्त और कुम्भकर्ण सहित दशग्रीव रावण को मार कर, तुमको लङ्का का राजा बनाऊँगा ॥ १६ ॥

रसातलं वा प्रविशेत्पातालं वापि रावणः ।
पितामहसकाशं वा न मे जीवन्विमोक्ष्यते ॥ २० ॥

रावण प्राण बचाने को चाहे रसातल में जाय, चाहे पाताल में अथवा ब्रह्मा जी के पास ही क्यों न भाग कर चला जाय, पर वह अब जीता नहीं बच सकता ॥ २० ॥

अहत्वा रावणं संख्ये सपुत्रबलबान्धवम् ।
अयोध्यां न प्रवेक्ष्यामि त्रिभिस्तैर्भ्रातृभिः शपे ॥ २१ ॥

मैं अपने तीनों भाइयों की शपथ खाकर कहता हूँ कि, युद्ध में पुत्र, सेना और भाई बन्दों सहित रावण को मारे बिना, मैं अयोध्या में पैर न रक्खूँगा ॥ २१ ॥

श्रुत्वा तु वचनं तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
शिरसाऽऽवन्द्य धर्मात्मा वक्तुमेवोपचक्रमे ॥ २२ ॥

अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्र जी के ये वचन सुन और सीस झुका प्रणाम कर, धर्मात्मा विभीषण कहने लगे ॥ २२ ॥

राक्षसानां वधे साह्यं लङ्कायाश्च प्रधर्षणे ।
करिष्यामि [1]यथाप्राणं प्रवेक्ष्यामि च वाहिनीम् ॥२३॥

हे राघव ! रावण की आक्रमणकारी सेना के आते ही, मैं उसमें घुस राक्षस सैनिकों का वध करने में तथा लङ्का के

---

१ यथाप्राण—यथाबल । (गो०)

उजाड़ने में, प्राणपण से अथवा यथाशक्ति आपकी सहायता करूँगा ॥ २३ ॥

इति ब्रुवाणं रामस्तु परिष्वज्य विभीषणम् ।
अब्रवील्लक्ष्मणं प्रीतः समुद्राजलमानय ॥ २४ ॥

इस प्रकार वचन कहते हुए विभीषण को श्रीरामचन्द्र जी ने अपनी छाती से लगा लिया और लक्ष्मण से कहा कि, जाओ समुद्र से जल ले आओ। मैं विभीषण से प्रसन्न हूँ ॥ २४ ॥

तेन चेमं महाप्राज्ञमभिषिञ्च विभीषणम् ।
राजानं रक्षसां क्षिप्रं प्रसन्ने मयि [1]मानद ॥ २५ ॥

समुद्रजल से इन महाबुद्धिमान् विभीषण को शीघ्र ही राक्षसों के राजसिंहासन पर अभिषिक्त करने का मेरा विचार है। मैं इनके व्यवहार से सन्तुष्ट हूँ और इनका बहुमान करूँगा ॥ २५ ॥

एवमुक्तस्तु सौमित्रिरभ्यषिञ्चद्विभीषणम् ।
मध्ये वानरमुख्यानां राजानं रामशासनात् ॥ २६ ॥

जब श्रीरामचन्द्र जी ने इस प्रकार आज्ञा दी, तब लक्ष्मण जी ने उस आज्ञा के अनुसार मुख्य मुख्य वानरों की उपस्थिति में विभीषण का राज्याभिषेक किया ॥ २६ ॥

तं प्रसादं तु रामस्य दृष्ट्वा सद्यः प्लवङ्गमाः ।
प्रचुक्रुशुर्महात्मानं साधु साध्विति चाब्रुवन् ॥ २७ ॥

श्रीरामचन्द्र जी की प्रसन्नता का इस प्रकार का तुरन्त फल मिला हुआ देख, वानरों ने हर्षनाद किया और वे "साधु साधु" कहने लगे ॥ २७ ॥

---

१ मानद—बहुमानप्रद। मत्प्रसादे सति फलप्रदस्त्वमिति भावः। (गो०)

अब्रवीच्च हनूमांश्च सुग्रीवश्च विभीषणम् ।
कथं सागरमक्षोभ्यं तराम वरुणालयम् ॥ २८ ॥
सैन्यैः परिवृताः सर्वे वानराणां महौजसाम् ।
उपायं नाधिगच्छामो यथा नदनदीपतिम् ॥ २९ ॥
तराम तरसा सर्वे ससैन्या वरुणालयम् ।
एवमुक्तस्तु धर्मज्ञः प्रत्युवाच विभीषणः ॥ ३० ॥

सुग्रीव और हनुमान ने विभीषण से कहा—मित्र ! अब यह तो बतलाओ कि, हम लोग इस अक्षोभ्य वरुणालय अर्थात् समुद्र के पार बड़े बड़े पराक्रमी वानरों की समस्त सेना सहित क्यों कर हों ? हमारी समझ में तो ऐसा कोई उपाय नहीं आ रहा जिससे हम समस्त सेना सहित समुद्र पार हो सकें। जब दोनों वानर-श्रेष्ठों ने इस प्रकार कहा, तब धर्मज्ञ विभीषण ने उत्तर देते हुए कहा ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

समुद्रं राघवो राजा शरणं गन्तुमर्हति ।
खानितः सागरेणायमप्रमेयो महोदधिः ॥ ३१ ॥

महाराज श्रीरामचन्द्र, समुद्र के शरण में जाँय—यही उपाय है। श्रीरामचन्द्र जी के पूर्वपुरुष महाराज सगर द्वारा खुदवाये जाने के कारण ही इसका नाम सागर पड़ा है, सो यह अथाह जल वाला ॥ ३१ ॥

कर्तुमर्हति रामस्य *ज्ञातेः कार्यं महोदधिः ।
एवं विभीषणेनोक्तो राक्षसेन विपश्चिता ॥ ३२ ॥

* पाठान्तरे—" ज्ञात्वा कार्यं महामतिः ।"

समुद्र, अपने कुटुम्ब वाले का काम अवश्य करेगा। जब पण्डित राक्षस विभीषण ने इस प्रकार कहा ॥ ३२ ॥

आजगामाथ सुग्रीवो यत्र रामः सलक्ष्मणः ।
ततश्चाख्यातुमारेभे विभीषणवचः शुभम् ॥ ३३ ॥

तब सुग्रीव वहाँ गये जहाँ लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी थे और उन्होंने विभीषण के कहे हुए सुन्दर वचन कहे ॥ ३३ ॥

सुग्रीवो विपुलग्रीवः सागरस्योपवेशनम् ।
प्रकृत्या धर्मशीलस्य राघवस्याप्यरोचत ॥ ३४ ॥

मोटी गर्दनवाले सुग्रीव ने श्रीरामचन्द्र जी से समुद्र की उपासना करने को कहा। धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी को भी यह बात अच्छी जान पड़ी ॥ ३४ ॥

स लक्ष्मणं महातेजाः सुग्रीवं च हरीश्वरम् ।
[1]सत्क्रियार्थं [2]क्रियादक्षः *स्मितपूर्वमभाषत ॥ ३५ ॥

महातेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी ने स्वयं वह कार्य करने की शक्ति रखते हुए भी, विभीषण का बहुमान करने के लिये, मुसक्या कर लक्ष्मण और सुग्रीव से कहा ॥ ३५ ॥

विभीषणस्य मन्त्रोऽयं मम लक्ष्मण रोचते ।
ब्रूहि त्वं सहसुग्रीवस्तवापि यदि रोचते ॥ ३६ ॥
सुग्रीवः पण्डितो नित्यं भवान्मन्त्रविचक्षणः ।
उभाभ्यां सम्प्रधार्यार्थं रोचते यत्तदुच्यताम् ॥ ३७ ॥

---

१ सत्क्रियार्थं—विभीषणमंत्रबहुमानार्थं। (गो०) २ क्रियादक्षः—स्वयं कार्यकरणसमर्थोपि। (गो०) * पाठान्तरे—"स्मितपूर्वमुवाच ह।"

हे लक्ष्मण ! विभीषण की यह सलाह मैं भी पसन्द करता हूँ। सुग्रीव पण्डित हैं ही और तुम भो सम्मति देने में प्रवीण हो—अतः यदि सुग्रीव को और तुम्हें भी यह राय पसन्द हो, तो बतलाओ। तुम दोनों को जो अच्छा लगे सो विचार कर बतलाओ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

एवमुक्तौ तु तौ वीरावुभौ सुग्रीवलक्ष्मणौ ।
समुदाचारसंयुक्तमिदं वचनमूचतुः ॥ ३८ ॥

जब श्रीरामचन्द्र जी ने उन दोनों वीर सुग्रीव और लक्ष्मण से इस प्रकार पूँछा, तब हाथ जोड़ कर वे वचन बोले ॥ ३८ ॥

किमर्थं नौ नरव्याघ्र न रोचिष्यति राघव ।
विभीषणेन यच्चोक्तमस्मिन्काले सुखावहम् ॥ ३९ ॥

हे नरव्याघ्र ! विभीषण ने इस समय जो सुखसाध्य उपाय बतलाया है वह हम लोगों को क्यों न अच्छा लगेगा ?॥ ३९ ॥

अबद्ध्वा सागरे सेतुं घोरेऽस्मिन्वरुणालये ।
लङ्का नासादितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ ४० ॥

क्योंकि इस भयानक समुद्र पर पुल बाँधे बिना इन्द्र सहित सुर और असुर भी लङ्का में नहीं पहुँच सकते ॥ ४० ॥

विभीषणस्य [1]शूरस्य यथार्थं क्रियतां वचः ।
अलं कालात्ययं कृत्वा समुद्रोऽयं नियुज्यताम् ।
यथा सैन्येन गच्छामः पुरीं रावणपालिताम् ॥ ४१ ॥

---

१ शूरस्य—मंत्रशूरस्य । (गो०)

अब कुछ भी विलम्ब न कर शीघ्र मंत्रशूर विभीषण के कथनानुसार आप समुद्र के शरण में जाइये अथवा समुद्र की प्रार्थना करने में लग जाइये। जिससे हम सब लोग सेना सहित रावण द्वारा पालित लङ्का में पहुँच जाँय ॥ ४१ ॥

एवमुक्तः कुशास्तीर्णे तीरे नदनदीपतेः ।
संविवेश तदा रामो वेद्यामिव हुताशनः ॥ ४२ ॥

इति एकोनविंशः सर्गः ॥

इस प्रकार कहे जाने पर श्रीरामचन्द्र जी वेदी के बीच में स्थापित अग्नि की तरह समुद्र के तट पर कुश बिछा कर बैठ गये ॥ ४२ ॥

युद्धकाण्ड का उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—※—

विंशः सर्गः

—※—

ततो निविष्टां ध्वजिनीं सुग्रीवेणाभिपालिताम् ।
ददर्श राक्षसोऽभ्येत्य शार्दूलो नाम वीर्यवान् ॥ १ ॥

समुद्र तट पर टिकी हुई सुग्रीव की वानरी सेना को देखने के लिये या उसका भेद लेने के लिये, एक बलवान् राक्षस, जिसका नाम शार्दूल था, आया ॥ १ ॥

चारो राक्षसराजस्य रावणस्य दुरात्मनः ।
तां दृष्ट्वा सर्वतो व्यग्रं प्रतिगम्य स राक्षसः ॥ २ ॥

यह शार्दूल दुष्ट राक्षसराज रावण का जासूस था और बड़ी सावधानी से यहाँ का सारा वृत्तान्त अपनी आँखों से देख, लौट गया ॥ २ ॥

प्रविश्य लङ्कां वेगेन रावणं वाक्यमब्रवीत् ।
एष वानररक्षौघो लङ्कां समभिवर्तते ॥ ३ ॥

लङ्का में बड़ी शीघ्रता से पहुँच उसने रावण से कहा—हे राजन्! वानरों और भालुओं के दल लङ्का के समीप आ पहुँचे हैं ॥ ३ ॥

अगाधश्चाप्रमेयश्च द्वितीय इव सागरः ।
पुत्रौ दशरथस्येमौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४ ॥

यह भालुओं और वानरों का दल, दुष्प्रवेश्य, और असंख्य और दूसरे समुद्र जैसा जान पड़ता है। दशरथ के पुत्र दोनों भाई राम और लक्ष्मण ॥ ४ ॥

उत्तमायुधसम्पन्नौ सीतायाः पदमागतौ ।
एतौ सागरमासाद्य सन्निविष्टौ महाद्युती ॥ ५ ॥

उत्तम आयुधों से सुसज्जित सीता का उद्धार करने के लिये आये हुए हैं। ये दोनों महाद्युतिमान् समुद्र के तट पर ठहरे हुए हैं ॥ ५ ॥

बलमाकाशमावृत्य[1] सर्वतो दशयोजनम् ।
तत्त्वभूतं महाराज क्षिप्रं वेदितुमर्हसि ॥ ६ ॥

इनकी सेना दस योजन के घेरे में ठहरी हुई है। मैंने सरासरी में जो कुछ देखा सो निवेदन किया—आप अब ठीक ठीक वृत्तान्त मँगवा लें ॥ ६ ॥

---

१ आकाशं—अवकाशं। (गो०)

तव दूता महाराज क्षिप्रमर्हन्त्यवेक्षितुम् ।
[1]उपप्रदानं सान्त्वं वा भेदो वात्र प्रयुज्यताम् ॥ ७ ॥

हे महाराज ! आपके दूत तुरन्त ही यह जान आवें कि, शत्रु को पराजित करने के लिये, साम, या भेद अथवा जानकी का देना, इनमें से कौन सा उपाय करना उचित है ॥ ७ ॥

शार्दूलस्य वचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
उवाच सहसा व्यग्रः सम्प्रधार्यार्थमात्मनः ।
शुकं नाम तदा रक्षो वाक्यमर्थविदां वरम् ॥ ८ ॥

शार्दूल के ये वचन सुन, राक्षसेश्वर रावण सहसा व्यग्र हो उठा। फिर भलीभाँति सोच बिचार कर, शुक नामक कार्यपटु राक्षस से बोला ॥ ८ ॥

सुग्रीवं ब्रूहि गत्वा त्वं राजानं वचनान्मम ।
यथा सन्देशमक्लीवं[2] श्लक्ष्णया परया[3] गिरा ॥ ९ ॥

हे शुक ! तू वानरराज सुग्रीव के समीप जा मेरी ओर से कठोरता रहित, सुनने योग्यवाणी से किन्तु निर्भीक हो, यह सन्देशा कहना ॥ ९ ॥

त्वं वै महाराज कुलप्रसूतो
महाबलश्चर्क्षरजःसुतश्च ।
न कश्चिदर्थस्तव नास्त्यनर्थः
तथा हि मे भ्रातृसमो हरीश ॥ १० ॥

---

१ उपप्रदानं—सीतायाः । (रा०) २ अक्लीवं—सधाष्टर्यमित्यर्थः । (गो०)
३ परया—श्राव्यया । (गो०)

महाराज ! आप कुलीन और महाबलवान् हैं। आप ऋक्षराज के पुत्र हैं। अतः आपको मेरे साथ निष्कारण वैर करना उचित नहीं। श्रीरामचन्द्र जी की सहायता करने से आपको कुछ लाभ नहीं होगा और यदि उनकी सहायता न करोगे तो तुम्हारी कुछ हानि भी नहीं होगी। फिर तुम ऋक्षराज के पुत्र और ब्रह्मा के पौत्र होने के कारण मेरे भाई के तुल्य हो ॥ १० ॥

अहं यद्यहरं भार्यां राजपुत्रस्य [1]धीमतः ।
किं तत्र तव सुग्रीव किष्किन्धां प्रति गम्यताम् ॥११॥

हे बुद्धिमान् सुग्रीव ! यदि मैं राजकुमार राम की स्त्री हर लाया तो इससे तुमको क्या ? अतः तुम अपनी राजधानी किष्किन्धा को लौट जाओ ॥ ११ ॥

न हीयं हरिभिर्लङ्का शक्या प्राप्तुं कथञ्चन ।
देवैरपि सगन्धर्वैः किं पुनर्नरवानरैः ॥ १२ ॥

क्योंकि जब इस लङ्का को देवता और गन्धर्व ही नहीं जीत सकते, तब मनुष्यों और वानरों की तो बिसात ही क्या है ॥ १२ ॥

स तथा राक्षसेन्द्रेण सन्दिष्टो रजनीचरः ।
शुको विहङ्गमो भूत्वा तूर्णमाप्लुत्य चाम्बरम् ॥ १३ ॥

इस प्रकार रावण की आज्ञा पा कर, राक्षस शुक, पक्षी का रूप धारण कर, तुरन्त आकाश में उड़ा ॥ १३ ॥

स गत्वा दूरमध्वानमुपर्युपरि सागरम् ।
संस्थितो ह्यम्बरे वाक्यं सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ १४ ॥

---

१ धीमतः—इति सुग्रीवस्य विशेषणं (गो०)

समुद्र के ऊपर ऊपर बहुत दूर तक आकाश में उड़ और वानरों को सेना के समीप पहुँच आकाश में खड़े ही खड़े शुक ने सुग्रीव से ॥ १४ ॥

सर्वमुक्तं यथादिष्टं रावणेन दुरात्मना ।
तं प्रापयन्तं वचनं तूर्णमाप्लुत्य वानराः ॥ १५ ॥
प्रापद्यन्त दिवं क्षिप्रं लोप्तुं हन्तुं च मुष्टिभिः ।
स तैः प्लवङ्गैः प्रसभं निगृहीतो निशाचरः ॥ १६ ॥
गगनाद्भूतले चाशु परिगृह्य निपातितः ।
वानरैः पीड्यमानस्तु शुको वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥

वे सब बातें कहीं, जो दुरात्मा रावण ने कहलायी थीं। राक्षस शुक इस प्रकार रावण का सन्देसा सुना रहा था कि, वानरों ने उछल कर उसे पकड़ लिया और वे उसे घूँसों से मारने लगे। फिर बाँधकर वे उसे नीचे ले आये। जब वानरों ने शुक को बहुत मारा, तब उसने कहा ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

न दूतान्घ्नन्ति काकुत्स्थ वार्यन्तां साधु वानराः ।
यस्तु हित्वा मतं भर्तुः स्वमतं सम्प्रभाषते ॥ १८ ॥

हे साधु! हे काकुत्स्थ! दूत नहीं मारे जाते। अतः इन वानरों को रोकिये। जो दूत अपने मालिक का सन्देसा न कह कर, अपना मत प्रकाशित करता है ॥ १८ ॥

अनुक्तवादी दूतः सन्स दूतो वधमर्हति ।
शुकस्य वचनं श्रुत्वा रामस्तु परिदेवितम् ॥ १९ ॥

वह दूत अनुक्तवादी कहलाता है और वही मार डालने योग्य है। श्रीरामचन्द्र जी ने शुक के ये वचन और गिड़गिड़ाना सुन ॥ १६ ॥

उवाच मा वधिष्ठेति घ्नतः शाखामृगर्षभान् ।
स च पत्रलघुर्भूत्वा हरिभिर्दर्शिते भये ।
अन्तरिक्षस्थितो भूत्वा पुनर्वचनमब्रवीत् ॥ २० ॥

उन मार डालने के लिये उद्यत वानरयूथपतियों से कहा, तुम लोग दूत के प्राण मत लो। तब राक्षस शुक वानरों के भय से भीत हो और छोटा रूप धारण कर, आकाश में खड़े खड़े पुनः कहने लगा ॥ २० ॥

सुग्रीव सत्त्वसम्पन्न महाबलपराक्रम ।
किं मया खलु वक्तव्यो रावणो लोकरावणः ॥ २१ ॥

हे महाबलवान्, पराक्रमी एवं सत्त्वसम्पन्न सुग्रीव ! लोकों को रुलानेवाले रावण के पास जाकर मैं क्या कहूँ ? ॥ २१ ॥

स एवमुक्तः प्लवगाधिपस्तदा
प्लवङ्गमानामृषभो महाबलः ।
उवाच वाक्यं रजनीचरस्य
चारं शुकं दीनमदीनसत्त्वः ॥ २२ ॥

जब शुक ने कपिराज से इस प्रकार कहा, तब महाबली एवं अदीन कपिश्रेष्ठ सुग्रीव ने रावण से कहने के लिये दीनता को प्राप्त राक्षसदूत शुक से यह कहा ॥ २२ ॥

न मेऽसि मित्रं न तथानुकम्प्यो
न चोपकर्ताऽसि न मे प्रियोऽसि ।
अरिश्च रामस्य सहानुबन्धः
स मेऽसि वालीव वधार्ह वध्यः ॥ २३ ॥

कि, तुम मेरी ओर से रावण से यह कह देना कि, न तो तुम मेरे मित्र हो, न तुम दयापात्र हो, न तुम मेरे उपकारकर्ता हो और न तुम मेरे प्रिय ही हो। अतः तुम मुझे अपने भाई के तुल्य क्यों समझते हो? प्रत्युत तुम तो श्रीरामचन्द्र जी के शत्रु होने के कारण मेरे शत्रु हो और सपरिवार, वाली की तरह मार डालने के योग्य हो ॥ २३ ॥

निहन्म्यहं त्वां ससुतं सबन्धुं
सज्ञातिवर्गं रजनीचरेश।
लङ्कां च सर्वां महता बलेन
क्षिप्रं करिष्यामि समेत्य भस्म ॥ २४ ॥

हे रजनीचरेश! मैं तुमको पुत्र, बन्धु और कुटुम्बियों सहित मारूँगा। मैं बड़ी भारी सेना साथ ले कर आ रहा हूँ और शीघ्र ही तुम्हारी समस्त लङ्का को भस्म कर, छार छार कर डालूँगा ॥२४॥

न मोक्ष्यसे रावण राघवस्य
सुरैः सहेन्द्रैरपि मूढ गुप्तः।
अन्तर्हितः सूर्यपथं गतो वा
नभो न पातालमनुप्रविष्टः ॥ २५ ॥

हे मूढ़ रावण! तू श्रीरामचन्द्र से बच न सकेगा। भले ही इन्द्र सहित समस्त देवता तेरी रक्षा के लिये कटिबद्ध हो जाँय, अथवा तू छिप जा अथवा तू सूर्यमार्ग में चला जा अथवा आकाश या पाताल ही में घुस जा ॥ २५ ॥

तस्य ते त्रिषु लोकेषु न पिशाचं न राक्षसम्।
त्रातारमनुपश्यामि न गन्धर्वं न चासुरम् ॥ २६ ॥

मुझे तो तीनों लोकों में ऐसा कोई भी पिशाच, राक्षस, गन्धर्व या दैत्य नहीं देख पड़ता, जो तुमको बचा सके ॥ २६ ॥

अवधीर्यज्जराद्वृद्धं गृध्रराजानमक्षमम् ।
किं नु ते रामसान्निध्ये सकाशे लक्ष्मणस्य वा ॥२७॥

तूने उस बूढ़े जर्जर गृद्धराज जटायु को मार डाला सो अपने को बलवान समझ बल के घमण्ड में मत भूलना। यदि तुझे बलवान् होने का दावा था, तो तूने श्रीरामचन्द्र या लक्ष्मण के सामने सीता क्यों न हरी? ॥ २७ ॥

हृता सीता विशालाक्षी यां त्वं गृह्य न बुध्यसे ।
महाबलं महाप्राज्ञं दुर्धर्षममरैरपि ॥ २८ ॥

न बुध्यसे रघुश्रेष्ठं यस्ते प्राणान्हरिष्यति ।
ततोऽब्रवीद्वालिसुतस्त्वङ्गदो हरिसत्तमः ॥ २९ ॥

तू विशालाक्षी सीता को हरते समय यह न समझा कि, बड़े बली, धीरजधारी और देवताओं से भी अजेय रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र तेरे प्राण हर लेंगे। तदनन्तर कपिश्रेष्ठ वालिसुत अङ्गद ने कहा ॥ २८॥ २९॥

नायं दूतो महाराज चारिकः प्रतिभाति मे ।
तुलितं हि बलं सर्वमनेनात्रैव तिष्ठता ॥ ३० ॥

महाराज यह दूत नहीं, बल्कि जासूस (भेदिया) है। इसने यहाँ इतनी देर ठहर कर, हमारी समस्त सेना और व्यूह का रहस्य ताड़ लिया है ॥ ३० ॥

गृह्यतां मा गमल्लङ्कामेतद्धि मम रोचते ।
ततो राज्ञा समादिष्टाः समुत्प्लुत्य वलीमुखाः ॥ ३१ ॥

मुझको तो यह अच्छा जान पड़ता है कि, यह पकड़ लिया जाय और लङ्का न जाने पावे। यह सुन, कपिराज की आज्ञा से वानरों ने उछल कर, ॥ ३१ ॥

जगृहुस्तं बबन्धुश्च विलपन्तमनाथवत् ।
शुकस्तु वानरैश्चण्डैस्तत्र तैः सम्प्रपीडितः ॥ ३२ ॥

उसे पकड़ कर बाँध लिया। तब वह अनाथ की तरह विलाप करने लगा। जब राक्षस शुक को उन प्रचण्ड पराक्रमी वानरों ने बहुत सताया ॥ ३२ ॥

व्याक्रोशत महात्मानं रामं दशरथात्मजम् ।
लुप्येते मे बलात्पक्षौ भिद्येते च तथाऽक्षिणी ॥ ३३ ॥

तब वह दाशरथी श्रीरामचन्द्र जी का नाम लेकर चिल्लाने लगा और कहने लगा, देखिये देखिये ये वानर बरजोरी मेरे पङ्ख उखाड़े लेते हैं और आँखें फोड़े डालते हैं ॥ ३३ ॥

यां च रात्रिं मरिष्यामि जाये रात्रिं च यामहम् ।
एतस्मिन्नन्तरे काले यन्मया ह्यशुभं कृतं ।
सर्वं तदुपपद्येथा जह्यां चेद्यदि जीवितम् ॥ ३४ ॥

जिस दिन से मैं उत्पन्न हुआ हूँ और जिस दिन मैं मरूँगा, इस बीच में मैंने जो पाप किये हैं, महाराज! यदि मैं मर गया तो वे सब आपको लगेंगे ॥ ३४ ॥

नाघातयत्तदा रामः श्रुत्वा तत्परिदेवनम् ।
वानरानब्रवीद्रामो मुच्यतां दूत आगतः ॥ ३५ ॥

इति विंशः सर्गः ॥

उस समय उसका ऐसा विलाप सुन, श्रीरामचन्द्र जी ने उसकी रक्षा की और वानरों से कहा—यह दूत बन कर आया है। इसे छोड़ दो, मारो मत ॥ ३५ ॥

युद्धकाण्ड का बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—※—

एकविंशः सर्गः

—※—

ततः सागरवेलायां दर्भानास्तीर्य राघवः ।
अञ्जलिं प्राङ्मुखः कृत्वा प्रतिशिश्ये महोदधेः ॥ १ ॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी समुद्र के तट पर कुश बिछा कर, समुद्र से वर की प्रार्थना करने के लिये पूर्वमुख हो और हाथ जोड़ कर लेट गये ॥ १ ॥

बाहुं [1]भुजगभोगाभमुपधायारिसूदनः ।
जातरूपमयैश्चैव भूषणैर्भूषितं पुरा ॥ २ ॥

अरिसूदन श्रीरामचन्द्र जी ने सर्प के समान अतिकोमल अपनी उस बाँह का तकिया लगाया, जो सोने के आभूषणों से भूषित हुआ करती थी ॥ २ ॥

वरकाञ्चनकेयूरमुक्ताप्रवरभूषणैः ।
भुजैः परमनारीणामभिमृष्टमनेकधा ॥ ३ ॥

---

१ भुजगभोगाभं—अहिकायवत अतिमृदुलं बाहुं । (गो०)

अयोध्या में रहते समय महाराज की जो भुजाएँ काञ्चन के उत्तम बिजायठों और मोतियों के श्रेष्ठ भूषणों से भूषित होती थीं, जिनको अनेक बार परम रूपवती दासियों ने बालकपन में बारंबार दवाया या सहराया था, ॥ ३ ॥

चन्दनागरुभिश्चैव पुरस्तादधिवासितम् ।
बालसूर्यप्रतीकाशैश्चन्दनैरुपशोभितम् ॥ ४ ॥

जो चन्दन अगर आदि सुगन्धित लेपों से सुवासित हुआ करती थीं, जो प्रभातकालीन सूर्य की तरह लाल लाल चन्दन से शोभायमान हुआ करती थीं, ॥ ४ ॥

शयने चोत्तमाङ्गेन सीतायाः शोभितं पुरा ।
तक्षकस्येव सम्भोगं गङ्गाजलनिषेवितम् ॥ ५ ॥

जो किसी समय सीता के मस्तक के नीचे रखी हुई शोभा को प्राप्त होती थीं, जो गङ्गाजल निषेवित तक्षक के शरीर के समान लंबी थीं, ॥ ५ ॥

संयुगे [1]युगसङ्काशं शत्रूणां शोकवर्धनम् ।
सुहृदानन्दनं दीर्घं [2]सागरान्तव्यपाश्रयम्[3] ॥ ६ ॥

जो युद्ध में गोपुर के अर्गल की तरह जान पड़ती थीं जो शत्रुओं का शोक बढ़ाने वाली थीं और सुहृदों को आनन्द देने वालीं और जिसको अवलम्बन कर ससागरा पृथिवी टिकी हुई है, ॥ ६ ॥

---

१ युगसंकाशं—गोपुरार्गलवत् प्रतिभटनिवारकं । (गो०) २ सागरोन्ते-यस्यासौ सागरान्तः भूमण्डलं । (गो०) ३ व्यपाश्रयं—आलम्बनभूतं । (गो०)

अस्यता च पुनः सव्यं *ज्याघातविगतत्वचम् ।
दक्षिणो दक्षिणं बाहुं महापरिघसन्निभम् ॥ ७ ॥

और जो बाँया हाथ बाण छोड़ने के कारण प्रत्यञ्चा के आघात चिह्न से चिह्नित हो रहा है और जो दहिनी भुजा बड़े परिघ के समान है ॥ ७ ॥

गोसहस्रप्रदातारमुपधाय महद्भुजम् ।
अद्य मे [1]मरणं वाऽथ तरणं सागरस्य वा ॥ ८ ॥

और जिस दक्षिण भुजा के द्वारा हज़ारों गौओं का दान दिया जा चुका है, उसी उत्तम भुजा को अपने सिर के नीचे तकिये की जगह रख और यह दृढ़ सङ्कल्प कर कि, आज या तो मैं समुद्र के पार हो जाऊँगा अथवा समुद्र का मरण ही होगा ॥ ८ ॥

इति रामो मतिं कृत्वा महाबाहुर्महोदधिम् ।
अधिशिश्ये च विधिवत्प्रयतो नियतो मुनिः ॥ ९ ॥

यह विचार कर, महाबाहु श्रीरामचन्द्र जी समुद्र पार करने का दृढ़ विश्वास कर और मौन हो, यथाविधि एवं यथानियम लेट गये ॥ ९ ॥

तस्य रामस्य सुप्तस्य कुशास्तीर्णे महीतले ।
नियमादप्रमत्तस्य †निशास्तिस्रो व्यतिक्रमुः ॥ १० ॥

सावधानी से नियमपूर्वक पृथिवी के ऊपर कुशों की चटाई पर लेटे लेटे श्रीरामचन्द्र जी ने तीन दिन और तीन रात बिता दीं ॥१०॥

---

१ मरणं—सभारस्य मरणं । (गो०) * पाठान्तरे—"ज्याघाताविषतत्वचम् ।" वा "ज्याघातविहतत्वचम् "। † पाठान्तरे—"निशास्तिस्रोतिचक्रमुः । " वा " निशास्ति स्रोऽभिजग्मुतुः । "

स त्रिरात्रोषितस्तत्र नयज्ञो धर्मवत्सलः ।
उपासत तदा रामः सागरं सरितां पतिम् ॥ ११ ॥

नीतिकुशल एवं धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी ने इस प्रकार तीन रात वास कर, नदीपति समुद्र की आराधना की ॥ ११ ॥

न च दर्शयते मन्दस्तदा रामस्य सागरः ।
प्रयतेनापि रामेण यथार्हमभिपूजितः ॥ १२ ॥

यद्यपि श्रीरामचन्द्र जी ने समुद्र का यथाविधि सत्कार कर उसको प्रसन्न करने का प्रयत्न किया, तथापि वह मूर्ख श्रीरामचन्द्र जी के सामने प्रकट न हुआ ॥ १२ ॥

समुद्रस्य ततः क्रुद्धो रामो रक्तान्तलोचनः ।
समीपस्थमुवाचेदं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ १३ ॥

तब तो श्रीरामचन्द्र जी को समुद्र की इस मूर्खता पर बड़ा क्रोध उपजा और मारे क्रोध के उनके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने पास बैठे हुए और शुभ लक्षणों से युक्त लक्ष्मण से कहा ॥ १३ ॥

अवलेपः समुद्रस्य न दर्शयति यत्स्वयम् ।
प्रशमश्च क्षमा चैव आर्जवं प्रियवादिता ॥ १४ ॥

देखो समुद्र को इतना अभिमान है कि, वह स्वयं प्रकट नहीं होता। इसका कारण भी स्पष्ट ही है। वह यह कि, अक्रोधता, शान्ति, अपराध-सहिष्णुता, दूसरे के मन के अनुसार बर्ताव, अथवा सीधासाधा (कपट रहित) बर्त्ताव, प्यारा बोल, ॥ १४ ॥

असामर्थ्यं फलन्त्येते निर्गुणेषु सतां गुणाः ।
आत्मप्रशंसिनं दुष्टं धृष्टं विपरिधावकम् ॥ १५ ॥

सर्वत्रोत्सृष्टदण्डं च लोकः[1] सत्कुरुते नरम् ।
न साम्ना शक्यते कीर्तिर्न साम्ना शक्यते यशः ॥१६॥

ये सब शिष्ट सज्जनों के गुण हैं। ये, गुणहीन मनुष्यों के प्रति प्रयोग करने से, प्रयोगकर्त्ता की असमर्थता प्रकट करते हैं। जो अपनी बड़ाई आप करता है, जो वञ्चक और निर्दयी है, जो इधर उधर दौड़ा करता है, जो गुणी निर्गुणी सब से दण्ड द्वारा काम लेता है; उसका अज्ञजन सम्मान करते हैं। शान्त बने रहने से न नामवरी होती है और न यश ही प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

प्राप्तुं लक्ष्मण लोकेऽस्मिञ्जयो वा रणमूर्धनि ।
अद्य मद्बाणनिर्भिन्नैर्मकरैर्मकरालयम् ॥ १७ ॥
निरुद्धतोऽयं सौमित्रे प्लवद्भिः पश्य सर्वतः ।
महाभोगानि मत्स्यानां करिणां च करानिह ॥ १८ ॥

हे लक्ष्मण ! शान्त बने रहने से युद्ध में जीत भी नहीं होती। सो आज तुम मेरे बाणों से कटे हुए मगर मच्छों के जल के ऊपर उतराने से समुद्र के जल को सर्वत्र ढका हुआ देखोगे। बड़े बड़े साँपों के और मत्स्यों के कटे हुए शरीर जल के ऊपर तैरते हुए देख पड़ेंगे और जलहाथियों की सूंड़े कटी हुई दीखेंगी ॥ १७ ॥ १८ ॥

[2]भोगिनां पश्य नागानां मया छिन्नानि लक्ष्मण ।
सशङ्खशुक्तिकाजालं समीनमकरं शरैः ॥ १९ ॥

लक्ष्मण ! तुम देखोगे कि, बड़े बड़े सर्पों के छिन्नभिन्न शरीर और शङ्ख, सीप और मोतियों के ढेर के ढेर तथा मछलियों और मगरों के शरीर बाणों से विदीर्ण हो, जल के ऊपर उतरा रहे हैं ॥ १९ ॥

---

१ लोकः—अज्ञजनः । (गो०) २ भोगिनां—महाकायानां । (गो०)

अद्य युद्धेन महता समुद्रं परिशोषये ।
क्षमया हि समायुक्तं मामयं मकरालयः ॥ २० ॥
असमर्थं विजानाति धिक्क्षमामीदृशे जने ।
न दर्शयति साम्ना मे सागरो रूपमात्मनः ॥ २१ ॥

महायुद्ध कर आज ही मैं समुद्र के जल को सुखा डालूँगा, मुझको अपराधसहिष्णु न मान कर, यह समुद्र मुझे असमर्थ समझ रहा है। सो ऐसे के प्रति क्षमाप्रदर्शन को धिक्कार है। मैंने अभी तक जो सामनीति से काम लिया है, इसीसे सागर अभी तक मेरे सामने प्रकट नहीं हुआ ॥ २० ॥ २१ ॥

चापमानय सौमित्रे शरांश्चाशीविषोपमान् ।
सागरं शोषयिष्यामि पद्भ्यां यान्तु प्लवङ्गमाः ॥ २२ ॥

हे लक्ष्मण ! तुम जाकर मेरा धनुष और सर्प समान विषवाले मेरे बाण तो उठा लाओ। मैं इस समुद्र का जल सुखा डालूँगा, जिससे मेरे वानर पैदल ही समुद्र पार जा सकेंगे ॥ २२ ॥

अद्याक्षोभ्यमपि क्रुद्धः क्षोभयिष्यामि सागरम् ।
वेलासु कृतमर्यादं सहसोर्मिसमाकुलम् ॥ २३ ॥

जो समुद्र सदा तटों की सीमा के भीतर बना रहता है और बड़ी बड़ी लहरों से परिपूर्ण और अक्षोभ्य है उसे मैं आज कुपित हो खलबला दूँगा ॥ २३ ॥

निर्मर्यादं करिष्यामि सायकैर्वरुणालयम् ।
महार्णवं क्षोभयिष्ये *महानक्रसमाकुलम् ॥ २४ ॥

---

* पाठान्तरे—" महादानवसङ्कुलम् । "

मैं अपने बाणों से बड़े बड़े नक्रों से भरे हुए इस वरुणालय महासागर को निर्मयाद कर क्षुब्ध कर डालूँगा ॥ २४ ॥

एवमुक्त्वा धनुष्पाणिः क्रोधविस्फारितेक्षणः ।
बभूव रामो दुर्धर्षो युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥ २५ ॥

इस प्रकार कह रघुनाथ जी ने धनुष हाथ में लिया । उस समय क्रोध के मारे उनकी त्योरी बदल गयी । उस समय वे प्रलयकालीन अग्नि की तरह प्रज्वलित हो दुर्धर्ष हो गये ॥ २५ ॥

संपीड्य च धनुर्घोरं कम्पयित्वा शरैर्जगत् ।
मुमोच विशिखानुग्रान्वज्रानिव शतक्रतुः ॥ २६ ॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी ने धनुष पर रोदा चढ़ा, उसकी टङ्कार से समस्त जगत को कँपा दिया । वे उग्र बाणों को उसी प्रकार छोड़ने लगे, जिस प्रकार इन्द्र वज्र छोड़ते हैं ॥ २६ ॥

ते ज्वलन्तो महावेगास्तेजसा सायकोत्तमाः ।
प्रविशन्ति समुद्रस्य सलिलं त्रस्तपन्नगम् ॥ २७ ॥

वे तेज से प्रज्वलित तीर बड़े वेग से समुद्र के जल में घुसने लगे, जिससे समुद्र के जल में रहने वाले सर्प त्रस्त हो गये ॥ २७ ॥

तोयवेगः समुद्रस्य सनक्रमकरो महान् ।
सम्बभूव महाघोरः समारुतरवस्तदा ॥ २८ ॥

उस समय मछली मकरादि प्राणियों से युक्त समुद्र का बड़ा भारी वेग, प्रचण्ड पवन के झोंकों से बड़ा भयङ्कर शब्द करने लगा ॥२८॥

महोर्मिजालविततः शङ्खशुक्तिसमावृतः ।
सधूमपरिवृत्तोर्मिः सहसाऽऽसीन्महोदधिः ॥ २९ ॥

समुद्र में चारों ओर से तरङ्गों के बड़े बड़े समूह उठे, व स्थान स्थान पर शङ्ख और सीपों के ढेर के ढेर छितराने लगे। सब तरफ से लहरों के साथ धुआँ सा उठता देख पड़ा। देखते ही देखते समुद्र का रूप विकराल हो गया॥ २९॥

व्यथिताः पन्नगाश्चासन्दीप्तास्या दीप्तलोचनाः ।
दानवाश्च महावीर्याः पातालतलवासिनः ॥ ३० ॥

उसमें रहने वाले प्रदीप्त मुख वाले तथा प्रदीप्त नेत्र वाले साँप तथा पातालवासी महाबलवान् दानवगण व्यथित हुए॥ ३०॥

ऊर्मयः सिन्धुराजस्य सनक्रमकरास्तदा ।
विन्ध्यमन्दरसङ्काशाः समुत्पेतुः सहस्रशः ॥ ३१ ॥

सिन्धुराज की विन्ध्य और मन्दराचल के समान ऊँची ऊँची तथा नक्र मकरों से युक्त हज़ारों लहरें उठने लगीं॥ ३१॥

आघूर्णिततरङ्गौघः सम्भ्रान्तोरगराक्षसः ।
उद्वर्तितमहाग्राहः *सघोषोवरुणालयः ॥ ३२ ॥

उस समय तरङ्गमाला तो घूमने लगी। नाग और राक्षस घबड़ा उठे। बड़े बड़े घड़ियाल उलट गये। समुद्र में बड़े बड़े शब्द सुन पड़ने लगे॥ ३२॥

ततस्तु तं राघवमुग्रवेगं
प्रकर्षमाणं धनुरप्रमेयं ।
सौमित्रिरुत्पत्य समुच्छ्वसन्तं
मामेति चोक्त्वा धनुराललम्बे ॥ ३३ ॥

---

* पाठान्तरे—"संवृत्तः सलिलाशयः।"

इस प्रकार धनुष के खींचते, बड़ी शीघ्रता पूर्वक बाणों को छोड़ते और ज़ोर से स्वास लेते हुए श्रीरामचन्द्र जी को देख, लक्ष्मण जी ने "ऐसा न कीजिये" कह कर धनुष को पकड़ लिया ॥ ३३ ॥

[एतद्विनापि ह्युदधेस्तवाद्य
सम्पत्स्यते वीरतमस्य कार्यम् ।
भवद्विधाः कोपवशं न यान्ति
दीर्घं भवान्पश्यतु साधुवृत्तम् ॥ ३४ ॥

और बोले—हे प्रभो ! इस उपाय को काम में लाये बिना भी, दूसरे उपाय से आपका काम हो सकता है। देखिये, आप जैसे महापुरुष को क्रोध करना उचित नहीं। आप अपनी सदा की साधुवृत्ति की ओर देखिये ॥ ३४ ॥

अन्तर्हितैश्चैव तथाऽन्तरिक्षे
ब्रह्मर्षिभिश्चैव सुरर्षिभिश्च ।
शब्दः कृतः कष्टमिति ब्रुवद्भिः
मामेति चोक्त्वा महता स्वरेण ॥ ३५ ॥]

इति एकविंशः सर्गः ॥

तदनन्तर आकाशचारी और अदृश्य ब्रह्मर्षियों तथा देवर्षियों ने भी दुःख प्रकट कर चिल्ला कर कहा, ऐसा न कीजिये ॥ ३५ ॥

युद्धकाण्ड का इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

द्वाविंशः सर्गः

—※—

अथोवाच रघुश्रेष्ठः सागरं दारुणं वचः ।
अद्य त्वां शोषयिष्यामि सपातालं महार्णव ॥ १ ॥

रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी समुद्र को सम्बोधन कर यह दारुण वचन बोले कि, हे महार्णव ! आज मैं तेरा पाताल तक का जल सुखा डालूँगा ॥ १ ॥

शरनिर्दग्धतोयस्य परिशुष्कस्य सागर ।
मया शोषितसत्त्वस्य पांसुरुत्पद्यते महान् ॥ २ ॥

हे सागर ! मेरे बाणों द्वारा तेरा जल सूख जायगा । तेरे भीतर रहने वाले समस्त जलजन्तु मर जाँयगे । फिर ख़ूब धूल उड़ने लगेगी ॥ २ ॥

मत्कार्मुकविसृष्टेन शरवर्षेण सागर ।
पारं तेऽद्य गमिष्यन्ति पद्भिरेव प्लवङ्गमाः ॥ ३ ॥

हे सागर ! मेरे धनुष से छूटे हुए तीरों की वर्षा से, वानर उस पार पैदल ही चले जाँयगे ॥ ३ ॥

विचिन्वन्नाभिजानासि पौरुषं[1] वाऽपि विक्रमम् ।
दानवालय सन्तापं मत्तो नाधिगमिष्यसि ॥ ४ ॥

हे दानवालय ! तू मेरे बल और पराक्रम को नहीं जानता और मत्त होने के कारण न तुझे आगे होने वाले अपने सन्ताप ही का कुछ ज्ञान है ॥ ४ ॥

---

१ पौरुषं—बलं । (गो०)

ब्राह्मेणास्त्रेण संयोज्य [1]ब्रह्मदण्डनिभं शरम् ।
संयोज्य धनुषि श्रेष्ठे विचकर्ष महाबलः ॥ ५ ॥

यह कह महाबली श्रीरामचन्द्र जी ने ब्रह्मशाप की तरह अमोघ एक बाण ब्रह्मास्त्र के मंत्र से अभिमंत्रित कर, अपने श्रेष्ठ धनुष पर चढ़ा कर, बड़ी ज़ोर से खींचा ॥ ५ ॥

तस्मिन्विकृष्टे सहसा राघवेण शरासने ।
[2]रोदसी [3]सम्पफालेव पर्वताश्च चकम्पिरे ॥६॥

जब श्रीरामचन्द्र जी ने सहसा वह बाण चलाने को रोदा खींचा तब ऐसा जान पड़ा, मानों आकाश और पृथिवी फटी पड़ती है। उस समय पहाड़ काँपने लगे ॥ ६ ॥

तमश्च लोकमावव्रे दिशश्च न चकाशिरे ।
परिचुक्षुभिरे चाशु सरांसि सरितस्तथा ॥ ७ ॥

सर्वत्र अन्धकार छा गया, दिशाएँ प्रकाशशून्य हो गयीं। सरोवरें और नदियाँ खलबला उठीं ॥ ७ ॥

तिर्यक्च सह नक्षत्रैः सङ्गतौ चन्द्रभास्करौ ।
भास्करांशुभिरादीप्तं तमसा च समावृतम् ॥ ८ ॥

नक्षत्रों सहित सूर्य चन्द्र की गति तिरछी हो गयी। उस समय सूर्य के रहते भी आकाश में अन्धकार छाया हुआ था ॥ ८ ॥

प्रचकाशे तदाकाशमुल्काशतविदीपितम् ।
अन्तरिक्षाच्च निर्घाता निर्जग्मुरतुलस्वनाः ॥ ९ ॥

---

१ ब्रह्मदण्डः—ब्रह्मशापः तद्वदमघोमित्यर्थः। (गो०) २ रोदसी—द्यावापृथिव्यौ। (गो०) ३ सम्पफालेव—भिन्नेइव।

सैकड़ों प्रदीप्त उल्काओं से आकाश प्रदीप्त हो गया और बिजली की कड़क की तरह शब्द से बार बार नादित हो गया ॥ ६ ॥

पुस्फुरुश्च घना दिव्या दिवि मारुतपङ्क्तयः ।
बभञ्ज च तदा वृक्षाञ्जलदानुद्वहन्नपि ॥ १० ॥

आकाश में बड़े वेग से पवन चलने लगा, जिसने अनेक वृक्षों को उखाड़ डाला और वह आकाश में मेघों को इधर उधर उड़ाने भी लगा ॥ १० ॥

अरुजंश्चैव शैलाग्राञ्शिखराणि प्रभञ्जनः ।
दिविस्पृशो महामेघाः सङ्गताः समहास्वनाः ॥ ११ ॥

बड़े बड़े पहाड़ों से टकरा कर पवन उनके शिखरों को गिराने लगा। आकाशस्पर्शी बड़े बड़े बादल आकाश में बड़े ज़ोर से गरजने लगे ॥ ११ ॥

मुमुचुर्वैद्युतानग्नींस्ते महाशनयस्तदा ।
यानि भूतानि दृश्यानि चक्रुशुश्चाशनेः समम् ॥ १२ ॥

आकाश से अग्निमय वज्रपात होने लगा। उस समय जितने जीवधारी दिखलाई पड़ते थे, वे सब के सब वज्र के समान महाभयङ्कर शब्द कर रहे थे ॥ १२ ॥

अदृश्यानि च भूतानि मुमुचुर्भैरवस्वनम् ।
शिश्यरे चापि भूतानि संत्रस्तान्युद्विजन्ति च ॥ १३ ॥

जो जीवधारी अदृश्य थे, वे सब भी बड़ा भयङ्कर शब्द करने लगे। बहुत से मारे डर के विकल हो, लेट गये ॥ १३ ॥

सम्प्रविव्यथिरे चापि न च पस्पन्दिरे भयात् ।
सह भूतैः सतोयोर्मिः सनागः सहराक्षसः ॥ १४ ॥

अनेक विकल हो गये और बहुत से दुःखी हुए। बहुत से मारे डर के हिल भी न सके; जहाँ के तहाँ निर्जीव से पड़े रहे। जलचर जन्तुओं, तरङ्गों, नागों और राक्षसों से युक्त समुद्र में बड़ी खलबली मच गयी ॥ १४ ॥

सहसाऽभूत्ततो वेगाद्भीमवेगो महोदधिः ।
योजनं व्यतिचक्राम वेलामन्यत्र सम्प्लवात् ॥ १५ ॥

उस समय सहसा समुद्र का बड़ा भयङ्कर वेग बढ़ गया। जिससे उसका जल उसके तट को नाँघ, एक योजन आगे बढ़ गया। ऐसा बिना जलप्रलय के कभी नहीं होता ॥ १५ ॥

तं तदा समतिक्रान्तं नातिचक्राम राघवः ।
समुद्धतममित्रघ्नो रामो नदनदीपतिम् ॥ १६ ॥

शत्रुहन्ता श्रीरामचन्द्र जी ने समुद्र को इस प्रकार पीछे हटते देख, उस पर शस्त्रप्रयोगरूपी आक्रमण न किया अर्थात् बाण न चलाया अथवा श्रीरामचन्द्र जी समुद्र को चलायमान होते देख कर भी, स्वयं विचलित न हुए और न अपना बाण ही रोदे से उतारा ॥ १६ ॥

ततो मध्यात्समुद्रस्य सागरः स्वयमुत्थितः ।
उदयन्हि महाशैलान्मेरोरिव दिवाकरः ॥ १७ ॥

तब समुद्र के जल में से स्वयं मूर्त्तिमान समुद्र ऐसे निकला, जैसे कि, मेरु नाम के बड़े पर्वत पर सूर्य निकलता है ॥ १७ ॥

पन्नगैः सह दीप्तास्यैः समुद्रः प्रत्यदृश्यत ।
स्निग्धवैडूर्यसङ्काशो जाम्बूनदविभूषितः ॥ १८ ॥

उसके साथ बड़े बड़े प्रदीप्त मुँह वाले साँप देख पड़े। समुद्र के शरीर का रंग पन्ने की तरह हरा और चमकीला था। वह सोने के आभूषणों से भूषित था ॥ १८ ॥

रक्तमाल्याम्बरधरः पद्मपत्रनिभेक्षणः ।
सर्वपुष्पमयीं दिव्यां शिरसा धारयन्स्रजम् ॥ १९ ॥

उसके कमलसदृश नेत्र थे और वह लाल फूलों की माला तथा लाल ही रंग के वस्त्र पहिने हुए था। उसके सिर पर सब प्रकार के पुष्पों की गुथी हुई दिव्य-पुष्प-माला लपटी हुई थी ॥ १९ ॥

जातरूपमयैश्चैव तपनीयविभूषितैः ।
आत्मजानां च रत्नानां भूषितो भूषणोत्तमैः ॥ २० ॥

उसके समस्त भूषण उत्तम सुवर्ण के बने हुए थे, उन भूषणों में वे ही रत्न जड़े हुए थे, जो समुद्र ही में उत्पन्न होते हैं ॥ २० ॥

धातुभिर्मण्डितः शैलो विविधैर्हिमवानिव ।
एकावलीमध्यगतं तरलं *पाटलप्रभम् ॥ २१ ॥

वह सुवर्ण के आभूषणों को धारण किये हुए ऐसा जान पड़ता था, मानों अनेक धातुओं से भूषित हिमाचल हो। वह मोतियों का ऐसा हार पहने हुए था, जिसके बीच में गुलाबी रंग का रत्न जड़ा हुआ था ॥ २१ ॥

---

* पाठान्तरे—" पाण्डरप्रभम् । "

विपुलेनोरसा बिभ्रत्कौस्तुभस्य सहोदरम् ।
आघूर्णिततरङ्गौघः कालिकानिलसङ्कुलः ॥ २२ ॥

उसके प्रशस्त वक्षःस्थल पर वह रत्न कौस्तुभमणि के सहोदर भाई की तरह शोभायमान थी । उस समय वह उठती हुई तरंगों, मेघों और तेज़ हवा से पूर्ण था ॥ २२ ॥

गङ्गासिन्धुप्रधानाभिरापगाभिः समावृतः ।
सागरः समुपक्रम्य [1]पूर्वमामन्त्र्य वीर्यवान् ॥ २३ ॥

गङ्गा सिन्धु आदि मुख्य मुख्य नदियाँ और नद उसके साथ थे । समुद्र ने श्रीरामचन्द्र जी को "हे राम !" कह कर प्रथम सम्बोधन किया ॥ २३ ॥

अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं राघवं शरपाणिनम् ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च राघव ॥ २४ ॥

तदनन्तर हाथ जोड़ कर, हाथ में धनुष बाण लिये हुए श्रीरामचन्द्र जी से बोला । हे राघव ! पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश ॥ २४ ॥

स्वभावे सौम्य तिष्ठन्ति शाश्वतं मार्गमाश्रिताः ।
तत्स्वभावो ममाप्येष यदगाधोऽहमप्लवः ॥ २५ ॥

अनादिकाल से अपने स्वभाव के वश हो बर्तते हैं, अथवा अपनी अपनी मर्यादा के भीतर रहते हैं । मेरा भी यही स्वभाव है कि, मैं अगाध हूँ और इसलिये पार जाने के अयोग्य हूँ ॥ २५ ॥

विकारस्तु भवेद्गाध एतत्ते वेदयाम्यहम् ।
न कामान्न च लोभाद्वा न भयात्पार्थिवात्मज ॥ २६ ॥

---

१ पूर्वमामन्त्र्य—हे रामेति प्रथमं सम्बोध्य । (रा०)

हे राजकुमार! यदि मैं उथला हो जाऊँ तो मेरा अन्यथा भाव हो जाय अर्थात् मैं अपनी स्वाभाविकी सीमा से विचलित हो जाऊँ। यह जो मैं आपसे कह रहा हूँ सो अपने किसी लाभ लोभ या भय के वश हो नहीं कहता ॥ २६ ॥

ग्राहनक्राकुलजलं स्तम्भयेयं कथञ्चन ।
विधास्ये राम येनापि विषहिष्ये ह्यहं तथा ॥ २७ ॥

मैं कभी भी नक्र और मत्स्यों से युक्त अपनी जलराशि को नहीं रोक सकता। हे राम! आपकी इच्छानुसार कार्य करने को मैं उद्यत हूँ और आप जो करेंगे, उसे सहूँगा। अथवा आप जिस मार्ग से जाँयगे उसे बतलाऊँगा और उसका बोझ स्वयं सह लूँगा ॥२७॥

ग्राहा न प्रहरिष्यन्ति यावत्सेना तरिष्यति ।
हरीणां तरणे राम करिष्यामि यथा स्थलम्[1] ॥ २८ ॥

हे राम! जब तक आपकी सेना पार न हो जायगी कोई भी मगर आदि जलजन्तु मार्ग में कुछ भी उपद्रव न करेंगे। मैं वानरों के उतरने के लिये पुल की योजना कर दूँगा ॥ २८ ॥

तमब्रवीत्तदा राम उद्यतो हि नदीपते ।
अमोघोऽयं महाबाणः कस्मिन्देशे निपात्यताम् ॥ २९ ॥

रास्ता देने के लिये उद्यत समुद्र से श्रीरामचन्द्र जी बोले—अच्छी बात है, पर मेरा यह महाबाण अमोघ है (अर्थात् एक बार जब धनुष पर चढ़ा दिया तब उतारा नहीं जा सकता) अतएव बतलाओ इसे मैं किस ओर चलाऊँ ॥ २९ ॥

---

१ यथास्थलं भवति—यथासेतुमार्गो भवति। (गो०)

रामस्य वचनं श्रुत्वा तं च दृष्ट्वा महाशरम् ।
महोदधिर्महातेजा राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥ ३० ॥

उस बड़े शर को देख और श्रीरामचन्द्र जी के वचन सुन, समुद्र महातेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी से बोला ॥ ३० ॥

उत्तरेणावकाशोऽस्ति कश्चित्पुण्यतमो मम ।
द्रुमकुल्य इति ख्यातो लोके ख्यातो यथा भवान् ॥३१॥

हे राम ! यहाँ से उत्तर की ओर अति पवित्र मेरा एक देश है । वह द्रुमकुल्य नाम से संसार में उसी प्रकार प्रसिद्ध है, जिस प्रकार आप प्रख्यात हैं ॥ ३१ ॥

उग्रदर्शनकर्माणो बहवस्तत्र दस्यवः ।
आभीरप्रमुखाः पापा पिबन्ति सलिलं मम ॥ ३२ ॥

वहाँ पर भयङ्कर रूप वाले तथा भयङ्कर कार्य करने वाले पापी अहीर आदि डाकू रहते हैं, जो मेरा जल पिया* करते हैं ॥ ३२ ॥

तैस्तु संस्पर्शनं प्राप्तैर्न सहे पापकर्मभिः ।
अमोघः क्रियतां राम तत्र तेषु शरोत्तमः ॥ ३३ ॥

हे राम ! मुझे उन पापियों का स्पर्श भी सह्य नहीं है । अतः आप अपने इस उत्तम बाण को वहीं गिरा कर सफल कीजिये ॥३३॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सागरस्य स राघवः ।
मुमोच तं शरं दीप्तं वीरः [1]सागरदर्शनात् ॥ ३४ ॥

---

१ सागरदर्शनात्— सागरमतेन । (गो०)

* इससे जान पड़ता है उस समुद्र का जल खारी नहीं था ।

श्रीरामचन्द्र जी ने समुद्र के ये वचन सुन, उस प्रदीप्त बाण को समुद्र के बतलाये हुए स्थान पर गिरा दिया ॥ ३४ ॥

तेन तन्मरुकान्तारं पृथिव्यां खलु विश्रुतम् ।
निपातितः शरो यत्रः दीप्ताशनिसमप्रभः ॥ ३५ ॥

वह वज्र के समान प्रदीप्त बाण जहाँ पर गिरा, वह स्थान उसी दिन से मरुकान्तार (मारवाड़) के नाम से प्रसिद्ध हो गया ॥३५॥

ननाद च तदा तत्र वसुधा शल्यपीडिता ।
तस्माद्व्रणमुखात्तोयमुत्पपात रसातलात् ॥ ३६ ॥

जहाँ पर वह बाण गिरा, वहाँ की भूमि से बड़ा भयङ्कर शब्द हुआ और वहाँ एक बड़ा गहरा गढ़ा हो गया। उस गढ़े से रसातल का जल निकल आया ॥ ३६ ॥

स बभूव तदा कूपो व्रण इत्यभिविश्रुतः ।
सततं चोत्थितं तोयं समुद्रस्येव दृश्यते ॥ ३७ ॥

और वह एक कुआँ बन गया जिसका व्रण नाम प्रसिद्ध है। इसमें जो जल रहता है, वह सदैव समुद्र के जल की तरह उछलता हुआ देख पड़ता है ॥ ३७ ॥

अवदारणशब्दश्च दारुणः समपद्यत ।
तस्मात्तद्बाणपातेन त्वपः कुक्षिष्वशोषयत् ॥ ३८ ॥

बाण के गिरते समय पृथिवी फटने का भयङ्कर शब्द हुआ था और बाण जहाँ गिरा वहाँ की झीलों और तालावों का जल सूख गया ॥ ३८ ॥

विख्यातं त्रिषु लोकेषु मरुकान्तारमेव तत् ।
शोषयित्वा ततः कुक्षिं रामो दशरथात्मजः ॥ ३९ ॥

वरं तस्मै ददौ विद्वान्मरवेऽमरविक्रमः ।
पशव्यश्चाल्परोगश्च फलमूल[1]रसायुतः ॥ ४० ॥

वह स्थान तीनों लोकों में मरुकान्तार के नाम से प्रसिद्ध हुआ, उस समुद्रमध्यगत स्थान का जल सुखा, अमर-विक्रमी दशरथ-नन्दन श्रीरामचन्द्र जी ने उसे यह वर दिया कि, यह देश पशुओं के लिये हितकारक, रोगरहित, फलों, मूलों और शहद से युक्त होगा ॥ ३९ ॥ ४० ॥

बहुस्नेहो[2] बहुक्षीरसुगन्धिर्विविधौषधः ।
एवमेतैर्गुणैर्युक्तो बहुभिः सततं मरुः ॥ ४१ ॥

इस देश में घी, दूध की बहुतायत होगी और विविध प्रकार की सुगन्धित औषधियाँ होगी। इस प्रकार बहुत से भोग्य पदार्थों से सदा युक्त वह मरुदेश हो गया ॥ ४१ ॥

रामस्य वरदानाच्च शिवः पन्था[3] बभूव ह ।
तस्मिन्दग्धे तदा कुक्षौ समुद्रः सरितां पतिः ॥ ४२ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के वरदान से वह शोभन प्रदेश हो गया। समुद्र के मध्यगत उस स्थान का जल दग्ध हो जाने पर नदीपति समुद्र ने ॥ ४२ ॥

राघवं सर्वशास्त्रज्ञमिदं वचनमब्रवीत् ।
अयं सौम्य नलो नाम तनुजो विश्वकर्मणः ॥ ४३ ॥

---

१ रसः—मधुः । (गो०) २ स्नेहः घृतः । (गो०) ३ शिवः पन्था—शोभनप्रदेश इत्यर्थः । (गो०)

सर्वशास्त्रज्ञ श्रीरामचन्द्र जी से यह वचन कहा। हे सौम्य! यह नल नामक वानर विश्वकर्मा का पुत्र है॥ ४३॥

पित्रा दत्तवरः श्रीमान्प्रतिमो विश्वकर्मणा।
एष सेतुं महोत्साहः करोति मयि वानरः॥ ४४॥

इसके पिता विश्वकर्मा ने इसको यह वर दिया है कि, तुम मेरे समान हो। सो, मेरे जल के ऊपर नल ही बड़े उत्साह के साथ पुल बांधे॥ ४४॥

तमहं धारयिष्यामि तथा ह्येष यथा पिता।
एवमुक्त्वोदधिर्नष्टः समुत्थाय नलस्तदा॥ ४५॥

मैं इसके बनाये पुल को धारण करूँगा क्योंकि जैसा इसका पिता है वैसा ही यह भी है। यह कह कर समुद्र अन्तर्द्धान हो गया। तब नल नामक वानर उठा॥ ४५॥

अब्रवीद्वानरश्रेष्ठो वाक्यं रामं महाबलः।
अहं सेतुं करिष्यामि विस्तीर्णे वरुणालये॥ ४६॥
[1]पितुः सामर्थ्यमास्थाय तत्त्वमाह महोदधिः।
दण्ड एव वरो लोके पुरुषस्येति मे मतिः॥ ४७॥

और उस वानरश्रेष्ठ महाबली वानर ने श्रीरामचन्द्र जी से कहा। हे महाराज! समुद्र ने जो कुछ कहा सत्य है। मैं पिता के वरदान के प्रभाव से इस विस्तृत वरुणालय महासागर पर पुल बाँधूँगा। इस सम्बन्ध में मैं यह अवश्य कहूँगा कि, संसार में दण्ड ही सब से बढ़ कर काम बनाने वाला है॥ ४६॥ ४७॥

---

१ पितुः सामर्थ्यं—पित्रादत्तं सामर्थ्यं। (गो०)

धिक्क्षमामकृतज्ञेषु सान्त्वं दानमथापि वा ।
अयं हि सागरो भीमः सेतुकर्मदिदृक्षया ॥ ४८ ॥

ददौ दण्डभयाद्गाधं राघवाय महोदधिः ।
मम मातुर्वरो दत्तो मन्दरे विश्वकर्मणा ॥ ४९ ॥

उपकार न मानने वालों के प्रति क्षमा प्रदर्शित करना या उनको समझाना अथवा दान आदि से सन्तुष्ट करने का यत्न करना व्यर्थ है। यह भयङ्कर सागर दण्ड के भय ही से पुल बंधवाना स्वीकार कर, उथला हो गया है। इस समुद्र की बात सुन, मुझे याद आ गया कि, विश्वकर्मा ने मन्दराचल पर मेरी माता को यह वर दिया था ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

औरसस्तस्य पुत्रोऽहं सदृशो विश्वकर्मणा ।
[पित्रोः प्रासादात्काकुत्स्थ ततः सेतुं करोम्यहम्] ॥५०॥

कि—"मेरे समान तेरे पुत्र होगा।" सो मैं उसका औरस पुत्र होने से उसीके समान हूँ। हे रघुनन्दन! पिता जी के वरदान से मैं सेतु की रचना करता हूँ ॥ ५० ॥

न चाप्यहमनुक्तो वै प्रब्रूयामात्मनो गुणान् ॥ ५१ ॥

आपके पूँछे बिना मैंने अपने मुख से अपने गुणों का बखान करना उचित नहीं समझा ॥ ५१ ॥

समर्थश्चाप्यहं सेतुं कर्तुं वै वरुणालये ।
काममद्यैव बध्नन्तु सेतुं वानरपुङ्गवाः ॥ ५२ ॥

मैं निस्सन्देह समुद्र पर पुल बाँध सकूँगा सो अब इसी समय से वानरश्रेष्ठ पुल बांधने में लगें ॥ ५२ ॥

[1]ततोतिसृष्टा रामेण सर्वतो हरियूथपाः ।
अभिपेतुर्महारण्यं हृष्टाः शतसहस्रशः ॥ ५३ ॥

यह सुनते ही श्रीरामचन्द्र जी ने वानरों को इस काम के लिये नियुक्त किया । तब तो लाखों वानर प्रसन्न हो वनों में घुस गये ॥ ५३ ॥

ते नगान्नगसङ्काशाः शाखामृगगणर्षभाः ।
बभञ्जुर्वानरास्तत्र [2]प्रचकर्षुश्च सागरम् ॥ ५४ ॥

फिर वे पर्वताकार वानर यूथपति पर्वतशिखरों और वृक्षों को उखाड़ उखाड़ कर समुद्रतट पर ला ला कर ढेर लगाने लगे ॥५४॥

ते सालैश्चाश्वकर्णैश्च धवैर्वंशैश्च वानराः ।
कुटजैरर्जुनैस्तालैस्तिलकैस्तिमिशैरपि ॥ ५५ ॥

उन लोगों ने साखू, अश्वकर्ण, धव, बाँस, कोरैया, अर्जुन, ताल, तिलक, तिमिश ॥ ५५ ॥

बिल्वैश्च सप्तपर्णैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितैः ।
चूतैश्चाशोकवृक्षैश्च सागरं समपूरयन् ॥ ५६ ॥

बेल, सप्तवर्ण, फूले हुए कनैर, आम और अशोक के पेड़ों से समुद्र को पाट दिया ॥ ५६ ॥

समूलांश्च विमूलांश्च पादपान्हरिसत्तमाः ।
इन्द्रकेतूनिवोद्यम्य प्रजह्रुर्हरयस्तरून् ॥ ५७ ॥

वे वानरश्रेष्ठ, मूल सहित और बिना मूलों के वृक्षों को, इन्द्र की ध्वजा की तरह उठा उठा कर लाने लगे ॥ ५७ ॥

---

१ अतिसृष्टाः—नियुक्ताः । (गो०) २ प्रचकर्षुः—आनयन्ति स्म । (गो०)

तालान्दाडिमगुल्मांश्च नारिकेलान्विभीतकान् ।
बकुलान्खदिरान्निम्बान्समाजह्रुः समन्ततः ॥ ५८ ॥

वे ताड़, अनार, नारियल, कत्था, बहेड़ा, मौलसिरी, खदिर और नीम के पेड़ों को इधर उधर से लाकर वहाँ डालने लगे ॥५८॥

हस्तिमात्रान्महाकायाः पाषाणांश्च महाबलाः ।
पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः[1] परिवहन्ति च ॥ ५९ ॥

हाथी के समान बड़े बड़े शरीर वाले और महाबलवान वानर बड़े बड़े पत्थरों को उखाड़ उखाड़ कर और गाड़ियों पर ढोकर वहाँ पहुँचाने लगे ॥ ५९ ॥

प्रक्षिप्यमाणैरचलैः सहसा जलमुद्धतम् ।
समुत्पतितमाकाशमुपासर्पत्ततस्ततः ॥ ६० ॥

उन पत्थरों के बड़े टुकड़ों को जल में डालने से समुद्र का जल इतना उछलता कि, आकाश को चला जाता और फिर नीचे गिर जाता था ॥ ६० ॥

समुद्रं क्षोभयामासुर्वानराश्च समन्ततः ।
सूत्राण्यन्ये प्रगृह्णन्ति व्यायतं शतयोजनम् ॥ ६१ ॥

इस प्रकार चारों ओर पेड़ों और पत्थरों को गिरा कर, वानरों ने समुद्र का जल खलबला दिया । कितने ही वानर सौ योजन लंबे सूत को थाम पुल की सिधाई ठीक करते थे ॥ ६१ ॥

नलश्चक्रे महासेतुं मध्ये नदनदीपतेः ।
स तथा क्रियते सेतुर्वानरैर्घोरकर्मभिः ॥ ६२ ॥

---

१ यन्त्रैः—शकटादिभिः । (गो०) सुखाहरणसाधनैः । (रा०)

इस प्रकार नल ने घोरकर्मा वानरों की सहायता से नदीपति समुद्र के ऊपर पुल बाँधा ॥ ६२ ॥

¹दण्डानन्ये प्रगृह्णन्ति विचिन्वन्ति तथा परे ।
वानराः शतशस्तत्र रामस्याज्ञापुरः सराः ॥ ६३ ॥

कोई कोई वानर हाथों में डंडे ले कर वानरों से काम जल्दी पूरा कराने के लिये खड़े थे, कोई इधर उधर घूम फिर कर बड़े बड़े पेड़ों को ढूढ़ रहे थे। इस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा से सैकड़ों वानर ॥ ६३ ॥

मेघाभैः पर्वताग्रैश्च तृणैः काष्ठैर्बबन्धिरे ।
पुष्पिताग्रैश्च तरुभिः सेतुं बध्नन्ति वानराः ॥ ६४ ॥

जिनका शरीर पर्वत और मेघ की तरह विशाल था ; तृण, काठ, पुष्पित वृक्षों तथा पत्थरों से पुल बाँधने का काम कर रहे थे ॥ ६४ ॥

पाषाणांश्च गिरिप्रख्यान्गिरीणां शिखराणि च ।
दृश्यन्ते परिधावन्तो गृह्य वारणसन्निभाः ॥ ६५ ॥

हाथी के समान विशाल शरीर वाले बहुत से वानर, पर्वत के समान बड़े बड़े पत्थरों के टुकड़ों और पर्वतशिखरों को लिये हुए, हाथियों की तरह दौड़ते हुए जान पड़ते थे ॥ ६५ ॥

शिलानां क्षिप्यमाणानां शैलानां च निपात्यताम् ।
बभूव तुमुलः शब्दस्तदा तस्मिन्महोदधौ ॥ ६६ ॥

उस समुद्र में शिलाओं के डालने और पर्वतों के पटकने से बड़ा शब्द होता था ॥ ६६ ॥

---

१ दण्डान्—वानरत्वराकरणदण्डान् । (गो०)

कृतानि प्रथमेनाह्ना योजनानि चतुर्दश ।
प्रहृष्टैर्गजसङ्काशैस्त्वरमाणैः प्लवङ्गमैः ॥ ६७ ॥

इस प्रकार गज के समान शरीर वाले और फुर्तीले वानरों ने बड़ी प्रसन्नता के साथ प्रथम दिन चौदह योजन लंबा पुल बना डाला ॥ ६७ ॥

द्वितीयेन तथा चाह्ना योजनानि तु विंशतिः ।
कृतानि प्लवगैस्तूर्णं भीमकायैर्महाबलैः ॥ ६८ ॥

फिर भयङ्कर शरीर वाले महाबली वानरों ने फुर्ती से दूसरे दिन बीस योजन लंबा पुल बाँध कर तैयार किया ॥ ६८ ॥

अह्ना तृतीयेन तथा योजनानि कृतानि तु ।
त्वरमाणैर्महाकायैरेकविंशतिरेव च ॥ ६९ ॥

उन महाकाय और शीघ्र कर्मकारी वानरों ने तीसरे दिन २१ योजन लंबा और पुल बाँधा ॥ ६९ ॥

चतुर्थेन तथा चाह्ना द्वाविंशतिरथापि च ।
योजनानि महावेगैः कृतानि त्वरितैस्तु तैः ॥ ७० ॥

उन बड़े फुर्तीले वानरों ने चौथे दिवस बड़ी फुर्ती से २२ योजन लंबा पुल और बाँधा ॥ ७० ॥

पञ्चमेन तथा चाह्ना प्लवगैः क्षिप्रकारिभिः ।
योजनानि त्रयोविंशत्सुवेलमधिकृत्य वै ॥ ७१ ॥

उन शीघ्र कर्मकारी वानरों ने पाँचवें दिन २३ योजन लंबा और पुल बाँध वे लङ्कास्थित सुवेल पर्वत पर पहुँच गये । अर्थात् पुल का काम नल ने पाँच दिन में पूरा कर डाला ॥ ७१ ॥

स वानरवरः श्रीमान्विश्वकर्मात्मजो बली ।
बबन्ध सागरे सेतुं यथा चास्य पिता तथा ॥ ७२ ॥

इस प्रकार विश्वकर्मा के बलवान् और कपिश्रेष्ठ नल ने अपने पिता के समान पराक्रम दिखा, समुद्र के ऊपर सेतु बाँधा ॥ ७२ ॥

स नलेन कृतः सेतुः सागरे मकरालये ।
शुशुभे सुभगः श्रीमान्स्वातीपथ इवाम्बरे ॥ ७३ ॥

नल द्वारा बना हुआ वह पुल ऐसी शोभा दे रहा था, जैसी शोभा आकाश में छायापथ की होती है ॥ ७३ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
आगम्य गगने तस्थुर्द्रष्टुकामास्तदद्भुतम् ॥ ७४ ॥

तब तो देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि लोग उस अद्भुत पुल की रचना देखने को, आकाश में आ खड़े हुए ॥ ७४ ॥

दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ।
ददृशुर्देवगन्धर्वा नलसेतुं सुदुष्करम् ॥ ७५ ॥

देवताओं और गन्धर्वों ने नल का बनाया हुआ, अत्यन्त दुष्कर सौ योजन लंबा और दस योजन चौड़ा पुल देखा ॥ ७५ ॥

आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ।
तदचिन्त्यमसह्यं च अद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ ७६ ॥

कार्य पूरा होने के आनन्द में भर वानर लोग कूदने फाँदने और गर्जने लगे । उस अचिन्तनीय, अद्भुत एवं रोमाञ्चकारी ॥ ७६ ॥

ददृशुः सर्वभूतानि सागरे सेतुबन्धनम् ।
तानिकोटिसहस्राणि वानराणां महौजसाम् ॥ ७७ ॥

सेतु की रचना को सब प्राणियों ने देखा। महाबलवान् लाखों करोड़ों वानर ॥ ७७ ॥

बध्नन्तः सागरे सेतुं जग्मुः पारं महोदधेः ।
विशालः सुकृतः[1] [2]श्रीमान्सुभूमिः[3] सुसमाहितः[4] ॥७८॥

सेतु बाँध कर समुद्र के पार हो गये। नल ने जो पुल बाँधा था, वह बड़ा लंबा चौड़ा था, बड़ा मज़बूत था, सीधा था, नीचा ऊँचा न हो कर समान चौरस था और उसमें गड्ढे भी न थे ॥ ७८ ॥

अशोभत महासेतुः सीमन्त इव सागरे ।
ततः पारे समुद्रस्य गदापाणिर्विभीषणः ॥ ७९ ॥
परेषामभिघातार्थमतिष्ठत्सचिवैः सह ।
सुग्रीवस्तु ततः प्राह रामं सत्यपराक्रमम् ॥ ८० ॥

वह सेतु समुद्र के बीच ऐसा शोभायमान हो रहा था, जैसे स्त्रियों के सिर की माँग। तदनन्तर हाथ में गदा ले विभीषण अपने मंत्रियों सहित समुद्र के उस पार शत्रुओं को मारने के लिये जा खड़े हुए। तब सुग्रीव ने सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी से कहा ॥ ७९ ॥ ८० ॥

हनुमन्तं त्वमारोह अङ्गदं चापि लक्ष्मणः ।
अयं हि विपुलो वीर सागरो मकरालयः ॥ ८१ ॥
वैहायसौ युवामेतौ वानरौ तारयिष्यतः ।
अग्रतस्तस्य सैन्यस्य श्रीमान्रामः सलक्ष्मणः ॥ ८२ ॥

---

१ सुकृतः—दृढतयाकृतः। (गो०) २ श्रीमान्—ऋजुत्वेन कान्तिमान। (गो०) ३ सुभूमिः—निम्नोन्नतत्वरहितः। (गो०) सुसमाहितः—निर्विवरः। (गो०)

जगाम धन्वी धर्मात्मा सुग्रीवेण समन्वितः ।
अन्ये मध्येन गच्छन्ति पार्श्वतोऽन्ये प्लवङ्गमाः ॥ ८३ ॥

हे वीर ! आप हनुमान जी पर और लक्ष्मण जी अङ्गद पर सवार हो लें। क्योंकि यह समुद्र मगर मच्छों का घर है और ये दोनों आकाशचारी वानर हैं, अतः आप दोनों को भलीभाँति समुद्र पार पहुँचा देंगे। तब उस वानरी सेना के आगे आगे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण हाथ में धनुष बाण ले धर्मात्मा सुग्रीव को अपने साथ लिये हुए चले। कोई कोई कपियूथपति बीच में और कोई अगल बगल और कोई पीछे हो लिये ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

सलिले प्रपतन्त्यन्ये मार्गमन्ये न लेभिरे ।
केचिद्वैहायसगताः सुपर्णा इव पुप्लुवुः ॥ ८४ ॥

वानरों की संख्या अत्यधिक और रास्ता सङ्कीर्ण होने के कारण बहुत से वानर पानी में गिर पड़े और बहुत से रास्ता न मिलने के कारण समुद्रतट पर इस पार ठहरे रहे। बहुत से गरुड़ की तरह उड़ कर आकाशमार्ग से गये ॥ ८४ ॥

घोषेण महता तस्य सिन्धोर्घोषं समुच्छ्रितम् ।
भीममन्तर्दधे भीमा तरन्ती हरिवाहिनी ॥ ८५ ॥

समुद्र पार होते समय वानरी सेना के तुमुल शब्द के नीचे समुद्र का सिंहनाद दब गया ॥ ८५ ॥

वानराणां हि सा तीर्णा वाहिनी नलसेतुना ।
तीरे निविविशे राज्ञो बहुमूलफलोदके ॥ ८६ ॥

इस प्रकार नल के बनाये हुए पुल से वह सेना समुद्र के पार हो गयी। उस पार पहुँच, सुग्रीव ने उनको अधिक फलमूलपूर्ण समुद्रतट पर ठहरा दिया ॥ ८६ ॥

तदद्भुतं राघवकर्म दुष्करं
समीक्ष्य देवाः सह सिद्धचारणैः ।
उपेत्य रामं सहसा महर्षिभिः
समभ्यषिञ्चन्सुशुभैर्जलैः[1] पृथक् ॥ ८७ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के इस अद्भुत और दुष्कर कार्य को देख, देवता, सिद्ध, चारण और महर्षि सहसा वहाँ प्रकट हुए और समुद्र जल से अलग अलग श्रीरामचन्द्र जी का अभिषेक करने लगे ॥ ८७ ॥

जयस्व शत्रून्नरदेव मेदिनीं
ससागरां पालय शाश्वतीः समाः ।
इतीव रामं [2]नरदेवसत्कृतं
शुभैर्वचोभिर्विविधैरपूजयन् ॥ ८८ ॥

इति द्वाविंशः सर्गः ॥

और स्तुति कर कहने लगे—हे नरदेव ! आप ब्राह्मणों द्वारा सत्कारित हो और शत्रुओं को पराजित कर दीर्घकाल तक इस ससागरा समस्त पृथिवी का पालन करें ॥ ८८ ॥

युद्धकाण्ड का बाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—※—

१ शुभैर्जलैः—सागरनीरैः । (शि०) २ नरदेवाः—ब्राह्मणाः । (रा०)

त्रयोविंशः सर्गः

—※—

निमित्तानि निमित्तज्ञो दृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः ।
सौमित्रिं सम्परिष्वज्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

शकुनों और अपशकुनों को जानने वाले लक्ष्मण के बड़े भाई श्रीरामचन्द्र जी उस समय के अपशकुनों को देख और लक्ष्मण जी को गले से लगा यह बोले ॥ १ ॥

परिगृह्योदकं शीतं वनानि फलवन्ति च ।
बलौघं संविभज्येमं व्यूह्य[1] तिष्ठेम लक्ष्मण ॥ २ ॥

हे लक्ष्मण ! जिस जगह शीतल जल समीप हो और फल वाले वृक्ष हों, वहीं पर सेना को विभाजित कर और गरुड़ाकार व्यूह रच कर ठहरना उचित है ॥ २ ॥

लोकक्षयकरं भीमं भयं पश्याम्युपस्थितम् ।
निबर्हणं प्रवीराणामृक्षवानररक्षसाम् ॥ ३ ॥

क्योंकि मुझे लोकक्षयकारी भयङ्कर भयप्रद अपशकुन देख पड़ते हैं । इससे जान पड़ता है कि, रीछ, वन्दर और राक्षसों का बड़ा भारी नाश होगा ॥ ३ ॥

वाताश्च कलुषा[2] वान्ति कम्पते च वसुन्धरा ।
पर्वताग्राणि वेपन्ते पतन्ति च महीरुहाः ॥ ४ ॥

---

१ व्यूह्य—गरुड़रूपेण सन्निवेश्य । (गो०) २ कलुषा—रजोव्याप्ता ।

देखो, अन्धड़ चल रहा है, पृथिवी काँप रही है, पर्वतशिखर हिल रहे हैं और वृक्ष टूट टूट कर गिर रहे हैं॥ ४॥

मेघाः क्रव्यादसङ्काशाः परुषाः परुषस्वनाः।
क्रूराः क्रूरं प्रवर्षन्ति मिश्रं शोणितबिन्दुभिः॥ ५॥

गीध, शृगाल, श्येनादि के समान धूसर वर्ण, बुरे रूपवाले मेघ, श्रुतकठोर शब्द कर रहे हैं और क्रूर रूप धारण कर, रुधिर की बूँदों से मिश्रित जल की वर्षा कर रहे हैं॥ ५॥

रक्तचन्दनसङ्काशा सन्ध्या परमदारुणा।
ज्वलतः प्रपतत्येतदादित्यादग्निमण्डलम्॥ ६॥

लाल चन्दन की तरह इस सन्ध्या का रूप कैसा दारुण देख पड़ता है। सूर्यमण्डल से दहकते हुए उल्का समूह गिर रहे हैं॥६॥

दीना दीनस्वराः क्रूराः सर्वतो मृगपक्षिणः।
प्रत्यादित्यं विनर्दन्ति जनयन्तो[1] महद्भयम्॥ ७॥

सूर्य की ओर मुख कर क्रूर स्वभाव वाले पशु पक्षी दीनभाव से करुणा भरे स्वर से बार बार चिल्ला रहे हैं। ये आने वाले बड़े भारी भय की सूचना दे रहे हैं॥ ७॥

रजन्यामप्रकाशस्तु सन्तापयति चन्द्रमाः।
कृष्णरक्तांशुपर्यन्तो लोकक्षय इवोदितः॥ ८॥

रात में प्रकाशशून्य चन्द्रमा काले और लाल मण्डल के बीच उदय हो सन्तापित कर रहा है। ऐसा जान पड़ता है, मानों लोक का नाश करने को उदय हुआ हो॥ ८॥

---

१ जनयन्तः—सूचयन्तः। (गो०)

हस्वो रूक्षोऽप्रशस्तश्च परिवेषः सुलोहितः ।
आदित्ये विमले नीलं लक्ष्म लक्ष्मण दृश्यते ॥ ९ ॥

हे लक्ष्मण ! निर्मल सूर्य के चारों ओर कैसा छोटा किन्तु चौड़ा और रूक्ष लाल लाल मण्डल छाया हुआ है । उसके बिम्ब में काला चिह्न देख पड़ता है ॥ ९ ॥

रजसा महता चापि नक्षत्राणि हतानि च ।
युगान्तमिव लोकानां पश्य शंसन्ति लक्ष्मण ॥१०॥

हे लक्ष्मण ! देखो आकाश में बहुत धूल छायी रहने के कारण नक्षत्र ढके हुए हैं और दिखलाई नहीं पड़ते । इनको देखने से जान पड़ता है कि, युगान्त का समय उपस्थित हुआ है ॥ १० ॥

काकाः श्येनास्तथा गृध्रा नीचैः परिपतन्ति च ।
शिवाश्चाप्यशिवान्नादान्नदन्ति सुमहाभयान् ॥ ११ ॥

काक, श्येन (बाज) और गीध सहसा ऊपर से नीचे गिरते हैं । गीदड़ियाँ अशुभ और महाभयङ्कर बोलियाँ बोल रही हैं ॥ ११ ॥

शैलैः शूलैश्च खड्गैश्च विसृष्टैः कपिराक्षसैः ।
भविष्यत्यावृता भूमिर्मांसशोणितकर्दमा ॥ १२ ॥

इन अपशकुनों को देख जान पड़ता है कि, पत्थरों, शूलों और तलवारों के आघात से वानरों और राक्षसों के माँस और रक्त की कीचड़ से पृथिवी पूर्ण हो जायगी ॥ १२ ॥

क्षिप्रमद्यैव दुर्धर्षां पुरीं रावणपालिताम् ।
अभियाम जवेनैव सर्वतो हरिभिर्वृताः ॥ १३ ॥

सो हम लोग अभी रावण द्वारा रक्षित दुर्धर्ष लङ्कापुरी पर चारों ओर से, बड़े वेग से वानरों को साथ ले चढ़ाई करें ॥ १३ ॥

इत्येवमुक्त्वा धर्मात्मा धन्वी संग्रामधर्षणः ।
प्रतस्थे पुरतो रामो लङ्कामभिमुखो विभुः ॥ १४ ॥

युद्ध में शत्रुओं का तिरस्कार करने वाले धर्मात्मा और धनुषधारी, बलवान् श्रीरामचन्द्र जी, यह कह कर सब के आगे लङ्का की ओर चले ॥ १४ ॥

सविभीषणसुग्रीवास्ततस्ते वानरर्षभाः ।
प्रतस्थिरे विनर्दन्तो निश्चिता द्विषतां वधे ॥ १५ ॥

विभीषण, सुग्रीव और दूसरे वानर भी सिंहनाद करते हुए श्रीरामचन्द्र जी के पीछे शत्रुकुल निर्मूल करने का निश्चय कर हो लिये ॥ १५ ॥

राघवस्य प्रियार्थं तु धृतानां वीर्यशालिनाम् ।
हरीणां कर्मचेष्टाभिस्तुतोष रघुनन्दनः ॥ १६ ॥

इति त्रयोविंशः सर्गः ॥

श्रीरामचन्द्र जी की प्रसन्नता के लिये धैर्यवान् और बलवान् वानरों को युद्ध के लिये कर्म और चेष्टा द्वारा तत्पर देख, (अर्थात् उन वानरों में युद्ध की उमङ्ग या चाव देख) रघुनन्दन श्रीरामचन्द्र जी सन्तुष्ट हुए ॥ १६ ॥

युद्धकाण्ड का तेईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

चतुर्विंशः सर्गः

—※—

सा [1]वीरसमिती राज्ञा विरराज व्यवस्थिता ।
शशिना शुभनक्षत्रा पौर्णमासीव शारदी ॥ १ ॥

समस्त वीर वानरों के दल, महाराज श्रीरामचन्द्र जी द्वारा गरुड़ाकार व्यूह में स्थापित हो, वैसे ही शोभित हुई जैसे नक्षत्र-राजि विराजित शारदीय पूर्णिमा की रात शोभित होती है ॥ १ ॥

प्रचचाल च वेगेन त्रस्ता चैव वसुन्धरा ।
पीड्यमाना बलौघेन तेन सागरवर्चसा ॥ २ ॥

समुद्र के समान विशाल वानर-वाहिनी के वेग से वहाँ की भूमि पीड़ित हुई और डर कर काँप उठी ॥ २ ॥

ततः शुश्रुवुराकृष्टं लङ्कायां काननौकसः ।
भेरीमृदङ्गसंघुष्टं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ ३ ॥

लङ्का में भेरी और मृदङ्ग के शब्द से मिश्रित भयङ्कर और रोमाञ्चकारी शब्द वानरों ने सुना ॥ ३ ॥

बभूवुस्तेन घोषेण संहृष्टा हरियूथपाः ।
अमृष्यमाणास्तं घोषं विनेदुर्घोषवत्तरम् ॥ ४ ॥

उस घोष को सुनने से कपियूथपति बहुत प्रसन्न हुए और उस शब्द को सहन न कर, ये वानर भी बड़े ज़ोर से चिल्लाने लगे ॥ ४ ॥

---

१ वीरसमितिः—वीरसङ्घः । (गो०)

राक्षसास्तु प्लवङ्गानां शुश्रुवुश्चापि गर्जितम् ।
नर्दतामिव दृप्तानां मेघानामम्बरे स्वनम् ॥ ५ ॥

लङ्कावासी राक्षसों ने उन गर्जते और सिंहनाद करते हुए वानरों का ऐसा शब्द सुना जैसा कि, आकाश में मेघों के गरजने से हुआ करता है ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा दाशरथिर्लङ्कां चित्रध्वजपताकिनीम् ।
जगाम मनसा सीतां दूयमानेन चेतसा ॥ ६ ॥

श्रीरामचन्द्र जी रंगबिरंगी, ध्वजा पताकाओं से शोभित लङ्का को देख, सीता का स्मरण कर, अत्यन्त दुःखित हुए ॥ ६ ॥

अत्र सा मृगशावाक्षी रावणेनोपरुध्यते ।
अभिभूता ग्रहेणेव लोहिताङ्गेन रोहिणी ॥ ७ ॥

और सोचने लगे कि, इस समय वह मृगलोचनी जानकी रावण के घर में क़ैद है। सो इस समय उसकी वही शोच्य दशा होगी, जो मङ्गलग्रह से ग्रसी हुई रोहिणी की होती है ॥ ७ ॥

दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य समुद्वीक्ष्य च लक्ष्मणम् ।
उवाच वचनं वीरस्तत्कालहितमात्मनः ॥ ८ ॥

लंबी और गर्म साँस ले तथा लक्ष्मण जी की ओर भलीभाँति निहार, महावीर श्रीरामचन्द्र युद्धयात्रा के समयानुरूप हितप्रद एवं शोक भुलाने वाले (तथा नगर का शोभावर्णनरूपी) वचन बोले ॥ ८ ॥

आलिखन्तीमिवाकाशमुत्थितां पश्य लक्ष्मण ।
मनसेव कृतां लङ्कां नगाग्रे विश्वकर्मणा ॥ ९ ॥

हे लक्ष्मण ! देखो यह लङ्का मानों आकाश को छूना चाहती है। इसको विश्वकर्मा ने पर्वतशिखर के ऊपर बड़े मन से बनाया है ॥ ९ ॥

विमानैर्बहुभिर्लङ्का सङ्कीर्णा भुवि राजते ।
[1]विष्णोः [2]पदमिवाकाशं छादितं पाण्डुरैर्घनैः ॥ १० ॥

पृथिवी के ऊपर अनेक तलों के घरों से युक्त लङ्का ऐसी शोभायमान हो रही है; जैसे सफेद बादलों से ढका हुआ आकाश ॥ १० ॥

पुष्पितैः शोभिता लङ्का वनैश्चैत्ररथोपमैः ।
नानापतङ्गसंघुष्टैः फलपुष्पोपगैः शुभैः ॥ ११ ॥

इसमें पुष्पित वृक्षों से युक्त अनेक वन, चित्ररथवन के तुल्य जान पड़ते हैं। इनमें तरह तरह के पक्षी बोल रहे हैं और विविध प्रकार के फलों और पुष्पों से वृक्ष लदे हुए हैं ॥ ११ ॥

पश्य मत्तविहङ्गानि प्रलीनभ्रमराणि च ।
कोकिलाकुलखण्डानि दोधवीति[3] शिवोऽनिलः ॥ १२ ॥

देखो, मतवाले पक्षी वृक्षों पर बैठे हैं, मधुपान के भूखे भौंरे गूंजते हुए फूलों में घुसे बैठे हैं। कोकिलाओं के झुंड के झुंड बैठे हैं। देखो, कैसी सुखावह हवा बह रही है, जो बार बार वृक्षों को हिला रही है ॥ १२ ॥

इति दाशरथी रामो लक्ष्मणं समभाषत ।
बलं च तद्वै [4]विभजञ्शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ १३ ॥

---

१ विष्णोः—आदित्यस्य । (गो०) २ पदं—स्थानं । आकाशमध्यमिति भावः । (गो०) ३ दोधवीति—पुनः पुनः कम्पयति । (गो०) ४ विभजन्—व्यूहयन् । (गो०)

इस प्रकार दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण से कह कर, नीतिशास्त्रानुसार सेना से व्यूह रचना करवाने लगे ॥ १३ ॥

शशास कपिसेनाया बलमादाय वीर्यवान् ।
अङ्गदः सह नीलेन तिष्ठेदुरसि दुर्जयः ॥ १४ ॥

फिर वीर्यवान् श्रीरामचन्द्र जी ने समस्त कपिसेना को व्यूह रचने की इस प्रकार आज्ञा दी। उन्होंने दुर्जेय नील सहित अङ्गद को गरुड़ व्यूह के वक्षःस्थल पर रहने की आज्ञा दी ॥ १४ ॥

तिष्ठेद्वानरवाहिन्या वानरौघसमावृतः ।
आश्रित्य दक्षिणं पार्श्वमृषभो वानरर्षभः ॥ १५ ॥

(श्रीरामचन्द्र जी ने कहा) इस वानरसेना की दहिनी ओर कपिश्रेष्ठ ऋषभ अपनी अधीनस्थ सेना के साथ रहें ॥ १५ ॥

गन्धहस्तीव दुर्धर्षस्तरस्वी गन्धमादनः ।
तिष्ठेद्वानरवाहिन्याः सव्यं पार्श्वं समाश्रितः ॥ १६ ॥

मतवाले हाथी की तरह अजेय और वेगवान गन्धमादन वानरीसेना की बाईं ओर रहें ॥ १६ ॥

मूर्ध्नि स्थास्याम्यहं युक्तो लक्ष्मणेन समन्वितः ।
जाम्बवांश्च सुषेणश्च [1]वेगदर्शी च वानरः ॥ १७ ॥
ऋक्षमुख्या महात्मानः[2] कुक्षिं रक्षन्तु ते त्रयः ।
जघनं कपिसेनायाः कपिराजोऽभिरक्षतु ॥ १८ ॥

---

१ वेगदर्शी—विशेषणं। (गो०) २ महात्मनः—महाबुद्धयः। (गो०)

सेना के शिरोभाग में लक्ष्मण सहित मैं रहूँगा। रीछों की सेना के अध्यक्ष और महाबुद्धिमान जाम्बवान, और वेगवान वानर सुषेण सेना के कुक्षिस्थान की रक्षा करें। कपिसेना के जंघाभाग की रक्षा कपिराज सुग्रीव (वैसे ही) करें ॥ १७ ॥ १८ ॥

[1]पश्चार्धमिव लोकस्य प्रचेतास्तेजसा वृतः ।
सुविभक्तमहाव्यूहा महावानररक्षिता ॥ १९ ॥

जैसे वरुण पश्चिम दिशा की रक्षा अपने तेज से करते हैं। इस प्रकार भलीभाँति गरुड़ाकार व्यूह की रचना से युक्त और वानरसेनापतियों द्वारा रक्षित ॥ १९ ॥

अनीकिनी सा विबभौ यथा द्यौः साभ्रसम्प्लवा ।
प्रगृह्य गिरिशृङ्गाणि महतश्च महीरुहान् ॥ २० ॥

उस समय वह वानरी सेना ऐसी शोभित हुई, जैसे आकाश मेघों से शोभित होता है। वानरगण गिरिशृङ्गों और बड़े बड़े वृक्षों को ले ॥ २० ॥

आसेदुर्वानरा लङ्कां विमर्दयिषवो रणे ।
शिखरैर्विकिरामैनां लङ्कां मुष्टिभिरेव वा ॥ २१ ॥
इति स्म दधिरे सर्वे मनांसि हरिसत्तमाः ।
ततो रामो महातेजः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ २२ ॥

लङ्का को ध्वस्त करने के लिये चढ़ाई करने की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। वे सब अपने अपने मनों में सोचने लगे कि, पर्वतशिखरों अथवा घूंसों से हम लङ्का को पीस डालेंगे। तब श्रीरामचन्द्र ने सुग्रीव से कहा ॥ २१ ॥ २२ ॥

---

१ पश्चार्ध — पश्चिमांदिशमित्यर्थः। (गो०)

सुविभक्तानि सैन्यानि शुक एष विमुच्यताम् ।
रामस्य वचनं श्रुत्वा वानरेन्द्रो महाबलः ॥ २३ ॥

मित्र ! सेना तो यथास्थान टिक गयी । अब शुक को छोड़ देना चाहिये। श्रीरामचन्द्र जी का यह वचन सुन, महाबली कपिराज सुग्रीव ने ॥ २३ ॥

मोचयामास तं दूतं शुकं रामस्य शासनात् ।
मोचितो रामवाक्येन वानरैश्चाभिपीडितः ॥ २४ ॥

श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा से रावण के उस दूत शुक को छोड़ दिया। श्रीराम की आज्ञा से छूटा हुआ और वानरों द्वारा सताया हुआ ॥ २४ ॥

शुकः परमसंत्रस्तो रक्षोऽधिपमुपागमत् ।
रावणः प्रहसन्नेव शुकं वाक्यमभाषत ॥ २५ ॥

शुक, अत्यन्त डरा हुआ रावण के पास पहुँचा। रावण ने शुक को देख, मुसकुराते हुए पूँछा ॥ २५ ॥

किमिमौ ते सितौ पक्षौ लूनपक्षश्च दृश्यसे ।
कच्चिन्नानेकचित्तानां[1] तेषां त्वं वशमागतः ॥ २६ ॥

हे शुक ! तुम्हारे ये सफेद पंख नोंचे खसोटे क्यों देख पड़ते हैं। तुम कहीं उन चञ्चलमना वानरों के फंदे में तो नहीं फँस गये ॥२६॥

ततः स भयसंविग्नस्तथा राज्ञाभिचोदितः ।
वचनं प्रत्युवाचेदं राक्षसाधिपमुत्तमम् ॥ २७ ॥

---

१ अनेकचित्तानां—चंचलचित्तानाम् । (गो०)

वह भयभीत शुक, राक्षसराज द्वारा पूँछा जाकर, रावण को इस प्रकार उत्तर देता हुआ ॥ २७ ॥

सागरस्योत्तरे *तीरेऽब्रवं ते वचनं तथा ।
यथा सन्देशमक्लिष्टं सान्त्वयञ्श्लक्ष्णया गिरा ॥२८॥

हे राजन्! समुद्र के उत्तरतट पर जा कर, मैंने आपका संदेशा जैसा कि, आपने कहाथा, सुग्रीव को समझाने के लिये मधुर वाणी से कहना आरम्भ किया ॥ २८ ॥

क्रुद्धैस्तैरहमुत्प्लुत्य दृष्टमात्रैः प्लवङ्गमैः ।
गृहीतोस्म्यपि चारब्धो हन्तुं लोप्तुं च मुष्टिभिः ॥२९॥

कि, इतने में मुझे देखते ही क्रुद्ध हो वानरों ने कूद कर मुझे पकड़ लिया और वे मुझे घूँसों की मार से मार डालने को उद्यत हो गये ॥ २९ ॥

नैव सम्भाषितुं शक्याः सम्प्रश्नोऽत्र न लभ्यते ।
प्रकृत्या कोपनास्तीक्ष्णा वानरा राक्षसाधिप ॥ ३० ॥

उन वानरों ने न तो मुझसे कोई बात कही और न मुझे ही कोई प्रश्न पूँछने दिया। हे राक्षसराज! वे सब वानर तो स्वभाव ही से बड़े उग्र और क्रोधी हैं ॥ ३० ॥

स च हन्ता विराधस्य कबन्धस्य खरस्य च ।
सुग्रीवसहितो रामः सीतायाः पदमागतः ॥ ३१ ॥

तत्पश्चात् मैंने विराध, कबन्ध और खर को मारने वाले श्रीरामचन्द्र जी को देखा, जो सुग्रीव के साथ सीता के रहने के स्थान का पता पा कर, यहाँ आये हैं ॥ ३१ ॥

---

* पाठान्तरे —" तीरे ब्रुवंस्ते ।"

स कृत्वा सागरे सेतुं तीर्त्वा च लवणोदधिम्।
एष रक्षांसि [1]निर्धूय धन्वी तिष्ठति राघवः ॥ ३२ ॥

समुद्र का पुल बाँध, लवणसागर को पार कर और राक्षसों को तिनके के समान जान, हाथ में धनुष लिये हुए श्रीरामचन्द्र जी आ पहुँचे हैं ॥ ३२ ॥

ऋक्षवानरमुख्यानामनीकानि सहस्रशः।
गिरमेघनिकाशानां छादयन्ति वसुन्धराम् ॥ ३३ ॥

उनके साथ में बड़े बड़े रीछों और वानरों की हज़ारों सेनाएँ हैं। वे रीछ और वानर पर्वत अथवा मेघ की तरह विशालकाय हैं और उनकी संख्या इतनी अधिक है कि, वे पृथिवी को ढाँपे हुए हैं ॥ ३३ ॥

राक्षसानां बलौघस्य वानरेन्द्रबलस्य च।
नैतयोर्विद्यते सन्धिर्देवदानवयोरिव ॥ ३४ ॥

राक्षसों की सेना और कपिराज की वानरी सेना के बीच मेल होना उसी प्रकार असम्भव है, जिस प्रकार देवता और दानवों में मेल होना सम्भव नहीं ॥ ३४ ॥

पुरा प्रकारामायान्ति क्षिप्रमेकतरं कुरु।
सीतां वाऽस्मै प्रयच्छाशु सुयुद्धं वा प्रदीयताम् ॥ ३५ ॥

वे अब लङ्का पर चढ़ाई करना ही चाहते हैं, अतएव आप अति शीघ्र इन दो में से एक काम करो। या तो आप तुरन्त सीता को दे दें या भलीभाँति कमर कस उनसे लड़ें ॥ ३५ ॥

---

१ निर्धूय—तृणीकृत्य। (गो०)

शुकस्य वचनं श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ।
रोषसंरक्तनयनो निर्दहन्निव चक्षुषा ॥ ३६ ॥

शुक की इन बातों को सुन, रावण कहने लगा। उस समय मारे क्रोध के उसकी आँखें लाल हो रही थीं और ऐसा जान पड़ता था कि, मानों वह नेत्राग्नि से शुक को भस्म कर डालेगा ॥ ३६ ॥

यदि मां प्रति युद्ध्येरन्देवगन्धर्वदानवाः ।
नैव सीतां प्रयच्छामि सर्वलोकभयादपि ॥ ३७ ॥

यदि श्रीरामचन्द्र जी के साथ मुझसे देवता, गन्धर्व और दानव भी लड़ने आवें अथवा समस्त प्राणी मिल कर मुझे भयभीत करें; तो भी मैं सीता को न दूँगा ॥ ३७ ॥

कदा नामाभिधावन्ति राघवं मामकाः शराः ।
वसन्ते पुष्पितं मत्ता भ्रमरा इव पादपम् ॥ ३८ ॥

वह समय कब आवेगा जब मेरे बाण श्रीराम की ओर वैसे ही दौड़ेंगे जैसे मतवाले भौंरे वसन्तऋतु में पुष्पित वृक्षों की ओर दौड़ते हैं ॥ ३८ ॥

कदा तूणीशयैर्दीप्तैर्गणशः कार्मुकच्युतैः ।
शरैरादीपयाम्येनमुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ ३९ ॥

जिस प्रकार जलता हुआ उल्का दिखाने से हाथी भागता है, उसी प्रकार मैं अपने तरकस से निकले हुए चमचमाते बाणों के समूह की मार से, रक्त में डूबे हुए श्रीराम को कब भगाऊँगा ॥ ३९ ॥

तच्चास्य बलमादास्ये बलेन महता वृतः ।
ज्योतिषामिव सर्वेषां प्रभामुद्यन्दिवाकरः ॥ ४० ॥

हे शुक ! जिस प्रकार सूर्य उदय हो कर छोटे छोटे तारों का तेज नष्ट कर डालता है, उसी प्रकार मैं अपनी महती सेना के साथ श्रीराम की सेना को दबा लूँगा ॥ ४० ॥

सागरस्येव मे वेगो मारुतस्येव मे गतिः ।
न हि दाशरथिर्वेद तेन मां योद्धुमिच्छति ॥ ४१ ॥

सागर की तरह मेरा वेग है और पवन की तरह मेरी गति है। यह बात श्रीराम नहीं जानता, इसीसे तो वह मुझसे लड़ना चाहता है ॥ ४१ ॥

न मे तूणीशयान्बाणान्सविषानिव पन्नगान् ।
रामः पश्यति संग्रामे तेन मां योद्धुमिच्छति ॥ ४२ ॥

तरकस में, विषधर साँपों की तरह पड़े हुए मेरे विषैले बाण, श्रीराम को नहीं देख पड़ते, इसीसे वह मेरे साथ लड़ना चाहता है ॥ ४२ ॥

न जानाति पुरा वीर्यं मम युद्धे स राघवः ।
मम चापमयीं वीणां शरकोणैः[१] प्रवादिताम् ॥ ४३ ॥
ज्याशब्दतुमुलां घोरामार्तभीतमहास्वनाम् ।
नाराचतलसन्नादां तां ममाहितवाहिनीम् ।
अवगाह्य महारङ्गं वादयिष्याम्यहं रणे ॥ ४४ ॥

श्रीरामचन्द्र ने मेरे साथ पहिले कभी युद्ध नहीं किया। इसीसे वह मेरा बल पराक्रम नहीं जानता। जिस समय मैं शत्रु की सेनारूपी नदी में डुबकी लगा, अपनी चापमयी वीणा, तीररूपी

१ कोणैः—वीणावादनदण्डैः। (गो०)

गज से बजाऊँगा और जब रोदे की टङ्कार होगी तथा घायलों और भयभीत हुए सैनिकों का हाहाकार सुन पड़ेगा और तीरों की सनसनाहट सुन पड़ेगी ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

न वासवेनापि सहस्रचक्षुषा
यथाऽस्मि शक्यो वरुणेन वा स्वयम् ।
यमेन वा धर्षयितुं शराग्निना
महाहवे वैश्रवणेन वा पुनः ॥ ४५ ॥

इति चतुर्विंशः सर्गः ॥

उस समय न तो सहस्राक्ष इन्द्र की अथवा स्वयं वरुण की अथवा यम की अथवा कुबेर की यह मजाल है कि, इनमें से कोई भी मेरे साथ महायुद्ध में, मेरे बाणाग्नि का सामना कर सके ॥४५॥

युद्धकाण्ड का चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—※—

पञ्चविंशः सर्गः

—※—

सबले सागरं तीर्णे रामे दशरथात्मजे ।
अमात्यौ रावणः [1]श्रीमानब्रवीच्छुक सारणौ ॥ १ ॥

जब श्रीरामचन्द्र जी वानरी सेना सहित समुद्र के इस पार आ गये ; तब प्रमत्त रावण ने शुक और सारण नामक अपने मंत्रियों से कहा ॥ १ ॥

---

१ श्रीमान् इति—मदातिशयोक्तिः । (गो०)

समग्रं सागरं तीर्णं दुस्तरं वानरं बलम् ।
अभूतपूर्वं रामेण सागरे सेतुबन्धनम् ॥ २ ॥

देखो, दुस्तर समस्त सागर को वानरी सेना पार कर आयी। श्रीराम का समुद्र के ऊपर पुल बाँधना भी एक ऐसा काम है, जो इसके पहिले कभी किसी ने नहीं कर पाया था ॥ २ ॥

सागरे सेतुबन्धं तु न [1]श्रद्दध्यां कथञ्चन ।
अवश्यं चापि संख्येयं तन्मया वानरं बलम् ॥ ३ ॥

यद्यपि सागर के ऊपर पुल बांध लेने से मुझे श्रीरामचन्द्र के ऊपर किसी प्रकार श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती, तथापि मुझे यह जान लेना आवश्यक है कि, श्रीरामचन्द्र के साथ कितनी सेना है ॥ ३ ॥

भवन्तौ वानरं सैन्यं प्रविश्यानुपलक्षितौ ।
परिमाणं च वीर्यं च ये च मुख्याः प्लवङ्गमाः ॥ ४ ॥

सो तुम छिप कर वानरी सेना में जाओ और वहाँ जा कर देख आओ कि, वानरी सेना कितनी है, उसकी कैसी शक्ति है। उनमें मुख्य मुख्य वानर कौन कौन हैं? ॥ ४ ॥

मन्त्रिणो ये च रामस्य सुग्रीवस्य च सम्मतः ।
ये पूर्वमभिवर्तन्ते ये च शूराः प्लवङ्गमाः ॥ ५ ॥

श्रीरामचन्द्र और सुग्रीव के कौन कौन मंत्री हैं, जिनकी बातें वे दोनों मानते हैं या जिनका वे दोनों आदर करते हैं। वे कौन शूर हैं, जो सेना के आगे रहते हैं और उनमें जो वास्तव में शूर वानर हैं उन सब का पता लगा लाओ ॥ ५ ॥

---

१ नश्रद्दध्या—मह्यं न रोचते । (शि०)

स च सेतुर्यथा बद्धः सागरे *सलिलाशये ।
निवेशं च यथा तेषां वानराणां महात्मनाम् ॥ ६ ॥

उन लोगों ने सागर पर पुल कैसे बाँधा और वे धैर्यवान वानर किस प्रकार टिके हुए हैं। ये बातें भी जान लेना ॥ ६ ॥

रामस्य व्यवसायं[1] च वीर्यं प्रहरणानि च ।
लक्ष्मणस्य च वीरस्य तत्त्वतो ज्ञातुमर्हथः ॥ ७ ॥

तुम लोग इसका भी ठीक ठीक पता लगाना कि, राम और लक्ष्मण क्या करना चाहते हैं, उनमें बल कितना है, वे किन आयुधों से लड़त हैं ॥ ७ ॥

कश्च सेनापतिस्तेषां वानराणां महौजसाम् ।
एतज्ज्ञात्वा यथातत्वं शीघ्रमागन्तुमर्हथः ॥ ८ ॥

उस बड़ी बलवती वानरी सेना का कौन सेनापति है। इन सब बातों का पता लगा तुम शीघ्र आ जाओ ॥ ८ ॥

इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ ।
हरिरूपधरौ वीरौ प्रविष्टौ वानरं बलम् ॥ ९ ॥

जब रावण ने इस प्रकार आज्ञा दी, तब वे दोनों वीर शुक सारण राक्षस, वानर का रूप धर, वानरी सेना के शिविर में घुसे ॥ ९ ॥

ततस्तद्वानरं सैन्यमचिन्त्यं रोमहर्षणम् ।
संख्यातुं नाध्यगच्छेतां तदा तौ शुकसारणौ ॥ १० ॥

---

१ व्यवसायं—कर्त्तव्यविषयनिश्चयं । (गो०) * पाठान्तरे—" सलिलार्णवे । "

किन्तु वे शुक सारण उस असंख्य और भयावह होने के कारण रोमाञ्चकारी कपिसेना की संख्या न जान पाये ॥ १० ॥

संस्थितं पर्वताग्रेषु *निर्झरेषु गुहासु च ।
समुद्रस्य च तीरेषु वनेषूपवनेषु च ॥ ११ ॥

क्योंकि वह सेना (एक स्थान पर नहीं बल्कि) पर्वत शिखरों पर, झरनों के समीप, गिरिगुहाओं में, समुद्र के तट पर, वनों और उपवनों में फैली हुई पड़ी थी ॥ ११ ॥

तरमाणं च तीर्णं च तर्तुकामं च सर्वशः ।
निविष्टं निविशंश्चैव भीमनादं महाबलम् ॥ १२ ॥

सो भी बहुत सी तो पार हो चुकी थी और बहुत सी अभी पार हो रही थी और बहुत सी पार होने की तैयारी कर रही थी। अनेक वानरसैनिक उस समय डेरे डाल चुके थे और बहुत डेरे डालने के उद्योग में लगे हुए थे। वे सब के सब सिंह की तरह दहाड़ रहे थे और बड़े बलवान थे ॥ १२ ॥

तद्बलार्णवमक्षोभ्यं ददृशाते निशाचरौ ।
तौ ददर्श महातेजाः प्रच्छन्नौ च विभीषणः ॥ १३ ॥

वे दोनों राक्षस अपना असली रूप छिपाये, उस सेनारूपी अक्षोभ्य सागर को देख ही रहे थे कि, इतने में महातेजस्वी विभीषण ने उनको पहिचान लिया ॥ १३ ॥

आचचक्षेऽथ रामाय गृहीत्वा शुकसारणौ ।
तस्येमौ राक्षसेन्द्रस्य मन्त्रिणौ शुकसारणौ ॥ १४ ॥

---

* पाठान्तरे—"निर्दरेषु।"

लङ्कायाः समनुप्राप्तौ चारौ परपुरञ्जय ।
तौ दृष्ट्वा व्यथितौ रामं निराशौ जीविते तदा ॥ १५ ॥

और उन दोनों शुक सारण को पकड़ कर, वे श्रीरामचन्द्र जी के पास ले गये और कहा—हे शत्रु को जीतने वाले ! ये दोनों राक्षस राजा रावण के मंत्री हैं। इनके नाम शुक और सारण हैं। ये लङ्का से यहाँ गुप्तचर बन कर आये हैं। वे श्रीरामचन्द्र जी को देख बहुत व्यथित हुए और जीवन की आशा से भी हाथ धो बैठे ॥ १४ ॥ १५ ॥

कृताञ्जलिपुटौ भीतौ वचनं चेदमूचतुः ।
आवामिहागतौ सौम्य रावणप्रहितावुभौ ॥ १६ ॥

उन्होंने मारे डर के हाथ जोड़ कर यह कहा—हे सौम्य ! हम दोनों रावण के भेजे हुए यहाँ आये हैं ॥ १६ ॥

परिज्ञातुं बलं कृत्स्नं तवेदं रघुनन्दन ।
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा रामो दशरथात्मजः ॥ १७ ॥

हे रघुनन्दन ! हम इसलिये भेजे गये हैं कि, हम तुम्हारी समस्त सेना की संख्या जान लें। दाशरथी श्रीरामचन्द्र जी ने उनके ये वचन सुने ॥ १७ ॥

अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यं सर्वभूतहिते रतः ।
यदि दृष्टं बलं कृत्स्नं वयं वा सुपरीक्षिताः ॥ १८ ॥
यथोक्तं वा कृतं कार्यं छन्दतः प्रतिगम्यताम् ।
अथ किञ्चिददृष्टं वा भूयस्तद्द्रष्टुमर्हथः ॥ १९ ॥
विभीषणो वा कार्त्स्न्येन भूयः संदर्शयिष्यति ।
न चेदं ग्रहणं प्राप्य भेतव्यं जीवितं प्रति ॥ २० ॥

और मुसक्या कर सर्वप्राणिहितैषी श्रीरामचन्द्र जी ने उनसे यह कहा—ठीक है, अगर तुम हमारी समस्त सेना की संख्या जान चुके हो और हम लोगों के बलवीर्य आदि की भलीभाँति परीक्षा ले चुके हो और राक्षसराज की आज्ञा के अनुसार समस्त कार्य पूरा कर चुके हो तो, अब जहाँ तुम चाहो वहाँ चले जाओ। और यदि अभी कुछ देखना रह गया हो तो पुनः तुम देख सकते हो अथवा यदि तुम चाहोगे तो विभीषण ही तुमको भलीभाँति दिखा देंगे। यद्यपि तुम इस समय गिरफ़ार कर लिये गये हो; तथापि तुम्हें अपने जीवन के लिये डरना न चाहिये। अर्थात् तुम मारे न जाओगे ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

न्यस्तशस्त्रौ गृहीतौ वा न दूतौ वधमर्हथः ।
प्रच्छन्नौ च विमुञ्चैतौ चारौ रात्रिंचरावुभौ ॥ २१ ॥
शत्रुपक्षस्य सततं विभीषण विकर्षणौ ।
प्रविश्य नगरीं लङ्कां भवद्भ्यां धनदानुजः ॥ २२ ॥
वक्तव्यो रक्षसां राजा यथोक्तं वचनं मम ।
यद्बलं च समाश्रित्य सीता मे हृतवानसि ॥ २३ ॥

क्योंकि शस्त्ररहित पकड़े गये हो और दूत बन कर आये हो अतः तुम मार डालने योग्य नहीं हो। हे विभीषण! यद्यपि ये रूप बदल कर आये हैं, शत्रु के भेदिये हैं और सुग्रीवादि का भेद लेने आये हैं; तथापि इन दोनों राक्षसचरों को छोड़ दो। (विभीषण से यह कह श्रीरामचन्द्र पुनः उन गुप्तचरों से कहने लगे।) हे राक्षसचरों! लङ्का में जा कर आप लोग कुबेर के भाई राक्षसराज रावण से, मैं जो कहता हूँ सो ज्यों का त्यों कह देना। उससे कहना कि, जिस बलबूते पर तूने मेरी सीता हरी है ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

तद्दर्शय यथाकामं ससैन्यः सहबान्धवः ।
श्वः काल्ये नगरीं लङ्कां सप्रकारां सतोरणाम् ॥ २४ ॥
रक्षसां च बलं पश्य शरैर्विध्वंसितं मया ।
क्रोधं भीममहं मोक्ष्ये ससैन्ये त्वयि रावण ॥ २५ ॥
श्वः काल्ये वज्रवान्वज्रं दानवेष्विव वासवः ।
इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ ॥ २६ ॥

उस अपने बल को अपनी सेना और भाईबन्दों के सहित मुझे दिखला । तू कल सवेरे परकोटे और तोरण द्वारों सहित लङ्कापुरी को तथा समस्त राक्षसी सेना को मेरे बाणों से ध्वस्त हुआ देखेगा ! हे रावण ! कल सवेरे मैं सेना सहित तेरे ऊपर अपना भयङ्कर क्रोध वैसे ही प्रकट करूँगा जैसे वज्रधारी इन्द्र दानवों के ऊपर वज्र छोड़ कर, अपना क्रोध प्रकट करते हैं। इस प्रकार जब श्रीरामचन्द्र जी ने उन दोनों शुक सारण राक्षसों को आज्ञा दी ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

जयेति प्रतिनन्द्यैतौ राघवं धर्मवत्सलम् ।
आगम्य नगरीं लङ्कामब्रूतां राक्षसाधिपम् ॥ २७ ॥

तब वे धर्मवत्सल श्रीरामचन्द्र जी की जयजयकार करते हुए लङ्का में जा, राक्षसराज रावण से बोले ॥ २७ ॥

विभीषणगृहीतौ तु वधार्हौ राक्षसेश्वर ।
दृष्ट्वा धर्मात्मना मुक्तौ रामेणामिततेजसा ॥ २८ ॥

हे राक्षसेश्वर ! हमें मार डालने के लिये विभीषण ने हमें पकड़ लिया था ; किन्तु असीम तेजस्वी धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी ने हमको देखते ही छोड़ दिया ॥ २८ ॥

एकस्थानगता यत्र चत्वारः पुरुषर्षभाः ।
लोकपालोपमाः शूराः कृतास्त्रा दृढविक्रमाः ॥ २९ ॥
रामो दाशरथिः श्रीमाँल्लक्ष्मणश्च विभीषणः ।
सुग्रीवश्च महातेजा महेन्द्रसमविक्रमः ॥ ३० ॥

दाशरथी श्रीरामचन्द्र, शोभासम्पन्न लक्ष्मण, विभीषण और महातेजस्वी एवं इन्द्र के समान पराक्रमी सुग्रीव, ये चारों श्रेष्ठजन एक ही स्थान पर टिके हुए हैं। ये लोकपालों की तरह शूर हैं, शस्त्रविद्या में निपुण हैं और बड़े पराक्रमी हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥

एते शक्ताः पुरीं लङ्कां सप्राकारां सतोरणाम् ।
उत्पाट्य [1]संक्रामयितुं सर्वे तिष्ठन्तु वानराः ॥ ३१ ॥

ये चार अकेले ही परकोटों और तोरणद्वारों सहित लङ्का को उखाड़ कर फेंक सकते हैं। अन्य समस्त वानर भले ही बैठे रहें ॥ ३१ ॥

यादृशं तस्य रामस्य रूपं प्रहरणानि च ।
वधिष्यति पुरीं लङ्कामेकस्तिष्ठन्तु ते त्रयः ॥ ३२ ॥

जिस प्रकार का श्रीराम आदि का रूप है और जैसे उनके हथियार हैं; उनको देखते हुए कहा जा सकता है कि, श्रीराम अकेले ही लङ्का का नाश कर सकते हैं। लक्ष्मण सुग्रीव और विभीषण, इन तीनों की सहायता की भी उनको आवश्यकता नहीं है ॥ ३२ ॥

रामलक्ष्मणगुप्ता सा सुग्रीवेण च वाहिनी ।
बभूव दुर्धर्षतरा सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ ३३ ॥

---

१ संक्रामयितुं—अन्यत्र क्षेप्तुं । (गो०)

श्रीराम लक्ष्मण और सुग्रीव से रक्षित वानरी सेना, इन्द्र सहित देवताओं और दानवों से भी अति अजेय हो गयी है ॥ ३३ ॥

प्रहृष्टरूपा ध्वजिनी वनौकसां
महात्मनां सम्प्रति योद्धुमिच्छताम् ।
अलं विरोधेन शमो विधीयतां
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥ ३४ ॥

इति पञ्चविंशः सर्गः ॥

हे राजन् ! वानरी सेना में प्रसन्नता छायी हुई है और वे सब दृढ़ मनस्क हैं और तुरन्त युद्ध करना चाहते हैं। अतएव आप अपना क्रोध शान्त कीजिये और दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र को जानकी दे कर, उनके साथ शत्रुता की इति श्री कर डालिये ॥ ३४ ॥

युद्धकाण्ड का पच्चीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—※—

षड्विंशः सर्गः

—※—

तद्वचः पथ्यमक्लीबं सारणेनाभिभाषितम् ।
निशम्य रावणो राजा प्रत्यभाषत सारणम् ॥ १ ॥

सारण के हितकर और अकातर वचन सुन, राक्षसराज रावण ने सारण को उत्तर देते हुए कहा ॥ १ ॥

यदि मामभियुञ्जीरन्देवगन्धर्वदानवः ।
नैव सीतां प्रदास्यामि सर्वलोकभयादपि ॥ २ ॥

यदि देवता, गन्धर्व और दानव मेरे ऊपर चढ़ाई करें, अथवा समस्त लोक ही मेरे विरुद्ध हो जांय, तो भी मैं भयभीत हो कभी सीता, श्रीरामचन्द्र को न दूँगा ॥ २ ॥

त्वं तु सौम्य परित्रस्तो हरिभिर्निर्जितो भृशम् ।
प्रतिप्रदानमद्यैव सीतायाः साधु मन्यसे ॥ ३ ॥

हे सौम्य ! तुम तो वानरों से कष्ट पा कर डर गये हो। इसीसे तो तुम आज ही सीता को लौटा देना अच्छा समझते हो ॥ ३ ॥

को हि नाम [1]सपत्नो मां समरे जेतुमर्हति ।
इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः ॥ ४ ॥

ऐसा कौन शत्रु है, जो मुझे युद्ध में जीत सके। राक्षसराज रावण, इस प्रकार के कठोर वचन कह ॥ ४ ॥

आरुरोह ततः श्रीमान्प्रसादं हिमपाण्डरम् ।
बहुतालसमुत्सेधं रावणोऽथ दिदृक्षया ॥ ५ ॥

बर्फ़ की तरह सफेद रंग की अटारी पर सेना देखने की इच्छा से चढ़ गया। वह अटारी कई तालवृक्षों के तर ऊपर रखने की ऊँचाई से भी कहीं बढ़ कर ऊँची थी ॥ ५ ॥

ताभ्यां चराभ्यां सहितो रावणः क्रोधमूर्छितः ।
पश्यमानः समुद्रं च पर्वतांश्च वनानि च ॥ ६ ॥
ददर्श पृथिवीदेशं[2] सुसम्पूर्णं प्लवङ्गमैः ।
तदपारमसङ्ख्येयं वानराणां महद्बलम् ॥ ७ ॥

---

१ सपत्नः — शत्रुः। (गो०) २ पृथ्वीदेशं—त्रिकूटाधः प्रदेशं। (गो०)

उस समय रावण बड़ा कुपित था और उसके साथ वे दोनों राक्षसदूत शुक और सारण भी थे। उस अटारी से उसने समुद्र वन, त्रिकूटाचल पर्वत की तराई और पहाड़ों पर बंदर ही बंदर देखे। उसने उस अपार असंख्य और बड़े बलवान वानरों की सेना को देखा ॥ ६ ॥ ७ ॥

आलोक्य रावणो राजा परिपप्रच्छ सारणम् ।
एषां वानरमुख्यानां के शूराः के महाबलाः ॥ ८ ॥

उस सेना का अवलोकन कर, रावण सारण से पूँछने लगा। इन वानरों में कौन कौन मुख्य, कौन कौन वीर और बड़े बड़े बलवान् हैं ? ॥ ८ ॥

के पूर्वमभिवर्तन्ते महोत्साहाः समन्ततः ।
केषां शृणोति सुग्रीवः के वा यूथपयूथपाः ॥ ९ ॥

और कौन कौन वानर अत्यन्त उत्साहित हो चारों ओर से वानरी सेना की रक्षा करते हैं ? सुग्रीव किसकी सुनते हैं, अर्थात् किसे अधिक मानते हैं ? यूथपतियों के यूथपति कौन हैं ॥ ९ ॥

सारणाचक्ष्व तत्त्वेन के प्रधानाः प्लवङ्गमा ।
सारणो राक्षसेन्द्रस्य वचनं परिपृच्छतः ॥ १० ॥

हे सारण ! तुम ठीक ठीक बतलाओ कि, इस वानरी सेना में प्रधान वानर कौन कौन हैं ? राक्षसराज रावण के इन प्रश्नों को सुन ॥ १० ॥

आचचक्षेऽथ मुख्यज्ञो *मुख्यांस्तत्र वनौकसः ।
एष योभिमुखो लङ्कां नर्दस्तिष्ठति वानरः ॥ ११ ॥

---

* पाठान्तरे—"मुख्यांस्तांस्तु ।"

मुख्य अमुख्य वानर वीरों को जानने वाला सारण, मुख्य वानरों के नाम, धाम, बल, विक्रम का निरूपण करके कहने लगा। वह बोला—हे रावण! यह वानर जो लङ्का की ओर मुख कर गरज रहा है ॥ ११ ॥

यूथपानां सहस्राणां शतेन परिवारितः।
यस्य घोषेण महता सप्राकारा सतोरणा ॥ १२ ॥

सो इसके साथ एक लाख वानर यूथपति हैं। इसके सिंहनाद सेपरकोटे, तोरण द्वारों ॥ १२ ॥

लङ्का प्रवेपते सर्वा सशैलवनकानना।
सर्वशाखामृगेन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ॥ १३ ॥

पहाड़ों, वनों, और उपवनों सहित समस्त लङ्का काँप रही है और जो समस्त वानरों के राजा महाबुद्धिमान सुग्रीव ॥ १३ ॥

बलाग्रे तिष्ठते वीरो नीलो नामैष यूथपः।
बाहू प्रगृह्य यः पद्भ्यां महीं गच्छति वीर्यवान् ॥ १४ ॥

की सेना के आगे खड़ा है, इसका नाम नील है और यह बड़ा वीर और यूथपति है। जो बलवान वानर बाँहों को उठाए, पृथिवी पर टहल रहा है ॥ १४ ॥

लङ्कामभिमुखः क्रोधादभीक्षणं च विजृम्भते।
गिरिश्रृङ्गप्रतीकाशः पद्मकिञ्जल्कसन्निभः ॥ १५ ॥

और जो लङ्का की ओर मुख कर और क्रोध में भर तिरछी दृष्टि से देखता हुआ जँमुहाई ले रहा है, और जो पर्वतशिखर के समान विशाल शरीरधारी है तथा जिसके शरीर का रंग कमलरज की तरह पीला है ॥ १५ ॥

स्फोटयत्यभिसंरब्धो लाङ्गूलं च पुनः पुनः ।
यस्य लाङ्गूलशब्देन स्वनन्ति प्रदिशो दश ॥ १६ ॥

और जो क्रोध में भर अपनी पूँछ बारंबार पृथिवी पर पटक रहा है और जिसकी पूँछ की फटकार के शब्द से दसों दिशाएँ प्रतिध्वनित हो रही हैं ॥ १६ ॥

एष वानराजेन सुग्रीवेणाभिषेचितः ।
यौवराज्येऽङ्गदो नाम त्वामाह्वयति संयुगे ॥ १७ ॥

सो यह अङ्गद नाम का वानर है। इसे कपिराज सुग्रीव ने यौवराज्यपद पर अभिषिक्त किया है और यह तुमको युद्ध के लिये ललकार रहा है ॥ १७ ॥

वालिनः सदृशः पुत्रः सुग्रीवस्य सदा प्रियः ।
राघवार्थे पराक्रान्तः शक्रार्थे वरुणो यथा ॥ १८ ॥

यह बालि का पुत्र अङ्गद अपने पिता के समान बलवान और पराक्रमी है और सुग्रीव का सदा प्रियपात्र है। जिस प्रकार वरुण जी इन्द्र के लिये पराक्रम प्रदर्शित करने को उद्यत रहते हैं; उसी प्रकार यह भी श्रीरामचन्द्र जी के लिये पराक्रम दिखाने को तत्पर रहता है ॥ १८ ॥

एतस्य सा मतिः सर्वा यद्दृष्टा जनकात्मजा ।
हनूमता वेगवता राघवस्य हितैषिणा ॥ १९ ॥

श्रीरामचन्द्र के हितैषी वेगवान हनुमान जी, जो लङ्का में आ जानकी को देख गये थे, सो उन्होंने ये समस्त कार्य इन्हीं अङ्गद की सम्मति से किये थे ॥ १९ ॥

बहूनि वानरेन्द्राणामेष यूथानि वीर्यवान् ।
परिगृह्याभियाति त्वां स्वेनानीकेन दुर्जयः ॥ २० ॥

बलवान अङ्गद असंख्य वानरयूथपतियों के साथ तुम्हारा मर्दन करने को आगे बढ़ा आता है । यह दुर्जेय है ॥ २० ॥

अनु वालिसुतस्यापि बलेन महतावृतः ।
वीरस्तिष्ठति संग्रामे [1]सेतुहेतुरयं नलः ॥ २१ ॥

जिस वीर ने समुद्र के ऊपर पुल बांधा है, वह नल नामक वीर वानर लड़ने की अभिलाषा करता हुआ बड़ी भारी सेना के साथ वालिसुत अङ्गद के पीछे खड़ा हुआ है ॥ २१ ॥

ये तु विष्टभ्य[2] गात्राणि क्ष्वेलयन्ति नदन्ति च ।
उत्थाय च विजृम्भन्ते क्रोधेन हरिपुङ्गवाः ॥ २२ ॥

ये जो कपिश्रेष्ठ अपने अङ्गों को मल मल कर, सिंहनाद करते हुए गरज रहे हैं तथा उचक उचक कर क्रोध में भर जंभुहाई ले रहे हैं ॥ २२ ॥

एते दुष्प्रसहा घोरश्चण्डाश्चण्डपराक्रमाः ।
अष्टौ शतसहस्राणि दशकोटिशतानि च ॥ २३ ॥

ये सब शत्रुओं के लिये असह्य और प्रचण्ड पराक्रमी हैं। इनकी संख्या एक खर्व आठ लाख है ॥ २३ ॥

य एनमनुगच्छन्ति वीराश्चन्दनवासिनः ।
एषैवाशंसते[3] लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ॥ २४ ॥

---

१ सेतुहेतुः—सेतुकर्त्ता । (गो०) २ विष्टभ्य—उन्नम्य । (गो०)
३ आशंसते—प्रार्थयते । (गो०)

उनके पीछे जो वीर वानर हैं, वे सब चन्दनवन निवासी हैं, ये अपनी सेना द्वारा लङ्का को ध्वस्त करने की आज्ञा पाने के लिये प्रार्थना करते हैं ॥ २४ ॥

श्वेतो रजतसङ्काशश्चपलो भीमविक्रमः ।
बुद्धिमान्वानरो वीरस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ २५ ॥

श्वेत नामक वानर, जिसका रंग चाँदी की तरह सफेद है और जो बड़ा पराक्रमी बुद्धिमान और तीनों लोकों में एक प्रसिद्ध वीर समझा जाता है ॥ २५ ॥

तूर्णं सुग्रीवमागम्य पुनर्गच्छति सत्वरः ।
विभजन्वानरीं सेनामनीकानि प्रहर्षयन् ॥ २६ ॥

देखिये, कैसी शीघ्रता से सुग्रीव के पास जाता और लौट आता है। जो वानरी सेना को विभाजित कर रहा है, जो अपनी सेना को प्रसन्न कर रहा है ॥ २६ ॥

यः पुरा गोमतीतीरे रम्यं पर्येति[1] पर्वतम् ।
नाम्नां सङ्कोचनो नाम नानानगयुतो गिरिः ॥ २७ ॥
तत्र राज्यं प्रशास्त्येष कुमुदो नाम यूथपः ।
योऽसौ शतसहस्राणां सहस्रं परिकर्षति[2] ॥ २८ ॥

जो पहिले गोमती तटवर्ती रमणीक पर्वत के चारों ओर घूमा करता था, तथा अब अनेक पर्वतों से घिरे हुए सङ्कोचन नामक पर्वत पर राज्य करता है। इसका नाम कुमद है और यह भी एक यूथपति है। यह एक लाख वानर लेकर आया हुआ है ॥२७॥२८॥

---

१ पर्येति—परितः सञ्चरति। (गो०) २ परिकर्षति—आनयति। (गो०)

यस्य वाला बहुव्यामा दीर्घा लाङ्गूलमाश्रिताः ।
ताम्राः पीताः सिताः श्वेताः प्रकीर्णा घोरकर्मणः ॥२९॥

जिसकी बड़ी भारी पूँछ के इधर उधर बहुत लंबे लंबे बाल लटकते हैं और जिनमें कुछ लाल, कुछ पीले, कुछ धौले, कुछ सफेद हैं और बड़े भयानक जान पड़ते हैं ॥ २९ ॥

अदीनो रोषणश्चण्डः संग्राममभिकाङ्क्षति ।
एषोऽप्याशंसते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ॥ ३० ॥

जो अदीन है और बड़ा क्रोधी है इसका नाम चण्ड है। यह बड़ा संग्रामप्रिय है। यह भी अपनी सेना को साथ ले लङ्का को ध्वस्त करने की आज्ञा पाने के लिये सुग्रीव से प्रार्थना करता है ॥ ३० ॥

यस्त्वेष सिंहसङ्काशः कपिलो *दीर्घकेसरः ।
निभृतः[1] प्रेक्षते लङ्कां दिधक्षन्निव चक्षुषा ॥ ३१ ॥

यह सिंह के समान पीले रंग का वानर, जिसकी गर्दन पर लंबे लंबे बाल हैं, जो लङ्का की ओर ऐसे घूर रहा है, मानों दृष्टि ही से लङ्का को भस्म कर डालेगा ॥ ३१ ॥

विन्ध्यं कृष्णगिरिं सह्यं पर्वतं च सुदर्शनम् ।
राजन्सततमध्यास्ते रम्भो नामैष यूथपः ॥ ३२ ॥

और जिसका विन्ध्य, कृष्णगिरि, सह्याद्रि तथा सुदर्शन नामक तीन पर्वतों पर रहने का स्थान है; हे राजन्! यह रम्भ नाम का यूथपति है ॥ ३२ ॥

---

१ निभृतः—एकाग्रः । (रा०) * पाठान्तरे—" दीर्घलोचनः ।"

शतं शतसहस्राणां त्रिंशच्च हरिपुङ्गवाः ।
यमेते वानराः शूराश्चण्डाश्चण्डपराक्रमाः ॥ ३३ ॥

परिवार्यानुगच्छन्ति लङ्कां मर्दितुमोजसा ।
यस्तु कर्णौ विवृणुते जृम्भते च पुनः पुनः ॥ ३४ ॥

इसको एक करोड़ तीस प्रचण्ड शूरवीर और पराक्रमी वानर घेर कर चलते हैं। यह भी अपने पराक्रम से लङ्का को ध्वस्त करना चाहता है। देखो, यह जो अपने कानों को सकोड़ता और बार बार जँभाई लेता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

न च संविजते मृत्योर्न च युद्धाद्विधावति ।
प्रकम्पते च रोषेण तिर्यक्च पुनरीक्षते ॥ ३५ ॥

पश्यँल्लाङ्गूलमपि च क्ष्वेलते च महाबलः ।
महाजवो वीतभयो रम्यं साल्वेयपर्वतम् ॥ ३६ ॥

यह न तो मरने से डरता है और न युद्ध से मुँह मोड़ता है। यह मारे क्रोध के थर थर काँप रहा है और तिरछी दृष्टि से देख रहा है। देखिये, पूँछ फटकार कर कैसा सिंहनाद कर रहा है तथा अपने बलविक्रम पर निर्भर रह कर, निर्भय हो साल्वेय नामक रमणीय पहाड़ पर रहता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

राजन्सततमध्यास्ते शरभो नाम यूथपः ।
एतस्य बलिनः सर्वे विहारा नाम यूथपाः ॥ ३७ ॥

हे राजन्! यह शरभ नामक यूथपति है। इसके अधीनस्थ यूथप, विहार नाम से पुकारे जाते हैं ॥ ३७ ॥

राजञ्शतसहस्राणि चत्वारिंशत्तथैव च ।
यस्तु मेघ इवाकाशं महानावृत्य तिष्ठति ॥ ३८ ॥

हे राजन् ! उनकी संख्या एक लाख चालीस हज़ार है । यह जो आकाश को बड़े मेघ की तरह ढके हुए ॥ ३८ ॥

मध्ये वानरवीराणां सुराणामिव वासवः ।
भेरीणामिव सन्नादो यस्यैष श्रूयते महान् ॥ ३९ ॥
घोषः शाखामृगेन्द्राणां संग्राममभिकाङ्क्षताम् ।
एष पर्वतमध्यास्ते पारियात्रमनुत्तमम् ॥ ४० ॥

वानरों के बीच वैसे ही बैठा है, जैसे देवताओं के बीच इन्द्र और जिसकी सेना के युद्धकांक्षी वानरों का महागर्जन नगाड़ों के शब्द की तरह सुनाई पड़ता है, उत्तम पारियात्र पर्वत पर रहता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

युद्धे दुष्प्रसहो नित्यं पनसो नाम यूथपः ।
एनं शतसहस्राणां शतार्धं पर्युपासते ॥ ४१ ॥

युद्ध में इसका वार सहना कठिन है । यह यूथपति है और इसका नाम पनस है । इसके अधीनस्थ डेढ़ लाख वानरवीर हैं ॥ ४१ ॥

यूथपा यूथपश्रेष्ठं येषां यूथानि भागशः ।
यस्तु भीमां प्रवल्गन्तीं चमूं तिष्ठति शोभयन् ॥ ४२ ॥
स्थितां तीरे समुद्रस्य द्वितीय इव सागरः ।
एष दर्दरसङ्काशो विनतो नाम यूथपः ॥ ४३ ॥

इन वानर यूथपतियों के यूथ पृथक् पृथक् हैं । जो भयङ्कर रूप से खलबलाती और समुद्रतट पर स्थित तथा दूसरे समुद्र की तरह

शोभायमान सेना को शोभित कर रहा है और जो दर्दुराचल की तरह बड़ा दिखलाई पड़ता है, यह विनत नामक यूथपति है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

पिबंश्चरति पर्णासां नदीनामुत्तमां नदीम् ।
षष्टिः शतसहस्राणि बलमस्य प्लवङ्गमाः ॥ ४४ ॥

यह घूमता फिरता रहता है और सदा नदियों में श्रेष्ठ पर्णासा (पनासा) नदी का पानी पिया करता है। इसकी सेना में साठ लाख वानर हैं ॥ ४४ ॥

त्वामाह्वयति युद्धाय क्रोधनो नाम यूथपः ।
विक्रान्ता बलवन्तश्च यथा यूथानि भागशः ॥ ४५ ॥

यह देखिये क्रोधन नामक यूथपति तुमको युद्ध करने के लिये ललकार रहा है। इसके अधीनस्थ सैनिक बड़े बलवान और पराक्रमी हैं और वे सैनिक यूथों में विभक्त हैं ॥ ४५ ॥

यस्तु गैरिकवर्णाभं वपुः [1]पुष्यति वानरः ।
अवमत्य सदा सर्वान्वानरान्बलदर्पितान् ॥ ४६ ॥

जिसके शरीर का रंग गेरू जैसा है और जो युद्ध करने की आशा से आनन्दित हो अपने शरीर को फुला रहा है और जो अपने बल के दर्प से दर्पित हो, अन्य वानरों को सदा तुच्छ समझा करता है; ॥ ४६ ॥

गवयो नाम तेजस्वी त्वां क्रोधादभिवर्तते ।
एनं शतसहस्राणि सप्ततिः पर्युपासते ।
एषैवाशंसते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ॥ ४७ ॥

---

१ पुष्यति—युद्धहर्षादभिवर्धयति (गो०)

तेजस्वी गवय नामक यूथपति है । यह क्रोध में भरा हुआ आपका सामना करने की बाट जोह रहा है। इसके अधिकार में सत्तर लाख वीर वानर हैं । यह अकेला ही अपनी सेना के साथ लङ्का को ध्वस्त करना चाहता है ॥ ४७ ॥

एते दुष्प्रसहा घोरा बलिनः कामरूपिणः ।
यूथपा यूथपश्रेष्ठा एषां यूथानि भागशः ॥ ४८ ॥

इति षड्विंशः सर्गः ॥

हे महाराज ! ये सब के सब दुस्सह, भयङ्कर, बलवान् एवं कामरूपी वानरयूथ और यूथपश्रेष्ठ हैं । इनके अधीनस्थ यूथ, पृथक् पृथक् हैं ॥ ४८ ॥

युद्धकाण्ड का छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—※—

सप्तविंशः सर्गः

—※—

तांस्तु तेऽहं प्रवक्ष्यामि प्रेक्षमाणस्य यूथपान् ।
राघवार्थे पराक्रान्ता ये न रक्षन्ति जीवितम् ॥ १ ॥

सारन बोला—हे राजन् ! आप जिन पराक्रमी यूथपों को देख रहे हैं, वे अपनी जान को हथेली पर रखे हुए, श्रीरामचन्द्र जी के लिये बलविक्रम प्रकट करने को तत्पर हैं । मैं अब इन्हीं यूथपतियों का और भी वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

स्निग्धा यस्य बहुव्यामा *बाला लाङ्गूलमाश्रिताः ।
ताम्राः पीताः सिताः श्वेताः प्रकीर्णा घोरकर्मणः ॥ २ ॥

* पाठान्तरे—" दीर्घ लाङ्गूलमाश्रिताः ।"

जिसकी पूँछ के बाल चिकने लंबे और बड़े सघन हैं तथा जिनकी रंगत, लाल, पीली, धुमैली, सफेद है और जो पूँछ के इधर उधर छिटके हुए बड़े भयङ्कर जान पड़ते हैं ॥ २ ॥

प्रगृहीताः प्रकाशन्ते सूर्यस्येव मरीचयः ।
पृथिव्यां चानुकृष्यन्ते हरो नामैष यूथपः ॥ ३ ॥

और जो सूर्य की किरनों की तरह चमक रहे हैं और जो पूँछ झटकारने से खड़े हो जाते और जो चलते समय भूमि पर लथिरते जाते हैं, सो वही हर नाम का यूथपति है ॥ ३ ॥

यं पृष्ठतोऽनुगच्छन्ति शतशोथ सहस्रशः ।
द्रुमानुद्यम्य सहसा लङ्कारोहणतत्पराः ॥ ४ ॥

इसके ही पीछे सैकड़ों, हज़ारों वानरवीर चलते हैं, जो वृक्षों को लिये हुए, सहसा लङ्का पर चढ़ाई करने को तैयार हैं ॥ ४ ॥

एष कोटिसहस्रेण वानराणां महौजसाम् ।
आकाङ्क्षते त्वां संग्रामे जेतुं परपुरञ्जय ॥ ५ ॥

हे परपुरञ्जय ! ये सहस्र कोटि बड़े बलवान् वानर तुमको युद्ध में जीतने की आकांक्षा रखते हैं ॥ ५ ॥

यूथपा हरिराजस्य किङ्कराः समुपस्थिताः ।
नीलानिव महामेघांस्तिष्ठतो यांस्तु पश्यसि ॥ ६ ॥
असिताञ्जनसङ्काशान्युद्धे सत्यपराक्रमान् ।
असंख्येयाननिर्देश्यान्परं पारमिवोदधेः ॥ ७ ॥

कपिराज के ये सब किङ्कर यूथपति हैं (वेतनभोगी यूथपति) और युद्ध करने के लिये उपस्थित हुए हैं। हे रावण ! नील मेघ

की तरह आप जिनको खड़ा देखते हैं और काले अञ्जन की तरह जिनके शरीर का रंग है और जो युद्ध में यथार्थ पराक्रम प्रदर्शित किया करते हैं, असंख्य हैं, समुद्र के अपर पार की तरह इनकी संख्या नहीं बतलायी जा सकती ॥ ६ ॥ ७ ॥

पर्वतेषु च ये केचिद्विषमेषु नदीषु च।
एते त्वामभिवर्तन्ते राजनृक्षाः सुदारुणाः ॥ ८ ॥

हे राजन्! इनमें से बहुत से तो पहाड़ों पर, बहुत से ऊटपट (ऊँची नीची) जगहों में और बहुत से नदियों के तटों पर रहा करते हैं। हे राजन्! ये सब अत्यन्त दारुण रीछ आपका सामना करने को तैयार हैं ॥ ८ ॥

एषां मध्ये स्थितो राजन्भीमाक्षो भीमदर्शनः।
पर्जन्य इव जीमूतैः समन्तात्परिवारितः ॥ ९ ॥
ऋक्षवन्तं गिरिश्रेष्ठमध्यास्ते नर्मदां पिबन्।
सर्वर्क्षाणामधिपतिर्धूम्रो नामैष यूथपः ॥ १० ॥

हे राजन्! इनके बीच में आप जिसे खड़ा देख रहे हैं, जिसके भयङ्कर नेत्र और भयङ्कर रूप है और जो मेघों से घिरा हुआ महामेघ की तरह रीछों से घिरा हुआ है, वह सब रीछों का राजा धूम्राक्ष नामक सेनापति है। यह ऋक्षवान पर्वत पर रहा करता है और नर्मदा नदी का पानी पिया करता है ॥ ९ ॥ १० ॥

यवीयानस्य तु भ्राता पश्यैनं पर्वतोपम्।
भ्रात्रा समानो रूपेण विशिष्टस्तु पराक्रमैः ॥ ११ ॥

इसको देखिये, यह इसका छोटा भाई, पर्वत की तरह विशाल शरीरधारी है और अपने बड़े भाई जैसा ही रूप वाला है। किन्तु पराक्रम में अपने भाई से बढ़ कर है ॥ ११ ॥

स एष जाम्बवान्नाम महायूथपयूथपः ।
*प्रक्रान्तो गुरुवर्ती च सम्प्रहारेष्वमर्षणः ॥ १२ ॥

उसीका नाम जाम्बवान है और वह यूथपतियों का भी यूथपति अर्थात् सरदार है। बड़ा पराक्रमी है, बड़ों का सम्मान करने वाला है और बड़े क्रोध में भर आक्रमण करता है ॥ १२ ॥

एतेन साह्यं सुमहत्कृतं शक्रस्य धीमता ।
दैवासुरे जाम्बवता लब्धाश्च बहवो वराः ॥ १३ ॥

जब देवासुर-संग्राम हुआ था, तब उस बुद्धिमान ने देवराज की बड़ी सहायता की थी और उस सहायता के उपलक्ष्य में उसने बहुत से वरदान भी पाये थे ॥ १३ ॥

आरुह्य पर्वताग्रेभ्यो महाभ्रविपुलाः शिलाः ।
मुञ्चन्ति विपुलाकारा न मृत्योरुद्विजन्ति च ॥ १४ ॥

उसकी सेना के बड़े बड़े आकार के रीछ पर्वतशिखरों पर चढ़ कर, वहाँ से बड़ी भारी भारी शिलायें फेंकते हैं और मौत से भी नहीं डरते ॥ १४ ॥

राक्षसानां च सदृशाः पिशाचानां च लोमशाः ।
एतस्य सैन्या बहवो विचरन्त्यग्नितेजसः ॥ १५ ॥

उनके शरीर में बड़े बड़े बाल हैं, वे राक्षस और पिशाचों की तरह क्रूर स्वभाव हैं। जाम्बवान की अग्नि के समान तेजसम्पन्न बड़ी सैना है, जो इधर उधर विचरा करती हैं ॥ १५ ॥

यं त्वेनमभिसंरब्धं प्लवमानमिव स्थितम् ।
प्रेक्षन्ते वानराः सर्वे स्थिता यूथपयूथपम् ॥ १६ ॥

---

* पाठान्तरे—" प्रशान्तो । "

सब वानरगण जिसके कूदने का तमाशा देख रहे हैं, वह भी अनेक यूथपतियों के यूथों का नायक है ॥ १६ ॥

एष राजन्सहस्राक्षं पर्युपास्ते हरीश्वरः ।
बलेन बलसम्पन्नो दम्भो नामैष यूथपः ॥ १७ ॥

हे राजन्! यह वानरराज इन्द्र के पास रहने वाला है। देखिये बड़ी भारी सेना को साथ लिये हुए यह दम्भ नामक यूथप है ॥ १७ ॥

यः स्थितं योजने शैलं गच्छन्पार्श्वेन सेवते ।
ऊर्ध्वं तथैव कायेन गतः प्राप्नोति योजनम् ॥ १८ ॥

यह एक योजन के अन्तर पर स्थित पर्वत की बगल से कूद जाता है तथा उछल कर आकाशमार्ग से एक योजन तक चला जाता है। अथवा जिसके गमनकाल में एक एक कदम में एक एक योजन के पर्वत पार्श्वस्थ अर्थात् अत्यन्त निकटवर्ती हो जाते हैं और जो शरीर से उछलने पर एक कुलांच में एक योजन कूद जाता है। अर्थात् इसके शरीर की ऊँचाई एक योजन की है ॥ १८ ॥

यस्मान्न परमं रूपं चतुष्पादेषु विद्यते ।
श्रुतः सन्नादनो नाम वानराणां पितामहः ॥ १९ ॥

अतएव चौपायों में इसके समान शरीर वाला और कोई जन्तु नहीं है। सो यह सन्नादन नामक यूथपति वानरों का पितामह है ॥ १६ ॥

येन युद्धं पुरा दत्तं रणे शक्रस्य धीमता ।
पराजयश्च न प्राप्तः सोऽयं यूथपयूथपः ॥ २० ॥

इसने बुद्धिमान इन्द्र के साथ युद्ध किया, परन्तु हारा नहीं—सो यह भी यूथपतियों का सरदार है ॥ २० ॥

यस्य विक्रममाणस्य शक्रस्येव पराक्रमः ।
एष गन्धर्वकन्यायामुत्पन्नः कृष्णवर्त्मनः ॥ २१ ॥

यह पराक्रम में इन्द्र के समान है। यह गन्धर्वकन्या के गर्भ से अग्नि द्वारा उत्पन्न हुआ है ॥ २१ ॥

तदा दैवासुरे युद्धे साह्यार्थं त्रिदिवौकसाम् ।
यस्य वैश्रवणो राजा जम्बूमुपनिषेवते ॥ २२ ॥
यो राजा पर्वतेन्द्राणां बहुकिन्नरसेविनाम् ।
विहारसुखदो नित्यं भ्रातुस्ते राक्षसाधिप ॥ २३ ॥
तत्रैव वसति श्रीमान्बलवान्वानरर्षभः ।
युद्धेष्वकत्थनो नित्यं क्रथनो नाम यूथपः ॥ २४ ॥

देवासुर संग्राम में देवताओं की सहायता करने के लिये यह उत्पन्न किया गया था। यह बलवान वानरश्रेष्ठ उस पर्वत पर रहता है, जो पर्वतों का राजा है, जिसके ऊपर अनेक किन्नर रहा करते हैं और जिस पर तुम्हारे भाई राजा कुबेर को विहार करने में सदा आनन्द प्राप्त होता है, तथा जहाँ पर कुबेर जी जामुन के वृक्ष के नीचे बैठा करते हैं। इसका नाम क्रथन है और युद्ध में क्रियात्मक रूप से पराक्रम प्रदर्शन करता है, (वाणी से अपने पराक्रम की डींगे नहीं हाँकता।) यह भी एक यूथपति है ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

वृतः कोटिसहस्रेण हरीणां समुपस्थितः ।
एषैवाशंसते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ॥ २५ ॥

सहस्र कोटि वानरों को साथ ले यह आया है। यह वीर भी केवल अपनी सेना ही से लङ्का को ध्वस्त करने की इच्छा रखता है ॥ २५ ॥

यो गङ्गामनु पर्येति त्रासयन्हस्तियूथपान्* ।
हस्तिनां वानराणां च पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २६ ॥

जो हाथियों और वानरों के पूर्वकालीन पारस्परिक वैर का स्मरण कर, गजेन्द्रों के यूथपतियों को गङ्गा के निकट डराता है ॥ २६ ॥

एष यूथपतिर्नेता गच्छन्गिरिगुहाशयः ।
गजान्योधयते वन्यान्गिरींश्चैव महीरुहान् ॥ २७ ॥

सो यह यूथपतियों का सरदार है और घूमफिर कर अर्थात् ढूँढ़ ढूँढ़ कर गिरिगुहाओं में रहने वाले गजों, जंगली वृक्षों और पहाड़ों से लड़ाता है। अर्थात् गजों को उठा कर वृक्षों पर दे मारता है और वृक्षों को उखाड़ कर गजों पर पटक देता है। इसी प्रकार पर्वतों पर हाथियों को पटक देता है और पर्वत हाथियों पर ॥ २७ ॥

हरीणां वाहिनीमुख्यो नदीं हैमवतीमनु ।
उशीरबीजमाश्रित्य पर्वतं †मन्दरोतमम् ॥ २८ ॥
रमते वानरश्रेष्ठो दिवि शक्र इव स्वयम् ।
एनं शतसहस्राणां सहस्रमनुवर्तते ॥ २९ ॥

यह वानरों की सेना का मुखिया समझा जाता है, यह पर्वतोत्तम मन्दराचल के उशीरबीज नामक पर्वत पर, स्वर्ग में इन्द्र की तरह रहता है। इसके अधीन कई लाख वानर हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

---

* पाठान्तरे—"गजयूथपान् ।" † पाठान्तरे—"मन्दरोपमम् ।"

वीर्यविक्रमदृप्तानां नर्दतां बलशालिनाम् ।
स एष नेता चैतेषां वानराणां महात्मनाम् ॥ ३० ॥

इसकी सेना के वीर अपने बलपराक्रम के अभिमान में चूर हो, गरजा करते हैं। यह वानर उन सब बलवान् वानरों का नायक है ॥ ३० ॥

स एष दुर्धरो राजन्प्रमाथी नाम यूथपः ।
वातेनेवोद्धतं मेघं यमेनमनुपश्यसि ॥ ३१ ॥

हे राजन्! इधर देखिये, वायु से प्रेरित मेघ की तरह जो दिखलाई दे रहा है, सो यह बड़ा दुर्धर्ष वानर है। इसका नाम प्रमाथी है और यह भी यूथपति है ॥ ३१ ॥

अनीकमपि संरब्धं वानराणां तरस्विनाम् ।
उद्धूतमरुणाभासं पवनेन समन्ततः ॥ ३२ ॥

इसकी सेना के वानर क्रोधी और बड़े फुर्तीले हैं। वहीं पर हवा से चारों ओर लाल रंग की ॥ ३२ ॥

विवर्तमानं बहुधा यत्रैतद्बहुलं रजः ।
एतेऽसितमुखा घोरा गोलाङ्गूला महाबलाः ॥ ३३ ॥

बहुत सी धूल का बंवडर बह रहा है। ये काले मुख के भयङ्कर महाबली गोलाङ्गूल ॥ ३३ ॥

शतं शतसहस्राणि दृष्ट्वा वै सेतुबन्धनम् ।
गोलाङ्गूलं महावेगं गवाक्षं नाम यूथपम् ॥ ३४ ॥

लाखों की संख्या में सेतु के ऊपर देख पड़ते हैं, उनका यूथपति गवाक्ष है, जो बड़ा वेगवान है ॥ ३४ ॥

परिवार्याभिवर्तन्ते लङ्कां मर्दितुमोजसा ।
भ्रमराचरिता यत्र *सर्वकालफलद्रुमाः ॥ ३५ ॥

इसी गवाक्ष यूथपति को घेरे हुए समस्त गोलाङ्गूल, लङ्का को अपने बल से ध्वस्त करना चाहते हैं। जहाँ पर भौंरे सदा मंडराया करते हैं और जहाँ वृक्षों में सदा फल लगे रहते हैं ॥ ३५ ॥

यं सूर्यस्तुल्यवर्णाभमनु पर्येति पर्वतम् ।
यस्य भासा सदा भान्ति तद्वर्णा मृगपक्षिणः ॥ ३६ ॥

सूर्य अपना वर्ण वाला समझ, जिस पर्वत की सदा परिक्रमा किया करते हैं और जहाँ की अरुण कान्ति से उस स्थानवासी समस्त मृग और पक्षी उसी रंग जैसे देख पड़ते हैं ॥ ३६ ॥

यस्य प्रस्थं महात्मानो न त्यजन्ति महर्षयः ।
सर्वकामफला वृक्षाः सदा फलसमन्विताः ॥ ३७ ॥

जिसके शिखर को महात्मा महर्षि कभी परित्याग नहीं करते, जहाँ पर सर्वकामना पूरी करने वाले वृक्ष सदा फला करते हैं ॥३७॥

मधूनि च महार्हाणि यस्मिन्पर्वतसत्तमे ।
तत्रैष रमते राजन्रम्ये काञ्चनपर्वते ॥ ३८ ॥

मुख्यो वानरमुख्यानां केसरी नाम यूथपः ।
षष्टिर्गिरिसहस्राणां रम्याः काञ्चनपर्वताः ॥ ३९ ॥

तेषां मध्ये गिरिवरस्त्वमिवानघ रक्षसाम् ।
तत्रैते कपिलाः श्वेतास्ताम्रास्या मधुपिङ्गलाः ॥ ४० ॥

---

* पाठान्तरे—"सर्वकामफलद्रुमाः ।"

और जिस पर्वतश्रेष्ठ पर बढ़िया मधु आदि मीठे पदार्थ उत्पन्न होते हैं, हे राजन्! उसी रमणीय काञ्चनमय पर्वत पर, वानरश्रेष्ठों में मुख्य, केसरी नामक यूथपति रमता है। साठ हज़ार रमणीक काञ्चनमय पर्वतों के बीच, सावर्णि नामक पर्वत है। यह पर्वत सब पर्वतों में वैसा ही श्रेष्ठ है जैसे कि, राक्षसों में आप पापरहित हैं। पीले, सफेद, मधुपिङ्गल (शहद की तरह पीले) रंग के लाल मुख वाले वानर ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

निवसन्त्युत्तमगिरौ तीक्ष्णदंष्ट्रा नखायुधाः ।
सिंहा इव चतुर्दंष्ट्रा व्याघ्रा इव दुरासदाः ॥ ४१ ॥

उस पर्वतोत्तम पर रहते हैं। उनके शस्त्र हैं उनके पैने पैने दांत और नख। सिंह की तरह इनके चौघड़े हैं और व्याघ्र की तरह ये दुर्धर्ष हैं ॥ ४१ ॥

सर्वे वैश्वानरसमा *ज्वलिताशीविषोपमाः ।
सुदीर्घाञ्चितलाङ्गूला मत्तमातङ्गसन्निभाः ॥ ४२ ॥

यह सब के सब अग्नि की तरह उग्र हैं और कुपित सर्प के विष की तरह महाभयङ्कर हैं। इनकी बड़ी लंबी और उमठवाँ पूँछ है और मतवाले हाथी की तरह ये चलते हैं ॥ ४२ ॥

महापर्वतसङ्काशा महाजीमूतनिःस्वनाः ।
वृत्तपिङ्गलरक्ताक्षा भीमभीमगतिस्वराः ॥ ४३ ॥

बड़े पर्वत की तरह लंबे तड़ंगे हैं और महामेघ की तरह गरजा करते हैं। उनकी गोल गोल पीली पीली आंखे हैं। वे बड़ी ही भयङ्कर गति वाले और डरावनी बोली बोलने वाले हैं ॥ ४३ ॥

---

* पाठान्तरे—" ज्वलदाशीविषोपमाः ।"

मर्दयन्तीव ते सर्वे तस्थुर्लङ्कां समीक्ष्य ते ।
एष चैषामधिपतिर्मध्ये तिष्ठति वीर्यवान् ॥ ४४ ॥

वे सब लङ्का को ध्वस्त करने की अभिलाषा से लङ्का की ओर निगाह गड़ाये हुए हैं। इनके बीच में यह बलवान इनका अधिपति वानर खड़ा है ॥ ४४ ॥

जयार्थी नित्यमादित्यमुपतिष्ठति बुद्धिमान् ।
नाम्ना पृथिव्यां विख्यातो राजञ्शतबलीति यः ॥४५॥

यह बुद्धिमान वानर विजय प्राप्त की इच्छा से नित्य सूर्य की आराधना किया करता है और हे राजन्! इस संसार में यह शतबली के नाम से प्रसिद्ध है ॥ ४५ ॥

एषैवाशंसते लङ्कां स्वेनानीकेन मर्दितुम् ।
विक्रान्तो बलवाञ्शूरः पौरुषे स्वे व्यवस्थितः ॥ ४६ ॥

यह भी अपनी सेना को साथ ले लङ्का को ध्वस्त करना चाहता है। यह बड़ा पराक्रमी और बलवान् और शूर है। इसे अपने पुरुषार्थ पर विश्वास है ॥ ४६ ॥

रामप्रियार्थं प्राणानां दयां न कुरुते हरिः ।
गजो गवाक्षो गवयो नलो नीलश्च वानरः ॥ ४७ ॥

यह श्रीरामचन्द्र जी की प्रसन्नता सम्पादन करने के लिये अपने प्राणों को तुच्छ समझता है। हे राजन्! गज, गवाक्ष, गवय, नल और नील नामक जो वानर हैं ॥ ४७ ॥

एकैक एव यूथानां कोटिभिर्दशभिर्वृतः ।
तथाऽन्ये वानरश्रेष्ठा विन्ध्यपर्वतवासिनः ।
न शक्यन्ते बहुत्वात्तु संख्यातुं लघुविक्रमाः ॥ ४८ ॥

इनमें से प्रत्येक दस दस करोड़ वानरों के यूथपति हैं। इस वानरी सेना के बहुत से वानरश्रेष्ठ विन्ध्याचलवासी हैं और ये फुर्तीले वानर संख्या में इतने अधिक हैं कि, इनको गिनना असम्भव है ॥ ४८ ॥

सर्वे महाराज महाप्रभावाः
सर्वे महाशैलनिकाशकायाः ।
सर्वे समर्थाः पृथिवीं क्षणेन
कर्तुं प्रविध्वस्तविकीर्णशैलाम् ॥ ४९ ॥

इति सप्तविंशः सर्गः ॥

हे महाराज! इन सब वीर वानरश्रेष्ठों की देह बड़े पर्वतों की तरह विशाल है। सभी बड़े प्रभावशाली और सब ही शिलाएँ वर्षा कर क्षण भर में सारी पृथिवी को विध्वस्त कर सकते हैं। अथवा हे राक्षसराज! समस्त कपिश्रेष्ठ पर्वताकार शरीरधारी और प्रभाव वाले हैं। वे मन पर धरें तो पलक मारते पृथिवी के समस्त पर्वतों को उखाड़ कर फैंक सकते हैं ॥ ४९ ॥

युद्धकाण्ड का सत्ताइसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

अष्टाविंशः सर्गः

—*—

सारणस्य वचः श्रुत्वा रावणं राक्षसाधिपम् ।
बलमादिश्य तत्सर्वं शुको वाक्यमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

सारण के ये वचन सुन, समस्त वानरी सेना को पहिचनवाता हुआ शुक, राक्षसराज रावण से कहने लगा ॥ १ ॥

स्थितान्पश्यसि यानेतान्मत्तानिव महाद्विपान् ।
न्यग्रोधानिव गाङ्गेयान्सालान्हैमवतानिव ॥ २ ॥

हे राजन्! आप जिन वानरों को मतवाले गजराजों, गङ्गातटवर्ती वटवृक्षों, हिमालयस्थित शालवृक्षों की तरह खड़े हुए देख रहे हों ॥ २ ॥

एते दुष्प्रसहा राजन्बलिनः कामरूपिणः ।
दैत्यदानवसङ्काशा युद्धे देवपराक्रमाः ॥ ३ ॥

ये सब के सब दुर्धर्ष, बलवान् और इच्छा-रूपधारी हैं और दैत्यदानवों की तरह बलसम्पन्न तथा युद्ध में देवताओं की तरह पराक्रमी हैं ॥ ३ ॥

एषां कोटिसहस्राणि नव पञ्च च सप्त च ।
तथा शङ्खसहस्राणि तथा बृन्दशतानि च ॥ ४ ॥

ये संख्या में २१ हज़ार करोड़ तथा सहस्र शङ्ख एवं सौ बृन्द हैं ॥ ४ ॥

एते सुग्रीवसचिवाः[1] किष्किन्धानिलयाः सदा ।
हरयो देवगन्धर्वैरुत्पन्नाः कामरूपिणः ॥ ५ ॥

ये सब सुग्रीव के सहायक हैं और किष्किन्धा में रहा करते हैं। इन वानरों की उत्पत्ति, देवताओं और गन्धर्वों से है और ये इच्छानुसार रूपधारण करने वाले हैं ॥ ५ ॥

यौ तौ पश्यसि तिष्ठन्तौ [2]कुमारौ देवरूपिणौ ।
मैन्दश्च द्विविदश्चोभौ ताभ्यां नास्ति समो युधि ॥६॥

---

१ सुग्रीवसचिवाः—सुग्रीवसहायाः। (गो०) २ कुमारौ—युवानौ। (गो०)

आप जिन देवताओं के समान रूपवान् दो युवकों को बैठा हुआ देख रहे हैं, वे दोनों मैन्द और द्विविद हैं। युद्ध में उन दोनों का सामना करने वाला कोई नहीं है ॥ ६ ॥

ब्रह्मणा समनुज्ञातावमृतप्राशिनावुभौ ।
आशंसेते युधा लङ्कामेतौ मर्दितुमोजसा ॥ ७ ॥

क्योंकि ब्रह्मा की आज्ञा से इन दोनों ने अमृतपान किया है। ये दोनों अपने पराक्रम से लङ्का को ध्वस्त करना चाहते हैं ॥ ७ ॥

यावेतावेतयोः पार्श्वे स्थितौ पर्वतसन्निभौ ।
सुमुखोऽसुमुखश्चैव मृत्युपुत्रौ पितुःसमौ ॥ ८ ॥

जो दो वानर इन दोनों के पास पहाड़ की तरह खड़े हैं, वे दोनों मृत्यु के पुत्र अपने पिता के समान भयङ्कर हैं और इनके नाम सुमुख और असुमुख है ॥ ८ ॥

प्रेक्षन्तौ नगरीं लङ्कां कोटिभिर्दशभिर्वृतौ ।
यं तु पश्यसि तिष्ठन्तं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम् ॥ ९ ॥
यो बलात्क्षोभयेत्क्रुद्धः समुद्रमपि वानरः ।
एषोऽभिगन्ता लङ्काया वैदेह्यास्तव च प्रभो ॥ १० ॥

ये अपने अधीनस्थ दस करोड़ वानरों सहित लङ्का की ओर ताक रहे हैं। मत्त गज की तरह जिस वानर को तुम खड़े देख रहे हो, और जो क्रुद्ध होने पर समुद्र को भी खलबला सकता है; हे प्रभो ! यही सीता और तुम्हारी लङ्का का पता लगाने आया था ॥ ९ ॥ १० ॥

एनं पश्य पुरा दृष्टं वानरं पुनरागतम् ।
ज्येष्ठः केसरिणः पुत्रो वातात्मज इति श्रुतः ॥ ११ ॥

सो इसे आप पहिले देख ही चुके हैं, वही फिर आया है। यह केसरी का श्रेष्ठ पुत्र है और वातात्मज अर्थात् वायुपुत्र के नाम से प्रसिद्ध है ॥ ११ ॥

हनुमानिति विख्यातो लङ्घितो येन सागरः ।
कामरूपी हरिश्रेष्ठो [१]बलरूपसमन्वितः ॥ १२ ॥

इसका हनुमान भी नाम है और इसीने समुद्र लाँघा था। यह इच्छानुसार रूप धारण कर लेता है, वानरों में श्रेष्ठ है और बड़ा बलवान है ॥ १२ ॥

अनिवार्यगतिश्चैव यथा [२]सततगः प्रभुः ।
उद्यन्तं भास्करं दृष्ट्वा बालः किल *बुभुक्षितः ॥१३॥

वायु की तरह इसकी गति कहीं भी नहीं रुकती, लड़कपन में एक दिन इसे भूख लगी। उस समय सूर्य उदय हो रहा था ॥ १३ ॥

त्रियोजनसहस्रं तु अध्वानमवतीर्य हि ।
आदित्यमाहरिष्यामि न मे क्षुत्प्रतियास्यति ॥ १४ ॥
इति सञ्चिन्त्य मनसा पुरैष बलदर्पितः ।
अनाधृष्यतमं देवमपि देवर्षिदानवैः ॥ १५ ॥

उस समय इसने यह सोचा कि, जब तक मैं सूर्य को न खाऊँगा तब तक मेरी भूख न मिटेगी—सो यह विचार कर, यह बल से दर्पित सूर्य को पकड़ने के लिये तीन हज़ार योजन ऊपर उछल गया। किन्तु सूर्यदेव तो देवर्षियों और राक्षसों द्वारा तिरस्कार करने योग्य नहीं हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥

---

१ बलरूप समन्वितः—प्रशस्तबलसमन्वितः । (गो०) २ सततगः—वायुः । (गो०) * पाठान्तरे—"पिपासितः ।"

अनासाद्यैव पतितो भास्करोदयने गिरौ ।
पतितस्य कपेरस्य हनुरेका शिलातले ॥ १६ ॥

सो यह सूर्य को न पकड़ सका और उदयाचल पर गिर पड़ा। इतनी दूर से शिला के ऊपर गिरने के कारण, इसकी एक ओर की ठोड़ी ॥ १६ ॥

किञ्चिद्भिन्ना दृढहनोर्हनुमानेष तेन वै ।
सत्यमागमयोगेन ममैष विदितो हरिः ॥ १७ ॥

थोड़ी सी टूट गयी। क्योंकि ठोड़ी इसकी बड़ी मज़बूत थी, इसीसे इसका नाम हनुमान हुआ। वानरों के सहवास से यद्यपि मैंने इस वानर का यह हाल जान लिया है ॥ १७ ॥

नास्य शक्यं बलं रूपं प्रभावो वाऽपि भाषितुम् ।
एष आशंसते लङ्कामेको मर्दितुमोजसा ॥ १८ ॥

तथापि मैं इसका बल, रूप और प्रभाव वर्णन नहीं कर सकता। यह अकेला, अपने बल ही से लङ्का को ध्वस्त करना चाहता है ॥ १८ ॥

[येन *जाज्वल्यते सौम्य [१]धूमकेतुस्तवाद्य वै ।
लङ्कायां निहितश्चापि कथं न स्मरसे कपिम् ॥ १९ ॥]

हे सैाम्य ! जिस वानर ने तुम्हारी लङ्का को फूँका और इतने राक्षस मारे, उसे आप कैसे भूल गये ॥ १९ ॥

यश्चैषोऽनन्तरः शूरः श्यामः पद्मनिभेक्षणः ।
इक्ष्वाकूणामतिरथो लोके विख्यातपौरुषः ॥ २० ॥

---

१ धूमकेतुरग्निः। (रा०) * पाठान्तरे—"जाज्वल्यतेऽसौ वै।"

हनुमान के पास ही जो शूर श्यामवर्ण, कमलनयन, इक्ष्वाकु कुल में अजेय योद्धा और संसार में विख्यात पराक्रमी हैं ॥ २० ॥

यस्मिन्न चलते धर्मो यो *धर्मान्नातिवर्तते ।
यो ब्राह्मस्त्रं वेदांश्च वेद वेदविदां वरः ॥ २१ ॥

जो धर्म से न तो कभी डिगते हैं और न धर्म की मर्यादा को उल्लङ्घन ही करते हैं, जो ब्रह्मास्त्र का चलाना जानते हैं, जो वेदों को केवल जानते ही नहीं, बल्कि वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ माने जाते हैं, ॥ २१ ॥

यो भिन्द्याद्गगनं बाणैः पर्वतानपि दारयेत् ।
यस्य मृत्योरिव क्रोधः शक्रस्येव पराक्रमः ॥ २२ ॥

जो अपने बाणों से आकाश को छेद सकते हैं और पर्वतों को विदीर्ण कर सकते हैं, जिनका क्रोध, मृत्यु के समान और पराक्रम इन्द्र की तरह है ॥ २२ ॥

यस्य भार्या जनस्थानात्सीता चापहृता त्वया ।
स एष रामस्त्वां योद्धुं राजन्समभिवर्तते ॥ २३ ॥

और जिनकी स्त्री सीता को तुम जनस्थान से हर लाये हो, हे राजन्! वे ही श्रीरामचन्द्र तुमसे लड़ने के लिये यहाँ आये हैं ॥ २३ ॥

यस्यैष दक्षिणे पार्श्वे शुद्धजाम्बूनदप्रभः ।
विशालवक्षास्ताम्राक्षो नीलकुञ्चितमूर्धजः ॥ २४ ॥

उनको दहिनी ओर विशुद्ध सुवर्ण वर्ण जैसे, चौड़ी छाती वाले, अरुणनयन तथा नीले रंग के और घुँघराले बालों से भूषित ॥ २४ ॥

* पाठान्तरे – "धर्मं नातिवर्तते ।"

एषोऽस्य लक्ष्मणो नाम भ्राता प्राणसमः प्रियः ।
नये युद्धे च कुशलः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ २५ ॥

जिस पुरुष को तुम देख रहे हो, वह श्रीरामचन्द्र के प्राणसम प्यारे भाई लक्ष्मण हैं। क्या नीति, क्या युद्ध ये सब विषयों में निपुण हैं और शस्त्रधारियों में सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ २५ ॥

अमर्षी दुर्जयो जेता विक्रान्तो बुद्धिमान्बली ।
रामस्य दक्षिणो बाहुर्नित्यं [1]प्राणो बहिश्चरः ॥ २६ ॥

श्रीरामचन्द्र जी का अपचार इनसे नहीं सहा जाता, इनको रण में कोई जीत नहीं सकता। ये सब को जीतने वाले हैं, ये बड़े पराक्रमी, बुद्धिमान् और बलवान् हैं। ये श्रीरामचन्द्र जी की दहिनी बाँह और उनके प्राणों के संरक्षक हैं ॥ २६ ॥

न ह्येष राघवस्यार्थे जीवितं परिरक्षति ।
एषैवाशंसते युद्धे निहन्तुं सर्वराक्षसान् ॥ २७ ॥

ये श्रीरामचन्द्र जी की रक्षा के लिये अपने प्राणों को हथेली पर रखे हुए, सदा तैयार रहते हैं। युद्ध में ये अकेले ही समस्त राक्षसों को मार डालने का उत्साह रखते हैं ॥ २७ ॥

यस्तु सव्यमसौ पक्षं रामस्याश्रित्य तिष्ठति ।
रक्षोगणपरिक्षिप्तो राजा ह्येष विभीषणः ॥ २८ ॥

जो अपने चार मंत्री राक्षसों के बीच श्रीरामचन्द्र जी की बाईं ओर बैठे हैं—ये राजा विभीषण हैं ॥ २८ ॥

श्रीमता राजराजेन लङ्कायामभिषेचितः ।
त्वामेव प्रतिसंरब्धो युद्धायैषोऽभिवर्तते ॥ २९ ॥

---

१ प्राणोबहिश्चरः इत्यनेन प्राणसंरक्षकत्वमुच्यते । (गो०)

श्रीमान् राजाधिराज महाराज श्रीरामचन्द्र जी ने लङ्का के राजसिंहासन पर इनको अभिषिक्त कर दिया है। यह तुम्हारे साथ युद्ध करने को क्रोध में भरा बैठा है ॥ २९ ॥

यं तु पश्यसि तिष्ठन्तं मध्ये गिरिमिवाचलम् ।
सर्वशाखामृगेन्द्राणां भर्तारमपराजितम् ॥ ३० ॥

जिनको आप एक अचल पर्वत को तरह श्रीरामचन्द्र और विभीषण के बीच में बैठा हुआ देखते हैं, वे ही समस्त वानरों के राजा हैं, इनको पराजित करना सहज नहीं है ॥ ३० ॥

तेजसा यशसा बुद्ध्या ज्ञानेनाभिजनेन च ।
यः कपीनतिबभ्राज हिमवानिव पर्वतान् ॥ ३१ ॥

तेजस्विता, यश, ऊहापोहरूपी ज्ञान, शास्त्रजन्य-ज्ञान, तथा कुल की विशिष्टता के कारण, पर्वतों में हिमाचल पर्वत की तरह, समस्त वानरों से यह अधिक शोभा पा रहा है ॥ ३१ ॥

किष्किन्धां यः समध्यास्ते गुहां सगहनद्रुमाम् ।
दुर्गां पर्वतदुर्गस्थां प्रधानैः सह यूथपैः ॥ ३२ ॥

हे राजन्! यह वानरराज, वानर यूथपतियों के साथ किष्किन्धा में एक ऐसी गिरिगुहा में रहते हैं, जो सघन वृक्षों से आच्छादित है और जहाँ पहुँचना बड़ा कठिन है ॥ ३२ ॥

यस्यैषा काञ्चनी माला शोभते शतपुष्करा ।
कान्ता देवमनुष्याणां यस्यां लक्ष्मीः प्रतिष्ठिता ॥३३॥

देवताओं और मनुष्यों की वाञ्छनीय लक्ष्मी जिसमें सदा वास करती है, वह शतपद्मा सोने की माला कपिराज के गले में कैसी शोभित हो रही है ॥ ३३ ॥

एतां च मालां तारां च कपिराज्यं च शाश्वतम्।
सुग्रीवो वालिनं हत्वा रामेण प्रतिपादितः ॥ ३४ ॥

श्रीरामचन्द्र जी ने यह माला, तारा और वानरों का सनातन (प्राचीन) राज्य वाली को मार कर इस सुग्रीव को दिलाया है ॥ ३४ ॥

शतं शतसहस्राणां कोटिमाहुर्मनीषिणः।
शतं कोटिसहस्राणां शङ्ख इत्यभिधीयते ॥ ३५ ॥

हे राजन्! सौ से गुणा करने पर सौ सहस्र को पण्डित लोग "कोटि" कहते हैं और सौ हज़ार कोटि का एक शङ्ख होता है ॥ ३५ ॥

शतं शङ्खसहस्राणां महाशङ्ख इति स्मृतः।
महाशङ्खसहस्राणां शतं बृन्दमिति स्मृतम् ॥ ३६ ॥

सौ हज़ार शङ्ख का एक महाशङ्ख होता है। सौ हज़ार महाशङ्ख का एक बृन्द होता है ॥ ३६ ॥

शतं बृन्दसहस्राणां महाबृन्दमिति स्मृतम्।
महाबृन्दसहस्राणां शतं पद्ममिति स्मृतम् ॥ ३७ ॥

सौ हज़ार बृन्द का एक महाबृन्द होता है। सौ हज़ार महाबृन्द का एक पद्म होता है ॥ ३७ ॥

शतं पद्मसहस्राणां महापद्ममिति स्मृतम्।
महापद्मसहस्राणां शतं खर्वमिहोच्यते ॥ ३८ ॥

सौ हज़ार पद्म का एक महापद्म और सौ हज़ार महापद्म का एक खर्व होता है ॥ ३८ ॥

शतं खर्वसहस्राणां महाखर्वमिति स्मृतम् ।
महाखर्वसहस्राणां समुद्रमभिधीयते ॥ ३९ ॥

सौ हज़ार खर्व का एक महाखर्व और सौ हज़ार महाखर्व का एक समुद्र होता है ॥ ३९ ॥

शतं समुद्रसाहस्रमोघ इत्यभिधीयते ।
शतमोघसहस्राणां महौघ इति विश्रुतः ॥ ४० ॥

सौ हज़ार समुद्र का एक ओघ और सौ हज़ार ओघ का एक महौघ होता है ॥ ४० ॥

एवं कोटिसहस्रेण शङ्खानां च शतेन च ।
महाशङ्खसहस्रेण तथा बृन्दशतेन च ॥ ४१ ॥

हे राजन् ! इस हिसाब से कोटिसहस्र, उसका सौ शङ्ख उसका हज़ार महाशङ्ख उसका सौ बृन्द ॥ ४१ ॥

महाबृन्दसहस्रेण तथा पद्मशतेन च ।
महापद्मसहस्रेण तथा खर्वशतेन च ॥ ४२ ॥

उसका हज़ार महाबृन्द, उसका सौ पद्म, ऊसका हज़ार महा पद्म, उसका सौ खर्व ॥ ४२ ॥

समुद्रेण शतेनैव महौघेन तथैव च ।
एष कोटिमहौघेन समुद्रसदृशेन च ॥ ४३ ॥

एक सौ समुद्र और एक सौ कोटि महौघ संख्यक वानरी सेना है, जो समुद्र की तरह देख पड़ती है ॥ ४३ ॥

विभीषणेन सचिवै राक्षसैः परिवारितः ।
सुग्रीवो वानरेन्द्रस्त्वां युद्धार्थमभिवर्तते ।
महाबलवृतो नित्यं महाबलपराक्रमः ॥ ४४ ॥

इतनी बड़ी वानरी सेना तथा सचिवों सहित विभीषण को साथ लिये हुए कपिराज सुग्रीव, आपसे लड़ने को उपस्थित हुए हैं। वानरेन्द्र के साथ बड़ी भारी सेना है; जो बड़ी बलवान् और पराक्रमी है ॥ ४४ ॥

इमां महाराज समीक्ष्य वाहिनीम्
उपस्थितां प्रज्वलितग्रहोपमाम् ।
ततः प्रयत्नः परमो विधीयतां
यथा जयः स्यान्न परैः पराजयः ॥ ४५ ॥

इति अष्टाविंशः सर्गः ॥

हे महाराज ! जाज्वल्यमान ग्रह की तरह इस उपस्थित वानरी सेना को देख कर, आप ऐसा प्रयत्न करें, जिससे आपकी जीत हो और शत्रु से हार खानी न पड़े ॥ ४५ ॥

युद्धकाण्ड का अट्ठाइसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—※—

एकोनत्रिंशः सर्गः

—※—

शुकेन तु समाख्यातांस्तान्दृष्ट्वा हरियूथपान् ।
समीपस्थं च रामस्य भ्रातरं स्वं विभीषणम् ॥ १ ॥

इस प्रकार शुक के बतलाने पर रावण ने वानरयूथपतियों को तथा अपने भाई विभीषण को श्रीरामचन्द्र जी के समीप बैठा हुआ देखा ॥ १ ॥

लक्ष्मणं च महावीर्यं भुजं रामस्य दक्षिणम् ।
सर्ववानरराजं च सुग्रीवं भीमविक्रमम् ॥ २ ॥

(इनको ही नहीं बल्कि) उसने महावीर्यवान् और श्रीरामचन्द्र की दक्षिण भुजा रूपी लक्ष्मण को, समस्त वानरयूथपतियों को, भीम पराक्रमी सुग्रीव को ॥ २ ॥

[गजं गवाक्षं गवयं मैन्दं द्विविदमेव च ।
अङ्गदं चैव बलिनं वज्रहस्तात्मजात्मजम् ॥ ३ ॥

गज, गवाक्ष, गवय, मैन्द, द्विविद, को; इन्द्रपुत्र वालि के आत्मज अङ्गद को ॥ ३ ॥

हनुमन्तं च विक्रान्तं जाम्बवन्तं च दुर्जयम् ।
सुषेणं कुमुदं नीलं नलं च प्लवगर्षभम् ॥ ४ ॥]

विक्रमी हनुमान को, दुर्जेय जाम्बवान को और कपिश्रेष्ठ सुषेण, कुमुद, नील, नल को भी देखा ॥ ४ ॥

किञ्चिदाविग्नहृदयो[1] जातक्रोधश्च रावणः ।
भर्त्सयामास तौ वीरौ कथान्ते शुकसारणौ ॥ ५ ॥

इनको देख कर रावण मन ही मन कुछ कुछ उद्विग्न हुआ और जब शुक सारण ने अपना कथन समाप्त किया, तब उसने क्रोध में भर, उन दोनों वीर शुक सारण की भर्त्सन की अर्थात् डाँटा डपटा ॥ ५ ॥

अधोमुखौ तौ प्रणतावब्रवीच्छुकसारणौ ।
रोषगद्गदया वाचा संरब्धः परुषं वचः ॥ ६ ॥

१ आविग्नहृदयः — भीतहृदयः । (गो०)

शुक और सारण अत्यन्त नम्रतापूर्वक सिर झुकाये खड़े थे। परन्तु रावण क्रोध में भर उनसे बड़े कठोर वचन कहने लगा ॥ ६ ॥

न तावत्सदृशं नाम सचिवैरुपजीविभिः ।
विप्रियं नृपतेर्वक्तुं निग्रहप्रग्रहे प्रभोः ॥ ७ ॥

तुम लोगों ने मुझसे जैसे वचन कहे हैं, वैसे वचन क्या किसी वेतनभोगी सचिव को अपने उस स्वामी के सामने, जो निग्रह अनुग्रह करने में समर्थ है, कहना उचित है ? ॥ ७ ॥

रिपूणां प्रतिकूलानां युद्धार्थमभिवर्तताम् ।
उभाभ्यां सदृशं नाम वक्तुमप्रस्तवे स्तवम् ॥ ८ ॥

युद्ध के लिये प्रस्तुत एवं अपने विरोधी शत्रुओं की इस प्रकार अनवसर प्रशंसा करना; क्या तुम दोनों को उचित था ? ॥ ८ ॥

आचार्या गुरवो वृद्धा वृथा वां पर्युपासिताः ।
सारं यद्राजशास्त्राणामनुजीव्यं न गृह्यते ॥ ९ ॥

छिः ! आज तक आचार्य, गुरु और वृद्धजनों के पास रह कर तुमने भाड़ ही झोंका। एक वेतनभोगी को जो समस्त राजनीति की मुख्य मुख्य बातें सीखनी उचित हैं—वे भी तुमने न सीखीं ॥ ९ ॥

गृहीतो वा न विज्ञातो भारो ज्ञानस्य वोह्यते ।
ईदृशैः सचिवैर्युक्तो मूर्खैर्दिष्ट्या धराम्यहम् ॥ १० ॥

यदि सीखीं भी तो उनका मर्म तुमने न जाना। तुम तो केवल अज्ञान का बोझ ढो रहे हो। अर्थात् तुम पल्लेसिरे के अज्ञानी हो। इसे मैं अपना सौभाग्य ही समझता हूँ कि, तुम जैसे मूर्ख मंत्रियों को, अपने पास रख कर भी, मैं आज तक राज्य कर रहा हूँ ॥१०॥

किन्तु मृत्योर्भयं नास्ति वक्तुं मां परुषं वचः ।
यस्य मे शासतो जिह्वा प्रयच्छति शुभाशुभम् ॥ ११ ॥

अरे ! क्या तुमको अपनी जान जाने का ज़रा भी भय नहीं, जो तुमने मुझसे ऐसे कठोर वचन कहे ! क्या तुम नहीं जानते कि, लोगों का मरना जीना मेरी जिह्वा के हिलने डुलने पर अर्थात् मेरी आज्ञा पर निर्भर है ? ॥ ११ ॥

अप्येव दहनं स्पृष्ट्वा वने तिष्ठन्ति पादपाः ।
राजदोषपरामृष्टास्तिष्ठन्ते नापराधिनः ॥ १२ ॥

यह तुम लोग भलीभाँति जान रखो कि, वन में आग लगने पर, उस वन के वृक्ष भले ही भस्म होने से बच जाँय, किन्तु राजद्रोह के अपराधी कभी नहीं बच सकते ॥ १२ ॥

हन्यामहं त्विमौ पापौ शत्रुपक्षप्रशंसकौ ।
यदि पूर्वोपकारैस्तु न क्रोधो मृदुतां व्रजेत् ॥ १३ ॥

शत्रुपक्ष की प्रशंसा करने वाले तुम दोनों को मैं अवश्य प्राणदण्ड देता, पर क्या करूँ, तुम्हारे पहिले के उपकारों का स्मरण आने से मेरा क्रोध नम्र हो जाता है ॥ १३ ॥

अपध्वंसत गच्छध्वं सन्निकर्षादितो मम ।
न हि वां हन्तुमिच्छामि स्मराम्युपकृतानि वाम् ॥१४॥

अब तुम मेरी आँखों के सामने से हट जाओ, ख़बरदार ! फिर मेरे सामने मत आना । मैं तुम्हें मारना नहीं चाहता । क्योंकि मुझे तुम्हारे उपकारों का स्मरण बना हुआ है ॥ १४ ॥

हतावेव कृतघ्नौ तौ मयि स्नेहपराङ्मुखौ ।
एवमुक्तौ तु सव्रीडौ तावुभौ शुकसारणौ ॥ १५ ॥

तुम लोग जैसे कृतघ्न और मेरे प्रति स्नेहशून्य हो रहे हो, इससे तो तुम निश्चय ही मार डालने योग्य हो। जब रावण ने उन दोनों शुक सारण से इस प्रकार कहा, तब वे बहुत लज्जित हुए ॥ १५ ॥

रावणं जयशब्देन प्रतिनन्द्याभिनिःसृतौ ।
अब्रवीत्तु दशग्रीवः समीपस्थं महोदरम् ॥ १६ ॥

और वे "जय जय" कह रावण को प्रणाम कर वहाँ से चले गये। तदनन्तर पास बैठे हुए महोदर से रावण ने कहा ॥ १६ ॥

उपस्थापय मे शीघ्रं चारान्नीतिविशारदान् ।
महोदरस्तथोक्तस्तु शीघ्रमाज्ञापयच्चरान् ॥ १७ ॥

तुम नीतिविशारद चरों को तुरन्त हाज़िर करो। इस पर महोदर ने "जो हुकुम" कह कर, तुरन्त चरों को उपस्थित होने की आज्ञा दी ॥ १७ ॥

ततश्चाराः सन्त्वरिताः प्राप्ताः पार्थिवशासनात् ।
उपस्थिताः प्राञ्जलयो वर्धयित्वा जयाशिषा ॥ १८ ॥

रावण की आज्ञा सुनते ही चर लोग तुरन्त ही उसके पास जा पहुँचे और "जय हो" ऐसा आशीर्वाद दे, हाथ जोड़े हुए खड़े हो गये ॥ १८ ॥

तानब्रवीत्ततो वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः ।
चारान्प्रत्यायिताञ्शूरान्भक्तान्विगतसाध्वसान्[1] ॥१९॥

तब राक्षसेश्वर रावण ने उनको विश्वस्त, शूर, अपने में भक्तमान् और शत्रुभय से निर्भय जान कर कहा ॥१९॥

---

१ विगतसाध्वसान्—विगतशत्रुभयान् । (गो०)

इतो गच्छत रामस्य [1]व्यवसायं परीक्षथ ।
मन्त्रिष्वभ्यन्तरा येऽस्य प्रीत्या तेन समागताः ॥२०॥

तुम लोग यहाँ से श्रीरामचन्द्र के पास जाओ और पता लगाओ कि, उनका इरादा किस किस समय क्या क्या करने का है। उनके अन्तरंगमंत्री जो प्रीतिवश उनके साथ आये हैं, उनके कामों की भी टोह लगाना ॥ २० ॥

कथं स्वपिति जागर्ति किमन्यच्च करिष्यति ।
विज्ञाय निपुणं[2] सर्वमागन्तव्यमशेषतः ॥ २१ ॥

राम क्या अकेले सोते हैं अथवा वे सोते हैं और अन्य लोग सोने के समय जाग कर उनकी रखवाली करते हैं? आगे वे क्या करने वाले हैं—इन सब बातों का चुपके चुपके पता लगा कर, चले आना ॥ २१ ॥

चारेण विदितः शत्रुः पण्डितैर्वसुधाधिपैः ।
युद्धे स्वल्पेन यत्नेन समासाद्य निरस्यते ॥ २२ ॥

क्योंकि जो राजा चतुर होते हैं, वे दूतों ही के द्वारा अपने वैरी का सब हाल जान कर, रण में अल्पप्रयास ही से, शत्रु को भगा देते हैं ॥ २२ ॥

चारास्तु ते तथेत्युक्त्वा प्रहृष्टा राक्षसेश्वरम् ।
शार्दूलमग्रतः कृत्वा ततश्चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥ २३ ॥

चरों ने "जो आज्ञा" कह कर और शार्दूल नामक चर को अपना अगुआ बना कर तथा प्रसन्न हो कर राक्षसेश्वर की प्रदक्षिणा की ॥ २३ ॥

१—व्यवसायं—कर्तव्यनिश्चयं। २ निपुणं—प्रच्छन्नमिति। (गो०)

ततस्ते तं महात्मानं चारा राक्षससत्तमम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं जग्मुर्यत्र रामः सलक्ष्मणम् ॥ २४ ॥

तब वे चर लोग राक्षसोत्तम रावण की परिक्रमा कर वहाँ गये जहाँ लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी ठहरे हुए थे ॥ २४ ॥

ते सुवेलस्य शैलस्य समीपे रामलक्ष्मणौ ।
प्रच्छन्ना ददृशुर्गत्वा ससुग्रीवविभीषणौ ॥ २५ ॥

वे सुवेल पर्वत के निकट पहुँच और अपना भेष बदल कर श्रीरामचन्द्र जी, लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण को देखने लगे ॥ २५ ॥

प्रेक्षमाणाश्चमूं तां च बभूवुर्भयविक्लवाः ।
ते तु धर्मात्मना दृष्टा राक्षसेन्द्रेण राक्षसाः ॥ २६ ॥
विभीषणेन तत्रस्था निगृहीता[1] यदृच्छया[2] ।
शार्दूलो ग्राहितस्त्वेकः पापोऽयमिति राक्षसः ॥ २७ ॥

उस वानरी सेना को देख ये लोग मारे भय के घबड़ा गये। इतने में श्रीरामचन्द्र जी और उस समय वहाँ पर उपस्थित राक्षसेन्द्र विभीषण ने उन राक्षसचरों को पहिचान लिया और मनमाना उनको डाँटा डपटा। उनमें से उनके सरदार शार्दूल को पकड़वा लिया; क्योंकि वह बड़ा भारी दुष्ट था ॥ २६ ॥ २७ ॥

---

१ निगृहीताः—तर्जिताइत्यर्थः । (गो०) २ यदृच्छया—शार्दूलातिरिक्ताराक्षसाविभीषणेनदृष्टा अपियदृच्छया विभीषणाज्ञांविनैवगृहीताःशार्दूलस्तु अयमत्यन्तपापइतिकपिभिर्ग्राहितः । (रा०)

मोचितः सोऽपि रामेण वध्यमानः प्लवङ्गमैः ।
आनृशंस्येन रामस्य मोचिता राक्षसाः परे ॥ २८ ॥

वानर तो उसको मार डालना चाहते थे, किन्तु श्रीरामचन्द्र जी ने उसे छुड़वा दिया। इसी प्रकार अन्य राक्षसचरों को भी श्रीरामचन्द्र जी की दया ने छुड़वा दिया ॥ २८ ॥

वानरैरर्दितास्ते तु विक्रान्तैर्लघुविक्रमैः ।
पुनर्लङ्कामनुप्राप्ताः श्वसन्तो नष्टचेतसः ॥ २९ ॥

उन पराक्रमी और फुर्तीले वानरों से पिट कुट कर वे राक्षसचर लंबी लंबी साँसे लेते और अधमरे से हो, किसी तरह लङ्का में लौट कर पहुँचे ॥ २९ ॥

ततो दशग्रीवमुपस्थितास्तु ते
चारा [1]बहिर्नित्यचरा निशाचराः ।
गिरेः सुवेलस्य समीपवासिनं
न्यवेदयन्भीमबलं महाबलाः ॥ ३० ॥

इति एकोनत्रिंशः सर्गः ॥

तदनन्तर, परराष्ट्रों का वृत्तान्त जानने के लिये सदा घूमने फिरने वाले उन राक्षसचरों ने, दशानन रावण के पास जा, सुवेल पर्वत के समीप छावनी डाले हुए पड़ी हुई भयङ्कर वानर वाहिनी का वृत्तान्त कहा ॥ ३० ॥

युद्धकाण्ड का उन्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

१ बहिर्नित्यचराः—परराष्ट्रेषु वृत्तान्तज्ञानाय सदा संचारशीलाः। (गो०)

त्रिंशः सर्गः

ततस्तमक्षोभ्यबलं लङ्काधिपतये चराः ।
सुवेले राघवं शैले निविष्टं प्रत्यवेदयन् ॥ १ ॥

रावण के उन चरों ने, सुवेल पर्वत के समीप जा, श्रीरामचन्द्र जी की अक्षुब्ध सेना का जो कुछ हाल देखा था, वह सब रावण से कहा ॥ १ ॥

चाराणां रावणः श्रुत्वा प्राप्तं रामं महाबलम् ।
जातोद्वेगोऽभवत्किञ्चिच्छार्दूलं वाक्यमब्रवीत् ॥ २ ॥

राक्षसराज रावण, चरों के मुख से महाबली श्रीरामचन्द्र जी का लङ्का में आना सुन, कुछ कुछ घबड़ाया और शार्दूल से कहने लगा ॥ २ ॥

अयथावच्च ते वर्णो दीनश्चासि निशाचर ।
नासि कच्चिदमित्राणां क्रुद्धानां वशमागतः ॥ ३ ॥

हे राक्षस ! तेरे मुख का बदला हुआ सा रंग हो रहा है, तू दीन की तरह देख पड़ता है, कहीं तू क्रुद्ध वैरियों के हाथों में तो नहीं पड़ गया ? ॥ ३ ॥

इति तेनानुशिष्टस्तु वाचं मन्दमुदीरयत् ।
तदा राक्षसशार्दूलं शार्दूलो भयविह्वलः ॥ ४ ॥

जब रावण ने इस प्रकार पूँछा, तब भय से विह्वल शार्दूल, राक्षसश्रेष्ठ (रावण) से धीरे धीरे कहने लगा ॥ ४ ॥

न ते चारयितुं शक्या राजन्वानरपुङ्गवाः ।
विक्रान्ता बलवन्तश्च राघवेण च रक्षिताः ॥ ५ ॥

हे राजन् ! उस वानरी सेना में जासूसी नहीं हो सकती। क्योंकि उसमें बड़े बड़े पराक्रमी और बलवान् वानर हैं और श्रीरामचन्द्र सदा उनकी रक्षा किया करते हैं ॥ ५ ॥

नापि सम्भाषितुं शक्याः सम्प्रश्नोऽत्र न लभ्यते ।
सर्वतो रक्ष्यते पन्था वानरैः पर्वतोपमैः ॥ ६ ॥

उनसे न तो बातचीत ही हो सकती है और न कुछ पूँछपाँछ ही की जा सकती है। पर्वतों की तरह आकार वाले वानर, शिविर के रास्तों को चारों ओर रक्षा किया करते हैं। अर्थात् शिविर के मार्गों पर बड़े बड़े वानरों का विकट पहरा है ॥ ६ ॥

प्रविष्टमात्रे ज्ञातोऽहं बले तस्मिन्नचारिते ।
बलाद्गृहीतो रक्षोभिर्बहुधाऽस्मि विचालितः ॥ ७ ॥

मैं ज्योंही सैन्य शिविर में घुसा, त्योंहीं पहिचान लिया गया। विभीषण के साथी राक्षसों ने मुझे बरजोरी पकड़ लिया और पकड़ कर मुझे वहाँ खूब घुमाया फिराया ॥ ७ ॥

जानुभिर्मुष्टिभिर्दन्तैस्तलैश्चाभिहतो भृशम् ।
परिणीतोऽस्मि हरिभिर्बलवद्भिरमर्षणैः ॥ ८ ॥

बाँध कर ले जाने व घुमाने के समय क्रोधी वानरों ने मुझे घुटनों, मूँकों, दाँतों, थप्पड़ों से खूब मारा काटा ॥ ८ ॥

परिणीय च सर्वत्र नीतोऽहं रामसंसदम् ।
रुधिरादिग्धसर्वाङ्गो विह्वलश्चलितेन्द्रियः ॥ ९ ॥

इस प्रकार सैन्य शिविर में घुमा कर मैं श्रीरामचन्द्र जी की सभा में लाया गया। उस समय मेरे सारे शरीर से रुधिर बह रहा था और घवड़ाहट के कारण मैं बिकल था ॥ ९ ॥

हरिभिर्वध्यमानश्च याचमानः कृताञ्जलिः ।
राघवेण परित्रातो जीवामीति यदृच्छया ॥ १० ॥

जब वानर मुझे मार डालने को तैयार हुए, तब मैंने हाथ जोड़ कर प्राणों की भिक्षा माँगी। तब श्रीरामचन्द्र जी ने अपनी इच्छा से (किसी के अनुरोध से नहीं) मेरे प्राण बचाये ॥ १० ॥

एष शैलः शिलाभिश्च पूरयित्वा महार्णवम् ।
द्वारमाश्रित्य लङ्कायाः रामस्तिष्ठति सायुधः ॥ ११ ॥

हे महाराज! श्रीरामचन्द्र पर्वतों और शिलाओं से महासागर पर पुल बाँध कर, लङ्का के द्वार पर हथियारों से सुसज्जित आ पहुँचे हैं ॥ ११ ॥

गारुडव्यूहमास्थाय सर्वतो हरिभिर्वृतः ।
मां विसृज्य महातेजा लङ्कामेवाभिवर्तते ॥ १२ ॥

उन्होंने अपनी सेना का गरुड़व्यूह बना कर वानरों को चारों ओर फैल फुट कर ठहराया है। मुझे तो उन महातेजस्वी ने छोड़ दिया, पर वे लङ्का की ओर निगाह गड़ाये हुए हैं ॥ १२ ॥

पुरा प्राकारमायाति क्षिप्रमेकतरं कुरु ।
सीतां वाऽस्मै प्रयच्छाशु सुयुद्धं वा प्रदीयताम् ॥ १३ ॥

वे आपकी राजधानी के परकोटे पर चढ़ाई करने ही वाले हैं, अतः आप शीघ्र ही दो में से एक काम कीजिये। अर्थात् या तो उनको सीता दे डालिये अथवा उनसे खूब डट कर युद्ध कीजिये ॥ १३ ॥

[1]मनसा तं तदा प्रेक्ष्य तच्छ्रुत्वा राक्षसाधिपः ।
शार्दूलं सुमहद्वाक्यमथोवाच स रावणः ॥ १४ ॥

राक्षसाधिप रावण ने शार्दूल की इन बातों को सुन और उन पर मन ही मन कुछ विचार कर, उससे कहा ॥ १४ ॥

यदि मां प्रति युध्येरन्देवगन्धर्वदानवाः ।
नैव सीतां प्रदास्यामि सर्वलोकभयादपि ॥ १५ ॥

यदि देवता, गन्धर्व और दानव भी मुझसे लड़ें अर्थात् त्रिलोकी भी मेरे विरुद्ध हो जाय, तो भी मैं डर कर सीता, श्रीरामचन्द्र को न दूँगा ॥ १५ ॥

एवमुक्त्वा महातेजा रावणः पुनरब्रवीत् ।
चारिता भवता सेना केऽत्र शूराः प्लवङ्गमाः ॥ १६ ॥

यह कह कर महातेजस्वी रावण फिर कहने लगा—आप लोग तो वानरी सेना में घूम फिर आये हैं, सो यह तो बतलाइये कि, वानरों में शूर कौन कौन हैं ॥ १६ ॥

कीदृशा किंप्रभाः[2] सौम्या वानरा ये दुरासदाः ।
कस्य पुत्राश्च पौत्राश्च तत्त्वमाख्याहि राक्षस ॥ १७ ॥

हे राक्षस! जो वानर दुर्धर्ष हैं, उनके आकार कैसे हैं, उनका प्रभाव कैसा है; वे किसके पुत्र और पौत्र हैं? सो आप मुझसे ठीक ठीक कहिये ॥१७॥

तथाऽत्र प्रतिपत्स्यामि ज्ञात्वा तेषां बलाबलम् ।
अवश्यं बलसंख्यानं कर्तव्यं युद्धमिच्छताम् ॥ १८ ॥

---

१ मनसाप्रेक्ष्य—आलोच्य । (गो०); विचार्य । (शि०) २ किंप्रभा—किंप्रभावाः । (गो०)

जिससे मैं उनके बलाबल को जान कर तदनुसार प्रबन्ध करूँ। क्योंकि जो युद्ध करना चाहे, उसे पहिले शत्रु के बलाबल का विचार और उसकी सेना के सैनिकों की गिनती अवश्य कर लेनी चाहिये ॥ १८ ॥

*अथैवमुक्तः शार्दूलो रावणेनोत्तमश्चरः ।
इदं वचनमारेभे वक्तुं रावणसन्निधौ ॥ १९ ॥

जब रावण ने दूतश्रेष्ठ शार्दूल से इस प्रकार पूँछा, तब उसने रावण से यह कहना आरम्भ किया ॥ १९ ॥

अथर्क्षरजसः पुत्रो युधि राजा सुदुर्जयः ।
गद्गदस्याथ पुत्रोऽत्र जाम्बवानिति विश्रुतः ॥ २० ॥

महाराज! ऋक्षराज का पुत्र (सुग्रीव) तो युद्ध में बड़ी कठिनाई से जीता जा सकता है और यही हाल गद्गद के पोष्यपुत्र का है, जो जाम्बवान के नाम से प्रख्यात है ॥२०॥

[नोट—जाम्बवान की उत्पत्ति इसके पूर्व ब्रह्मा की जँभुआई से कही जा चुकी है, यहाँ वह गद्गद का पुत्र बतलाया गया है। इस विरोध की मीमांसा में टीकाकारों ने जाम्बवान को गद्गद का पोष्यपुत्र बतलाया है।]

गद्गदस्यैव पुत्रोऽन्यो[1] गुरुपुत्रः शतक्रतोः ।
कदनं यस्य पुत्रेण कृतमेकेन रक्षसाम् ॥ २१ ॥

गद्गद का दूसरा पुत्र धूम्र भी यहाँ है। इन्द्र के गुरु बृहस्पति का पुत्र केसरी भी आया है। उसीके पुत्र हनुमान ने अकेले ही (लङ्का में) बहुत से राक्षसों का नाश किया था ॥ २१ ॥

---

१ अन्यःपुत्रो धूम्रः। (रा०) * पाठान्तरे—"तथैवमुक्तः।"

सुषेणश्चापि धर्मात्मा पुत्रो धर्मस्य वीर्यवान् ।
सौम्यः सोमात्मजश्चात्र राजन्दधिमुखः कपिः ॥ २२ ॥

धर्मपुत्र सुषेण बड़ा धर्मात्मा और पराक्रमी है। हे राजन्! चन्द्र का पुत्र दधिमुख वानर बड़ा सौम्य अर्थात् सरल स्वभाव का है ॥ २२ ॥

सुमुखो दुर्मुखश्चात्र वेगदर्शी च वानरः ।
मृत्युर्वानररूपेण नूनं सृष्टः स्वयंभुवा ॥ २३ ॥

सुमुख, दुर्मुख और वेगदर्शी वानर तो साक्षात् मृत्यु के अवतार ही हैं। मानों ब्रह्मा ने वानररूप में मृत्यु को रचा है ॥ २३ ॥

पुत्रो हुतवहस्याथ नीलः सेनापतिः स्वयम् ।
अनिलस्य च पुत्रोऽत्र हनुमानिति विश्रुतः ॥ २४ ॥

अग्निपुत्र नील वानरी सेना का सेनापति है। पवनपुत्र, जो हनुमान के नाम से प्रसिद्ध है, सेना में है ॥ २४ ॥

नप्ता शक्रस्य दुर्धर्षो बलवानङ्गदो युवा ।
मैन्दश्च द्विविदश्चोभौ बलिनावश्विसम्भवौ ॥ २५ ॥

इन्द्र का पौत्र अङ्गद भी, जो बड़ा बलवान् युवा और दुर्धर्ष है, सेना में है। बलवान मैन्द और द्विविद अश्विनीकुमार के पुत्र हैं ॥ २५ ॥

पुत्रा वैवस्वतस्यात्र पञ्च कालान्तकोपमः ।
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ॥ २६ ॥

गज, गवाक्ष, गवय, शरभ और गन्धमादन ; ये पाँच यमराज के पुत्र हैं, और ये उन्हींके तुल्य हैं। ये भी यहाँ आये हुए हैं ॥ २६ ॥

दश वानरकोट्यश्च शूराणां युद्धकाङ्क्षिणाम् ।
श्रीमतां देवपुत्राणां शेषं नाख्यातुमुत्सहे ॥ २७ ॥

हे राजन् ! इस सेना में दस करोड़ वानर तो देवताओं के सन्तान हैं। ये सब के सब बड़े शूरवीर, बलशाली एवं युद्धाभिलाषी हैं। अवशिष्ट वानरों के वर्णन की शक्ति मुझमें नहीं है ॥ २७ ॥

पुत्रो दशरथस्यैष सिंहसंहननो युवा ।
दूषणो निहतो येन खरश्च त्रिशिरास्तथा ॥ २८ ॥

ये दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र हैं, जिनकी सिंह की सी चाल है, जो अभी जवान हैं और जिन्होंने खर, दूषण और त्रिशिरा को अकेले ही मारा था ॥ २८ ॥

नास्ति रामस्य सदृशो विक्रमे भुवि कश्चन ।
विराधो निहतो येन कबन्धश्चान्तकोपमः ॥ २९ ॥

इस पृथिवी पर तो राम के समान पराक्रमी कोई दूसरा है नहीं, क्योंकि ये वे ही हैं, जिन्होंने यमराज के समान विराध और कबन्ध को मारा था ॥ २९ ॥

वक्तुं न शक्तो रामस्य नरः कश्चिद्गुणान्क्षितौ ।
जनस्थानगता येन यावन्तो राक्षसा हताः ॥ ३० ॥

इस पृथिवी तल पर ऐसा कोई नर नहीं है जो श्रीराम के गुणों का बखान कर सके। क्योंकि इन्होंने अकेले ही जनस्थानवासी समस्त (१४ हज़ार) राक्षसों को मार डाला था ॥ ३० ॥

लक्ष्मणश्चात्र धर्मात्मा [1]मातङ्गानामिवर्षभः ।
यस्य बाणपथं प्राप्य न जीवेदपि वासवः ॥ ३१ ॥

---

[1] मातङ्गानामिवर्षभः—गजश्रेष्ठ इव स्थितः । (गो०)

धर्मात्मा लक्ष्मण भी एक श्रेष्ठगज के समान बलवान् हैं। इनके बाणों की मार के भीतर आ जाने पर इन्द्र भी जीता जागता नहीं बच सकता ॥ ३१ ॥

श्वेतो ज्योतिर्मुखश्चात्र भास्करस्यात्मसम्भवौ ।
वरुणस्य च पुत्रोऽन्यो हेमकूटः प्लवङ्गमः ॥ ३२ ॥

श्वेत और ज्योतिर्मुख नामक दोनों वानर, सूर्य के पुत्र हैं। वरुण का पुत्र हेमकूट नाम का वानर है ॥ ३२ ॥

विश्वकर्मसुतो वीरो नलः प्लवगसत्तमः ।
विक्रान्तो बलवानत्र वसुपुत्रः सुदुर्धरः ॥ ३३ ॥

विश्वकर्मा का पुत्र वानरश्रेष्ठ एवं वीर नल है। वसु का पुत्र सुदुर्धर है, जो बड़ा विक्रमी है और बलवान है ॥ ३३ ॥

राक्षसानां वरिष्ठश्च तव भ्राता विभीषणः ।
परिगृह्य पुरीं लङ्कां राघवस्य हिते रतः ॥ ३४ ॥

राक्षसों में श्रेष्ठ और तुम्हारा भाई विभीषण, राम से लङ्का का राज्य पा कर, श्रीरामचन्द्र जी का हितैषी बन गया है ॥ ३४ ॥

इति सर्वं समाख्यातं तवेदं वानरं बलम् ।
सुवेलेऽधिष्ठितं शैले शेषकार्ये भवान्गतिः ॥ ३५ ॥

इति त्रिंशः सर्गः ॥

मैंने सुवेलशैल पर ठहरी हुई वानरसेना का जो कुछ हाल जान पाया, वह आपको बतला दिया ; अब आगे जो कुछ करना हो, आप करें ॥ ३५ ॥

युद्धकाण्ड का तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—*—

एकत्रिंशः सर्गः

—※—

ततस्तमक्षोभ्यबलं लङ्काधिपतये चराः ।
सुवेले राघवं शैले निविष्टं प्रत्यवेदयन् ॥ १ ॥

लङ्का में सुवेल पर्वत पर टिके हुए श्रीरामचन्द्र जी और उनकी अक्षोभ्यसेना का वृत्तान्त इस प्रकार रावण के चरों ने रावण को बतलाया ॥ १ ॥

चाराणां रावणः श्रुत्वा प्राप्तं रामं महाबलम् ।
जातोद्वेगोऽभवत्किञ्चित्सचिवानिदमब्रवीत् ॥ २ ॥

चरों द्वारा महाबलवान श्रीरामचन्द्र का लङ्का में आना सुन कर, रावण कुछ घबड़ाया और अपने मंत्रियों से यह बोला ॥ २ ॥

मन्त्रिणः शीघ्रमायान्तु सर्वे वै [1]सुसमाहिताः ।
अयं नो मन्त्रकालो हि सम्प्राप्त इति राक्षसाः ॥ ३ ॥

हे राक्षसों ! मेरे समस्त नीतिकुशल दर्बारी या सलाहकार मेरे सामने [illegible] उपस्थित हों—क्योंकि अब मंत्रणा करने का समय आ पहुँचा है ॥ ३ ॥

तस्य तच्छासनं श्रुत्वा मन्त्रिणोऽभ्यागमन्द्रुतम् ।
ततः स मन्त्रयामास सचिवै राक्षसैः सह ॥ ४ ॥

रावण की यह आज्ञा पा, सब मंत्री तुरन्त आ कर उपस्थित हो गये। तब रावण उन राक्षस मंत्रियों के साथ परामर्श करने लगा ॥ ४ ॥

---

१ सुसमाहिताः—नीतिकुशला इत्यर्थः । (गो०)

मन्त्रयित्वा स दुर्धर्षः क्षमं यत्समनन्तरम् ।
विसर्जयित्वा सचिवान्प्रविवेश स्वमालयम् ॥ ५ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के लङ्का के समीप आने के अनन्तर, रावण को जो करना उचित था, उसके सम्बन्ध में परामर्श कर चुकने के बाद, दुर्धर्ष रावण मंत्रियों को विदा कर, स्वयं भी अपने अन्तःपुर में चला गया ॥ ५ ॥

ततो राक्षसमाहूय विद्युज्जिह्वं महाबलम् ।
मायाविदं [1]महामायः प्राविशद्यत्र मैथिली ॥ ६ ॥

अन्तःपुर में पहुँच कर, रावण ने महाबली विद्युज्जिह्व राक्षस को बुलवाया और उस मायावी बाजीगर को अपने साथ ले वहाँ, जहाँ सीता रहती थीं, जाने की इच्छा प्रकट की ॥ ६ ॥

विद्युज्जिह्वं च मायाज्ञमब्रवीद्राक्षसाधिपः ।
मोहयिष्यावहे सीतां मायया जनकात्मजाम् ॥ ७ ॥

जाने के समय रावण भलीभाँति माया के जानने वाले विद्युज्जिह्व राक्षस से कहने लगा कि, हे निशाचर ! आओ हम दोनों माया की सहायता से अर्थात् बाजीगरी द्वारा सीता को धोखा दें ॥ ७ ॥

शिरो मायामयं गृह्य राघवस्य निशाचर ।
त्वं मां समुपतिष्ठस्व महच्च सशरं धनुः ॥ ८ ॥

अतः तुम श्रीरामचन्द्र जी का बनावटी सिर और बाण सहित एक बड़ा धनुष, उस समय लेकर मेरे पास आना (जिस समय मैं सीता के पास होऊँ) ॥ ८ ॥

---

१ महामायः—तादृशमाया प्रयोग कर्तारं । (रा०)

एवमुक्तस्तथेत्याह विद्युज्जिह्वो निशाचरः ।
तस्य तुष्टोऽभवद्राजा प्रददौ च विभूषणम् ॥ ९ ॥

तब मायावी विद्युज्जिह्व ने रावण की आज्ञा मान कर कहा बहुत अच्छा इस पर उसने (रावण ने) पारितोषिक में विद्युज्जिह्व को आभूषण दिया ॥ ६ ॥

अशोकवनिकायां तु सीतादर्शनलालसः ।
नैर्ऋतानामधिपतिः संविवेश महाबलः ॥ १० ॥

तदनन्तर महाबली राक्षसराज रावण सीता से मिलने की लालसा से अशोकवाटिका में गया ॥ १० ॥

ततो दीनामदैन्यार्हां ददर्श धनदानुजः ।
अधोमुखीं शोकपरामुपविष्टां महीतले ॥ ११ ॥

वहाँ कुबेर के छोटे भाई रावण ने उदास मन होने के अयोग्य होने पर भी, सीता को उदास मन हो, गर्दन झुकाये, शोक से विकल, ज़मीन पर बैठा हुआ देखा ॥ ११ ॥

भर्तारमेव ध्यायन्तीमशोकवनिकां गताम् ।
उपास्यमानां घोराभी राक्षसीभिरितस्ततः ॥ १२ ॥

सीता अशोकवाटिका में अपने पति श्रीरामचन्द्र जी के ध्यान में डूबी हुई थीं और भयङ्कर राक्षसियाँ उनके समीप इधर उधर बैठी हुई थीं ॥ १२ ॥

उपसृत्य ततः सीतां प्रहर्ष नाम कीर्तयन् ।
इदं च वचनं धृष्टमुवाच जनकात्मजाम् ॥ १३ ॥

रावण सीता के निकट गया और प्रसन्न हो अपना नाम सुना कर ढिठाई से जानकी जी से कहने लगा ॥ १३ ॥

सान्त्वमाना मया भद्रे यमुपाश्रित्य वल्गसे ।
खरहन्ता स ते भर्ता राघवः समरे हतः ॥ १४ ॥

हे भद्रे! मैंने तुझे बहुत समझाया, पर तू (आज तक) जिसके भरोसे मेरे वचनों का अनादर करती रही, खर का वध करने वाला तेरा वह पति राघव युद्ध में मारा गया ॥ १४ ॥

छिन्नं ते सर्वतो मूलं दर्पस्ते विहतो मया ।
[1]व्यसनेनात्मनः सीते मम भार्या भविष्यसि ॥ १५ ॥

अब तो मैंने तेरे सहारे की जड़ सब प्रकार से काट डाली और तेरा अभिमान चूर चूर कर डाला। अतएव अब तो तू अपने आप ही मेरी भार्या बनेहीगी अथवा अब तो तुझे मेरी पत्नी बनना ही पड़ेगा ॥ १५ ॥

विसृजेमां मतिं मूढ़े किं मृतेन करिष्यसि ।
भवस्व भद्रे भार्याणां सर्वासामीश्वरी मम ॥ १६ ॥

अब तू इन विचारों को त्याग दे। अरे मूर्खा! अब तू इस मरे हुए शरीर को ले कर क्या करेगी? हे भद्रे! अब तू मेरे साथ चल कर मेरी समस्त स्त्रियों की स्वामिनी बन ॥ १६ ॥

अल्पपुण्ये निवृत्तार्थे मूढ़े पण्डितमानिनि ।
शृणु भर्तृवधं सीते घोरं वृत्रवधं यथा ॥ १७ ॥

हे अल्पपुण्यवाली, हे नष्टार्थे! हे मूढ़े! हे पण्डितमानिनि! तू अब दारुण वृत्रासुर के वध की तरह अपने स्वामी के घोर वध का वृत्तान्त सुन ॥ १७ ॥

---

१ व्यसनेन—निमित्तेन। (गो०)

समायातः समुद्रान्तं मां हन्तुं किल राघवः ।
वानरेन्द्रप्रणीतेन[1] बलेन महता वृतः ॥ १८ ॥

सुग्रीव की एक बड़ी भारी वानरी सेना को साथ ले राम, मुझे मारने के लिये समुद्र के इस पार अवश्य आया था ॥ १८ ॥

सन्निविष्टः समुद्रस्य पीड्य तीरमथोत्तरम् ।
बलेन महता रामो व्रजत्यस्तं दिवाकरे ॥ १९ ॥

जिस समय सूर्य अस्ताचलगामी हुए, उसी समय उसने समुद्र के उत्तरतट पर सेना को ला टिकाया और स्वयं भी वहीं टिका हुआ था ॥१९॥

अथाध्वनि परिश्रान्तमर्धरात्रे स्थितं बलम् ।
सुखसुप्तं समासाद्य चारितं प्रथमं चरैः ॥ २० ॥
तत्प्रहस्तप्रणीतेन बलेन महता मम ।
बलमस्य हतं रात्रौ यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥ २१ ॥

मार्ग चलने की थकावट से आधीरात को सेना बेख़बर पड़ी सो रही थी। प्रथम से नियुक्त किये हुए जासूसों से जब यह हाल जाना गया, तब रात को बड़ी भारी सेना लेकर प्रहस्त ने वहाँ चढ़ाई की, जहाँ राम तथा लक्ष्मण थे और उनकी सेना को मार डाला ॥ २० ॥ २१ ॥

पट्टिशान्परिघांश्चक्रान्दण्डान्खड्गान्महायसान् ।
बाणजालानि शूलानि भास्वरान्कूटमुग्दरान् ॥ २२ ॥
यष्टीश्च तोमराञ्शक्तीश्चक्राणि मुसलानि च ।
उद्यम्योद्यम्य रक्षोभिर्वानरेषु निपातिताः ॥ २३ ॥

---

१ प्रणीतेन—आनीतेन । (गो०)

पट, परिघ, चक्र और ईसपात के बने डंडे, खड्ग, तीर, शूल, काँटेदार चमचमाते मुग्दर, लाठी, तोमर, शक्ति चन्द्राकार मुशलादि शस्त्रों को ले ले कर, राक्षसों ने वानरों को उनके अघात से मार गिराया ॥२२॥२३॥

अथ सुप्तस्य रामस्य प्रहस्तेन प्रमाथिना ।
असक्तं कृतहस्तेन शिरश्छिन्नं महासिना ॥ २४ ॥

तदनन्तर शत्रुसैन्य को मथन करने वाले प्रहस्त ने अपने हाथ की फुर्ती दिखला कर, एक बड़ी तलवार से झट श्रीरामचन्द्र का सिर काट डाला ॥ २४ ॥

विभीषणः समुत्पत्य निगृहीतो यदृच्छया ।
दिशः प्रव्राजितः सर्वैर्लक्ष्मणः प्लवगैः सह ॥ २५ ॥

विभीषण को जितना दण्ड देना चाहिये था, उतना दण्ड देने में कसर नहीं की गयी। तब लक्ष्मण बचे हुए, सब वानरों को साथ ले भाग गया ॥२५॥

सुग्रीवो ग्रीवया शेते भग्नया प्लवगाधिपः ।
निरस्तहनुकः शेते हनुमान्राक्षसैर्हतः ॥ २६ ॥

वानरराज सुग्रीव गरदन टूट जाने से रणभूमि में मरा पड़ा है। राक्षसों ने हनुमान की ठोड़ी तोड़ डाली और वह भी रणक्षेत्र में मरा पड़ा है ॥ २६ ॥

जाम्बवानथ जानुभ्यामुत्पतन्निहतो युधि ।
पट्टिशैर्बहुभिश्छिन्नो निकृत्तः पादपो यथा ॥ २७ ॥

जाम्बवान कूद कर भागना चाहता था, किन्तु राक्षसों ने पटों की मार से उसकी जांघे तोड़ दीं। वह भी कटे हुए पेड़ की तरह वहां पर मरा पड़ा है ॥ २७ ॥

मैन्दश्च द्विविदश्चोभौ निहतौ वानरर्षभौ ।
निश्वसन्तौ रुदन्तौ च रुधिरेण परिप्लुतौ ॥ २८ ॥

वानरश्रेष्ठ मैन्द और द्विविद लंबी लंबी साँसे लेते और रोते हुए तथा रक्त से (न्हाये हुए) लथपथ हो, मारे गये ॥ २८ ॥

असिना [1]व्यायतौ छिन्नौ मध्ये[2] ह्यरिनिषूदनौ ।
अनुतिष्ठति मेदिन्यां पनसः पनसो यथा ॥ २९ ॥

इन बड़े डीलडौल वाले शत्रुहन्ता दोनों वानरों की कमरें तलवार से काट डाली गयी थीं । पनस नामक वानर पनस (कटहर के) पेड़ की तरह ज़मीन पर कटा हुआ पड़ा है ॥ २९ ॥

नाराचैर्बहुभिश्छिन्नः शेते दर्यां दरीमुखः ।
कुमुदस्तु महातेजा निष्कूजः सायकैः कृतः ॥ ३० ॥

दरीमुख अनेक बाणों के प्रहार से मरा हुआ, कन्दरा में पड़ा सो रहा है । महातेजस्वी कुमुद भी बाणों की मार से सदा के लिये निःशब्द (मूक-गूंगा) बना दिया गया है ॥ ३० ॥

अङ्गदो बहुभिश्छिन्नः शरैरासाद्य राक्षसैः ।
पतिता रुधिरोद्गारी क्षितौ निपतिताङ्गदः ॥ ३१ ॥

अङ्गद भी राक्षसों द्वारा चलाये हुए अनेक बाणों से क्षत विक्षत हो, मारा गया । उसका बाजू सहित बाहु भूमि पर पड़ा है और उसके सब अङ्गों से रुधिर बह रहा है । अथवा रक्त की वमन करता हुआ वह मरा है ॥ ३१ ॥

हरयो मथिता नागै रथजातैस्तथाऽपरे ।
शायिता मृदिताश्चाश्वैर्वायुवेगैरिवाम्बुदाः ॥ ३२ ॥

---

१ व्यायतौ—दीर्घ शरीर । (गो०) २ मध्ये—कटिस्थाने ।

अनेक वानर तो हाथियों के पैरों के नीचे कुचल कर मर गये। बहुत से रथों की चपेटों में आ कर मारे गये। बहुत से सोते हुए कुचल गये। जिस प्रकार हवा के वेग से बादल अदृश्य हो जाते हैं, उसी प्रकार राक्षसी सेना के आक्रमण से सब वानर अदृश्य हो गये हैं ॥ ३२ ॥

प्रहृताश्चापरे त्रस्ता हन्यमाना [1]जघन्यतः ।
अभिद्रुतास्तु रक्षोभिः सिंहैरिव महाद्विपाः ॥ ३३ ॥

बहुत से वानर तो मारकाट के समय डर कर भागते समय पीछे से मारे गये। बहुत से राक्षसों से पिछियाये जा कर ऐसे भागे जैसे सिंह के झपटने पर बड़े बड़े हाथी भागते हैं ॥ ३३ ॥

सागरे पतिताः केचित्केचिद्गगनमाश्रिताः ।
ऋक्षा वृक्षानुपारूढा *वानरैर्व्यतिमिश्रिताः ॥ ३४ ॥

कोई कोई तो समुद्र में कूद पड़े और कोई कोई आकाश में उड़ गये। रीछ वानरों के साथ वृक्षों पर चढ़ गये ॥ ३४ ॥

सागरस्य च तीरेषु शैलेषु च वनेषु च ।
[2]पिङ्गलास्ते [3]विरूपाक्षैर्बहुभिर्बहवो हताः ॥ ३५ ॥

समुद्र के तट पर, पर्वतों और वनों में जिन वानरों ने आश्रय लिया था उनमें से बहुत से राक्षसों द्वारा मार डाले गये ॥ ३५ ॥

एवं तव हतो भर्ता ससैन्यो मम सेनया ।
क्षतजार्द्रं रजोध्वस्तमिदं चास्याहृतं शिरः ॥ ३६ ॥

---

१ जघन्यतः पृष्ठतः । (गो०) २ पिङ्गलाः—वानराः । (गो०)
३ विरूपाक्षैः—वानरैः । (गो०) * पाठान्तरे—"वानरीं वृत्तिमाश्रिताः ।"

इस प्रकार तेरा भर्ता ससैन्य मेरी सेना द्वारा मारा गया। उसका यह कटा हुआ सिर तुझे दिखलाने को लाया गया है। देख यह रक्त और धूल से सना है ॥ ३६ ॥

ततः परमदुधर्षो रावणो राक्षसाधिपः ।
सीतायामुपशृण्वन्त्यां राक्षसीमिदमब्रवीत् ॥ ३७ ॥

तदनन्तर परम दुर्धर्ष राक्षसराज रावण सीता को सुना कर एक राक्षसी से यह बोला ॥ ३७ ॥

राक्षसं क्रूरकर्माणं विद्युज्जिह्वं त्वमानय ।
येन तद्राघवशिरः संग्रामात्स्वयमाहृतम् ॥ ३८ ॥

तू जाकर उस क्रूरकर्मा विद्युज्जिह्व राक्षस को बुला ला, जो स्वयं रणक्षेत्र से उस राम का सिर लाया है ॥ ३८ ॥

विद्युज्जिह्वस्ततो गृह्य शिरस्तत्सशरासनम् ।
प्रणामं शिरसा कृत्वा रावणस्याग्रतः स्थितः ॥ ३९ ॥

(राक्षसी द्वारा बुलाये जाने पर) विद्युज्जिह्व उस सिर को तथा धनुष को लिये हुए, रावण के सामने आ खड़ा हो गया और सिर नवा कर उसको प्रणाम किया ॥ ३९ ॥

तमब्रवीत्ततो राजा रावणो राक्षसं स्थितम् ।
विद्युज्जिह्वं महाजिह्वं समीपपरिवर्तिनम् ॥ ४० ॥

बड़ी जीभ वाले विद्युज्जिह्व को अपने निकट खड़ा देख, राजा रावण ने उससे कहा ॥ ४० ॥

अग्रतः कुरु सीतायाः शीघ्रं दाशरथेः शिरः ।
[1]अवस्थां पश्चिमां भर्तुः कृपणा साधु पश्यतु ॥ ४१ ॥

---

१ पश्चिमामवस्थां—मरणमित्यर्थः । (गो०)

राम का कटा हुआ सिर तू सीता के सामने रख दे, जिससे यह बापुरी अपने मरे हुए राम को अच्छी तरह देख ले ॥ ४१ ॥

एवमुक्तं तु तद्रक्षः शिरस्तत्प्रियदर्शनम् ।
उप निक्षिप्य सीतायाः क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ ४२ ॥

ज्योंही रावण ने विद्युज्जिह्व से यह कहा, त्योंही वह प्रियदर्शन राम का कटा हुआ सिर सीता के पास रख, स्वयं तुरन्त अन्तर्धान हो गया ॥ ४२ ॥

रावणश्चापि चिक्षेप भास्वरं कार्मुकं महत् ।
त्रिषु लोकेषु विख्यातं सीतामिदमुवाच च ॥ ४३ ॥

तब रावण ने भी उस चमचमाते और त्रिलोकी में प्रसिद्ध विशाल धनुष को सीता के सामने फैंक कर, यह कहा ॥ ४३ ॥

इदं तत्तव रामस्य कार्मुकं ज्यासमायुतम् ।
इह प्रहस्तेनानीतं हत्वा तं निशि मानुषम् ॥ ४४ ॥

यह तेरे राम का रोदा सहित धनुष है। रात में उस मनुष्य को मार, प्रहस्त इसे ले आया है ॥ ४४ ॥

स विद्युज्जिह्वेन सहैव तच्छिरो
धनुश्च भूमौ विनिकीर्य रावणः ।
विदेहराजस्य सुतां यशस्विनीं
ततोऽब्रवीत्तां भव मे वशानुगा ॥ ४५ ॥

इति एकत्रिंशः सर्गः ॥

तदनन्तर रावण विद्युज्जिह्व का लाया हुआ वह कटा हुआ रामचन्द्र का मस्तक और धनुष पृथिवी पर सीता के आगे छितरा कर, यशस्विनी विदेहतनया सीता से बोला—अब तो तू मेरी वश-वर्तिनी हो जा। अर्थात् मेरी पत्नी बन जा॥ ४५॥

युद्धकाण्ड का इकतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—※—

द्वात्रिंशः सर्गः

—※—

सा सीता तच्छिरो दृष्ट्वा तच्च कार्मुकमुत्तमम्।
सुग्रीवप्रतिसंसर्गमाख्यातं च हनूमता॥ १॥

सीता को उस कटे सिर और उस श्रेष्ठ कार्मुक को देख, हनुमान जी की बतलायी हुई सुग्रीव के साथ श्रीरामचन्द्र जी की मैत्री का स्मरण हो आया॥ १॥

नयने मुखवर्णं च भर्तुस्तत्सदृशं मुखम्।
केशान्केशान्तदेशं[1] च तं च चूडामणिं शुभम्॥ २॥

सीता ने देखा कि, उस कटे हुए मस्तक के दोनों नेत्र, चेहरे की रंगत और मुख हूबहू उनके पति श्रीरामचन्द्र जी जैसा है। उस कटे हुए सिर के बाल और ललाट भी ज्यों के त्यों वैसे ही हैं और वह श्रेष्ठ चूड़ामणि भी वही है॥ २॥

एतैः सर्वैरभिज्ञानैरभिज्ञाय सुदुःखिता।
विजगर्हेऽत्र कैकेयीं क्रोशन्ती कुररी यथा॥ ३॥

---

१ केशान्तदेशं—ललाटं। (गो०)

सीता जी और भी अनेक प्रकार की बातों से अपने पति का मारा जाना निश्चित जान, अत्यन्त दुखी हुई और कुररी की तरह शोक से विकल हो, कैकेई को उपालंभ देती हुई अथवा उसकी निन्दा कर विलाप करने लगी ॥ ३ ॥

सकामा भव कैकेयि हतोऽयं कुलनन्दनः ।
कुलमुत्सादितं सर्वं त्वया कलहशीलया ॥ ४ ॥

हे कैकेयी ! अब तो तेरी साध पूरी हुई । देख, यह इक्ष्वाकु-कुलनन्दन मारे गये । तुझ कलहप्रिया ने इस कुल की जड़ ही उखाड़ फैंकी ॥ ४ ॥

आर्येण किं ते कैकेयि कृतं रामेण विप्रियम् ।
तद्गृहाच्चीरवसनं दत्त्वा प्रव्राजितो वनम् ॥ ५ ॥

अरी कैकेयी ! आर्य राम ने तेरा क्या बिगाड़ा था, जो तूने उनको चीरवस्त्र पहिना कर, घर से वन में निकाला दिया था ॥ ५ ॥

एवमुक्त्वा तु वैदेही वेपमाना तपस्विनी ॥ ६ ॥

दुखियारी जानकी यह कह कर थरथर काँपने लगी ॥ ६ ॥

जगाम जगतीं बाला छिन्ना तु कदली यथा ।
सा मुहूर्तात्समाश्वास्य प्रतिलभ्य च चेतनाम् ॥ ७ ॥

और कटे हुए केले के पेड़ की तरह ज़मीन पर गिर पड़ीं । फिर थोड़ी देर बाद वे सावधान हो सचेत हुईं ॥ ७ ॥

तच्छिरः समुपाघ्राय विललापायतेक्षणा ।
हा हताऽस्मि महाबाहो वीरव्रतमनुव्रत ॥ ८ ॥

और उस सिर को भली भाँति सूँघ कर विशालनेत्र वाली सीता विलाप कर के कहने लगी—हे महाबाहो ! हे वीरव्रतधारी ! हाय मैं मर गयी ॥ ८ ॥

इमां ते पश्चिमावस्थां गताऽस्मि विधवा कृता ।
प्रथमं मरणं नार्यो भर्तुर्वैगुण्यमुच्यते ॥ ९ ॥

तुम्हारे मरने से मैं तो विधवा हो गयी । स्त्री के रहते उसके पति का मरना स्त्री के दोष ही से होता है ॥ ६ ॥

सुवृत्त साधुवृत्तायाः संवृत्तस्त्वं ममाग्रतः ।
दुःखाद्दुःखं प्रपन्नाया मग्नाया शोकसागरे ॥ १० ॥

सो हे साधुवृत्त ! सो आप मुझ धर्मचारिणी से पहिले ही परलोक को सिधार गये । मैं तो अत्यन्त दुखी हो, पहिले ही शोकसागर में डूबी हुई थी ॥ १० ॥

यो हि मामुद्यतस्त्रातुं सोऽपि त्वं विनिपातितः ।
सा श्वश्रूर्मम कौसल्या त्वया पुत्रेण राघव ॥ ११ ॥

आप मेरा उद्धार करने को उद्यत हुए थे, सो आप भी मारे गये । हे राघव ! आप सरीखा पुत्र पा, मेरी सास कौशल्या पुत्रवत्सला कहलाती थी ॥ ११ ॥

वत्सेनेव यथा धेनुर्विवत्सा वत्सला कृता ।
आदिष्टं दीर्घमायुस्ते यैरचिन्त्यपराक्रम ॥ १२ ॥

सो वह भी बिना बछड़े की गौ की तरह निर्वत्सला हो गयी । ज्योतिषी ने तुम्हारा अचिन्त्य पराक्रम देख, तुमको दीर्घायु बतलाया था ॥ १२ ॥

अनृतं वचनं तेषामल्पायुरसि राघव ।
अथवा नश्यति प्रज्ञा प्राज्ञास्यापि सतस्तव ॥ १३ ॥

हे राघव! (सो मेरे दुर्भाग्य से) तुम अल्पायु हुए और उनके वचन असत्य ठहरे। अथवा उनका बचन मिथ्या नहीं है अर्थात् वे असत्यवादी नहीं है, किन्तु तुम्हारे भाग्यविपर्यय से उनकी बुद्धि भी मारी गयी ॥ १३ ॥

पचत्येनं यथा कालो भूतानां प्रभवो ह्ययम् ।
अदृष्टं मृत्युमापन्नः कस्मात्त्वं नयशास्त्रवित् ॥ १४ ॥
व्यसनानामुपायज्ञः कुशलो ह्यसि वर्जने ।
तथा त्वं सम्परिष्वज्य रौद्रयातिनृशंसया ॥ १५ ॥
कालरात्र्या मयाच्छिद्य हृतः कमललोचन ।
उपशेषे महाबाहो मां विहाय तपस्विनीम् ॥ १६ ॥
प्रियामिव समाश्लिष्य पृथिवीं पुरुषर्षभ ।
अर्चितं सततं यत्तद्गन्धमाल्यैर्मया तव ॥ १७ ॥

काल की करतूत ही ऐसी है। क्योंकि प्राणियों का कारणभूत वही है। हे राम! तुम तो नीतिशास्त्रविशारद थे, उपाय करने में निपुण थे, विपदों के निवारण में समर्थ हो कर भी, तुम्हारी इस प्रकार अचानक मृत्यु कैसे हुई। हाय! भयङ्कर निष्ठुर कालरात्रि ने तुम कमललोचन को मुझसे बरजोरी छीन लिया। हे महाबाहो! मुझ दुखियारी को त्याग कर, प्यारी स्त्री की नाई पृथिवी से लिपट कर तुम कहाँ पड़े हो! मैं तुम्हारे साथ सुगन्धित द्रव्य और पुष्पमालाओं से सदा जिसका पूजन किया करती थी ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

इदं ते मत्प्रियं वीर धनुः काञ्चनभूषणम् ।
पित्रा दशरथेन त्वं श्वशुरेण ममानघ ॥ १८ ॥

और जो मुझे अत्यन्त प्यारा था; हे वीर ! उसी तुम्हारे इस सुवर्णभूषित धनुष की यह क्या दशा है ? हे पापरहित ! तुम अपने पिता और मेरे पापरहित ससुर महाराज दशरथ ॥ १८ ॥

सर्वैश्च पितृभिः सार्धं नूनं स्वर्गे समागतः ।
[1]दिवि नक्षत्रभूतस्त्वं महत्कर्मकृतां प्रियम् ॥ १९ ॥

पुण्यं राजर्षिवंशं त्वमात्मनः समवेक्षसे ।
किं मां न प्रेक्षसे राजन्किं मां न प्रतिभाषसे ॥ २० ॥

तथा अन्य सब पितरों से स्वर्ग में निश्चय ही मिले होगे । बड़े बड़े यज्ञानुष्ठान करने वाले और विमानों में स्थित, अपने पवित्र इक्ष्वाकादिराजर्षियों को तुम देखते होगे । हे राजन् ! तुम मुझे क्यों नहीं देखते और मुझसे क्यों नहीं बोलते ? ॥ १९ ॥ २० ॥

बालां बाल्येन सम्प्राप्तां भार्यां मां सहचारिणीम् ।
संश्रुतं गृह्णता पाणिं चरिष्यामीति यत्त्वया ॥ २१ ॥

हे राजन् ! तुमने लड़कपने में ही मुझ बाला को अपनी सम-दुःख-सुख भोग करने वाली स्त्री कह कर अङ्गीकार किया था और पाणिग्रहण के समय तुमने प्रतिज्ञा की थी कि, मैं तेरे साथ रहूँगा ॥ २१ ॥

स्मर तन्मम काकुत्स्थ नय मामपि दुःखिताम् ।
कस्मान्मामपहाय त्वं गतो गतिमतां वर ॥ २२ ॥

---

१ दिवि नक्षत्रभूतः—विमानस्थःसन् (गो०)

सो हे काकुत्स्थ ! उसे याद करो और मुझ दुखिया के भी अपने साथ लेते चलो। हे भली गति को प्राप्त! तुम मुझे क्यों छोड़ कर चले गये ? ॥ २२ ॥

अस्माल्लोकादमुं लोकं त्यक्त्वा मामपि दुःखिताम् ।
कल्याणैरुचितं यत्तत्परिष्वक्तं मयैव तु ॥ २३ ॥

मुझ दुखिया को भी त्याग कर, तुम इस लोक से परलोक में क्यों चले गये ? तुम्हारे आभूषणों से भूषित होने योग्य जिस शरीर का मैं आलिङ्गन किया करती थी ॥ २३ ॥

क्रव्यादैस्तच्छरीरं ते नूनं विपरिकृष्यते ।
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवानाप्तदक्षिणः ॥ २४ ॥
अग्निहोत्रेण संस्कारं केन त्वं तु न लप्स्यसे ।
प्रव्रज्यामुपपन्नानां त्रयाणामेकमागतम् ॥ २५ ॥

उसको मांसभक्षी गिद्ध आदि निश्चय ही नोंचते खसोटते होंगे। वनवास की अवधि समाप्त होने पर तुमको तो पर्याप्त दक्षिणा प्रदान पूर्वक (प्रायश्चितात्मक) अग्न्याधान ग्रहण करना उचित था और जब तुम्हारी आयु शेष होती तब उसी अग्न्याधान के अग्नि से तुम्हारे शरीर का अग्निसंस्कार होना चाहिये था, परन्तु यह बीच ही में क्या का क्या हो गया। तुम्हारे मृतशरीर का अग्नि संस्कार क्यों नहीं हुआ। (गो०) हम तीन वनवासियों में से जब एक (लक्ष्मण) लौट कर अयोध्या में जायगा ॥ २४ ॥ २५ ॥

परिप्रक्ष्यति कौसल्या लक्ष्मणं शोकलालसा ।
स तस्याः परिपृच्छन्त्या वधं मित्रबलस्य ते ॥ २६ ॥

तब शोकविह्वला कौशल्या लक्ष्मण से पूँछेगी । तब लक्ष्मण उसके पूँछने पर तुम्हारा और तुम्हारे मित्र की सैन्य के मारे जाने का वृत्तान्त कहेंगे ॥ २६ ॥

तव चाख्यास्यते नूनं निशायां राक्षसैर्वधम् ।
सा त्वां सुप्तं हतं श्रुत्वा मां च रक्षोगृहं गताम् ॥ २७ ॥

उस समय लक्ष्मण निश्चय ही कहेंगे कि, रात में सोते हुए तुम राक्षसों द्वारा मार डाले गये । तब कौशल्या सोते में तुम्हारा मारा जाना और मेरा राक्षस के घर में रुद्ध होना सुनेगी ॥ २७ ॥

हृदयेनावदीर्णेन न भविष्यति राघव ।
मम हेतोरनार्याया ह्यनर्हः पार्थिवात्मजः ॥ २८ ॥

हे राघव ! तब अवश्य ही उसका हृदय फट जायगा और वह मर जायगी । हे राजकुमार ! मुझ अभागिनी के कारण तुम्हारा इस प्रकार का सौप्तिकवध (सोते में वध) सर्वथा अयोग्य है ॥ २८ ॥

रामः सागरमुत्तीर्य सत्त्ववान्गोष्पदे हतः ।
अहं दाशरथेनोढा मोहात्स्वकुलपांसनी ॥ २९ ॥

हा ऐसे बलवान राम, सागर तो पार कर आये, किन्तु गौ के खुर भर पानी में डूब कर मर गये अर्थात् खर दूषण त्रिशिरा कबन्धादि दुर्दान्त राक्षसों के मारने वाले राम को एक क्षुद्र प्रहस्त ने मार डाला । हा ! मुझ कुलकलङ्किनी के साथ रामचन्द्र जी ने विवाह कर बड़ी भूल की ॥ २९ ॥

आर्यपुत्रस्य रामस्य भार्या मृत्युरजायत ।
नूनमन्यां मया जातिं वारितं [1]दानमुत्तमम् ॥ ३० ॥

---

[1] दानमुत्तमम्--कन्यादानं । (गो०)

क्योंकि मैं उस राजकुमार की भार्या हो कर उसकी मृत्यु का कारण हुई। मैंने पूर्वजन्म में किसी के कन्यादान में अवश्य ही बाधा डाली होगी ॥ ३० ॥

याऽहमद्येह शोचामि भार्या [1]सर्वातिथेरपि ।
साधु पातय मां क्षिप्रं रामस्योपरि रावण ॥ ३१ ॥

इसीसे तो इस जन्म में सब की रक्षा करने वाले अथवा सब का आतिथ्य करने वाले श्रीरामचन्द्र की भार्या हो कर भी और सुखभोग का समय उपस्थित होने पर भी, मैं ऐसी दुर्दशा में पड़ी हुई हूँ। हे रावण! तू बड़ा अच्छा काम करे, जो मुझे भी शीघ्र मार कर, राम के ऊपर डाल दे ॥ ३१ ॥

समानय पतिं पत्न्या कुरु कल्याणमुत्तमम् ।
शिरसा मे शिरश्चास्य कायं कायेन योजय ॥ ३२ ॥

हे रावण! पति को पत्नी से मिला कर यह एक बड़ी भलाई का काम कर और राम के सिर से मेरा सिर और राम के शरीर से मेरा सिर मिला दे ॥ ३२ ॥

रावणानुगमिष्यामि गतिं भर्तुर्महात्मनः ।
[मुहूर्तमपि नेच्छामि जीवितुं पापजीविता ॥ ३३ ॥]

हे रावण! मैं अपने महात्मा पति की अनुगामिनी होऊँगी। मैं इस प्रकार का (पति विना) पापमय जीवन एक क्षण भी धारण करना नहीं चाहती ॥ ३३ ॥

इति सा दुःखसन्तप्ता विललापायतेक्षणा ।
भर्तुः शिरो धनुस्तत्र समीक्ष्य च पुनः पुनः ॥ ३४ ॥

---

१ सर्वातिथेरपि—सर्वरक्षितुरित्यर्थः। सर्वातिथिपूजकस्येतिवाऽर्थः। (गो०)

एवं लालप्यमानायां सीतायां तत्र राक्षसः ।
अभिचक्राम भर्तारमनीकस्थः कृताञ्जलिः ॥ ३५ ॥

बड़े बड़े नेत्रवाली दुखिया जानकी पति के कटे सीस और धनुष को बार बार देख कर विलाप कर रही थी कि, इतने में रावण की सेना का एक राक्षस आया और रावण के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

विजयस्वार्यपुत्रेति सोऽभिवाद्य प्रसाद्य च ।
न्यवेदयदनुप्राप्तं प्रहस्तं वाहिनीपतिम् ॥ ३६ ॥

अमात्यैः सहितैः सर्वैः प्रहस्तः समुपस्थितः ।
तेन दर्शनकामेन वयं प्रस्थापिताः प्रभो ॥ ३७ ॥

"आर्यपुत्र की जय हो" कह कर उसने रावण को प्रणाम किया और रावण को प्रसन्न कर उसने यह समाचार दिया कि, सब मंत्रियों सहित सेनापति प्रहस्त उपस्थित हैं। हे प्रभो! आपसे मिलने की इच्छा से उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

नूनमस्ति महाराज राजभावात्क्षमान्वितम् ।
किञ्चिदात्ययिकं कार्यं तेषां त्वं दर्शनं कुरु ॥ ३८ ॥

हे महाराज! कोई ऐसा महत्वपूर्ण कार्य उपस्थित है, जो बिना आपकी आज्ञा नहीं किया जा सकता, अतएव आप उनको दर्शन दीजिये ॥ ३८ ॥

एतच्छ्रुत्वा दशग्रीवो राक्षसप्रतिवेदितम् ।
अशोकवनिकां त्यक्त्वा मन्त्रिणां दर्शनं ययौ ॥ ३९ ॥

उस राक्षस के इस प्रकार के वचन सुन, दशानन रावण अशोकवाटिका त्याग, मंत्रियों से मिलने के लिये चल दिया ॥ ३९ ॥

स तु सर्वं समर्थ्यैव मन्त्रिभिः कृत्यमात्मनः ।
सभां प्रविश्य विदधे विदित्वा रामविक्रमम् ॥ ४० ॥

मंत्रियों के परामर्श से सब कार्यों का निश्चय कर, वह सभा में गया और वहाँ श्रीरामचन्द्र जी के बल विक्रम को भली भाँति समझ बूझ कर, उसने आवश्यक प्रबन्ध करवाया ॥ ४० ॥

अन्तर्धानं तु तच्छीर्षं तच्च कार्मुकमुत्तमम् ।
जगाम रावणस्यैव निर्याणसमनन्तरम् ॥ ४१ ॥

जिस समय रावण अशोकवाटिका से प्रस्थानित हुआ था; उसी समय श्रीरामचन्द्र जी का कटा हुआ वह बनावटी सिर और धनुष भी न जाने कहाँ ग़ायब हो गया था ॥ ४१ ॥

राक्षसेन्द्रस्तु तैः सार्धं मन्त्रिभिर्भीमविक्रमैः ।
समर्थयामास तदा रामकार्यविनिश्चयम् ॥ ४२ ॥

रावण ने उन भीम विक्रमी मंत्रियों के साथ श्रीरामचन्द्र जी के सम्बन्ध में अपना कर्त्तव्य निश्चय किया ॥ ४२ ॥

अविदूरस्थितान्सर्वान्बलाध्यक्षान्हितैषिणः ।
अब्रवीत्कालसदृशं रावणो राक्षसाधिपः ॥ ४३ ॥

फिर निकट ही खड़े हुए अपने हितैषी सेनापतियों से राक्षसराज रावण ने समयानुकूल वचन कहे ॥ ४३ ॥

शीघ्रं भेरीनिनादेन स्फुटकोणाहतेन मे ।
समानयध्वं सैन्यानि वक्तव्यं च न कारणम् ॥ ४४ ॥

तुम अति शीघ्र नगाड़े पर चोब पड़वा कर मेरी सेना को बुला लाओ, किन्तु उनको बुलाने का कारण मत बतलाना ॥ ४४ ॥

ततस्तथेति प्रतिगृह्य तद्वचो
बलाधिपास्ते महदात्मनो बलम् ।
समानयंश्चैव समागमं च ते
न्यवेदयन्भर्तरि युद्धकाङ्क्षिणि ॥ ४५ ॥

इति द्वात्रिंशः सर्गः ॥

रावण की आज्ञा मान और बहुत अच्छा कह, वे सेनापति अपनी महती एवं युद्धकाङ्क्षिणी सेना को लिवा लाये और सेना के आने की सूचना अपने स्वामी—रावण को दी ॥ ४५ ॥

युद्धकाण्ड का बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—※—

त्रयस्त्रिंशः सर्गः

—※—

सीतां तु मोहितां दृष्ट्वा सरमा नाम राक्षसी ।
आससादाथ वैदेहीं प्रियां प्रणयिनी सखीम् ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के विषय में सीता की विपरीत धारणा देख, अथवा सीता को धोखे में पड़ी देख, सीता जी की हितैषिणी प्यारी सरमा नाम की राक्षसी (विभीषण की पत्नी) जानकी जी के पास आ कर बैठ गयी ॥ १ ॥

मोहितां राक्षसेन्द्रेण सीतां परमदुःखिताम्।
आश्वासयामास तदा सरमा मृदुभाषिणी ॥ २ ॥

राक्षसराज रावण द्वारा सीता को छली हुई और उसे अत्यन्त दुःखी देख, मधुरभाषिणी सरमा ने सीता को धीरज बँधाया ॥ २॥

सा हि तत्र कृता मित्रं सीतया रक्ष्यमाणया।
रक्षन्ती रावणादिष्टा सानुक्रोशा दृढव्रता ॥ ३ ॥

रावण ने इस सरमा को दयावती और दृढ़प्रतिज्ञ देख, सीता की रखवाली के लिये रख दिया था। एक साथ रहते रहते इन दोनों में परस्पर मैत्री हो गयी थी ॥ ३ ॥

सा ददर्श ततः सीतां सरमा नष्टचेतनाम्।
उपावृत्योत्थितां ध्वस्तां वडवामिव पांसुलाम् ॥ ४ ॥

सरमा ने देखा कि, सीता अत्यन्त व्याकुल हो और शोकाकुल हो भूमि पर धूल में लोटी हुई घोड़ी की तरह लोट रही है, उसके समस्त अंगों में धूल लगी हुई है और वह अपने आपेमें नहीं है ॥ ४ ॥

तां समाश्वासयामास सखीस्नेहेन सुव्रता।
समाश्वसिहि वैदेहि माभूत्ते मनसो व्यथा ॥ ५ ॥

सखीस्नेह के वशवर्ती हो पतिव्रता सरमा ने सीता जी को धीरज बँधाया और कहा—तू अपने मन को दुखी मत कर ॥ ५ ॥

उक्ता यद्रावणेन त्वं [1]प्रत्युक्तं च स्वयं त्वया।
सखीस्नेहेन तद्भीरु मया सर्वं प्रतिश्रुतम् ॥ ६ ॥

---

१ प्रत्युक्तं प्रलापरूपं। (गो०)

हे भीरु ! रावण ने जो कुछ तुझ से कहा और उसे सुन तूने जो प्रलाप रूप से उत्तर दिया सो सब मैंने सखी भाव से सुना है ॥ ६ ॥

लीनया गगने शून्ये भयमुत्सृज्य रावणात् ।
तव हेतोर्विशालाक्षि न हि मे जीवितं प्रियम् ॥ ७ ॥

मैं रावण के भय से तुझको छोड़, अब तक अन्तरिक्ष में (आड़ में) छिपी हुई थी ; किन्तु हे विशालाक्षी ! मुझे तेरे सामने अपने प्राण भी प्रिय नहीं हैं ॥ ७ ॥

[नोट—जब रावण ने सरमा को स्वयं सीता जी के निकट रखा था ; तब उसके छिपने की आवश्यकता ही क्या थी ? आवश्यकता यह थी कि सरमा पतिव्रता थी—अतः वह अपने जेठ के सामने नहीं आ सकती थी ।]

स सम्भ्रान्तश्च निष्क्रान्तो यत्कृते राक्षसाधिपः ।
तच्च मे विदितं सर्वमभिनिष्क्रम्य मैथिलि ॥ ८ ॥

हे मैथिली ! राक्षसराज रावण जिस कारण घबड़ा कर यहाँ से गया था—वह समस्त कारण मैं बाहिर जा कर जान आयी हूँ ॥ ८॥

न शक्यं सौप्तिकं कर्तुं रामस्य विदितात्मनः ।
वधश्च पुरुषव्याघ्रे तस्मिन्नैवोपपद्यते ॥ ९ ॥

उन आत्मज्ञ श्रीरामचन्द्र जी का वध सोते में कोई नहीं कर सकता । वह पुरुषव्याघ्र किसी प्रकार मारा ही नहीं जा सकता ॥ ६ ॥

न त्वेव वानरा हन्तुं शक्याः पादपयोधिनः ।
सुरा देवर्षभेणेव रामेण हि सुरक्षिताः ॥ १० ॥

जिस प्रकार नारायण द्वारा सुरक्षित देवताओं को कोई नहीं मार सकता, उसी प्रकार श्रीरामचन्द्र द्वारा रक्षित और वृक्षों से लड़ने वाले वानरों को भी कोई मार नहीं सकता ॥ १० ॥

दीर्घवृत्तभुजः श्रीमान्महोरस्कः प्रतापवान् ।
धन्वी [1]संहननोपेतो धर्मात्मा भुवि विश्रुतः ॥ ११ ॥

श्रीरामचन्द्र जी की बड़ी बड़ी और गोल गोल भुजाएँ हैं, वे कान्तिमान हैं, उनकी छाती चौड़ी है, वे बड़े तेजस्वी हैं, वे धनुष चलाने में बड़े निपुण हैं और सुन्दर शारीरिक अवयवों से सम्पन्न हैं। वे बड़े धर्मात्मा हैं और पृथिवीतल पर प्रसिद्ध हैं ॥ ११ ॥

विक्रान्तो रक्षिता नित्यमात्मनश्च परस्य च ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा कुशली नयशास्त्रवित् ॥ १२ ॥

वे बड़े विक्रमी हैं और अपनी तथा दूसरों की सदा रक्षा करने वाले हैं। वे नीतिशास्त्र के ज्ञाता हैं और अपने भाई लक्ष्मण सहित युद्धकला में बड़े निपुण हैं ॥ १२ ॥

हन्ता परबलौघानामचिन्त्यबलपौरुषः ।
न हतो राघवः श्रीमान्सीते शत्रुनिबर्हणः ॥ १३ ॥

वे शत्रुसैन्य के मारने वाले हैं। उनका बल तथा पौरुष अचिन्त्य है। हे सीते ! शत्रुहन्ता श्रीमान् रामचन्द्र जी मारे नहीं गये ॥ १३ ॥

[2]अयुक्तबुद्धिकृत्येन सर्वभूतविरोधिना ।
इयं प्रयुक्ता रौद्रेण माया मायाविदा त्वयि ॥ १४ ॥

रावण की बुद्धि और उसके कृत्य, दोनों ही ठीक नहीं हैं; वह प्राणीमात्र का विरोधी है। सो उस क्रूर स्वभाव रावण ने तुझे छला था ॥ १४ ॥

---

१ संहननोपेतः—शोभनावयवसंस्थानः । (गो०) २ अयुक्तबुद्धिः—अनुचिता बुद्धिः कृत्यं च यस्य । (रा०)

हे भीरु ! रावण ने जो कुछ तुझ से कहा और उसे सुन तूने जो प्रलाप रूप से उत्तर दिया सो सब मैंने सखी भाव से सुना है ॥ ६ ॥

लीनया गगने शून्ये भयमुत्सृज्य रावणात् ।
तव हेतोर्विशालाक्षि न हि मे जीवितं प्रियम् ॥ ७ ॥

मैं रावण के भय से तुझको छोड़, अब तक अन्तरिक्ष में (आड़ में) छिपी हुई थी ; किन्तु हे विशालाक्षी ! मुझे तेरे सामने अपने प्राण भी प्रिय नहीं हैं ॥ ७ ॥

[नोट--जब रावण ने सरमा को स्वयं सीता जी के निकट रखा था ; तब उसके छिपने की आवश्यकता ही क्या थी ? आवश्यकता यह थी कि सरमा पतिव्रता थी—अतः वह अपने जेठ के सामने नहीं आ सकती थी ।]

स सम्भ्रान्तश्च निष्क्रान्तो यत्कृते राक्षसाधिपः ।
तच्च मे विदितं सर्वमभिनिष्क्रम्य मैथिलि ॥ ८ ॥

हे मैथिली ! राक्षसराज रावण जिस कारण घबड़ा कर यहाँ से गया था—वह समस्त कारण मैं बाहिर जा कर जान आयी हूँ ॥ ८॥

न शक्यं सौप्तिकं कर्तुं रामस्य विदितात्मनः ।
वधश्च पुरुषव्याघ्रे तस्मिन्नैवोपपद्यते ॥ ९ ॥

उन आत्मज्ञ श्रीरामचन्द्र जी का वध सोते में कोई नहीं कर सकता । वह पुरुषव्याघ्र किसी प्रकार मारा ही नहीं जा सकता ॥ ९ ॥

न त्वेव वानरा हन्तुं शक्याः पादपयोधिनः ।
सुरा देवर्षभेणेव रामेण हि सुरक्षिताः ॥ १० ॥

जिस प्रकार नारायण द्वारा सुरक्षित देवताओं को कोई नहीं मार सकता, उसी प्रकार श्रीरामचन्द्र द्वारा रक्षित और वृक्षों से लड़ने वाले वानरों को भी कोई मार नहीं सकता ॥ १० ॥

दीर्घवृत्तभुजः श्रीमान्महोरस्कः प्रतापवान् ।
धन्वी [1]संहननोपेतो धर्मात्मा भुवि विश्रुतः ॥ ११ ॥

श्रीरामचन्द्र जी की बड़ी बड़ी और गोल गोल भुजाएँ हैं, वे कान्तिमान हैं, उनकी छाती चौड़ी है, वे बड़े तेजस्वी हैं, वे धनुष चलाने में बड़े निपुण हैं और सुन्दर शारीरिक अवयवों से सम्पन्न हैं। वे बड़े धर्मात्मा हैं और पृथिवीतल पर प्रसिद्ध हैं ॥ ११ ॥

विक्रान्तो रक्षिता नित्यमात्मनश्च परस्य च ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा कुशली नयशास्त्रवित् ॥ १२ ॥

वे बड़े विक्रमी हैं और अपनी तथा दूसरों की सदा रक्षा करने वाले हैं। वे नीतिशास्त्र के ज्ञाता हैं और अपने भाई लक्ष्मण सहित युद्धकला में बड़े निपुण हैं ॥ १२ ॥

हन्ता परबलौघानामचिन्त्यबलपौरुषः ।
न हतो राघवः श्रीमान्सीते शत्रुनिबर्हणः ॥ १३ ॥

वे शत्रुसैन्य के मारने वाले हैं। उनका बल तथा पौरुष अचिन्त्य है। हे सीते! शत्रुहन्ता श्रीमान् रामचन्द्र जी मारे नहीं गये ॥ १३ ॥

[2]अयुक्तबुद्धिकृत्येन सर्वभूतविरोधिना ।
इयं प्रयुक्ता रौद्रेण माया मायाविदा त्वयि ॥ १४ ॥

रावण की बुद्धि और उसके कृत्य, दोनों ही ठीक नहीं हैं; वह प्राणीमात्र का विरोधी है। सो उस क्रूर स्वभाव रावण ने तुझे छला था ॥ १४ ॥

---

१ संहननोपेतः—शोभनावयवसंस्थानः । (गो०) २ अयुक्तबुद्धिः—अनुचिता बुद्धिः कृत्यं च यस्य । (रा०)

शोकस्ते विगतः सर्वः कल्याणं त्वामुपस्थितम् ।
ध्रुवं त्वां भजते लक्ष्मीः प्रियं प्रीतिकरं शृणु ॥ १५ ॥

हे सीते ! तेरा शोक नष्ट हुआ । अब तो हर्ष का समय उपस्थित हुआ है । अब अवश्य ही विजयलक्ष्मी तुझे प्राप्त होगी । तू प्रीतिकर प्रियवचन को अब सुन ॥ १५ ॥

उत्तीर्य सागरं रामः सह वानरसेनया ।
सन्निविष्टः समुद्रस्य तीरमासाद्य दक्षिणम् ॥ १६ ॥

वानरी सेना सहित श्रीरामचन्द्र जी समुद्र को पार कर, समुद्र के दक्षिण तट पर ठहरे हुए हैं ॥ १६ ॥

दृष्टो मे परिपूर्णार्थः काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः ।
स हि तैः सागरान्तस्थैर्बलैस्तिष्ठति रक्षितः ॥ १७ ॥

मैंने स्वयं देखा है कि, परिपूर्ण मनोरथ श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण सहित समुद्रतट पर ठहरे हुए हैं और उनकी सेना उन्हें घेरे हुए उनकी रक्षा कर रही है ॥ १७ ॥

अनेन प्रेषिता ये च राक्षसा लघुविक्रमाः ।
राघवस्तीर्ण इत्येव प्रवृत्तिस्तैरिहाहृता ॥ १८ ॥

रावण ने जिन फुर्तीले जासूसों को उनका भेद लेने के लिये भेजा था, उन्होंने लौट कर एतावन्मात्र कहा कि, श्रीरामचन्द्र समुद्र के इस पार आ गये हैं ॥ १८ ॥

स तां श्रुत्वा विशालाक्षि प्रवृत्तिं राक्षसाधिपः ।
एष मन्त्रयते सर्वैः सचिवैः सह रावणः ॥ १९ ॥

हे विशालाक्षी ! यह समाचार पा कर, अब रावण अपने सब मंत्रियों से परामर्श कर रहा है ॥ १६ ॥

इति ब्रुवाणा सरमा राक्षसी सीतया सह ।
सर्वोद्योगेन सैन्यानां शब्दं शुश्राव भैरवम् ॥ २० ॥

सरमा जानकी से यह सब कह ही रही थी कि, इतने में सेना की तैयारी का बड़ा भारी कोलाहल सुन पड़ा ॥ २० ॥

दण्डनिर्घातवादिन्याः श्रुत्वा भेर्या महास्वनम् ।
उवाच सरमा सीतामिदं मधुरभाषिणी ॥ २१ ॥

नगाड़ों पर चोब के पड़ने और रणसिंहों के बजने का घोर शब्द सुन, मधुरभाषिणी सरमा सीता से यह बोली ॥ २१ ॥

सन्नाहजननी ह्येषा भैरवा भीरु भेरिका ।
भेरीनादं च गम्भीरं शृणु तोयदनिःस्वनम् ॥ २२ ॥

हे भीरु ! सुन, युद्ध के लिये उत्साहित करने को, यह नगाड़े (मारू बाजे) का भयङ्कर शब्द हो रहा है, जो ठीक मेघगर्जन के तुल्य है ॥ २२ ॥

कल्प्यन्ते मत्तमातङ्गा युज्यन्ते रथवाजिनः ।
हृष्यन्ते तुरगारूढाः प्रासहस्ताः सहस्रशः ॥ २३ ॥

लड़ाई के लिये मतवाले हाथी तैयार किये जा रहे हैं, रथों में घोड़े जोते जा रहे हैं और हाथों में भाले लिये हुए, हज़ारों घुड़सवार हर्षनाद कर रहे हैं ॥ २३ ॥

तत्र तत्र च सन्नद्धाः [1]सम्पतन्ति पदातयः ।
आपूर्यन्ते राजमार्गाः सैन्यैरद्भुतदर्शनैः ॥ २४ ॥

---

१ सम्पतन्ति--सङ्घीभवन्ति । (गो०)

जहाँ तहाँ पैदल सिपाही जिरहबख़्तरों को पहिन कर इकट्ठे हो रहे हैं। उन अद्भुत सूरत शकल वाले सैनिकों से राजमार्ग, खचाखच वैसे ही भरे हुए हैं; ॥ २४ ॥

वेगवद्भिर्नदद्भिश्च तोयौघैरिव सागरः।
शस्त्राणां च [1]प्रसन्नानां चर्मणां वर्मणां तथा ॥ २५ ॥

जैसे कलकल करती हुई और बड़े वेग से बहती हुई जल की धार से समुद्र भर जाता है। देखो चमचमाते अस्त्र शस्त्रों, कवचों तथा ढालों से ॥ २५ ॥

रथवाजिगजानां च भूषितानां च रक्षसाम्।
प्रभां विसृजतां पश्य नानावर्णां समुत्थिताम् ॥ २६ ॥

तथा रथों, घोड़ों, हाथियों और रावण के सुसज्जित राक्षस योद्धाओं की सजावट से, रंग बिरंगी चमक या प्रभा वैसी ही निकल रही है, ॥ २६ ॥

वनं निर्दहतो घर्मे यथा रूपं विभावसोः।
घण्टानां शृणु निर्घोषं रथानां शृणु निःस्वनम् ॥ २७ ॥

जैसी ग्रीष्मकाल में वन जलाने वाले अग्नि की रंग बिरंगी चमक या प्रभा निकलती है। घंटों के बजने का शब्द और रथों के चलने की घरघराहट तो सुन ॥ २७ ॥

हयानां हेषमाणानां शृणु तूर्यध्वनिं तथा।
उद्यतायुधहस्तानां राक्षसेन्द्रानुयायिनाम् ॥ २८ ॥

---

१ प्रसन्नानां—निर्मलानां। (गो०)

घोड़ों की हिनहिनाहट और तुरही के बजने का शब्द तो ज़रा सुन। आयुधों को ऊपर उठाये हुए रावण के सैनिक ॥ २८ ॥

संभ्रमो रक्षसामेष तुमुलो रोमहर्षणः ।
श्रीस्त्वां भजति शोकघ्नी रक्षसां भयमागतम् ॥ २९ ॥
रामः कमलपत्राक्षोऽदैत्यानामिव वासवः ।
विनिर्जित्य जितक्रोधस्त्वामचिन्त्यपराक्रमः ॥ ३० ॥
रावणं समरे हत्वा भर्ता त्वाधिगमिष्यति ।
विक्रमिष्यति रक्षःसु भर्ता ते सहलक्ष्मणः ॥ ३१ ॥

राक्षसों का जो घबड़ाये हुए हैं यह तुमुल एवं रोमाञ्चकारी रव (शोर) है। हे देवि! तुझको अब शोक नाश करने वाली विजयश्री प्राप्त होने वाली है। कमलनयन श्रीरामचन्द्र से राक्षस उसी प्रकार डर रहे हैं; जिस प्रकार इन्द्र से दैत्य डरते हैं। जितक्रोध और अथाह पराक्रमी तेरे पति श्रीरामचन्द्र जी, युद्ध में रावण को मार कर, तुझको प्राप्त करेंगे। तेरे पति श्रीरामचन्द्र जी अपने छोटे भाई लक्ष्मण सहित राक्षसों पर वैसे ही विक्रम प्रकट करेंगे ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

यथा शत्रुषु शत्रुघ्नो विष्णुना सह वासवः ।
आगतस्य हि रामस्य क्षिप्रमङ्कगतां सतीम् ॥ ३२ ॥
अहं द्रक्ष्यामि सिद्धार्थां त्वां शत्रौ विनिपातिते ।
अश्रूण्यानन्दजानि त्वं वर्तयिष्यसि शोभने ॥ ३३ ॥

जैसे शत्रुहन्ता इन्द्र ने भगवान विष्णु की सहायता प्राप्त कर, अपने शत्रु दैत्यों पर प्रकट किया था। जब शत्रु का नाश हो जायगा

तब तेरा मनोरथ भी पूरा होगा और मैं तुझ पतिव्रता को यहाँ आये हुए श्रीरामचन्द्र जी की गोद में शीघ्र ही बैठी हुई देखूँगी। हे शोभने! उस समय तेरे नेत्र आनन्दाश्रुओं से शोभित होंगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

समागम्य परिष्वज्य तस्योरसि महोरसः ।
अचिरान्मोक्ष्यते सीते देवि ते जघनं गताम् ॥ ३४ ॥
धृतामेतां बहूमासान्वेणीं रामो महाबलः ।
तस्य दृष्ट्वा मुखं देवि पूर्णचन्द्रमिवोदितम् ॥ ३५ ॥

तू मिल कर चौड़ी छाती वाले श्रीरामचन्द्र जी की छाती से लिपटेगी। हे सीते! दीर्घकाल से सम्हाले न जाने के कारण तेरे बालों के उलझे हुए जूड़े को महाबली श्रीरामचन्द्र जी अति शीघ्र अपने हाथों से सुलझावेंगे। हे देवि! उदित हुए पूर्णमासी के चन्द्रमा की तरह उनके मुखमण्डल को देख, ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

मोक्ष्यसे शोकजं वारि निर्मोकमिव पन्नगी ।
रावणं समरे हत्वा न चिरादेव मैथिलि ।
त्वया समग्रः प्रियया सुखार्हो लप्स्यते सुखम् ॥ ३६ ॥

तू शोकाश्रु बहाना वैसे ही छोड़ देगी, जैसे नागिन कैचुली छोड़ देती है। हे मैथिली! समर में रावण को मार कर, सदा सुखी रहने योग्य श्रीरामचन्द्र जी शीघ्र ही तुझको प्राप्त कर, सुखी होंगे ॥ ३६ ॥

समागता त्वं वीर्येण मोदिष्यसि महात्मना ।
सुवर्षेण समायुक्ता यथा सस्येन मेदिनी ॥ ३७ ॥

जिस प्रकार सुवृष्टि से धान्ययुक्त पृथिवी की शोभा होती है, उसी प्रकार श्रीरामचन्द्र जी से समागम होने पर तू उनके प्रेम व्यवहार से हर्षित होगी ॥ ३७ ॥

गिरिवरमभितोऽनुवर्तमानो
हय इव मण्डलमाशु यः करोति ।
तमिह शरणमभ्युपेहि देवं
दिवसकरं प्रभवो ह्ययं प्रजानाम् ॥ ३८ ॥

इति त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥

हे सीते ! जो पर्वतश्रेष्ठ सुमेरु के चारों ओर घोड़े की तरह शीघ्र शीघ्र मण्डलाकार घूमा करते हैं, तू अब उन्हीं देव, तिर्यक्, मनुष्य तथा स्थावर जङ्गमादि की उत्पत्ति के कारणभूत दिनकर सूर्यभगवान् की शरणागति कर अर्थात् उनसे प्रार्थना कर ॥ ३८ ॥

युद्धकाण्ड का तैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—*—

चतुस्त्रिंशः सर्गः

—*—

अथ तां जातसन्तापां तेन वाक्येन मोहिताम् ।
सरमा ह्लादयामास पृथिवीं द्यौरिवाम्भसा ॥ १ ॥

ग्रीष्मऋतु के ताप से तप्त पृथिवी, जिस प्रकार वर्षा के जल से शान्त होती है ; उसी प्रकार रावण के वचनों से सन्तप्त सीता के मन को सरमा ने इन मधुर वचनों से हर्षित (शान्त) कर दिया ॥ १ ॥

ततस्तस्या हितं सख्याश्चिकीर्षन्ती सखीवचः ।
उवाच काले कालज्ञा स्मितपूर्वाभिभाषिणी ॥ २ ॥

तदनन्तर समय को पहचानने वाली सरमा ने अपनी प्यारी सखी जानकी की हितकामना से मुसक्या कर, उस समय के अनुरूप वचन कहे ॥ २ ॥

उत्सहेयमहं गत्वा त्वद्वाक्यमसितेक्षणे ।
निवेद्य कुशलं रामे प्रतिच्छन्ना निवर्तितुम् ॥ ३ ॥

हे असित लोचने ! मैं चाहती हूँ कि, मैं छिप कर श्रीरामचन्द्र के पास जाऊँ और तुम्हारा कुशल क्षेम उनसे कहूँ और उनका कुशल पूँछ कर यहाँ चली आऊँ ॥ ३ ॥

न हि मे क्रममाणाया निरालम्बे विहायसि ।
समर्थो गतिमन्वेतुं पवनो गरुडोऽपि वा ॥ ४ ॥

मेरे निरावलम्ब आकाशमार्ग से चलने पर, गरुड़ या वायु में भी ऐसी सामर्थ्य नहीं, जो मुझे पकड़ ले या मेरा पीछा कर सके ॥ ४ ॥

एवं ब्रुवाणां तां सीता सरमां पुनरब्रवीत् ।
मधुरं श्लक्ष्णया वाचा पूर्वं [1]शोकाभिपन्नया ॥ ५ ॥

इस प्रकार कहती हुई सरमा से सीता जी ने अब प्रसन्न हो कोमल वाणी से फिर कहा—॥ ५ ॥

समर्था गगनं गन्तुमपि वा त्वं रसातलम् ।
अवगच्छाम्यकर्तव्यं कर्तव्यं ते मदन्तरे ॥ ६ ॥

---

१ शोकाभिपन्नया सम्प्रति हृष्टयेत्यर्थः । (गो०)

हे प्यारी ! यह मैं जानती हूँ कि, आकाश ही नहीं ; किन्तु तू रसातल में भी बड़ी आसानी से जा सकती है और ऐसा कोई कार्य भी नहीं, जो तू मेरे लिये न कर सके ॥ ६ ॥

मत्प्रियं यदि कर्तव्यं यदि बुद्धिः स्थिरा तव ।
ज्ञातुमिच्छामि तं गत्वा किं करोतीति रावणः ॥ ७ ॥

किन्तु ; यदि तू मेरा कोई काम करना ही चाहती है और यदि तेरी बुद्धि स्थिर है ; तो तू जा कर यह पता लगा ला कि, इस समय रावण क्या कर रहा है ? क्योंकि इस समय मेरी इच्छा यही जानने की है ॥ ७ ॥

स हि मायाबलः क्रूरो रावणः शत्रुरावणः ।
मां मोहयति दुष्टात्मा [1]पीतमात्रेव वारुणी ॥ ८ ॥

शत्रुओं को रुलाने वाला रावण निष्ठुर है और माया का बड़ा बल रखता है । वह दुष्ट सद्य पीता वारुणी की तरह मुझको वेसुध किया करता है ॥ ८ ॥

तर्जापयति मां नित्यं भर्त्सापयति चासकृत् ।
राक्षसीभिः सुघोराभिर्या मां रक्षन्ति नित्यशः ॥ ९ ॥

वह इन भयङ्कर राक्षसियों द्वारा मुझे नित्य ही बार बार धमकाया करता है और मेरी विद्दत कराया करता है । इन्हीं जलमुही राक्षसियों को उसने मेरी रक्षा के लिये भी नियत कर रखा है ॥ ९ ॥

उद्विग्ना शङ्किता चास्मि न स्वस्थं च मनो मम ।
तद्भयाच्चाहमुद्विग्ना अशोकवनिकां गता ॥ १० ॥

---

१ पीतमात्रा—सद्यःपीता । (गो०)

इसीसे मैं सदा उद्विग्न और सशङ्कित रहा करती हूँ। मैं रावण के भय ही से अशोकवन में रहती हूँ, किन्तु एक घड़ी भर के लिये भी मेरे मन की विकलता दूर नहीं होती ॥ १० ॥

यदि नाम कथा तस्या निश्चितं वाऽपि यद्भवेत् ।
निवेदयेथाः सर्वं तत्परो मे स्यादनुग्रहः ॥ ११ ॥

रावण की सभा में मेरे छोड़ देने के सम्बन्ध में अथवा अन्य कोई परामर्श हो; उसे यदि तू मुझे बतला दे तो मैं अपने ऊपर तेरी बड़ी दया समझूँ ॥ ११ ॥

सा त्वेवं ब्रुवतीं सीतां सरमा वल्गुभाषिणी ।
उवाच वदनं तस्याः [1]स्पृशन्ती बाष्पविक्लवम् ॥ १२ ॥

मृदुवचन बोलने वाली सरमा ने सीता के ऐसे वचन सुन कर, अपने आँचल से सीता का आँसूयुक्त मुखमण्डल पोंछ कर कहा ॥ १२ ॥

एष ते यद्यभिप्रायस्तदा गच्छामि जानकि ।
गृह्य शत्रोरभिप्रायमुपावृत्तां च पश्य माम् ॥ १३ ॥

हे जानकी! यदि तेरी यही इच्छा है, तो ले मैं यह चली और तू देख मैं अभी तेरे शत्रु रावण का सब हाल जान कर यहाँ लौट आती हूँ ॥ १३ ॥

एवमुक्त्वा ततो गत्वा समीपं तस्य रक्षसः ।
शुश्राव कथितं तस्य रावणस्य समन्त्रिणः ॥ १४ ॥

इस प्रकार कह सरमा रावण के यहाँ गयी और मंत्रियों के साथ रावण की जो सलाह हो रही थी, वह समस्त उसने सुनी ॥ १४ ॥

---

१ स्पृशन्ती—परिमृजन्ती । (गो०).

सा श्रुत्वा निश्चयं तस्य निश्चयज्ञा दुरात्मनः ।
पुनरेवागमत्क्षिप्रमशोकवनिकां तदा ॥ १५ ॥

तदनन्तर सरमा निश्चय रूप से दुरात्मा रावण का भेद जान शीघ्र ही अशोकवाटिका में लौट आयी ॥ १५ ॥

सा प्रविष्टा पुनस्तत्र ददर्श जनकात्मजाम् ।
प्रतीक्षमाणां स्वामेव [1]भ्रष्टपद्मामिव श्रियम् ॥ १६ ॥

और अशोकवाटिका में आ वह फिर जानकी जी से मिली। सरमा ने जानकी को उस समय अपनी प्रतीक्षा में वैसे ही बैठे हुए देखा ; मानों पद्मासनहीन लक्ष्मी बैठी हो ॥ १६ ॥

तां तु सीता पुनः प्राप्तां सरमां वल्गुभाषिणीम् ।
परिष्वज्य च सुस्निग्धं ददौ च स्वयमासनम् ॥ १७ ॥

मधुरभाषिणी सरमा को पुनः आते देख, सीता उससे उठ कर स्वयं भेंटीं और बैठने के लिये उसे आसन दिया ॥ १७ ॥

इहासीना सुखं सर्वमाख्याहि मम तत्त्वतः ।
क्रूरस्य निश्चयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥ १८ ॥

फिर बोलीं, सुख से यहाँ बैठो और उस नृशंस दुरात्मा रावण ने जो कुछ निश्चय किया हो, वह मुझसे सब ठीक ठीक कहो ॥ १८ ॥

एवमुक्ता तु सरमा सीतया वेपमानया ।
कथितं सर्वमाचष्ट रावणस्य समन्त्रिणः ॥ १९ ॥

जब थरथर काँपती हुई सीता ने सरमा से इस प्रकार कहा, तब सरमा ने वे सब बातें कहीं, जो मंत्रियों के साथ रावण ने परामर्श कर निश्चित की थीं ॥ १९ ॥

---

१ भ्रष्टपद्मा—पद्मासनहीनामित्यर्थः । (गो०)

जनन्या राक्षसेन्द्रो वै त्वन्मोक्षार्थं बृहद्वचः ।
अविद्धेन च वैदेहि मन्त्रिवृद्धेन बोधितः ॥ २० ॥

उसने कहा—हे वैदेही ! बूढ़े मंत्री के द्वारा, रावण की माता कैकसी ने रावण को अनेक प्रकार से हितकारी बातें समझायीं ॥२०॥

दीयतामभिसत्कृत्य मनुजेन्द्राय मैथिली ।
निदर्शनं ते पर्याप्तं जनस्थाने यदद्भुतम् ॥ २१ ॥

उसने कहलाया कि, मनुजेन्द्र श्रीरामचन्द्र को सत्कारपूर्वक सीता लौटा दो, क्योंकि जनस्थान में श्रीरामचन्द्र जी द्वारा जो विस्मयोत्पादक कार्य हुआ है वह उनके पराक्रमी होने का पर्याप्त नमूना है ॥ २१ ॥

लङ्घनं च समुद्रस्य दर्शनं च हनूमतः ।
वधं च रक्षसां युद्धे कः कुर्यान्मानुषो भुवि ॥ २२ ॥

फिर हनुमान जी का समुद्र फाँद कर लङ्का में आ कर सीता को देखना, तथा युद्ध में राक्षसों का वध करना, भला कहो तो सही, क्या इस पृथिवी तल पर और भी कोई मनुष्य ऐसे काम कर सकता है ? ॥ २२ ॥

एवं स *मन्त्रिवृद्धेन मात्रा च बहु भाषितः ।
न त्वामुत्सहते मोक्तुमर्थमर्थपरो यथा ॥ २३ ॥

इस प्रकार उसके बूढ़े मंत्री तथा उसकी माता ने उसे बहुत समझाया ; परन्तु वह तुम्हें वैसे ही छोड़ना नहीं चाहता जैसे धन का लोभी धन को ॥ २३ ॥

---

* पाठान्तरे—" मन्त्रिवृद्धैश्चाविद्धेन ।"

नोत्सहत्यमृतो मोक्तुं युद्धे त्वामिति मैथिलि ।
सामात्यस्य नृशंसस्य निश्चयो ह्येष वर्तते ॥ २४ ॥

हे देवि ! युद्ध में मरे विना वह तुमको न छोड़ेगा । उस नृशंस का तथा उसके मंत्रियों का यही निश्चय है ॥ २४ ॥

तदेषा निश्चिता बुद्धिर्मृत्युलोभादुपस्थिता ।
भयान्न शक्तस्त्वां मोक्तुमनिरस्तस्तु संयुगे ॥ २५ ॥

हे देवि ! उसके सिर पर काल खेल रहा है; अतः उसने ऐसा निश्चय कर रखा है । जब तक वह युद्ध में मारा न जायगा, तब तक तुम उसके पंजे से नहीं छूट पावोगी डर कर तो वह कभी तुमको न छोड़ेगा ॥ २५ ॥

राक्षसानां च सर्वेषामात्मनश्च वधेन हि ।
निहत्य रावणं संख्ये सर्वथा निशितैः शरैः ।
प्रतिनेष्यति रामस्त्वामयोध्यामसितेक्षणे ॥ २६ ॥

हे श्यामनेत्रवाली ! रावण ने अपने तथा अन्य समस्त राक्षसों के वध के निमित्त ही ऐसा निश्चय किया है । श्रीरामचन्द्र जी युद्ध में अपने पैने बाणों से रावण को मार, तुम्हें अपनी राजधानी अयोध्या में ले जायगे ॥ २६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शब्दो भेरीशङ्खसमाकुलः ।
श्रुतो वानरसैन्यानां कम्पयन्धरणीतलम् ॥ २७ ॥

सरमा यह कह ही रही थी कि, इतने में वानरी सेनाओं का शङ्ख और तुरही का मिला हुआ शब्द, पृथिवी को कंपायमान करता हुआ, सुनाई पड़ा ॥ २७ ॥

[नोट--किष्किन्धाकाण्ड में वर्णन किया जा चुका है कि, वानरी सेना में भी तुरही और शङ्ख थे ।]

श्रुत्वा तु तद्वानरसैन्यशब्दं
लङ्कागता राक्षसराजभृत्याः ।
नष्टौजसो दैन्यपरीतचेष्टाः
श्रेयो न पश्यन्ति नृपस्य दोषैः ॥ २८ ॥

इति चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥

वानरी सेना का वह रणारम्भसूचक शब्द सुन, लङ्कावासी रावण के भृत्य राक्षस लोग अत्यन्त हीनपुरुषार्थ और दीन हो गये। उनको रावण की बुद्धि के दोष से अपनी भलाई न देख पड़ी ॥ २८ ॥

युद्धकाण्ड का चौंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

पञ्चत्रिंशः सर्गः

—*—

तेन शङ्खविमिश्रेण भेरीशब्देन राघवः ।
उपयाति महाबाहू रामः परपुरञ्जयः ॥ १ ॥

शत्रु के पुर को जीतने वाले महाबाहु श्रीरामचन्द्र जी शङ्ख और तुरही बजवाते हुए लङ्का पर चढ़ाई करने को तैयार हुए ॥ १ ॥

तं निनादं निशम्याथ रावणो राक्षसेश्वरः ।
मुहूर्तं ध्यानमास्थाय सचिवानभ्युदैक्षत ॥ २ ॥

राक्षसराज रावण ने उस घोर शब्द को सुना और कुछ देर तक कुछ विचार कर, वह मंत्रियों के मुखों को निहारने लगा ॥ २ ॥

अथ तान्सचिवांस्तत्र सर्वानाभाष्य रावणः ।
सभां सन्नादयन्सर्वामित्युवाच महाबलः ॥ ३ ॥

महाबलवान रावण अपने समस्त मंत्रियों को सम्बोधन कर और सभाभवन को गुंजाता हुआ कहने लगा ॥ ३ ॥

जगत्सन्तापनः क्रूरो गर्हयन्राक्षसेश्वरः ।
तरणं सागरस्यापि विक्रमं बलसञ्चयम् ॥ ४ ॥

यदुक्तवन्तो रामस्य भवन्तस्तन्मया श्रुतम् ।
भवतश्चाप्यहं वेद्मि युद्धे सत्यपराक्रमान् ॥ ५ ॥

तूष्णीकानीक्षतोऽन्योन्यं विदित्वा रामविक्रमम् ।
ततस्तु सुमहाप्राज्ञो माल्यवान्नाम राक्षसः ॥ ६ ॥

संसार भर को सन्तापित करने वाला नृशंस राक्षसराज रावण श्रीरामचन्द्र जी की निन्दा करता हुआ बोला—आप लोगों ने राम के पार उतरने, उनके पराक्रम तथा उनके सैन्यसंग्रह के सम्बन्ध में जो कुछ कहा, वह सब मैंने सुना। मैं यह भी जानता हूँ कि, आप लोग युद्ध में सत्यपराक्रमी हैं; पर आश्चर्य है कि, इस समय आप लोग रामचन्द्र को महापराक्रमी समझ, चुपचाप आपस में एक दूसरे का मुख निहार रहे हैं। वहाँ पर उस समय एक बड़ा भारी पण्डित माल्यवान नामक राक्षस था ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा इति मातामहोऽब्रवीत् ।
विद्यास्वभिविनीतो[1] यो राजा राजन्नयानुगः[2] ॥ ७ ॥

स शास्ति चिरमैश्वर्यमरींश्च कुरुते वशे ।
सन्दधानो हि कालेन विगृह्णंश्चारिभिः सह ॥ ८ ॥

---

१ अभिविनीतः—अभितः शिक्षितः। (गो०) २ नयानुगः—नीतिशास्त्रानुसारी। (गो०)

स्वपक्षवर्धनं कुर्वन्महदैश्वर्यमश्नुते ।
हीयमानेन कर्तव्यो राज्ञा सन्धिः समेन च ॥ ९ ॥

वह रावण का नाना था—सो वह रावण के इन वचनों को सुन बोला—हे राजन् ! जो राजा शिक्षित हो, नीति शास्त्रानुसार कार्य करता है; वह बहुत दिनों तक प्रजा पर शासन करता हुआ ऐश्वर्य भोगता है, तथा अपने शत्रुओं को अपने वश में करता है। ऐसा राजा सब बातों का अनुसन्धान करता है और अवसर पाकर शत्रु से लड़ता है। जो राजा समय के अनुसार शत्रु के साथ सन्धि और विग्रह करके अपने पक्ष को दृढ़ करता है, वही बड़े भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करता है। राजा को उचित है कि, जब वह अपने को शत्रु से हीनबल या समानबल जाने; तब शत्रु से मेल कर ले ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

न शत्रुमवमन्येत ज्यायान्कुर्वीत विग्रहम् ।
तन्मह्यं रोचते सन्धिः सह रामेण रावण ॥ १० ॥

हे रावण ! शत्रु कैसा भी हो, उसे तुच्छ कभी न मानना चाहिये। यदि स्वयं शत्रु से बलवान हो तो शत्रु से युद्ध करे। इस समय (इस सिद्धान्तानुसार) मुझे तो यही अच्छा जान पड़ता है कि, राम के साथ तुम सन्धि (मेल) कर लो ॥ १० ॥

यदर्थमभियुक्ताः स्म सीता तस्मै प्रदीयताम् ।
यस्य देवर्षयः सर्वे गन्धर्वाश्च जयैषिणः ॥ ११ ॥

जिस सीता के लिये राम ने लङ्का पर चढ़ाई की है, उस सीता को तुम उन्हें लौटा दो। देखो, क्या देवता, क्या ऋषि और क्या गन्धर्व सब ही उनकी जीत चाहते हैं ॥ ११ ॥

विरोधं मा गमस्तेन सन्धिस्ते तेन रोचताम् ।
असृजद्भगवान्पक्षौ द्वावेव हि पितामहः ॥१२॥

अतः मुझे तो यही अच्छा लगता है कि, तुम उनसे युद्ध न कर के उनके साथ मेल कर लो। हे राक्षसराज ! ब्रह्मा ने दो पक्ष बनाये हैं॥ १२॥

सुराणामसुराणां च धर्माधर्मौ तदाश्रयौ ।
धर्मो हि श्रूयते पक्षौ ह्यमराणां महात्मनाम् ॥ १३ ॥

अर्थात् देवता और असुर। क्रमानुसार धर्म और अधर्म इन दोनों के आश्रय-भूत-पक्ष हैं। सुना जाता है, महात्मा देवताओं का धर्म का पक्ष है॥ १३ ॥

अधर्मो रक्षसां पक्षो ह्यसुराणां च रावण ।
धर्मो वै ग्रसतेऽधर्मं ततः कृतमभूद्युगम् ॥ १४ ॥

हे रावण ! इसी प्रकार असुरों और राक्षसों का अधर्म का पक्ष है। जब धर्म, अधर्म को ग्रसता है, तब सत्ययुग होता है अथवा सत्ययुग में अधर्म को धर्म ग्रस लेता है॥ १४॥

अधर्मो ग्रसते धर्मं ततस्तिष्यः प्रवर्तते ।
तत्त्वया चरता लोकान्धर्मो विनिहतो महान् ॥ १५ ॥

और जब धर्म को अधर्म ग्रस लेता है, तब कलियुग प्रवृत्त होता है। तुमने संसार में अपने आचरणों से धर्म का बड़ा सत्यानाश कर॥ १५ ॥

अधर्मः प्रगृहीतश्च तेनास्मद्बलिनः परेः ।
स प्रमादाद्विवृद्धस्तेऽधर्मोऽभिग्रसते हि नः ॥ १६ ॥

अधर्म बढ़ेरा है, इसीसे शत्रु हम लोगों से बलवान् हो गये हैं। तुम्हारे प्रमाद से अधर्म बढ़ कर, हम लोगों को ग्रास कर रहा है ॥ १६ ॥

विवर्धयति पक्षं च सुराणां [1]सुरभावनः।
विषयेषु प्रसक्तेन यत्किञ्चित्कारिणा त्वया ॥ १७ ॥

धर्म, देवताओं के अनुकूल होने के कारण उनके पक्ष को बलवान् कर रहा है। विषयासक्त हो तुमने जो कुछ किया ॥ १७ ॥

ऋषीणामग्निकल्पानामुद्वेगो जनितो महान्।
तेषां प्रभावो दुर्धर्षः प्रदीप्त इव पावकः ॥ १८ ॥

उससे अग्नितुल्य ऋषि बहुत दुःखी हुए। उन ऋषियों का प्रभाव प्रदीप्त अग्नि के समान अत्यन्त ही दुर्धर्ष है ॥ १८ ॥

तपसा भावितात्मनो धर्मस्यानुग्रहे रताः।
मुख्यैर्यज्ञैर्यजन्त्येते नित्यं तैस्तैर्द्विजातयः ॥ १९ ॥

क्योंकि वे लोग तप द्वारा अपने आत्मा को निर्मूल कर, धर्म की अभिवृद्धि में सदा लगे रहते हैं। वे प्रधान प्रधान अग्निष्टोमादि यज्ञों को नित्य ही किया करते हैं ॥ १६ ॥

जुह्वत्यग्नींश्च विधिवद्वेदांश्चोच्चैरधीयते।
अभिभूय च रक्षांसि ब्रह्मघोषानुदैरयन् ॥ २० ॥

वे विधिवत् हवन करते और वेद का पाठ किया करते हैं। उस वेदपाठ से राक्षसों का पराजय होता है ॥ २० ॥

---

1 सुरभावनः—सुरानुकूलः। (गो०)

दिशोऽपि विद्रुताः सर्वाः स्तनयित्नुरिवोष्णगे ।
ऋषीणामग्निकल्पानामग्निहोत्रसमुत्थितः ॥ २१ ॥

जैसे ग्रीष्मकाल में सूर्य के आतप से बादल इधर उधर भाग जाते हैं, वैसे ही वेदध्वनि को सुन राक्षस चारों ओर भाग जाते हैं। अग्निसमान तेजस्वी ऋषियों के अग्निहोत्र से निकला हुआ ॥ २१ ॥

आवृत्य रक्षसां तेजो धूमो व्याप्य दिशो दश ।
तेषु तेषु च देशेषु पुण्येष्वेव दृढव्रतैः ॥ २२ ॥
चर्यमाणं तपस्तीव्रं सन्तापयति राक्षसान् ।
देवदानवयक्षेभ्यो गृहीतश्च वरस्त्वया ॥ २३ ॥

धूम, दसों दिशाओं में व्याप्त हो कर राक्षसों के तेज को दबा देता है। वे दृढ़व्रतधारी ऋषिगण जिन जिन पुण्यप्रद देशों में, उग्र तप करते हैं, वह वहाँ के राक्षसों को दुःख देता है। हे रावण! तुमने ब्रह्मा से यही वर पाया है कि, देवता, दानव और यक्ष तुम्हें न मार पावें ॥ २२ ॥ २३ ॥

मानुषा वानरा ऋक्षा गोलाङ्गूला महाबलाः ।
बलवन्त इहागम्य गर्जन्ति दृढविक्रमाः ॥ २४ ॥

पर यहाँ तो महाबली मनुष्य, वानर, रीछ, गोलाङ्गूल आये हुए हैं और वे बलवान् और दृढ़पराक्रमी सिंहनाद कर रहे हैं ॥ २४ ॥

उत्पातान्विविधान्दृष्ट्वा घोरान्बहुविधांस्तथा ।
विनाशमनुपश्यामि सर्वेषां रक्षसामहम् ॥ २५ ॥

विविध प्रकार के और बहुत से भयङ्कर उत्पातों को देख, मुझे तो समस्त राक्षसों का नाश देख पड़ता है ॥ २५ ॥

खराभिस्तनिता घोरा मेघाः प्रतिभयङ्कराः ।
शोणितेनाभिवर्षन्ति लङ्कामुष्णेन सर्वतः ॥ २६ ॥

हे रावण ! गधे भयङ्कर आवाज़ से रेंकते हैं और बादल भयङ्कर गर्जना कर लङ्का में सर्वत्र गर्मागर्म लोहू बरसाते हैं ॥ २६ ॥

रुदतां वाहनानां च प्रपतन्त्यास्रबिन्दवः ।
ध्वजा ध्वस्ता विवर्णाश्च न प्रभान्ति यथा पुरा ॥ २७ ॥

सवारी के घोड़ों और हाथियों के रोने से उनकी आँखों से आँसू टपका करते हैं। ध्वजाएँ धूलधूसरित बदरंग हो रही हैं और उनमें अब पहिले जैसी चमक दमक नहीं देख पड़ती ॥ २७ ॥

व्याला गोमायवो गृध्रा वाश्यन्ति च सुभैरवम् ।
प्रविश्य लङ्कामनिशं समवायांश्च कुर्वते ॥ २८ ॥

रात को लङ्कापुरी में घुस कर गीदड़, गीध, सर्प आदि दल बाँध कर, भयङ्कर चीत्कार करते हैं ॥ २८ ॥

कालिकाः पाण्डुरैर्दन्तैः प्रहसन्त्यग्रतः स्थिताः ।
स्त्रियः स्वप्नेषु मुष्णन्त्यो गृहाणि प्रतिभाष्य च ॥२९॥

स्वप्न में काली काली औरतें (पूतना प्रमुख) पीले दाँत चमकाती और हँसती हुई सामने आ खड़ी होती हैं। फिर वे घर की चीज़ों को देख, उलटी सीधी बातें करती हैं ॥ २९ ॥

गृहाणां बलिकर्माणि श्वानः पर्युपभुञ्जते ।
खरा गोषु प्रजायन्ते मूषिका नकुलैः सह ॥ ३० ॥

घरों में जो बलिकर्म होता है, उसको कुत्ते खा जाते हैं। गौओं के साथ गधे और नेवलों के साथ मूषिका (चुहियाँ) देख पड़ती हैं ॥ ३० ॥

मार्जारा द्वीपिभिः सार्धं सूकराः शुनकैः सह ।
किंनरा राक्षसैश्चापि [1]समीयुर्मानुषैः सह ॥ ३१ ॥

व्याघ्रों के साथ बिलावों का, कुत्तों के साथ सुअरों का, राक्षसों और मनुष्यों के साथ किन्नरों का जोड़ा दिखाई देता है ॥ ३१ ॥

[नोट—अर्थात् इन स्वाभाविक परस्पर विरोधी जीवों का एकत्र रहना अमङ्गलकारक है ।]

पाण्डुरा रक्तपादाश्च विहङ्गाः कालचोदिताः ।
राक्षसानां विनाशाय कपोता विचरन्ति च ॥ ३२ ॥

पीले रंग के लाल पैरों वाले बहुत से कबूतर राक्षसों के नाश की सूचना देते हुए, मानों कालप्रेरित हो घरों में घूमते हैं ॥ ३२ ॥

वीचीकूचीति वाश्यन्त्यः शारिका वेश्मसु स्थिताः ।
पतन्ति ग्रथिताश्चापि निर्जिताः कलहैषिणः ॥ ३३ ॥

घरों में पालतू मैनाएँ आपस में लड़तीं और मीठे बोल न बोल कर चींचीं चींचीं करती हैं और अन्य पक्षियों से गुथ कर एवं उनसे हार कर नीचे गिर पड़ती हैं ॥ ३३ ॥

पक्षिणश्च मृगाः सर्वे प्रत्यादित्यं रुदन्ति च ।
करालो विकटो मुण्डः परुषः कृष्णपिङ्गलः ॥ ३४ ॥
कालो गृहाणि सर्वेषां काले कालेऽन्ववेक्षते ।
एतान्यन्यानि दुष्टानि निमित्तान्युत्पतन्ति च ॥ ३५ ॥

---

१ समीयुः—मिथुनीभावं प्रापुः । (शि०)

पशु पक्षी सूर्य की ओर मुँह करके रोते हैं। भयङ्कर विकराल रूपधारी, सिर मुंड़ाये, काले पीले रंग का कालपुरुष, हम सब लोगों के घरों को ओर सुवह शाम, ताकता हुआ सा देख पड़ता है। हे राजन्! ये तथा इसी प्रकार के और भी अनेक बुरे शकुन दिखलाई पड़ते हैं॥ ३४॥ ३५॥

[विष्णुं मन्यामहे देवं मानुषं देहमास्थितम्।
न हि मानुषमात्रोऽसौ राघवो दृढविक्रमः।
येन बद्धः समुद्रस्य स सेतुः परमाद्भुतः॥ ३६॥

मुझे तो जान पड़ता है कि, ये श्रीरामचन्द्र मनुष्य का रूप धारण किये हुए साक्षात् विष्णु भगवान हैं; जिन्होंने समुद्र के ऊपर कैसा अद्भुत पुल बाँधा है। ऐसे दृढ़पराक्रमी श्रीरामचन्द्र को केवल मनुष्य ही न समझना चाहिये॥ ३६॥

कुरुष्व नरराजेन सन्धिं रामेण रावण।]
ज्ञात्वा प्रधार्य कार्याणि क्रियतामायतिक्षमम्[१]॥ ३७॥

अतएव हे रावण! तुम अपने कल्याण का निश्चय कर तथा आगे के कर्त्तव्यकर्म का उचित विचार कर, नरेन्द्र श्रीरामचन्द्र जी के साथ सन्धि कर लो॥ ३७॥

इदं वचस्तत्र निगद्य माल्यवान्
परीक्ष्य रक्षोधिपतेर्मनः पुनः।
अनुत्तमेषूत्तमपौरुषो बली
बभूव तूष्णीं समवेक्ष्य रावणम्॥ ३८॥

इति पञ्चत्रिंशः सर्गः॥

---

१ आयतिक्षमं—उत्तरकालार्हं। (गो०)

उत्तम पुरुषार्थ वाला बलवान् माल्यवान् इस प्रकार राक्षसपति को, वचन सुना कर और रावण के मनोगत भावों को ताड़ कर, चुप हो गया ॥ ३८ ॥

युद्धकाण्ड का पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—※—

षट्त्रिंशः सर्गः

—※—

तत्तु माल्यवतो वाक्यं हितमुक्तं दशाननः ।
न मर्षयति दुष्टात्मा कालस्य वशमागतः ॥ १ ॥

रावण के हित के लिये कही हुई माल्यवान की बातें, दुष्टात्मा रावण को भली न जान पड़ीं । अच्छी जान ही क्यों पड़तीं ? उसके सिर पर तो मौत सवार थी ॥ १ ॥

स बद्ध्वा भ्रुकुटिं वक्त्रे क्रोधस्य वशमागतः ।
अमर्षात्परिवृत्ताक्षो माल्यवन्तमथाब्रवीत् ॥ २ ॥

वह क्रोध में भर और भौंहें टेढ़ी कर तथा आँखें तरेर माल्यवान से बोला ॥ २ ॥

हितबुद्ध्या यदहितं वचः परुषमुच्यते ।
परपक्षं प्रविश्यैव नैतच्छ्रोत्रं गतं मम ॥ ३ ॥

शत्रु का पक्ष ले कर, मेरी हितकामना की बुद्धि से तुमने जैसे कठोर और अहितकारी वचन कहे हैं, उनका मेरे कानों पर कुछ भी असर नहीं पड़ा ॥ ३ ॥

मानुषं कृपणं राममेकं शाखामृगाश्रयम् ।
समर्थं मन्यसे केन त्यक्तं पित्रा वनालयम् ॥ ४ ॥

उस दुखिया राम को, तुम क्यों कर सामर्थ्यवान् समझ रहे हो? क्योंकि वह अकेला है, वानरों के अधीन हैं, पिता ने उसे घर से निकाल दिया है और वह वन में रहता है ॥ ४ ॥

रक्षसामीश्वरं मां च देवतानां भयङ्करम् ।
हीनं मां मन्यसे केन ह्यहीनं सर्वविक्रमैः ॥ ५ ॥

और मुझे जो राक्षसों का राजा हूँ, देवताओं का भयदाता हूँ और सब प्रकार से पराक्रमी हूँ, किस प्रकार हीन समझते हो? ॥ ५ ॥

वीरद्वेषेण वा शङ्के पक्षपातेन वा रिपोः ।
त्वयाऽहं परुषाण्युक्तः परप्रोत्साहनेन वा ॥ ६ ॥

मुझे तुम पर सन्देह हो रहा है कि, तुमने ऐसे कठोर वचन मुझसे क्यों कहे? क्या तुम्हें मेरी वीरता से द्वेष है अथवा शत्रु का पक्षपात करना इसका कारण है। अथवा मुझे उभाड़ने के लिये तुमने ऐसे कठोर वचन कहे हैं ॥ ६ ॥

प्रभवन्तं पदस्थं हि परुषं कोऽभिधास्यति ।
पण्डितः शास्त्रतत्त्वज्ञो विना प्रोत्साहनाद्रिपोः ॥ ७ ॥

जो पण्डित है और शास्त्रतत्वज्ञ है, वह प्रभावशाली और राज्यपदारूढ को, उत्साहित करने के सिवाय कठोर वचन नहीं कहता ॥ ७ ॥

आनीय च वनात्सीतां पद्महीनामिव श्रियम् ।
किमर्थं प्रतिदास्यामि राघवस्य भयादहम् ॥ ८ ॥

हे माल्यवान् ! कमलहीन लक्ष्मी की तरह सीता को जनस्थान से ला कर, राम के भय से मैं उसे क्यों दूँ ॥ ८ ॥

वृतं वानरकोटीभिः ससुग्रीवं सलक्ष्मणम् ।
पश्य कैश्चिदहोभिस्त्वं राघवं निहतं मया ॥ ९ ॥

इन करोड़ों वानरों और सुग्रीव तथा लक्ष्मण सहित राम को मेरे हाथ से मरा हुआ तुम देखोगे ॥ ६ ॥

द्वन्द्वे यस्य न तिष्ठन्ति दैवतान्यपि संयुगे ।
स कस्माद्रावणो युद्धे भयमाहारयिष्यति ॥ १० ॥

अरे जिसके द्वन्द्व-युद्ध में देवता भी खड़े नहीं रह सकते, वह रावण भला युद्ध में किससे भयभीत होगा ॥ १० ॥

द्विधा भज्येयमप्येवं न नमेयं तु कस्यचित् ।
एष मे सहजो दोषः स्वभावो दुरतिक्रमः ॥ ११ ॥

मैं क्या करूँ—मेरा यह स्वाभाविक दोष है कि, भले ही मेरे दो टुकड़े हो जायँ, पर मैं किसी के सामने नवने वाला नहीं। स्वभाव होता ही दुरतिक्रम है ॥ ११ ॥

यदि तावत्समुद्रे तु सेतुर्बद्धो यदृच्छया ।
रामेण विस्मयः कोऽत्र येन ते भयमागतम् ॥ १२ ॥

यदि रामचन्द्र ने किसी प्रकार समुद्र पर पुल बाँध ही लिया, तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है, जिससे तुम डर गये ॥१२॥

स तु तीर्त्वार्णवं रामः सह वानरसेनया ।
प्रतिजानामि ते सत्यं न जीवन्प्रतियास्यति ॥ १३ ॥

समुद्र पर पुल बाँध, वानरी सेना सहित राम यदि इस पार आ गये हैं तो मैं तुमसे सत्य सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि, वे यहाँ से जीते जागते न लौट पावेंगे ॥ १३ ॥

एवं ब्रुवाणं संरब्धं रुष्टं विज्ञाय रावणम् ।
व्रीडतो माल्यवान्वाक्यं नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥ १४ ॥

क्रोध में भर ऐसी बातें कहते हुए, रावण को रुष्ट हुआ जान, माल्यवान् अत्यन्त लज्जित हुआ और उसने फिर कुछ भी न कहा ॥ १४ ॥

[चिन्तयन्मनसा तस्य दुष्कर्मपरिपाकजम् ।
पापं नाशयति ह्येनं स्वस्य राष्ट्रस्य राक्षसैः ॥ १५ ॥]

उसने मन में निश्चय कर लिया कि, अब रावण के दुष्कर्मों का परिपाककाल समीप आ गया है। पाप इसको, इसके राज्य को और समस्त राक्षसों को नाश करने वाला है ॥ १५ ॥

जयाशिषा च राजानं वर्धयित्वा यथोचितम् ।
माल्यवानभ्यनुज्ञातो जगाम स्वं निवेशनम् ॥ १६ ॥

"महाराज की जय हो" इस आशीर्वाद से रावण की बढ़ती मना, और उससे विदा माँग, माल्यवान अपने घर को चला गया ॥ १६ ॥

रावणस्तु सहामात्यो मन्त्रयित्वा विमृश्य च ।
लङ्कायामतुलां गुप्तिं कारयामास राक्षसः ॥ १७ ॥

रावण भी अपने मंत्रियों के साथ परामर्श और विचार कर, लङ्का की भली भाँति रक्षा का प्रबन्ध करता हुआ ॥ १७ ॥

स व्यादिदेश पूर्वस्यां प्रहस्तं द्वारि राक्षसम् ।
दक्षिणस्यां महावीर्यौ महापार्श्वमहोदरौ ॥ १८ ॥
व्यादिदेश महाकायौ राक्षसैर्बहुभिर्वृतौ ।
पश्चिमायामथो द्वारि पुत्रमिन्द्रजितं तथा ॥ १९ ॥
व्यादिदेश महामायं बहुभी राक्षसैर्वृतम् ।
उत्तरस्यां पुरद्वारि व्यादिश्य शुकसारणौ ॥ २० ॥

उसने लङ्का के पूर्वद्वार को रक्षा के लिये प्रहस्त को और दक्षिणद्वार को रक्षा के लिये महाबली महाकाय महापार्श्व और महोदर को बहुत से राक्षसों के साथ नियुक्त किया। इसी प्रकार पश्चिमद्वार की रक्षा करने के लिये बहुत सी राक्षसी सेना के साथ महामायावी इन्द्रजीत को आज्ञा दी। लङ्कापुरी के उत्तरद्वार की रक्षा का भार उसने शुक और सारण को सौंपा ॥१८॥१९॥२०॥

स्वयं चात्र भविष्यामि मन्त्रिणस्तानुवाच ह ।
राक्षसं तु विरूपाक्षं महावीर्यपराक्रमम् ॥ २१ ॥

उसने मंत्रियों से कहा कि, उत्तरद्वार पर मैं स्वयं जाऊँगा। बड़े बलवान और पराक्रमी विरूपाक्ष राक्षस को ॥ २१ ॥

मध्यमेऽस्थापयद्गुल्मे बहुभिः सह राक्षसैः ।
एवं विधानं लङ्कायाः कृत्वा राक्षसपुङ्गवः ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यते कालचोदितः ॥ २२ ॥

उसने लङ्कापुरी के बीच बहुत से राक्षस सैनिकों सहित छावनी डाल कर रहने की आज्ञा दी। इस प्रकार लङ्का की रक्षा का राक्षसश्रेष्ठ रावण ने, जिसकी मौत निकट आई हुई थी, प्रबन्ध कर, अपने को कृतकृत्य माना ॥ २२ ॥

विसर्जयामास ततः स मन्त्रिणो
विधानमाज्ञाप्य पुरस्य पुष्कलम् ।
जयाशिषा मन्त्रिगणेन पूजितो
विवेश चान्तः पुरमृद्धिमन्महत् ॥ २३ ॥

इति षट्त्रिंशः सर्गः ॥

रावण लङ्का की चौकसी का इस प्रकार भली भाँति प्रबन्ध कर तथा मंत्रियों को विदा कर और उनके जयसूचक आशीर्वाद से सम्मानित हो, धन-जन-पूर्ण अपने विशाल अन्तःपुर में चला गया ॥ २३ ॥

युद्धकाण्ड का छत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—*—

सप्तत्रिंशः सर्गः

—*—

नरवानरराजौ तौ स च वायुसुतः कपिः ।
जाम्बवनृक्षराजश्च राक्षसश्च विभीषणः । १ ॥
अङ्गदो वालिपुत्रश्च सौमित्रिः शरभः कपिः ।
सुषेणः [1]सहदायादो मैन्दो द्विविद एव च ॥ २ ॥
गजो गवाक्षः कुमुदो नलोऽथ पनसस्तथा ।
[2]अमित्रविषयं प्राप्ताः समवेताः समर्थयन्[3] ॥ ३ ॥

---

१ सहदायादः—सबान्धवः । (शि०) २ अमित्रविषयं—शत्रुदेशं । (गो०)
३ समर्थयन्—अमंत्रयन् । (गो०)

इधर नरेन्द्र श्रीरामचन्द्र और वानरेन्द्र सुग्रीव, पवननन्दन हनुमान जी, ऋक्षराज जाम्बवान, राक्षस विभीषण, वालिपुत्र अङ्गद, सुमित्रानन्दन लक्ष्मण, शरभ वानर, बान्धवों सहित सुषेण, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, कुमुद, नल, पनस, अपने वैरी के देश में पहुँच और एकत्र हो परामर्श करने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

इयं सा लक्ष्यते लङ्का पुरी रावणपालिता ।
सासुरोरगगन्धर्वैरमरैरपि दुर्जया ॥ ४ ॥

वे कहने लगे—देखो, रावण शासित वह लङ्का नगरी, दैत्यों नागों और गन्धर्वों से भी अजेय है ॥ ४ ॥

[1]कार्यसिद्धिं पुरस्कृत्य[2] मन्त्रयध्वं [3]विनिर्णये ।
नित्यं सन्निहितो ह्यत्र रावणो राक्षसाधिपः ॥ ५ ॥

राक्षसराज रावण यहाँ सदा सतर्क रहता है। अतः अब हम सब लोगों को प्रधानतः विजयप्राप्ति के लिये मिल कर, विचार करना चाहिये ॥ ५ ॥

तथा तेषु ब्रुवाणेषु रावणावरजोऽब्रवीत् ।
[4]वाक्यमग्राम्यपदवत्पुष्कलार्थं[5] विभीषणः ॥ ६ ॥

उन लोगों के इस प्रकार कहने पर रावण के छोटे भाई विभीषण ने, अपनी राक्षसी भाषा न बोल, ऐसी भाषा में, जिसे वे सब लोग साफ साफ समझ सकें—कहा। विभीषण ने जो शब्द कहे, वे थे तो थोड़े ही, किन्तु उनमें अभिप्राय बहुत सा भरा हुआ था ॥ ६ ॥

---

१ कार्यसिद्धिं—विजयसिद्धिं। (गो०) २ पुरस्कृत्य—प्रधानीकृत्य। (गो०) ३ विनिर्णये—निमित्ते मन्त्रयध्वं। (गो०) ४ अग्राम्यपदवत्—स्वदेशभाषापदरहितमुक्तवान्। (गो०) ५ पुष्कलार्थं—बह्वार्थाल्पशब्दं। (रा०)

अनलः शरभश्चैव सम्पातिः प्रघसस्तथा ।
गत्वा लङ्कां ममामात्याः पुरीं पुनरिहागताः ॥ ७ ॥

अनल, शरभ, सम्पाति और प्रघस मेरे ये चार मंत्री लङ्का में गये थे और वहाँ से लौट कर आये हुए हैं ॥ ७ ॥

भूत्वा शकुनयः सर्वे प्रविष्टाश्च रिपोर्बलम् ।
विधानं विहितं यच्च तद्दृष्ट्वा समुपस्थिताः ॥ ८ ॥

वे सब पक्षी बन कर, शत्रुसैन्य में गये थे और वहाँ रावण ने जिस विधान से अपनी सेना को नगर की रक्षा के लिये नियुक्त किया है—सो सब देख आये हैं ॥ ८ ॥

संविधानं यदाहुस्ते रावणस्य दुरात्मनः ।
राम तद्ब्रुवतः सर्वं यथा तत्त्वेन मे शृणु ॥ ९ ॥

हे राम ! दुरात्मा रावण ने अपनी सेना को जिस प्रकार नगर-रक्षा के लिये नियुक्त किया है और जो मेरे मंत्रियों ने मुझे बतलाया है, सो सब मैं आपसे ठीक ठीक निवेदन करता हूँ, आप सुनिये ॥ ९ ॥

पूर्वं प्रहस्तः सबलो द्वारमासाद्य तिष्ठति ।
दक्षिणं च महावीर्यौ महापार्श्वमहोदरौ ॥ १० ॥

लङ्का के पूर्वद्वार पर सेनापति प्रहस्त अपनी सेना सहित डेरा डाले हुए हैं, दक्षिणद्वार पर बड़े बलवान् महापार्श्व और महोदर हैं ॥ १० ॥

इन्द्रजित्पश्चिमद्वारं राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ।
पट्टिशासिधनुष्मद्भिः शूलमुद्गरपाणिभिः ॥ ११ ॥

राक्षसों की एक बड़ी भारी सेना के साथ इन्द्रजीत पश्चिमद्वार की रक्षा कर रहा है। उसकी सेना के सैनिकों के हाथों में पटा, तलवारें, कमानें, त्रिशूल, और मुगदर हैं ॥ ११ ॥

नानाप्रहरणैः शूरैरावृतो रावणात्मजः ।
राक्षसानां सहस्रैस्तु बहुभिः शस्त्रपाणिभिः ॥ १२ ॥

अनेक प्रकार के आयुध धारण किये शूरवीर योद्धा रावण के पुत्र के साथ हैं और हज़ारों हथियारबन्द राक्षससैनिकों को वह अपने साथ लिये हुए है ॥ १२ ॥

[नोट—"शूरवीर योद्धाओं" से अभिप्राय सेनानायकों से है और सैनिकों से अभिप्राय साधारण सिपाहियों से ।]

युक्तः परमसंविग्नो[1] राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ।
उत्तरं नगरद्वारं रावणः स्वयमास्थितः ॥ १३ ॥

अकम्पित हृदय बहुत से प्रधान प्रधान योद्धाओं को अपने साथ लिये हुए रावण, स्वयं लङ्कापुरी के उत्तरद्वार की रक्षा कर रहा है ॥ १३ ॥

विरूपाक्षस्तु महता शूलखड्गधनुष्मता ।
बलेन राक्षसैः सार्धं मध्यमं गुल्ममास्थितः ॥ १४ ॥

बड़ा बलवान् विरूपाक्ष शूल, खड्ग और धनुष-धारिणी राक्षसी सेना को लिये हुए नगरी के बीचों बीच छावनी डाले हुए पड़ा है ॥ १४ ॥

एतानेवंविधान्गुल्मॉंल्लङ्कायां समुदीक्ष्य ते ।
मामकाः सचिवाः सर्वे पुनः शीघ्रमिहागताः ॥ १५ ॥

---

१ असंविग्नो—अकम्पित हृदयो । (गो०)

मेरे मंत्रिगण लङ्का के समस्त मोर्चों को इस प्रकार देख कर तुरन्त मेरे पास चले आये हैं ॥ १५ ॥

गजानां च सहस्रं च रथानामयुतं पुरे ।
हयानामयुते द्वे च साग्रकोटिश्च रक्षसाम् ॥ १६ ॥

लङ्का में दस हज़ार हाथीसवार, दस हज़ार रथसवार, बीस हज़ार घुड़सवार और एक करोड़ से कुछ अधिक पैदल राक्षस सैनिक हैं ॥ १६ ॥

विक्रान्ता बलवन्तश्च संयुगेष्वाततायिनः[1] ।
[2]इष्टा राक्षसराजस्य नित्यमेते निशाचराः ॥१७॥

रावण के खास सैनिक बड़े पराक्रमी और बलवान हैं और युद्ध करने में बड़े क्रूर हैं । (इनके अतिरिक्त और भी सैनिक हैं) ॥ १७ ॥

एकैकस्यात्र युद्धार्थे राक्षसस्य विशांपते ।
परिवारः सहस्राणां सहस्रमुपतिष्ठते ॥ १८ ॥

हे विशाम्पते ! इनमें से प्रत्येक योद्धा की सहायता के लिये युद्ध में असंख्य लक्ष परिवार उपस्थित हो जाते हैं ॥ १८ ॥

एतां प्रवृत्तिं लङ्कायां मन्त्रिप्रोक्तां विभीषणः ।
एवमुक्त्वा महाबाहू राक्षसां स्तानदर्शयत् ॥ १९ ॥

महाबलवान् विभीषण ने अपने मंत्रियों से सुना हुआ यह लङ्का का वृत्तान्त सुना कर, अपने चारों राक्षस मंत्रियों को श्रीरामचन्द्र जी के सामने उपस्थित किया ॥ १९ ॥

---

१ आततायिनः—क्रूरा इत्यर्थः । (गो०) २ रावणस्येष्टा—अन्तरङ्गाः । (गो०)

लङ्कायां सचिवैः* सर्वं रामाय प्रत्यवेदयत् ।
रामं कमलपत्राक्षमिदमुत्तरमब्रवीत् ॥ २० ॥

रावणावरजः श्रीमान्रामप्रियचिकीर्षया ।
कुबेरं तु यदा राम रावणः प्रत्ययुध्यत ॥ २१ ॥

उन चारों मंत्रियों ने श्रीरामचन्द्र जी से वह सब हाल कहा। तब कमलनेत्र श्रीरामचन्द्र जी से रावण के छोटे भाई विभीषण ने, उनकी प्रसन्नता के लिये आगे यह कहा। हे राम! रावण जब कुबेर से लड़ने गया था ॥ २० ॥ २१ ॥

षष्टिः शतसहस्राणि तदा निर्यान्ति राक्षसाः ।
पराक्रमेण वीर्येण तेजसा सत्त्वगौरवात् ॥ २२ ॥

सदृशा येऽत्र दर्पेण रावणस्य दुरात्मनः ।
अत्र [1]मन्युर्न कर्तव्यो रोषये[2] त्वां न भीषये ॥२३॥

तब उसके साथ साठ लाख राक्षस गये थे। वे पराक्रम, बल, तेज, साहस और गर्व में दुष्ट रावण ही के समान जान पड़ते थे। हे राम! आपको मेरी इन बातों को सुन न तो क्रुद्ध होना चाहिये और न डरना ही चाहिये; बल्कि मेरे इस प्रकार कथन का उद्देश्य आपको शत्रुनिरसन के लिये उत्तेजित करने का है ॥ २२ ॥ २३ ॥

समर्थो ह्यसि वीर्येण सुराणामपि निग्रहे ।
तद्भवांश्चतुरङ्गेण[3] बलेन महता वृतः ॥ २४ ॥

---

१ मन्युः—क्रोधः। (गो०) २ रोषये—शत्रुनिरसनाय रोषमुत्पादये। (गो०) ३ चतुरङ्गे—रावणसेनावच्चतुरवयवेन। (गो०) * पाठान्तरे—"सर्वां।

क्योंकि आप तो अकेले ही अपने बल पराक्रम से देवताओं को भी दण्ड दे सकते हैं। फिर आपके साथ यह बड़ी भारी रावण की तरह चतुरङ्गिणी सेना भी तो है॥ २४॥

व्यूहचेदं वानरानीकं निर्मथिष्यसि रावणम्।
रावणावरजे वाक्यमेवं ब्रुवति राघवः॥॥ २५॥
शत्रूणां[1] प्रतिघातार्थमिदं वचनमब्रवीत्।
पूर्वद्वारे तु लङ्काया नीलो वानरपुङ्गवः॥ २६॥
प्रहस्तप्रतियोद्धा स्याद्वानरैर्बहुभिर्वृतः।
अङ्गदो वालिपुत्रस्तु बलेन महता वृतः॥ २७॥

सो आप वानरी सेना की व्यूह रचना कर के रावण को भली भाँति नष्ट कर डालेंगे। यह सुन श्रीरामचन्द्र जी ने शत्रुओं का सामना करने के लिये विभीषण से कहा। लङ्का के पूर्वद्वार पर वानरश्रेष्ठ नील चढ़ाई कर प्रहस्त के साथ युद्ध करे और बहुत से वानर उसकी सहायता के लिये उसके साथ जाँय। वालिपुत्र अङ्गद एक बड़ी सेना को अपने साथ ले॥ २५॥ २६॥ २७॥

दक्षिणे बाधतां द्वारे महापार्श्वमहोदरौ।
हनुमान्पश्चिमद्वारं निपीड्य पवनात्मजः॥ २८॥
प्रविशत्वप्रमेयात्मा बहुभिः कपिभिर्वृतः।
दैत्यदानवसङ्घानामृषीणां च महात्मनाम्॥ २९॥

---

१ प्रतिघातार्थं—प्रतिक्रियार्थं। (गो०)

दक्षिणद्वार पर महापार्श्व और महोदर युद्ध करें। अमित बलशाली पवननन्दन हनुमान जी बहुत से वानरों को साथ ले, लङ्का के पश्चिमद्वार पर चढ़ाई करें। दैत्यों, दानवों और महात्मा ऋषियों को ॥ २८ ॥ २९ ॥

विप्रकारप्रियः क्षुद्रो वरदानबलान्वितः ।
परिक्रामति यः सर्वाल्लोकान्सन्तापयन्प्रजाः ॥ ३० ॥

सताने वाले, नीच, वरदान से बलवान, सब लोकों में घूमने वाले, समस्त प्रजाजनों को सन्तप्त करने वाले ॥ ३० ॥

तस्याहं राक्षसेन्द्रस्य स्वयमेव वधे धृतः ।
उत्तरं नगरद्वारमहं सौमित्रिणा सह ॥ ३१ ॥

उस राक्षसराज रावण का वध करने का निश्चय मैंने स्वयं किया है। सो लङ्का के उस उत्तरद्वार पर, लक्ष्मण को साथ ले, मैं ॥३१॥

निपीड्याभिप्रवेक्ष्यामि सबलो यत्र रावणः ।
वानरेन्द्रश्च बलवानृक्षराजश्च वीर्यवान् ॥ ३२ ॥

चढ़ाई करूँगा, जिस पर अपनी सेना सहित रावण है। बलवान् वानरराज सुग्रीव और पराक्रमी ऋक्षराज जाम्बवान् ॥३२॥

राक्षसेन्द्रानुजश्चैव गुल्मो भवतु मध्यमः ।
न चैव मानुषं रूपं कार्यं हरिभिराहवे ॥ ३३ ॥

और विभीषण ये सेनासमूह के बीच में रह कर, सेना का परिचालन करें। रणस्थल में कोई भी वानर मनुष्य का रूप धारण न करे। क्योंकि ऐसा करने से अपने पराये की पहिचान न हो सकेगी ॥ ३३ ॥

एषा भवतु संज्ञा[1] नो युद्धेऽस्मिन्वानरे बले ।
वानरा एव नश्चिह्नं स्वजनेऽस्मिन्भविष्यति ॥ ३४ ॥

इस युद्ध में हमारी इस वानरी सेना का यही सङ्केत रहेगा। क्योंकि हमारी ओर के सैनिकों की पहिचान वानर ही होगी ॥ ३४ ॥

वयं तु मानुषेणैव सप्त योत्स्यामहे परान् ।
अहमेष सह भ्राता लक्ष्मणेन महौजसा ॥ ३५ ॥

हम सात जन मनुष्य का रूप धारण कर शत्रु से लड़ेंगे। मैं और महातेजस्वी मेरे छोटे भाई लक्ष्मण ॥ ३५ ॥

आत्मना पञ्चमश्चायं सखा मम विभीषणः ।
स रामः कृत्यसिद्ध्यर्थमेवमुक्त्वा विभीषणम् ॥ ३६ ॥

तथा अपने चारों मंत्रियों सहित मेरे मित्र विभीषण। (ये सात जन मनुष्य रूप धारण कर लड़ेंगे।) कार्यसिद्धि के लिये श्रीरामचन्द्र जी ने इस प्रकार विभीषण से कहा ॥ ३६ ॥

सुवेलारोहणे बुद्धिं चकार मतिमान्मतिम् ।
रमणीयतरं दृष्ट्वा सुवेलस्य गिरेस्तटम् ॥ ३७ ॥

फिर बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्र जी ने सुवेलपर्वत पर चढ़ने की इच्छा की। क्योंकि उस समय सुवेलपर्वत बड़ा रमणीक दिखलायी पड़ता था। (अर्थात् श्रीरामचन्द्र जी सुवेलपर्वत पर युद्ध करने के अभिप्राय से नहीं, किन्तु केवल उसकी रमणीकता देखने के लिये, उस पर चढ़े) ॥ ३७ ॥

---

१ संज्ञा—सङ्केतः। (गो०)

ततस्तु रामो महता बलेन
प्रच्छाद्य सर्वां [1]पृथिवीं [2]महात्मा ।
प्रहृष्टरूपोऽभिजगाम [3]लङ्कां
कृत्वा मतिं सोऽरिवधे महात्मा ॥ ३८ ॥

इति सप्तत्रिंशः सर्गः ॥

तब महाबुद्धिमान श्रीरामचन्द्र जी अपनी महती सेना से सुवेलपर्वत के मध्यभाग को ढक कर और अत्यन्त प्रसन्न हो कर, शत्रुवध की इच्छा से सुवेलपर्वत पर चढ़ गये ॥ ३८ ॥

युद्धकाण्ड का सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—※—

अष्टत्रिंशः सर्गः

—※—

स तु कृत्वा सुवेलस्य मतिमारोहणं प्रति ।
लक्ष्मणानुगतो रामः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
विभीषणं च धर्मज्ञमनुरक्तं निशाचरम् ।
मन्त्रज्ञं च विधिज्ञं[4] च श्लक्ष्णया परया गिरा ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण सहित सुवेलपर्वत पर चढ़ने की इच्छा कर, धर्मज्ञ, अनुरक्त एवं उचित परामर्श देने वाले, तथा कार्य करने की रीति जानने वाले कपिराज सुग्रीव तथा राक्षस विभीषण से मधुर शब्दों में कहने लगे ॥ १ ॥ २ ॥

---

१ पृथिवीं—सुवेलकटकभूमिं । (गो०) २ महात्मा—महाबुद्धिः । (गो०)
३ लङ्कां—लङ्कैकदेशसुवेलं । (गो०) ४ विधिज्ञं—कार्यज्ञं । (गो०)

सुवेलं साधुशैलेन्द्रमिमं धातुशतैश्चितम् ।
अध्यारोहामहे सर्वे वत्स्यामोऽत्र निशामिमाम् ॥ ३ ॥

चलो हम सब, विविध प्रकार की धातुओं से भरे पूरे, इस सुन्दर पर्वतराज सुवेल पर चढ़ चलें, और आज की रात वहीं बितावें ॥ ३ ॥

लङ्कां चालोकयिष्यामो निलयं तस्य रक्षसः ।
येन मे मरणान्ताय हृता भार्या दुरात्मना ॥ ४ ॥

उस पर चढ़ कर, हम लोग उस दुष्ट रावण को आवास-स्थली लङ्का को भी देखेंगे, जो अपनी जान खोने के लिये, मेरी स्त्री को हर लाया है ॥ ४ ॥

येन धर्मो न विज्ञातो न तद्वृत्तं कुलं तथा ।
राक्षस्या नीचया बुद्धया येन तद्गर्हितं कृतम् ॥ ५ ॥

ऐसा पापकृत्य करते समय उसने न तो धर्म की, न सच्चरित्रता की और न अपने श्रेष्ठकुल ही की कुछ परवाह की और अपनी नीच राक्षसी बुद्धि ही से यह गर्हित कर्म कर डाला ॥ ५ ॥

तस्मिन्मे वर्तते रोषः कीर्तिते राक्षसाधमे ।
यस्यापराधान्नीचस्य वधं द्रक्ष्यामि रक्षसाम् ॥ ६ ॥

अब तो मुझे उस राक्षसाधम का नाम लेते ही क्रोध आ जाता है। क्योंकि इसी नीच के अपराध से मुझे असंख्य राक्षसों का वध देखना पड़ेगा ॥ ६ ॥

एको हि कुरुते पापं कालपाशवशं गतः ।
नीचेनात्मापचारेण कुलं तेन विनश्यति ॥ ७ ॥

देखो, मृत्यु के पाश में फँस, एक जीव पाप करता है, किन्तु उस एक नीच के अपराध से उसके सारे कुल का नाश होता है ॥७॥

एवं [1]संमन्त्रयन्नेव सक्रोधो रावणं प्रति ।
रामः सुवेलं वासाय चित्रसानुमुपारुहत् ॥ ८ ॥

इस प्रकार वार्तालाप करते और रावण पर खीजते, श्रीरामचन्द्र जी सुवेलपर्वत पर वास करने के लिये उसके रंग बिरंगे शृङ्गों पर चढ़ गये ॥ ८ ॥

पृष्ठतो लक्ष्मणश्चैनमन्वगच्छत्समाहितः ।
सशरं चापमुद्यम्य सुमहद्विक्रमे रतः ॥ ९ ॥

पराक्रमी लक्ष्मण जी भी बाण सहित बड़े धनुष को हाथ में लिये हुए, सावधानतापूर्वक श्रीरामचन्द्र जी के पीछे पीछे चले ॥९॥

तमन्वरोहत्सुग्रीवः सामात्यः सविभीषणः ।
हनुमानङ्गदो नीलो मैन्दो द्विविद एव च ॥ १० ॥
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ।
पनसः कुमुदश्चैव हरो रम्भश्च यूथपः ॥ ११ ॥
जाम्बवांश्च सुषेणश्च ऋषभश्च महामतिः ।
दुर्मुखश्च महातेजास्तथा शतबलिः कपिः ॥ १२ ॥
एते चान्ये च बहवो वानराः शीघ्रगामिनः ।
ते वायुवेगप्रवणास्तं गिरिं गिरिचारिणः ॥ १३ ॥
अध्यारोहन्त शतशः सुवेलं यत्र राघवः ।
ते त्वदीर्घेण कालेन गिरिमारुह्य सर्वतः ॥ १४ ॥

---

१ संमन्त्रयन्—वदन् । (गो०)

उनके पीछे सुग्रीव और मंत्रियों सहित विभीषण चले। फिर हनुमान जी, अङ्गद, नील, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, पनस, कुमुद, रम्भ, जाम्बवान, सुषेण, महाबुद्धिमान ऋषभ, महातेजस्वी दुर्मुख, तथा वानर शतवलि आदि तथा अन्य बहुत से तेज चलने वाले, तथा पर्वतों पर विचरने वाले वानर; वायुवेग से उस सुवेलपर्वत पर चढ़ कर, जहाँ श्रीरामचन्द्र जी थे, वहाँ जा पहुँचे। उस पर्वत पर चढ़ने में उन समस्त वानरों को कुछ भी समय न लगा॥ १०॥ ११॥ १२॥ १३॥ १४॥

ददृशुः शिखरे तस्य [1]विषक्तामिव खे पुरीम्।
तां शुभां प्रवरद्वारां प्राकारपरिशोभिताम्॥ १५॥

सुवेलपर्वत के शिखर पर चढ़, उन्होंने लङ्का को देखा, जो ऐसी जान पड़ती थी, मानों आकाश को छू रही हो। लङ्का अच्छे द्वारों और परकोटे से शोभित थी॥ १५॥

लङ्कां राक्षससम्पूर्णां ददृशुर्हरियूथपाः।
प्राकारचयसंस्थैश्च तदा नीलैर्निशाचरैः॥ १६॥

ददृशुस्ते हरिश्रेष्ठाः प्राकारमपरं कृतम्।
ते दृष्ट्वा वानराः सर्वे राक्षसान्युद्धकाङ्क्षिणः।
मुमुचुर्विविधान्नादांस्तत्र रामस्य पश्यतः॥ १७॥

वानरयूथपतियों ने देखा कि, लङ्का राक्षसों से खचाखच भरी हुई है। प्राकार की दीवालों तथा बुर्जों पर चढ़ी हुई नीले रंग की पोशाक (वर्दी) पहिने हुए, निशाचरों की श्रेणी ऐसी जान पड़ती थी; मानों परकोटे की दीवाल के ऊपर दूसरे परकोटे की दीवाल

---

१ खेविषक्तां—आकाशे लम्बमानामिव स्थितां। (गो०)

खड़ी हो। उन सब वानरों ने यह भी देखा कि, वे सब राक्षस युद्ध करने को तैयार हैं। तब तो श्रीरामचन्द्र जी के सामने ही वे वानरश्रेष्ठ विविध प्रकार की बोलियाँ बोल कर, सिंहनाद करने लगे ॥ १६ ॥ १७ ॥

ततोऽस्तमगमत्सूर्यः सन्ध्यया प्रतिरञ्जितः ।
पूर्णचन्द्रप्रदीप्ता च क्षपा समभिवर्तते ॥ १८ ॥

तदनन्तर भगवान् सूर्य अस्ताचल गामी हुए और रक्तवर्ण सन्ध्या आ उपस्थित हुई। उस समय पूर्णमासी के चन्द्र से भूषित रात्रि का प्रादुर्भाव हुआ ॥ १८ ॥

ततः स रामो हरिवाहिनीपतिः
विभीषणेन प्रतिनन्द्यसत्कृतः ।
सलक्ष्मणो यूथपयूथसंवृतः
सुवेलपृष्ठे न्यवसद्यथासुखम् ॥ १९ ॥

इति अष्टत्रिंशः सर्गः ॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी कपिसेनापतियों और विभीषण से पूजित और सम्मानित हो कर, लक्ष्मण जी के साथ सुवेलपर्वत के शिखर पर सुख से बसे ॥ १९ ॥

युद्धकाण्ड का अड़तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—※—

एकोनचत्वारिंशः सर्गः

—※—

तां रात्रिमुषितास्तत्र सुवेले हरिपुङ्गवाः ।
लङ्कायां ददृशुर्वीरा वनान्युपवनानि च ॥ १ ॥

वानरयूथपतियों ने सुवेलपर्वत के शिखर पर, उस रात को बिता कर, लङ्कापुरी के समस्त वनों और उपवनों को देखा ॥ १ ॥

समसौम्यानि रम्याणि विशालान्यायतानि च ।
दृष्टिरम्याणि ते दृष्ट्वा बभूवुर्जातविस्मयाः ॥ २ ॥

वे वन उपवन चौरस, सुन्दर, रमणीक, विशाल, चौड़े तथा नेत्रों को सुख देने वाले थे । उनको देख, वे वानरयूथपति विस्मित हुए ॥ २ ॥

चम्पकाशोकपुन्नागसालतालसमाकुला ।
तमालवनसंछन्ना नागमालासमावृता ॥ ३ ॥

वे वन उपवन चम्पा, अशोक, मौलसिरी, साखू और ताड़ वृक्षों से परिपूर्ण थे और तमाल के वृक्षों के वन से व्याप्त और नागकेसर के पेड़ों से घिरे हुए थे ॥ ३ ॥

हिन्तालैरर्जुनैर्नीपैः सप्तपर्णैश्च पुष्पितैः ।
तिलकैः कर्णिकारैश्च पाटलैश्च समन्ततः ॥ ४ ॥

उनमें चारों ओर हिन्ताल, अर्जुन, कदंब, तिलक, कर्णिकार (कठचम्पा) व पाटल आदि के अच्छे फूले हुए वृक्ष लगे हुए थे ॥ ४ ॥

शुशुभे पुष्पिताग्रैश्च लतापरिगतैर्द्रुमैः ।
लङ्का बहुविधैर्दिव्यैर्यथेन्द्रस्यामरावती ॥ ५ ॥

लताओं से लिपटे हुए ये वृक्ष कलियों से सुशोभित थे। उनसे लङ्का की ऐसी शोभा हो रही थी, जैसी इन्द्र की अमरावती की हो ॥ ५ ॥

विचित्रकुसुमोपेतै रक्तकोमलपल्लवैः ।
शाद्वलैश्च तथा नीलैश्चित्राभिर्वनराजिभिः ॥ ६ ॥

रंगबिरंगे फूलों से, लाल लाल पत्तों से, मन हरने वाले वृक्षों से, हरी हरी दूब से और रंगबिरंगी वृक्षावली से, उस भूमि की अपूर्व शोभा हो रही थी ॥ ६ ॥

गन्धाढ्यान्यभिरम्याणि पुष्पाणि च फलानि च ।
धारयन्त्यगमास्तत्र भूषणानीव मानवाः ॥ ७ ॥

जैसे मनुष्य भूषणों से भूषित या शोभायमान होते हैं, वैसे ही वहाँ के वृक्ष गन्धयुक्त सुन्दर फूलों और फलों को धारण किये हुए, शोभायमान जान पड़ते थे ॥ ७ ॥

तच्चैत्ररथसङ्काशं मनोज्ञं नन्दनोपमम् ।
वनं सर्वर्तुकं रम्यं शुशुभे षट्पदायुतम् ॥ ८ ॥

लङ्का के वे वन चैत्ररथ वन के तुल्य अथवा मनोहर नन्दन कानन की तरह सब ऋतुओं में रमणीक थे और भौरों की मधुर गुंजार से मन को मोहित किया करते थे ॥ ८ ॥

नत्यूहकोयष्टिमकैर्नृत्यमानैश्च बर्हिभिः ।
रुतं परभृतानां च शुश्रुवुर्वननिर्झरे ॥ ९ ॥

उनमें झरनों के तटों पर चकई चकवा, जलमुर्ग, मोर, कोकिल आदि पक्षी नाच नाच कर चिहक रहे थे ॥ ६ ॥

नित्यमत्तविहङ्गानि भ्रमराचरितानि च ।
कोकिलाकुलषण्डानि*[1] विहङ्गाभिरुतानि च ॥ १० ॥

सदा ही मतवाले पक्षियों से युक्त, भौरों से परिपूर्ण, कोइलों से सेवित, वृक्षों से पूर्ण, तथा विविध प्रकार के पक्षियों में कूजित वे वन थे ॥१०॥

भृङ्गराजाभिगीतानि भ्रमरैः सेवितानि च ।
कोणालकविघुष्टानि सारसाभिरुतानि च ॥ ११ ॥

भृङ्गराज पक्षी उनमें मधुर गान और भौंरे गुंजार कर रहे थे। खञ्जन पक्षियों की बोली से वे सुहावने हो रहे थे। उनमें सारस पक्षी बोल रहे थे ॥ ११ ॥

विविशुस्ते ततस्तानि वनान्युपवनानि च ।
हृष्टाः प्रमुदिता वीरा हरयः कामरूपिणः ॥ १२ ॥

इस प्रकार के सुशोभित उन वनों और उपवनों में, कामरूपी वीर वानर, प्रसन्न हो कर, घुस गये ॥ १२ ॥

तेषां प्रविशतां तत्र वानराणां महौजसाम् ।
पुष्पसंसर्गसुरभिर्ववौ घ्राणसुखोऽनिलः ॥ १३ ॥

उन महातेजस्वी वानरों के घुसते समय, पुष्पों की सुगन्ध से युक्त और नाक को सुख देने वाली हवा बहने लगी ॥ १३ ॥

अन्ये तु हरिवीराणां यूथान्निष्क्रम्य यूथपाः ।
सुग्रीवेणाभ्यनुज्ञाता लङ्कां जग्मुः पताकिनीम् ॥ १४ ॥

---

*पाठान्तरे०—" खण्डानि । " [1] षण्डाः—वृक्षसमूहाः । (गो०)

वानरी सेना के कुछ यूथपति, सैन्यदल से निकल कर, कपिराज की आज्ञा के अनुसार, ध्वजा पताकाओं से सुशोभित लङ्का में घुस गये ॥ १४ ॥

वित्रासयन्तो विहगांस्त्रासयन्तो मृगद्विपान् ।
कम्पयन्तश्च तां लङ्कां नादैस्ते नदतां वराः ॥ १५ ॥

वे गर्जने वालों में श्रेष्ठ वानरयूथपति पक्षियों, मृगों और हाथियों को त्रस्त करते तथा लङ्का को कम्पायमान करते हुए सिंहनाद करने लगे ॥ १५ ॥

कुर्वन्तस्ते महावेगा महीं चरणपीडिताम् ।
रजश्च सहसैवोर्ध्वं जगाम चरणोत्थितम् ॥ १६ ॥

वे पृथिवी पर पैर पटकते हुए ऐसे ज़ोर से चले कि, धूल उड़ कर सहसा सारे आकाश में छा गयी ॥ १६ ॥

ऋक्षाः सिंहा वराहाश्च महिषा वारणा मृगाः ।
तेन शब्देन वित्रस्ता जग्मुर्भीता दिशो दश ॥ १७ ॥

रीछ, सिंह, वराह, भैंसे, हाथी और हिरन उनके इस गर्जन तर्जन से भयभीत हो, चारों ओर भाग गये ॥ १७ ॥

शिखरं तत्त्रिकूटस्य प्रांशु चैकं दिविस्पृशम् ।
समन्तात्पुष्पसंछन्नं महारजतसन्निभम् ॥ १८ ॥

त्रिकूटाचल पर्वत का एक शृङ्ग आकाशस्पर्शी था । उसके चारों ओर फूल लगे हुए थे । वह खरी चाँदी के समान दमक रहा था ॥ १८ ॥

शतयोजनविस्तीर्णं विमलं चारुदर्शनम् ।
श्लक्ष्णं श्रीमन्महच्चैव दुष्प्रापं शकुनैरपि ॥ १९ ॥

वह सौ योजन तक फैला हुआ था। बड़ा स्वच्छ साफ था और देखने में बड़ा मनोहर था। वह सुन्दर शिखर इतना ऊँचा था कि, कोई पक्षी भी उड़ कर उसके ऊपर नहीं पहुँच पाता था ॥१६॥

मनसाऽपि दुरारोहं किं पुनः कर्मणा जनैः ।
निविष्टा तत्र शिखरे लङ्का रावणपालिता ॥ २० ॥

उस पर जब कल्पना द्वारा भी चढ़ना सम्भव न था, तब क्रियात्मक रूप से उसके ऊपर कौन चढ़ सकता था। उसी शिखर के ऊपर रावण द्वारा पालित लङ्का बसाई गयी थी ॥ २० ॥

शतयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता ।
सा पुरी गोपुरैरुच्चैः पाण्डुराम्बुदसन्निभैः ॥ २१ ॥

वह लङ्का सौ योजन लंबी और तीस योजन चौड़ी थी। उसके बड़े ऊँचे ऊँचे गोपुरद्वार सफेद बादलों की तरह जान पड़ते थे ॥२१॥

काञ्चनेन च सालेन[1] राजतेन च शोभिता ।
प्रासादैश्च विमानैश्च लङ्का परमभूषिता ॥ २२ ॥

वह सुवर्ण और चाँदी के परकोटे से शोभित थी। बड़े बड़े भवनों और सतखनी हवेलियों से लङ्का की वैसी ही परम शोभा हो रही थी; ॥ २२ ॥

घनैरिवातपापाये मध्यमं वैष्णवं पदम्[2] ।
यस्यां स्तम्भसहस्रेण प्रासादः समलंकृतः ॥ २३ ॥

जैसी कि, ग्रीष्मऋतु के अन्त में, मेघों की धराओं से आकाश की परम शोभा होती है। लङ्का में एक ऐसा भवन था, जिसकी शोभा एक सहस्र खम्भों से हो रही थी ॥ २३ ॥

---

१ सालेन—प्राकारेण। (गो०) २ आकाशं वैष्णवपदं। (गो०)

कैलासशिखराकारो दृश्यते खमिवोल्लिखन् ।
चैत्यः स राक्षसेन्द्रस्य बभूव पुरभूषणम् ॥ २४ ॥

वह कैलासशिखर के आकार का या उसके समान ऊँचा था और आकाश को छूता हुआ सा जान पड़ता था। राक्षसराज रावण का वह भवन लङ्कापुरी का एक भूषण सा था ॥ २४ ॥

शतेन रक्षसां नित्यं यः समग्रेण रक्ष्यते ।
मनोज्ञां काननवतीं पर्वतैरुपशोभिताम् ॥ २५ ॥
नानाधातुविचित्रैश्च उद्यानैरुपशोभिताम् ।
नानाविहगसंघुष्टां नानामृगनिषेविताम् ॥ २६ ॥

उसकी रक्षा सैकड़ों राक्षस सदा किया करते थे। बाग बगीचों से लङ्कापुरी बड़ी मनोहर हो रही थी और रंगबिरंगी धातुओं से युक्त पर्वतों से वह शोभित थी। उसमें बीच बीच में रमने (उद्यान) बने हुए थे, जिनमें अनेक प्रकार के पक्षी बोला करते थे और मृग विचरा करते थे ॥ २५ ॥ २६ ॥

*नानाकुसुमसम्पन्नां नानाराक्षससेविताम् ।
तां [1]समृद्धां [2]समृद्धार्थां लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणाग्रजः ।
रावणस्य पुरीं रामो ददर्श सह वानरैः ॥ २७ ॥

उन उद्यानों में तरह तरह के फूल खिल रहे थे। अनेक राक्षसों से सेवित इस उन्नत और समस्त पदार्थों से भरी पूरी रावण की लङ्कापुरी को, लक्ष्मण के बड़े भाई एवं कान्तिवान् श्रीरामचन्द्र जी ने और वानरों ने देखा ॥ २७ ॥

---

१ समृद्धां—उन्नतां। (गो०) २ समृद्धार्थां—समृद्धद्रव्यां। (गो०)

* पाठान्तरे—" नाना काननसन्तानां," वा " नानागृहसमाकीर्णां। "

तां महागृहसम्बाधां दृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः ।
नगरीममरप्रख्यो विस्मयं प्राप वीर्यवान् ॥ २८ ॥

लक्ष्मण के बड़े भाई बलवान् श्रीरामचन्द्र, बचे बड़े ऊँचे भवनों से युक्त एवं अमरावती सदृश उस लङ्कापुरी को देख, विस्मित हुए ॥ २८ ॥

तां [1]रत्नपूर्णां बहुसंविधानां[2]
प्रासादमालाभिरलंकृतां च ।
पुरीं महायन्त्रकवाटमुख्यां
ददर्श रामो महता बलेन ॥ २९ ॥

इति एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी ने वानरों की महती सेना सहित सुवेल पर्वत पर बैठे ही बैठे, उस लङ्कापुरी को देखा, जो श्रेष्ठ वस्तुओं से भरी पूरी थी, जो पुरी की रक्षा के लिये नियत किये हुए सैनिकों से पूर्ण थी, जो ऊँचे ऊँचे भवनों की श्रेणियों से अलङ्कृत थी और जो बड़ी बड़ी कलों और फाटकों (किवाड़ों) से युक्त थी ॥ २९ ॥

युद्धकाण्ड का उन्तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—*—

चत्वारिंशः सर्गः

—*—

ततो रामः सुवेलाग्रं योजनद्वयमण्डलम् ।
आरुरोह ससुग्रीवो हरियूथपसंवृतः ॥ १ ॥

---

१ रत्नानि—श्रेष्ठवस्तूनि । (गो०) २ संविधानं—रक्षणं । (गो०)

दो योजन के घेरे में व्याप्त उस सुवेलपर्वत के शिखर पर, सुग्रीव तथा वानरयूथपतियों को साथ लिये हुए श्रीरामचन्द्र जी चढ़ गये ॥ १ ॥

स्थित्वा मुहूर्तं तत्रैव दिशो दश विलोकयन्।
त्रिकूटशिखरे रम्ये निर्मितां विश्वकर्मणा ॥ २ ॥

वहाँ एक घड़ी ठहर, चारों ओर दृष्टि डाल उन्होंने देखा। रमणीय त्रिकूटाचल के शृङ्ग पर विश्वकर्मा की बनाई हुई ॥ २ ॥

ददर्श लङ्कां सुन्यस्तां रम्यकाननशोभिताम्।
तस्यां गोपुरशृङ्गस्थं राक्षसेन्द्रं दुरासदम् ॥ ३ ॥

लङ्का को, श्रीरामचन्द्र जी ने देखा। लङ्कापुरी बड़ी सुन्दर रीति से बसाई गयी थी और बड़े रमणीक काननों से वह सुशोभित थी। उसके फाटक के शिखर पर दुर्धर्ष रावण बैठा हुआ था ॥ ३ ॥

श्वेतचामरपर्यन्तं विजयच्छत्रशोभितम्।
रक्तचन्दनसंलिप्तं रत्नाभरणभूषितम् ॥ ४ ॥

उसके माथे पर विजयसूचक छत्र तना हुआ था, उसके अगल बगल दो सफेद चँवर डुलाये जा रहे थे। उसके शरीर में लाल चन्दन लगा हुआ था और वह रत्नजटित आभूषण पहिने हुए था ॥ ४ ॥

नीलजीमूतसङ्काशं हेमसंछादिताम्बरम्।
ऐरावतविषाणाग्रैरुत्कृष्टकिणवक्षसम् ॥ ५ ॥

नील मेघ की तरह उसके शरीर की कान्ति थी और वह ज़रदोज़ी (कलाबत्तू) के काम के कपड़े पहिने हुए था। उसकी छाती में ऐरावत हाथी के दाँत लगने का चिन्ह था ॥ ५ ॥

शशलोहितरागेण संवीतं रक्तवाससा ।
सन्ध्यातपेन संवीतं मेघराशिमिवाम्बरे ॥ ६ ॥

उसकी पोशाक ख़रगोश के रक्त की तरह लाल रंग की थी। इस सजावट से वह ऐसा जान पड़ता था, मानों सन्ध्याकालीन धूप से ढकी हुई मेघघटाएँ ॥ ६ ॥

पश्यतां वानरेन्द्राणां राघवस्यापि पश्यतः ।
दर्शनाद्राक्षसेन्द्रस्य सुग्रीवः सहसोत्थितः ॥ ७ ॥

इस प्रकार के राक्षसराज रावण को सुग्रीव ने तथा श्रीरामचन्द्र जी ने भी देखा। किन्तु रावण को देख सुग्रीव से न रहा गया और वे सहसा उठ खड़े हुए ॥ ७ ॥

क्रोधवेगेन संयुक्तः सत्त्वेन च बलेन च ।
अचलाग्रादथोत्थाय पुप्लुवे गोपुरस्थले ॥ ८ ॥

सुग्रीव, क्रुद्ध हो तथा अपने बल पराक्रम से उत्साहित हो, पर्वत-शिखर से छलाँग मार, उस फाटक के ऊपर जा बैठे (जहां रावण बैठा हुआ था) ॥ ८ ॥

स्थित्वा मुहूर्तं सम्प्रेक्ष्य निर्भयेनान्तरात्मना ।
तृणीकृत्य च तद्रक्षः सोऽब्रवीत्परुषं वचः ॥ ९ ॥

वहाँ पहुँच सुग्रीव कुछ देर तक निर्भय हो, रावण की ओर टकटकी बाँध देखते रहे। फिर रावण को तिनके के समान समझ अर्थात् तिरस्कार पूर्वक उससे कठोर वचन कहने लगे ॥ ९ ॥

लोकनाथस्य रामस्य सखा दासोऽस्मि राक्षस ।
न मया मोक्ष्यसेऽद्य त्वं पार्थिवेन्द्रस्य तेजसा ॥ १० ॥

अरे राक्षस ! मैं त्रिलोकीनाथ श्रीरामचन्द्र का मित्र और दास भी हूँ। राजेन्द्र श्रीरामचन्द्र जी के प्रताप से तुम आज मुझसे बच कर न जा पाओगे ॥ १० ॥

इत्युक्त्वा सहसोत्पत्य पुप्लुवे तस्य चोपरि ।
आकृष्य मुकुटं चित्रं पातयित्वाऽपतद्भुवि ॥ ११ ॥

यह कह सुग्रीव सहसा छलांग मार रावण के ऊपर जा पहुँचे और रावण के सिर से उसका विचित्र मुकुट उतार कर, ज़मीन पर पटक दिया ॥ ११ ॥

समीक्ष्य तूर्णमायान्तमाबभाषे निशाचरः ।
सुग्रीवस्त्वं परोक्षं मे हीनग्रीवो भविष्यसि ॥ १२ ॥

मुकुट गिरा कर उनको फिर भी फुर्ती के साथ अपने ऊपर झपटते देख, रावण ने कहा—सुग्रीव जब तक तू मेरे नेत्रों की आड़ में था तभी तक तू सुग्रीव था, पर अब तू हीनग्रीव हो जायगा ॥१२॥

इत्युक्त्वोत्थाय तं क्षिप्रं बाहुभ्यामाक्षिपत्तले ।
कन्दुवत् स समुत्थाय बाहुभ्यामाक्षिपद्धरिः ॥ १३ ॥

यह कह रावण उठा और हाथों से पकड़ सुग्रीव को ज़मीन पर दे पटका। सुग्रीव ने भी गेंद की तरह उछल कर और रावण को पकड़ कर, उसे ज़मीन पर पटक दिया ॥ १३ ॥

परस्परं स्वेदविदिग्धगात्रौ
परस्परं शोणितदिग्धदेहौ ।
परस्परं श्लिष्टनिरुद्धचेष्टौ
परस्परं शाल्मलिकिंशुकौ यथा ॥ १४ ॥

जब वे दोनों इस प्रकार एक दूसरे से लड़ने लगे; तब दोनों के शरीर पसीना व रुधिर से तर बतर हो गये। वे एक दूसरे से लिपट जाते थे और कुछ काल के लिये दोनों ही चेष्टारहित (भी) हो जाते थे। खून से लथपथ वे सेमर और ढाक के पेड़ की तरह देख पड़ते थे॥ १४॥

मुष्टिप्रहारैश्च तलप्रहारै-
रत्निघातैश्च कराग्रघातैः।
तौ चक्रतुर्युद्धमसह्यरूपं
महाबलौ वानरराक्षसेन्द्रौ॥ १५॥

महाबली वानरराज और राक्षसराज एक दूसरे को घूँसों से, थप्पड़ों से और कोहनियों की मार से बेदम कर, युद्ध कर रहे थे॥ १५॥

कृत्वा नियुद्धं भृशमुग्रवेगौ
कालं चिरं गोपुरवेदिमध्ये।
उत्क्षिप्य चाक्षिप्य विनम्य देहौ
पादक्रमाद्गोपुरवेदिलग्नौ॥ १६॥

फाटक की छत पर इस तरह वे दोनों उग्र पराक्रमी बहुत देर तक युद्ध करते रहे। हाथापाई करते करते यहाँ तक नौबत पहुँची कि, कभी रावण सुग्रीव को और कभी सुग्रीव रावण को पकड़ कर, ऊपर उछाल देता था। कभी कभी पैतरे बदलते हुए दोनों, कुछ देर के लिये, एक दूसरे की घात में खड़े हो जाते थे॥ १६॥

अन्यान्यमाविध्य विलग्नदेहौ
तौ पेततुः सालनिखातमध्ये।

उत्पेततुर्भूतलमस्पृशन्तौ
स्थित्वा मुहूर्तं त्वभिनिश्वसन्तौ ॥ १७ ॥

दोनों लड़ते लड़ते एक दूसरे से लिपटे हुए परकोटे की खाँई में गिर पड़े। किन्तु खाँई की तली में पहुँचने के पूर्व वे दोनों उछल कर, पुनः ऊपर आये और ऊपर आ कर कुछ देर तक दम लेते हुए खड़े रहे ॥ १७ ॥

आलिङ्ग्य चावल्य च बाहुयोक्त्रैः
संयोजयामासतुराहवे तौ ।
संरम्भशिक्षाबलसम्प्रयुक्तौ
सञ्चेरतुः सम्प्रति युद्धमार्गैः ॥ १८ ॥

तदनन्तर फिर उन दोनों की भिड़न्त हुई और दोनों में हाथापाई होने लगी। आवेश में भर वे अपने अपने (मल्लयुद्ध के) अभ्यास और (शारीरिक) शक्ति को दिखाते हुए एक दूसरे को पकड़ने की घात में लगे हुए घूम रहे थे ॥ १८ ॥

शार्दूलसिंहाविव जातदर्पौ
गजेन्द्रपोताविव सम्प्रयुक्तौ ।
संहत्य चापीड्य च तावुरोभ्यां
निपेततुर्वै युगपद्धरण्याम् ॥ १९ ॥

शार्दूल और सिंह की तरह वे बल से दर्पित हो रहे थे। हाथी के पाठों की तरह वे दोनों भिड़ जाते थे और घुटनों की ठोकरें एक दूसरे के जमाते हुए, दोनों ही पृथिवी पर गिर जाते थे ॥ १९ ॥

उद्यम्य चान्योन्यमधिक्षिपन्तौ
सञ्चक्रमाते बहुयुद्धमार्गैः ।

व्यायामशिक्षाबलसम्प्रयुक्तौ
क्लमं न तौ जग्मतुराशु वीरौ ॥ २० ॥

एक दूसरे को उठा उठा कर पटक देते थे और दोनों ही उठ उठ कर वहाँ चक्कर लगाने लगते थे। क्योंकि दोनों ही मल्लयुद्ध-विद्या में अभ्यस्त होने के कारण पर्याप्त बलसम्पन्न थे। इसीसे वे दोनों वीर शीघ्र थके भी नहीं थे ॥ २० ॥

बाहूत्तमैर्वारणवारणाभै:
निवारयन्तौ वरवारणाभौ।
चिरेण कालेन तु सम्प्रयुक्तो
संचेरतुर्मण्डलमार्गमाशु ॥ २१ ॥

मतवाले हाथियों की सूँड़ों की तरह अपने हाथों से एक दूसरे को रोकते हुए, वे बहुत देर तक कुश्ती लड़ कर, मण्डलाकार हो, लड़ने लगे ॥ २१ ॥

तौ परस्परमासाद्य यत्तावन्योन्यसूदने।
मार्जाराविव भक्षार्थे वितस्थाते मुहुर्मुहुः ॥ २२ ॥

किसी खाद्य पदार्थ के लिये लड़ने वाले दो विलारों की तरह, वे दोनों आपस में एक दूसरे की ओर निश्चल भाव से खड़े घूरते हुए, चक्कर लगाते थे ॥ २२ ॥

मण्डलानि विचित्राणि स्थानानि विविधानि च।
गोमूत्रिकाणि चित्राणि गतप्रत्यागतानि च ॥ २३ ॥

तिरश्चीनगतान्येव तथा वक्रगतानि च।
परिमोक्षं प्रहाराणां वर्जनं परिधावनम् ॥ २४ ॥

अभिद्रवणमाप्लावमास्थानं च सविग्रहम् ।
परावृत्तमपावृत्तमवद्रुतमवप्लुतम् ॥ २५ ॥

उपन्यस्तमपन्यस्तं युद्धमार्गविशारदौ ।
तौ सञ्चेरतुरन्योन्यं वानरेन्द्रश्च रावणः ॥ २६ ॥

वे कभी विचित्र रीति से चक्कर काट, कभी पैरों को तिरछे रख, कभी टेढ़ी मेढ़ी चाल से, कभी वेंड़े हो कर, कभी चक्कर काट कर, कभी वार बचा कर, कभी दौड़ कर, कभी उछल कर, कभी घात लगा कर खड़े रह कर, कभी पीछे देखते हुए चल कर, कभी घुटनों के बल परस्पर समीप खड़े रह कर, कभी लात मारने के लिये उछल कर, कभी बाहों की पकड़ बचाने को छाती फुला कर और आगे कर के, कभी श ु की भुजाओं को पकड़ने के लिये हाथों को फैला कर, वे दोनों मल्लयुद्धविशारद वानरराज और राक्षसराज, घूम घूम कर लड़ रहे थे ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे रक्षो मायाबलमथात्मनः ।
आरब्धुमुपसम्पेदे ज्ञात्वा तं वानराधिपः ॥ २७ ॥

इतने में रावण ने अपना कुछ मायाजाल रचना चाहा, जिसे वानरराज सुग्रीव तुरन्त ताड़ गये ॥ २७ ॥

उत्पपात तदाकाशं [1]जितकाशी जितक्लमः ।
रावणः स्थित एवात्र हरिराजेन वञ्चितः ॥ २८ ॥

तब तो पूरी दम रखने वाले एवं विजयी सुग्रीव ने वहाँ से ऊपर को छलांग मारी । रावण भौंचक सा खड़ा देखता ही रह गया । कपिराज ने उसे खूब छकाया ॥ २८ ॥

---

१ जितकाशी—जितश्वासः । (रा०)

अथ हरिवरनाथः प्राप्य संग्रामकीर्तिः
निशिचरपतिमाजौ योजयित्वा श्रमेण ।
गगनमतिविशालं लङ्घयित्वाऽर्कसूनुः
हरिवरगणमध्ये रामपार्श्वं जगाम ॥ २९ ॥

इस प्रकार वानरराज सुग्रीव ने बल लगा कर, राक्षसराज रावण को थका डाला और इस प्रकार विजय रूपी कीर्ति प्राप्त कर, फिर सूर्यपुत्र सुग्रीव विशाल आकाश को लांघ कर, वानरों के बीच बैठे हुए श्रीरामचन्द्र जी के पास आ पहुँचे ॥ २९ ॥

इति स सवितृसूनुस्तत्र तत्कर्म कृत्वा
पवनगतिरनीकं प्राविशत्सम्प्रहृष्टः ।
रघुवरनृपसूनोर्वर्धयन्युद्धहर्षं
तरुमृगगणमुख्यैः पूज्यमानो हरीन्द्रः ॥३०॥

इति चत्वारिंशः सर्गः ॥

इस प्रकार सूर्यपुत्र सुग्रीव ने लङ्का में जा, वहाँ यह करनी कर, हर्षित हो पवनवेग से लौट और वानरयूथपतियों से सम्मानित हो, राजकुमार श्रीरामचन्द्र जी को इस मल्लयुद्ध का वृत्तान्त सुना, उनको हर्षित किया ॥ ३० ॥

युद्धकाण्ड का चालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—※—

एकचत्वारिंशः सर्गः

—※—

अथ तस्मिन्निमित्तानि दृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः ।
सुग्रीवं सम्परिष्वज्य तदा वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

लक्ष्मण के ज्येष्ठभ्राता श्रीरामचन्द्र जी ने सुग्रीव के शरीर पर युद्ध के चिन्ह अर्थात् घाव देख और उन्हें अपने गले से लगा कर उनसे कहा ॥ १ ॥

असम्मन्त्र्य मया सार्धं तदिदं साहसं कृतम् ।
एवं साहसकर्माणि न कुर्वन्ति जनेश्वराः ॥ २ ॥

हे मित्र ! तुमने मुझसे परामर्श किये बिना ही जैसे दुस्साहस का यह काम किया है, वैसा दुस्साहस का काम राजा लोगों को करना उचित नहीं ॥ २ ॥

संशये स्थाप्य मां चेदं बलं च सविभीषणम् ।
कष्टं कृतमिदं वीर साहसं साहसप्रिय ॥ ३ ॥

हे साहसप्रिये ! हे वीर ! मुझे, विभीषण को तथा समस्त वानरी सेना को चिन्ता में डाल, तुमने यह जोखों का काम किया है ॥ ३ ॥

इदानीं मा कृथा वीर एवंविधमचिन्तितम् ।
त्वयि किञ्चित्समापन्ने किं कार्यं सीतया मम ॥ ४ ॥

हे वीर ! इस प्रकार बिना समझे बूझे फिर कोई काम मत करना । कहीं तुम्हारा कुछ भी अनभल हो जाता तो, मैं सीता को ले कर ही क्या करता ? ॥ ४ ॥

भरतेन महाबाहो लक्ष्मणेन यवीयसा ।
शत्रुघ्नेन च शत्रुघ्न स्वशरीरेण वा पुनः ॥ ५ ॥

हे महाबाहो ! यदि तुम्हारे ऊपर कोई आपत्ति आ जाती, तो भरत से, लक्ष्मण से तथा शत्रुहन्ता लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न से और अपने शरीर ही से मैं क्या करता ॥ ५ ॥

त्वयि चानागते पूर्वमिति मे निश्चिता मतिः ।
जानतश्चापि ते वीर्यं महेन्द्रवरुणोपमम् ॥ ६ ॥
हत्वाऽहं रावणं युद्धे सपुत्रबलवाहनम् ।
अभिषिच्य च लङ्कायां विभीषणमथापि च ॥ ७ ॥
भरते राज्यमावेश्य त्यक्ष्ये देहं महाबल ।
तमेवंवादिनं रामं सुग्रीवः प्रत्यभाषत ॥ ८ ॥

यद्यपि मैं जानता हूँ कि, तुममें इन्द्र और वरुण के समान पराक्रम है, तथापि जब तक तुम नहीं लौटे थे, तब तक मैंने यही अपने मन में निश्चय कर रखा था कि, युद्ध में पुत्र, सेना और वाहनों सहित रावण को मार कर, मैं विभीषण को लङ्का के राजसिंहासन पर बैठाऊँगा । हे महाबली ! तदनन्तर अयोध्या में जा और वहाँ के राजसिंहासन पर भरत जी को बैठा, मैं अपना शरीर त्याग दूँगा । इस प्रकार कहते हुए श्रीरामचन्द्र जी से सुग्रीव बोले ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

तव भार्यापहर्तारं दृष्ट्वा राघव रावणम् ।
मर्षयामि कथं वीर जानन्पौरुषमात्मनः ॥ ९ ॥

हे राघव ! तुम्हारी स्त्री को हरने वाले रावण की सूरत देख, और अपना पौरुष जान कर, मैं कैसे रह सकता था ॥ ९ ॥

इत्येवंवादिनं वीरमभिनन्द्य स राघवः ।
लक्ष्मणं लक्ष्मिसम्पन्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १० ॥

सुग्रीव के ऐसा कहने पर, उनकी बड़ाई करते हुए श्रीरामचन्द्र जी कान्तिवान लक्ष्मण जी से बोले ॥ १० ॥

परिगृह्योदकं शीतं वनानि फलवन्ति च ।
बलौघं संविभज्येमं व्यूह्य तिष्ठेम लक्ष्मण ॥ ११ ॥

हे लक्ष्मण ! जहाँ सुन्दर शीतल जल हो और जहाँ पर फलों से भरे पूरे वन हों, वहाँ पर इस सेना को ठहरा कर व्यूह रचना चाहिये ॥ ११ ॥

लोकक्षयकरं भीमं भयं पश्याम्युपस्थितम् ।
निबर्हणं प्रवीराणामृक्षवानररक्षसाम् ॥ १२ ॥

मुझे जान पड़ता है कि, लोकक्षयकारी बड़ा भयङ्कर युद्ध होने वाला है । अब भालुओं, वानरों और राक्षसों का बड़ा नाश होगा ॥ १२ ॥

वाताश्च परुषा वान्ति कम्पते च वसुन्धरा ।
पर्वताग्राणि वेपन्ते पतन्ति धरणीरुहाः ॥ १३ ॥

देखो, हवा वेग से चल रही है, पृथिवी हिल रही है, पर्वत-शिखर काँप रहे हैं और पहाड़ टूट टूट कर गिर रहे हैं ॥ १३ ॥

मेघाः क्रव्यादसङ्काशाः परुषा परुषस्वनाः ।
क्रूराः क्रूरं प्रवर्षन्ति मिश्रं शोणितबिन्दुभिः ॥ १४ ॥

आकाश में मेघ, हिंसक जन्तुओं के तरह कठोर शब्द कर रहे हैं और क्रूर मेघ, रक्तमिश्रित जलबिन्दुओं की भयङ्कर वर्षा कर रहे हैं ॥ १४ ॥

रक्तचन्दनसङ्काशा सन्ध्या परमदारुणा ।
ज्वलच्च निपतत्येतदादित्यादग्निमण्डलम् ॥ १५ ॥

लाल चन्दन की तरह सन्ध्या ने अत्यन्त दारुण लाल रूप धारण किया है और आदित्यमण्डल से जलते हुए उल्का गिरते हैं ॥ १५ ॥

आदित्यमभिवाश्यन्ति जनयन्तो महद्भयम् ।
दीना दीनस्वरा घोरा अप्रशस्ता मृगद्विजाः ॥ १६ ॥

ये भयङ्कर रूप वाले एवं अमङ्गलरूपी मृग तथा पक्षी, बड़ा भय दिखलाते हुए, दीन हो और सूर्य की ओर मुख कर, रो रहे हैं ॥१६॥

रजन्यामप्रकाशश्च सन्तापयति चन्द्रमाः ।
कृष्णरक्तांशुपर्यन्तो यथा लोकस्य संक्षये ॥ १७ ॥

रात में धुँधला चन्द्रमा निकलता है, जो जीवधारियों को सन्तप्त करता है और प्रलयकाल जैसा उसके चारों ओर काला और लाल रंग का घेरा दिखलाई पड़ता है ॥ १७ ॥

ह्रस्वो रूक्षोऽप्रशस्तश्च परिवेषः सुलोहितः ।
आदित्यमण्डले नीलं लक्ष्म लक्ष्मण दृश्यते ॥ १८ ॥

हे लक्ष्मण ! सूर्य के चारों ओर छोटा, रूखा और अमङ्गल रूप लाल कोर का काला घेरा देख पड़ता है ॥ १८ ॥

दृश्यन्ते न यथावच्च नक्षत्राण्यभिवर्तते ।
युगान्तमिव लोकस्य पश्य लक्ष्मण शंसति ॥ १९ ॥

हे लक्ष्मण ! देखो, आकाश में उपस्थित होते हुए भी नक्षत्र ठीक ठीक नहीं देख पड़ते । यह होने वाले जीवधारियों के नाश की सूचना दे रहे हैं ॥ १९ ॥

काकाः श्येनास्तथा गृध्रा नीचैः परिपतन्ति च ।
शिवाश्चाप्यशिवा वाचः प्रवदन्ति महास्वनाः ॥ २० ॥

काक, बाज और गीध बार बार नीचे पृथिवी की ओर गिर गिर पड़ते हैं। सृगालियाँ (लोमड़ियाँ) उच्चस्वर से अशुभसूचक शब्द बोल रही हैं ॥ २० ॥

क्षिप्रमद्य दुराधर्षां लङ्कां रावणपालिताम् ।
अभियाम जवेनैव सर्वतो हरिभिर्वृताः ॥ २१ ॥

अतः चलो हम सब वानरी सेना को साथ ले रावण की दुर्धर्ष लङ्का पर तुरन्त आज ही बड़े वेग से चढ़ाई करें ॥ २१ ॥

इत्येवं संवदन्वीरो लक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजः ।
तस्मादवातरच्छीघ्रं पर्वताग्रान्महाबलः ॥ २२ ॥

वीरवर बलवान् श्रीरामचन्द्र जी, लक्ष्मण से इस प्रकार कह कर सुवेलपर्वत के शिखर से तुरन्त नीचे उतरे ॥ २२ ॥

अवतीर्य च धर्मात्मा तस्माच्छैलात्स राघवः ।
परैः परमदुर्धर्षं ददर्श बलमात्मनः ॥ २३ ॥

धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी ने उस पर्वत से नीचे उतर शत्रु से कभी परास्त न होने वाली अपनी सेना देखी ॥ २३ ॥

[1]सन्नह्य तु स सुग्रीवः [2]कपिराजबलं महत् ।
कालज्ञो राघवः काले संयुगायाभ्यचोदयत् ॥ २४ ॥

---

१ संनह्य—प्रोत्साह्य । (गो०) २ कपिराजबलं—कपिश्रेष्ठानांबलं । (गो०)

इसके बाद सुग्रीव और श्रीरामचन्द्र जी ने कपिश्रेष्ठों की उस सेना को उत्साहित कर और युद्ध का उचित समय जान, युद्ध करने के लिये आज्ञा दी ॥ २४ ॥

ततः काले महाबाहुर्बलेन महता वृतः।
प्रस्थितः पुरतो धन्वी लङ्कामभिमुखः पुरीम् ॥ २५ ॥

तदनन्तर महाबाहु श्रीरामचन्द्र जी विजयमुहूर्त्त में महती वानरी सेना को साथ ले आगे आगे हाथ में धनुष लिये हुए लङ्कापुरी की ओर प्रस्थानित हुए ॥ २५ ॥

तं विभीषणसुग्रीवौ हनुमाञ्जाम्बवान्नलः।
ऋक्षराजस्तथा नीलो लक्ष्मणश्चान्वयुस्तदा ॥ २६ ॥

उनके पीछे पीछे विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, जाम्बवान, नल, ऋक्षराज, नील और लक्ष्मण चले ॥ २६ ॥

ततः पश्चात्सुमहती पृतनर्क्षवनौकसाम्।
प्रच्छाद्य महतीं भूमिमनुयाति स्म राघवम् ॥ २७ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के पीछे पीछे रीछ और वानरों की महती सेना पृथिवी के एक लंबे चौड़े भाग को ढँक कर चली ॥ २७ ॥

शैलशृङ्गाणि शतशः प्रवृद्धांश्च महीरुहान्।
जगृहुः कुञ्जरप्रख्या वानराः परवारणाः ॥ २८ ॥

शत्रु की गति को रोकने वाले और हाथियों के समान डील डौल वाले वानर, युद्धयात्रा के समय सैकड़ों बड़े बड़े वृक्ष और पर्वतशिखर हाथों में लिये हुए थे ॥ २८ ॥

तौ तु दीर्घेण कालेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
रावणस्य पुरीं लङ्कामासेदतुररिन्दमौ ॥ २९ ॥

इस प्रकार शत्रुहन्ता दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण चलते चलते बहुत देर बाद रावण की लङ्कापुरी के समीप पहुँच गये ॥२९॥

पताकमालिनीं रम्यामुद्यानवनशोभिताम् ।
[1]चित्रवप्रां सुदुष्प्रापामुच्चैःप्राकारतोरणाम् ॥ ३० ॥

लङ्कापुरी अनेक ध्वजा पताकाओं से सुशोभित थी—उद्यानों और उपवनों से शोभित होने के कारण बड़ी रमणीक जान पड़ती थी। चित्र समूहों से उसकी दीवारें व द्वार अलंकृत थे। उसके परकोटे की दीवालें और द्वार बड़े बड़े ऊँचे होने के कारण, उन तक पहुँचना अत्यन्त कठिन था ॥ ३० ॥

तां सुरैरपि दुर्धर्षां रामवाक्यप्रचोदिताः ।
यथानिवेशं सम्पीडय न्यविशन्त वनौकसः ॥ ३१ ॥

देवताओं के लिये भी दुष्प्रवेश्य, लङ्कापुरी पर श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा से वानर यथायोग्य स्थानों का अधिकृत कर खड़े हो गये ॥ ३१ ॥

लङ्कायास्तूत्तरद्वारं शैलशृङ्गमिवोन्नतम् ।
रामः सहानुजो धन्वी जुगोप च रुरोध च ॥ ३२ ॥

लङ्का के उत्तरद्वार को जो पर्वतशिखर की तरह ऊँचा था रोक कर श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण सहित, धनुषबाण ले वानरी सेना की रक्षा करने लगे ॥ ३२ ॥

---

१ चित्रवप्रां—चित्रचर्यां । (गो०)

लङ्कामुपनिविष्टश्च रामो दशरथात्मजः।
लक्ष्मणानुचरो वीरः पुरीं रावणपालिताम् ॥ ३३ ॥

दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र जी ने वीर लक्ष्मण सहित रावण से रक्षित लङ्कापुरी को घेरा ॥ ३३ ॥

उत्तरद्वारमासाद्य यत्र तिष्ठति रावणः।
नान्यो रामाद्धि तद्द्वारं समर्थः परिरक्षितुम् ॥ ३४ ॥

लङ्का के उत्तर द्वार को, जिसकी रक्षा स्वयं रावण कर रहा था, श्रीरामचन्द्र जी को छोड़ अन्य किसी की सामर्थ्य नहीं थी, जो उसे घेरता ॥ ३४ ॥

रावणाधिष्ठितं भीमं वरुणेनेव सागरम्।
सायुधै राक्षसैर्भीमैरभिगुप्तं समन्ततः ॥ ३५ ॥

आयुधधारी भयङ्कर राक्षसों को साथ लिये हुए रावण चारों ओर से उस द्वार की रक्षा उसी तरह कर रहा था; जिस तरह समुद्र की रक्षा वरुण जी करते हैं ॥ ३५ ॥

[1]लघूनां त्रासजननं पातालमिव दानवैः।
विन्यस्तानि च योधानां बहूनि विविधानि च ॥ ३६ ॥

लङ्का का उत्तरद्वार, रावण के वहाँ रहने से ऐसा भयङ्कर जान पड़ता था, जैसा विविध और बहुत से अल्पवीर्यवान् दानवों द्वारा रक्षित पाताल भयङ्कर जान पड़ता है ॥ ३६ ॥

ददर्शायुधजालानि तत्रैव कवचानि च।
पूर्वं तु द्वारमासाद्य नीलो हरिचमूपतिः ॥ ३७ ॥

---

१ लघूनां—अल्पसाराणाम्। (गो०)

वानरों ने उस द्वार पर अस्त्रों का तथा कवचों के ढेर देखे। वानरसेनापति नील लङ्का के पूर्वद्वार पर ॥ ३७ ॥

अतिष्ठत्सह मैन्देन द्विविदेन च वीर्यवान् ।
अङ्गदो दक्षिणद्वारं जग्राह सुमहाबलः ॥ ३८ ॥

वीर्यवान मैन्द और द्विविद को साथ ले जा खड़ा हुआ। महाबली अंगद ने दक्षिण द्वार को जा घेरा ॥ ३८ ॥

ऋषभेण गवाक्षेण गजेन गवयेन च ।
हनुमान्पश्चिमद्वारं ररक्ष बलवान्कपिः ॥ ३९ ॥

इनके सहायक ऋषभ, गवाक्ष, गज, गवय नामक वानर थे। बलवान वानर हनुमान जी ने पश्चिमद्वार जा घेरा ॥ ३९ ॥

प्रमाथिप्रघसाभ्यां च वीरैरन्यैश्च सङ्गतः ।
मध्यमे च स्वयं गुल्मे सुग्रीवः समतिष्ठत ॥ ४० ॥

इनके साथ प्रमाथि, प्रघस, प्रमुख अन्य वीर वानर थे। बीच में वानरराज सुग्रीव स्वयं खड़े हुए थे ॥ ४० ॥

सह सर्वैर्हरिश्रेष्ठैः सुपर्णश्वसनोपमैः ।
वानराणां तु षट्त्रिंशत्कोट्यः प्रख्यातयूथपाः ॥४१॥

वहाँ उनके साथ गरुड़ और वायु की तरह सब बड़े बड़े पराक्रमी वानरश्रेष्ठ थे। छत्तीस करोड़ प्रसिद्ध वानरयूथपति ॥ ४१ ॥

निपीड्योपनिविष्टाश्च सुग्रीवो यत्र वानरः ।
शासनेन तु रामस्य लक्ष्मणः सविभीषणः ॥ ४२ ॥

द्वारेद्वारे हरीणां तु कोटिं कोटिं न्यवेशयत् ।
[1]पश्चिमेन तु रामस्य सुग्रीवः सहजाम्बवान् ॥ ४३ ॥
अदूरान्मध्यमे गुल्मे तस्थौ बहुबलानुगः ।
ते तु वानरशार्दूलाः शार्दूला इव दंष्ट्रिणः ॥ ४४ ॥

भी उस स्थान को, जहां सुग्रीव थे, घेर कर युद्ध के लिये तैयार खड़े हुए थे। (अर्थात् ३६ करोड़ वानरी सेना (Reserve) थी और उस सेना के अतिरिक्त थी जो लङ्का के चारों द्वारों को घेरे हुए खड़ी थी।) तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा से विभीषण सहित लक्ष्मण ने लङ्का के हरेक द्वार पर एक एक करोड़ वानर और नियत कर दिये थे। श्रीरामचन्द्र जी के पीछे और बीच के मोर्चे के समीप जाम्बवान सहित सुग्रीव, बहुत सी सेना लिये खड़े हुए थे। शार्दूल के समान पैनी पैनी दाढ़ों वाले वे सब वानरश्रेष्ठ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

गृहीत्वा द्रुमशैलाग्रान् हृष्टा युद्धाय तस्थिरे ।
सर्वे [2]विकृतलाङ्गूलाः सर्वे दंष्ट्रानखायुधाः ॥ ४५ ॥

वृक्षों तथा पर्वतशिखरों को हाथों में ले और प्रसन्न हो युद्ध की प्रतीक्षा करने लगे। वे सब के सब अपनी पूँछे ऊपर को उठाये हुए थे। वे सब के सब दाँतों और नखों से लड़ने वाले थे। अर्थात् उन सब के आयुध नख और दांत थे ॥ ४५ ॥

सर्वे विकृतचित्राङ्गाः सर्वे च [3]विकृताननाः ।
दशनागबलाः केचित्केचिद्दशगुणोत्तराः ॥ ४६ ॥

---

१ पश्चिमेन—आसन्नपृष्ठभागावष्टंभेन । (रा०) २ विकृतलाङ्गूलाः—ऊर्ध्वंप्रसारितपुच्छाः । (गो०) ३ विकृताननाः—राक्षसविडम्बनायकुटिलित-मुखाः । (गो०)

मारे क्रोध के उन सब के मुख और नेत्र लाल लाल हो रहे थे और राक्षसों को चिढ़ाने के लिये वे उनको चिरा रहे थे। उनमें से किसी किसी के शरीर में दस हाथियों का और किसी किसी के शरीर में सौ हाथियों का बल था ॥ ४६ ॥

केचिन्नागसहस्रस्य बभूवुस्तुल्यविक्रमाः ।
सन्ति चौघबलाः केचित्केचिच्छतगुणोत्तराः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार कोई कोई ऐसे भी वानर थे, जिनके शरीर में हज़ार हाथियों जितना बल पराक्रम था। किसी किसी में ओघसंख्यक हाथियों का बल था और किसी किसी में सौ ओघसंख्यक हाथियों जितना बल था ॥ ४७ ॥

अप्रमेयबलाश्चान्ये तत्रासन्हरियूथपाः ।
अद्भुतश्च विचित्रश्च तेषामासीत्समागमः ॥ ४८ ॥

तत्र वानरसैन्यानां सलभानामिवोद्यमः ।
परिपूर्णमिवाकाशं संछन्नेव च मेदिनी ॥ ४९ ॥

लङ्कामुपनिविष्टैश्च सम्पतद्भिश्च वानरैः ।
शतं शतसहस्राणां पृथगृक्षवनौकसाम् ॥ ५० ॥

लङ्काद्वाराण्युपाजग्मुरन्ये योद्धुं समन्ततः ।
आवृतः स गिरिः सर्वैस्तैः समन्तात्प्लवङ्गमैः ॥ ५१ ॥

कोई कोई वानरयूथपति ऐसे भी थे, जिनके शरीरों में अमित बल पराक्रम था। टिड्डीदल की तरह उस वानरी सेना का अद्भुत और विचित्र समागम था। लङ्का पर धावा बोलने वाले वानरों और रीछों से वहाँ की पृथ्वी और कूदते फाँदते हुए वानरों

से वहाँ का आकाश भर गया था। इनके अतिरिक्त युद्ध की अभिलाषा किये हुए असंख्य वानर और रीछ लङ्का के द्वारों पर चारों ओर से आ आ कर जमाव करने लगे। उस समय त्रिकूटाचल पर्वत को वानरों ने चारों ओर से घेर लिया॥ ४८॥ ४९॥ ५०॥ ५१॥

अयुतानां सहस्रं च पुरीं तामभ्यवर्तत।
वानरैर्बलवद्भिश्च बभूव द्रुमपाणिभिः॥ ५२॥

लाखों करोड़ों वानर और भालू लङ्का में जा उपस्थित हुए। बलवान वानर हाथों में बड़े बड़े वृक्ष लेकर,॥ ५२॥

संवृता सर्वतो लङ्का दुष्प्रवेशापि वायुना।
राक्षसा विस्मयं जग्मुः सहसाऽभिनिपीडिताः[१]॥ ५३॥
वानरैर्मेघसङ्काशैः शक्रतुल्यपराक्रमैः।
महाञ्शब्दोऽभवत्तत्र बलौघस्याभिवर्ततः॥ ५४॥

उस लङ्का को चारों ओर से घेर कर खड़े हो गये, जिसमें घुसने की शक्ति वायु में भी न थी। मेघों के समान विशाल वपुधारी और इन्द्र के समान पराक्रमी वानरों द्वारा सहसा लङ्का के घेरे जाने से राक्षस विस्मित हुए। वहाँ पर वानरी सेना के एकत्रित होने से ऐसा भयङ्कर शब्द हुआ॥ ५३॥ ५४॥

सागरस्येव [२]भिन्नस्य यथा स्यात्सलिलस्वनः।
तेन शब्देन महता सप्राकारा सतोरणा॥ ५५॥
लङ्का प्रचलिता सर्वा सशैलवनकानना।
रामलक्ष्मणगुप्ता सा सुग्रीवेण च वाहिनी॥ ५६॥

---

१ अभिनिपीडिताः—उपरुद्धाः। (गो०) २ भिन्नस्य—भिन्नमर्यादस्य। (गो०)

जैसा कि, मर्यादा तोड़ने वाले समुद्र के पानी का होता है। उस भयङ्कर शब्द से परकोटा, तोरणद्वार, पर्वत, वन और उपवन सहित सारी लङ्का काँप उठी। उस समय श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण और सुग्रीव द्वारा रक्षित वह कपिसेना ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

बभूव दुर्धर्षतरा सर्वैरपि सुरासुरैः ।
राघवः सन्निवेश्यैव सैन्यं स्वं रक्षसां वधे ॥ ५७ ॥

समस्त सुरों और असुरों से भी अत्यन्त दुर्धर्ष हो गयी। श्रीरामचन्द्र जी राक्षसों का वध करने के लिये इस प्रकार सेना स्थापित कर ॥ ५७ ॥

[1]सम्मन्त्र्य मन्त्रिभिः सार्धं [2]निश्चित्य च पुनः पुनः ।
[3]आनन्तर्यमभिप्रेप्सुः[4] क्रमयोगार्थतत्त्ववित् ॥ ५८ ॥

साम दानादि उपायों को जानने वाले श्रीरामचन्द्र जी ने आगे कर्त्तव्य के सम्बन्ध में कुछ निर्णय करने की अभिलाषा से मंत्रियों से परामर्श किया और रावण के पास दूत भेजने का विचार कर अङ्गद को भेजना निश्चित किया ॥ ५८ ॥

विभीषणस्यानुमते राजधर्ममनुस्मरन् ।
अङ्गदं वालितनयं समाहूयेदमब्रवीत् ॥ ५९ ॥

फिर युद्ध आरम्भ करने के पूर्व शत्रु को दूत द्वारा युद्ध के लिये आमंत्रित करना उचित है—इस राजधर्मानुसार तथा विभीषण की सम्मत्यानुसार वालितनय अङ्गद को बुला कर श्रीरामचन्द्र जी ने उनसे यह कहा ॥ ५९ ॥

---

१ संमन्त्र्य—दूतः प्रेषणीय इति विचार्य। (गो०) २ निश्चित्य—अंगद एव प्रेषणीय इति निर्धार्य। (गो०) ३ आनन्तर्य—अनन्तरकर्त्तव्यं। (गो०) ४ अभिप्रेप्सुः—प्राप्तमिच्छुः। (गो०)

गत्वा सौम्य दशग्रीवं ब्रूहि मद्वचनात्कपे ।
लङ्घयित्वा पुरीं लङ्कां भयं त्यक्त्वा [1]गतव्यथः ॥६०॥

हे सौम्य ! तुम लङ्का के परकोटे को नाँघ कर, निरुपद्रव जाओ और मेरी ओर से दशानन रावण से निर्भय हो कहो कि, ॥ ६० ॥

भ्रष्टश्रीक गतैश्वर्य मुमूर्षो नष्टचेतन ।
ऋषीणां देवतानां च गन्धर्वाप्सरसां तथा ॥ ६१ ॥

नागानामथ यक्षाणां राज्ञां च रजनीचर ।
यच्च पापं कृतं मोहादवलिप्तेन राक्षस ॥ ६२ ॥

नूनमद्य गतो दर्पः स्वयंभूवरदानजः ।
यस्य दण्डधरस्तेऽहं दाराहरणकर्शितः ॥ ६३ ॥

दण्डं धारयमाणस्तु लङ्काद्वारे व्यवस्थितः ।
[2]पदवीं देवतानां च महर्षीणां च राक्षस ॥ ६४ ॥

राजर्षीणां च सर्वेषां गमिष्यसि मया हतः ।
बलेन येन वै सीतां मायया राक्षसाधम ॥ ६५ ॥

हे लक्ष्मीरहित ! हे ऐश्वर्यहीन ! हे मुमुर्षो ! हे अचेत राक्षस ! ऋषि, देवता, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, यक्ष और राजाओं पर तूने जो अत्याचार, ब्रह्मा जी के जिस वरदान के बल के गर्व से गर्वित हो अज्ञानवश किये हैं—उस वरदान का दर्प आज निश्चय ही प्रायः दूर हो चुका है। तूने मेरी स्त्री को हरन कर, जो अपराध किया है, उसका उचित दण्ड देने के लिये, साक्षात् काल की तरह मैं,

१ गतव्यथो निरुपद्रवः । (रा०) २ पदवीं—लोकं । (गो०)

लङ्का के द्वार पर आ पहुँचा हूँ। तू मेरे हाथ से मारे जाने पर, तुझे वही लोक प्राप्त होगा, जो देवताओं, महर्षियों और राजर्षियों को प्राप्त होता है। अरे राक्षसाधम! जिस बल बूते पर तूने सीता को, मुझे धोखा दे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

मामतिक्रामयित्वा त्वं हृतवांस्तद्विदर्शय ।
अराक्षसमिमं लोकं कर्ताऽस्मि निशितैः शरैः ॥ ६६ ॥

कर, आश्रम से हटा कर, हरा था; उस बल को अब मुझे दिखला तो। मैं अपने पैने पैने बाणों से इस लोक को राक्षसशून्य करता हूँ ॥ ६६ ॥

न चेच्छरणमभ्येषि मामुपादाय मैथिलीम् ।
धर्मात्मा रक्षसां श्रेष्ठः सम्प्राप्तोऽयं विभीषणः ॥ ६७ ॥

यदि मेरे शरण में आ, मुझे सीता को न दे देगा, तो यह धर्मात्मा और राक्षसश्रेष्ठ विभीषण, जो मेरे शरण में आ चुका है ॥ ६७ ॥

लङ्कैश्वर्यं ध्रुवं श्रीमानयं प्राप्नोत्यकण्टकम् ।
न हि राज्यमधर्मेण भोक्तुं क्षणमपि त्वया ॥ ६८ ॥
शक्यं मूर्खसहायेन [1]पापेनाविदितात्मना[2] ।
युध्यस्व वा धृतिं कृत्वा शौर्यमालम्ब्य राक्षस ॥६९॥

निश्चय ही लङ्का का अकराटक ऐश्वर्य पावेगा और यही लङ्का का राजा होगा। तू अधर्मी और पापी है, तेरे सहायक मूर्ख हैं। तू अपनी बुद्धि से नहीं, दूसरों की बुद्धि से काम करने वाला है,

---

१ पापेन—पापिष्टेन। (गो०) २ अविदितात्मना:—अस्वाधीनमनस्केन। (गो०)

अतः तू अब एक क्षण भी राज्य नहीं कर सकता। मेरे साथ अब तू धैर्य और शूरता का सहारा ले लड़ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

मच्छरैस्त्वं रणे शान्तस्ततः पूतो भविष्यसि ।
यद्वा विशसि लोकांस्त्रीन्पक्षिभूतो मनोजवः ॥ ७० ॥
मम चक्षुष्पथं प्राप्य न जीवन्प्रतियास्यसि ।
ब्रवीमि त्वां हितं वाक्यं क्रियतामौर्ध्वदैहिकम् ॥ ७१ ॥

क्योंकि, जब तू मेरे बाणों से मारा जायगा तभी तू अब तक के किये पापों से छूट कर पवित्र होगा। अब तू पक्षी का रूप धर कर तीनों लोकों में भी छिपता फिरेगा; तो भी तू मुझसे न तो छिप ही सकेगा और न अपनी जान ही बचा सकेगा। अतः मैं तुझसे अब तेरे हित के लिये यह कहता हूँ कि, तू अपना जीव-च्छ्राद्ध कर ले; (क्योंकि पीछे तुझे चिल्लू भर पानी देने वाला कोई भी राक्षस न रह जायगा) ॥ ७० ॥ ७१ ॥

सुदृष्टा क्रियतां लङ्का जीवितं ते मयि स्थितम् ।
इत्युक्तः स तु तारेयो रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ७२ ॥

और लङ्का को जी भर अन्तिम बार देख ले, क्योंकि तेरा जीवन अब मेरे हाथ है। अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्र जी ने जब इस प्रकार तारातनय अंगद से कहा—॥ ७२ ॥

जगामाकाशमाविश्य मूर्तिमानिव हव्यवाट् ।
सोऽतिपत्य मुहूर्तेन श्रीमान्रावणमन्दिरम् ॥ ७३ ॥

तब वह मूर्तिमान अग्नि की तरह (अङ्गद) आकाशमार्ग से उड़ कर चल दिया और थोड़ी ही देर में रावण के भवन में जा पहुँचा ॥ ७३ ॥

दद‍र्शासीनमव्यग्रं रावणं सचिवैः सह ।
ततस्तस्याविदूरे स निपत्य हरिपुङ्गवः ॥ ७४ ॥

वहाँ अङ्गद ने देखा कि, रावण अपने मंत्रियों सहित सावधान हो बैठा है। अङ्गद उसके सिंहासन के समीप ही आकाश से उतर पड़ा ॥ ७४ ॥

दीप्ताग्निसदृशस्तस्थावङ्गदः कनकाङ्गदः ।
तद्रामवचनं सर्वमन्यूनाधिकमुत्तमम् ॥ ७५ ॥
सामात्यं श्रावयामास निवेद्यात्मानमात्मना ।
दूतोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ७६ ॥

सोने का बाजूबंद पहिने हुए अग्नि के समान प्रभावान् अङ्गद रावण के निकट जा खड़ा हुआ और श्रीरामचन्द्र जी का हितकर सन्देसा ज्यों का त्यों रावण को तथा उसके मंत्रियों को सुना दिया। फिर अङ्गद ने अपना नाम बतला कर कहा कि, मैं अक्लिष्टकर्मा कोशलाधीश श्रीरामचन्द्र का दूत हूँ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

वालिपुत्रोऽङ्गदो नाम यदि ते श्रोत्रमागतः ।
आह त्वां राघवो रामः कौसल्यानन्दवर्धनः ॥ ७७ ॥

मैं वालि का पुत्र हूँ और अङ्गद मेरा नाम है। कदाचित् मेरा नाम तुम्हारे कानों तक पहुँच चुका हो। कौशल्या जी के आनन्द को बढ़ाने वाले श्रीरामचन्द्र जी ने तुमसे कहा है कि, ॥ ७७ ॥

निष्पत्य प्रतियुध्यस्व नृशंस पुरुषो भव ।
हन्तास्मि त्वां सहामात्यं सपुत्रज्ञातिबान्धवम् ॥ ७८ ॥

अरे नृशंस ! अब घर के बाहिर आकर युद्ध कर और मर्द बन जा। मैं तुझे मंत्रियों, पुत्रों, जाति बिरादरी वालों तथा भाईबन्दों सहित मारने के लिये आया हूँ ॥ ७८ ॥

निरुद्विग्नास्त्रयो लोका भविष्यन्ति हते त्वयि ।
देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ ७९ ॥

क्योंकि तेरे मारे जाने पर तीनों लोक निर्भय हो जांयगे। तू देवताओं, दानवों, यक्षों, गन्धर्वों, सर्पों और राक्षसों के ॥ ७९ ॥

शत्रुमद्योद्धरिष्यामि त्वमृषीणां च कण्टकम् ।
विभीषणस्य चैश्वर्यं भविष्यति हते त्वयि ॥ ८० ॥

शत्रु और ऋषियों के कण्टक रूप तुझको, मैं मार डालूँगा। तेरे मारे जाने पर लङ्का का ऐश्वर्य विभीषण को मिलेगा ॥ ८० ॥

न चेत्सत्कृत्य वैदेहीं प्रणिपत्य प्रदास्यसि ।
इत्येवं परुषं वाक्यं ब्रुवाणे हरिपुङ्गवे ॥ ८१ ॥

अमर्षवशमापन्नो निशाचरगणेश्वरः ।
ततः स रोषताम्राक्षः शशास सचिवांस्तदा ॥ ८२ ॥

ये सब बातें तभी होंगी जब तू सम्मानपूर्वक सीता मुझे न देगा। जब अङ्गद ने इस प्रकार के कठोर वचन कहे, तब राक्षसराज अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और क्रोध से नेत्र लाल लाल कर अपने मंत्रियों से बोला ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

गृह्यतामेष दुर्मेधा वध्यतामिति चासकृत् ।
रावणस्य वचः श्रुत्वा दीप्ताग्निसमतेजसः ॥ ८३ ॥

इस दुर्बुद्धि वानर को पकड़ कर मार डालो। दहकते हुए अग्नि के समान तेजस्वी रावण के इस वचन को सुन ॥ ८३ ॥

जगृहुस्तं ततो घोराश्चत्वारो रजनीचराः ।
ग्राहयामास तारेयः स्वयमात्मानमात्मवान् ॥ ८४ ॥

बलं दर्शयितुं वीरो यातुधानगणे तदा ।
स तान्बाहुद्वये सक्तानादाय पतगानिव ॥ ८५ ॥

चार भयङ्कर राक्षसों ने उठ कर अङ्गद को पकड़ लिया। उस समय राक्षसों को अपना बल दिखलाने के लिये अङ्गद ने उन्हें पकड़ लेने दिया। उन चार राक्षसों ने अङ्गद को पकड़ा ही था कि, अङ्गद ने उन चारों को पक्षी की तरह अपनी दोनों भुजाओं में लटका लिया ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

प्रासादं शैलसङ्काशमुत्पपाताङ्गदस्तदा ।
तेऽन्तरिक्षाद्विनिर्धूतास्तस्य वेगेन राक्षसाः ॥ ८६ ॥

तदनन्तर अङ्गद एक ऐसी ऊँची अटारी के ऊपर छलांग मार कर चढ़ गया जो पर्वतशिखर की तरह ऊँची थी। उसके छलांग मारने के झटके से चारों राक्षस ॥ ८६ ॥

भूमौ निपतिताः सर्वे राक्षसेन्द्रस्य पश्यतः ।
ततः प्रासादशिखरं शैलशृङ्गमिवोन्नतम् ॥ ८७ ॥

ददर्श राक्षसेन्द्रस्य वालिपुत्रः प्रतापवान् ।
तत्पफाल पदाक्रान्तं दशग्रीवस्य पश्यतः ॥ ८८ ॥

रावण की आखों के सामने ही, भूमि पर गिर पड़े। रावण की वह पर्वतशिखर के समान ऊँचे भवन की अटारी को प्रतापी

वालितनय अङ्गद ने देख कर, रावण की आँखों के सामने उसमें एक ऐसी लात मारी कि, वह उसी प्रकार फट गयी ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

पुरा हिमवतः शृङ्गं वज्रिणेव विदारितम् ।
भङ्क्त्वा प्रासादशिखरं नाम विश्राव्य चात्मनः ॥८९॥

जिस प्रकार प्राचीनकाल में कभी वज्र से हिमाचल का शिखर फटा था। उस राजभवन की अटारी को विध्वंस कर और लङ्का में सब को अपना नाम सुना ॥ ८९ ॥

विनद्य सुमहानादमुत्पपात विहायसम् ।
व्यथयन्राक्षसान्सर्वान्हर्षयंश्चापि वानरान् ॥ ९० ॥

आकाशमार्ग में पहुँच बड़ी जोर से अङ्गद ने सिंहगर्जना की जिसको सुन सारे राक्षस व्यथित हुए और वानर प्रसन्न हुए ॥९०॥

स वानराणां मध्ये तु रामपार्श्वमुपागतः ।
रावणस्तु परं चक्रे क्रोधं प्रासादधर्षणात् ॥ ९१ ॥

तदनन्तर अङ्गद वानरों के बीच बैठे हुए श्रीरामचन्द्र जी के पास पहुँच गये। उधर अङ्गद के चले आने पर राजभवन की अटारी को ध्वस्त हुआ देख, रावण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ ॥ ९१ ॥

विनाशं चात्मनः पश्यन्निश्वासपरमोऽभवत् ।
रामस्तु बहुभिर्हृष्टैर्निनदद्भिः प्लवङ्गमैः ॥ ९२ ॥
वृतो रिपुवधाकाङ्क्षी युद्धायैवाभ्यवर्तत ।
सुषेणस्तु महावीर्यो गिरिकूटोपमो हरिः ॥ ९३ ॥

और अपने मरने का समय निकट आया हुआ देख, रावण बार बार लंबी साँसे लेने लगा। इस ओर श्रीरामचन्द्र जी अत्यन्त

प्रसन्न हुए और सिंहगर्जन करते हुए वानरों के बीच स्थित हो, शत्रु का वध करने की अभिलाषा से युद्ध के लिये तैयार हुए। महापराक्रमी और पर्वताकार सुषेण नामक वानर ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

बहुभिः संवृतस्तत्र वानरैः कामरूपिभिः ।
चतुर्द्वाराणि सर्वाणि सुग्रीववचनात्कपिः ॥ ९४ ॥

बहुत से कामरूपी वानरों को साथ ले, सुग्रीव की आज्ञा से लङ्का के समस्त चारों द्वारों को ॥ ९४ ॥

पर्यक्रामत दुर्धर्षो नक्षत्राणीव चन्द्रमाः ।
तेषामक्षौहिणिशतं समवेक्ष्य वनौकसाम् ॥ ९५ ॥
लङ्कामुपनिविष्टानां सागरं चाभिवर्तताम् ।
राक्षसा विस्मयं जग्मुस्त्रासं जग्मुस्तथा परे ॥ ९६ ॥

घेर कर दुर्धर्ष सुषेण इस प्रकार घूम रहा था, जिस तरह नक्षत्रों सहित चन्द्रमा घूमता है। समुद्र के पास ठहरी हुई और लङ्का को चारों ओर से घेरे हुए वानरों की सैकड़ों अक्षौहिणी सेनाओं को देख, कोई कोई राक्षस तो विस्मित हुए और कोई कोई भयभीत हो गये ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

अपरे समरोद्धर्षाद्धर्षमेव प्रपेदिरे ।
कृत्स्नं हि कपिभिर्व्याप्तं प्राकारपरिखान्तरम् ॥ ९७ ॥

इनमें से बहुत से ऐसे भी थे जो युद्ध का अवसर मिलने के कारण प्रसन्न हो रहे थे। लङ्का के समस्त परकोटे और खाइयाँ वानरों से भर गयी थीं ॥ ९७ ॥

ददृशू राक्षसा दीनाः प्राकारं वानरीकृतम् ।
हाहाकारं प्रकुर्वन्ति राक्षसा भयमोहिताः ॥ ९८ ॥

उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानों वानरों की एक दूसरे परकोटे की दीवाल खड़ी है। राक्षस दीन हो यह सब देख रहे थे और भयभीत हो हाय हाय कह कर चिल्ला रहे थे ॥ ९८ ॥

तस्मिन्महाभीषणके प्रवृत्ते
कोलाहले राक्षसराज्यधान्याम् ।
प्रगृह्य रक्षांसि महायुधानि
युगान्तवाता इव संविचेरुः ॥ ९९ ॥

इति एकचत्वारिंशः सर्गः ॥

उस समय रावण की राजधानी लङ्का में बड़ा भारी कोलाहल हुआ। वीर राक्षस बड़े बड़े हथियारों को ले ऐसे घूमने लगे जैसे प्रलय कालीन पवन चलता है ॥ ९९ ॥

युद्धकाण्ड का एकतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

द्विचत्वारिंशः सर्गः

—*—

ततस्ते राक्षसास्तत्र गत्वा रावणमन्दिरम् ।
न्यवेदयन्पुरीं रुद्धां रामेण सह वानरैः ॥ १ ॥

तदनन्तर राक्षसगण रावण के भवन में जा कर कहने लगे कि, वानरों को साथ लिये हुए श्रीरामचन्द्र ने लङ्कापुरी को चारों ओर से घेर लिया है ॥ १ ॥

रुद्धां तु नगरीं श्रुत्वा जातक्रोधो निशाचरः ।
विधानं द्विगुणं कृत्वा प्रासादं सोऽध्यरोहत ॥ २ ॥

लङ्कानगरी को घिरा हुआ सुन, रावण बड़ा क्रुद्ध हुआ और मोर्चों पर दूनी सेना नियत कर स्वयं अटारी पर चढ़ गया ॥ २ ॥

स ददर्शावृतां लङ्कां सशैलवनकाननाम् ।
असंख्येयैर्हरिगणैः सर्वतो युद्धकाङ्क्षिभिः ॥ ३ ॥

वहाँ से उसने देखा कि, पर्वतों, वनों और उपवनों सहित लङ्का को युद्धाभिलाषी असंख्य वानरों ने घेर लिया है ॥ ३ ॥

स दृष्ट्वा वानरैः सर्वां वसुधां कबलीकृताम् ।
कथं क्षपयितव्याः स्युरिति चिन्तापरोऽभवत् ॥ ४ ॥

लङ्का के चारों ओर की भूमि को वानरों द्वारा अधिकृत हुई देख, वह इस चिन्ता में पड़ गया कि, वह उन वानरों को क्यों कर वहाँ से हटावे ॥ ४ ॥

स चिन्तयित्वा सुचिरं धैर्यमालम्ब्य रावणः ।
राघवं हरियूथांश्च ददर्शायतलोचनः ॥ ५ ॥

बहुत देर तक सोच विचार कर और धैर्य धर कर रावण ने आँख फैला कर, देखा तो उसे श्रीरामचन्द्र और वानरों के दल ही दल देख पड़े ॥ ५ ॥

राघवः सह सैन्येन मुदितो नाम [1]पुप्लुवे ।
लङ्कां ददर्श गुप्तां वै सर्वतो राक्षसैर्वृताम् ॥ ६ ॥

श्रीरामचन्द्र जी ने लङ्का के परकोटे के पास जा कर देखा कि, राक्षस लोग चारों ओर से लङ्का की रक्षा कर रहे हैं ॥ ६ ॥

---

१ पुप्लुवेनाम—पूर्वस्थानात् प्राकारसन्निकृष्टं प्रदेशं प्राप्त इत्यर्थः । (गो०)

दृष्ट्वा दाशरथिर्लङ्कां चित्रध्वजपताकिनीम् ।
जगाम सहसा सीतां [1]दूयमानेन चेतसा ॥ ७ ॥

दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र जी रंगबिरंगी ध्वजा पताकाओं से शोभित लङ्का को देख और सीता का स्मरण कर, सहसा दुखी हो गये ॥ ७ ॥

अत्र सा मृगशावाक्षी मत्कृते जनकात्मजा ।
पीड्यते शोकसन्तप्ता कृशा स्थण्डिलशायिनी ॥ ८ ॥

वे मन ही मन कहने लगे कि, इसी लङ्का में वह मृगनयनी सीता, मेरे पीछे शोक से विकल हो, भूमि पर पड़ी हुई दुःख पा रही है ॥ ८ ॥

पीड्यमानां स धर्मात्मा वैदेहीमनुचिन्तयन् ।
क्षिप्रमाज्ञापयामास वानरान्द्विषतां वधे ॥ ९ ॥

धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी सीता के कष्टों का स्मरण कर, दुःखी हुए और तुरन्त ही राक्षसों को मारने के लिये वानरों को आज्ञा दी ॥ ९ ॥

एवमुक्ते तु वचने रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
सङ्घर्षमाणः प्लवगाः सिंहनादैरनादयन् ॥ १० ॥

अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्र जी के मुख से शत्रुओं से लड़ने की आज्ञा निकलते ही वानरों ने क्रोध में भर ऐसा सिंहनाद किया कि, जिससे सारी लङ्कापुरी प्रतिध्वनित हो उठी ॥ १० ॥

शिखरैर्विकिरामैनां लङ्कां मुष्टिभिरेव वा ।
इति स्म दधिरे सर्वे मनांसि हरियूथपाः ॥ ११ ॥

---

१ दूयमानेने—सीतां स्मृत्वा दुःखितोभूदित्यर्थः । (गो०)

उस समय वानरयूथपतियों के मन में इतना उत्साह बढ़ा हुआ था कि, वे पर्वतशिखरों से या घूंसे मार मार कर, लङ्का को चूर चूर कर डाले ॥ ११ ॥

उद्यम्य गिरिशृङ्गाणि शिखराणि महन्ति च।
तरूंश्चोत्पाट्य विवधांस्तिष्ठन्ति हरियूथपाः ॥ १२ ॥

वीर वानरयूथति बड़े बड़े गिरिशृङ्गों और बड़ी बड़ी शिलाओं को उठा तथा विविध वृत्तों को उखाड़ कर और उनको हाथों में लिये हुए, खड़े हो गये ॥ १२॥

प्रेक्षतो राक्षसेन्द्रस्य तान्यनीकानि भागशः।
राघवप्रियकामार्थं लङ्कामारुरुहुस्तदा ॥ १३ ॥

रावण की आँखों के सामने वानरी सेनाएं, टोलियाँ बाँध बाँध कर, श्रीरामचन्द्र जी की प्रसन्नता के लिये, लङ्का के परकोटे की दीवालों पर चढ़ गयीं॥ १३॥

ते ताम्रवक्त्रा हेमाभा रामार्थे त्यक्तजीविताः।
लङ्कामेवाभ्यवर्तन्त सालतालशिलायुधाः ॥ १४ ॥

सुनहली रंग की देह वाले, लालमुँहे वानर, साखू के पेड़ और पहाड़ों को ले ले कर, लङ्का पर जा डटे। ये श्रीरामचन्द्र जी का काम पूरा करने के लिये अपनी जानें हथेली पर रखे हुए थे ॥ १४॥

ते द्रुमैः पर्वताग्रैश्च मुष्टिभिश्च प्लवङ्गमाः।
प्राकाराग्राण्यरण्यानि ममन्थुस्तोरणानि च ॥ १५ ॥

वे पेड़ों, पर्वतशिखरों और घूंसों के प्रहार से परकोटे की दीवालों, उद्यानों और बहिर्द्वारों को ध्वस्त करने लगे ॥ १५ ॥

परिखाः पूरयन्ति स्म प्रसन्नसलिलायुताः ।
पांसुभिः पर्वताग्रैश्च तृणैः काष्ठैश्च वानराः ॥ १६ ॥

उन खाइयों को, जिनमें स्वच्छ निर्मल जल भरा हुआ था, वानरों ने मिट्टी, पत्थर, घास फूस और काठकठंगर भर कर पाट दिया ॥ १६ ॥

ततः सहस्रयूथाश्च कोटियूथाश्च वानराः ।
कोटीशतयुताश्चान्ये लङ्कामारुरुहुस्तदा ॥ १७ ॥

तदनन्तर हज़ार यूथों के स्वामी, करोड़ यूथों के स्वामी, सौ करोड़ यूथों के स्वामी अर्थात् यूथपतिवानर लङ्का के ऊपर जा चढ़े ॥ १७ ॥

काञ्चनानि प्रमृद्गन्तस्तोरणानि प्लवङ्गमाः ।
कैलासशिखराभाणि गोपुराणि प्रमथ्य च ॥ १८ ॥

वानरों ने सोने के बने तोरण द्वारों को चूर चूर कर दिया और कैलासशिखर की तरह ऊँचे फाटकों को तोड़ फोड़ डाला ॥ १८ ॥

आप्लुवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ।
लङ्कां तामभिधावन्ति महावारणसन्निभाः ॥ १९ ॥

गजेन्द्र के समान डीलडौल वाले वानर, कूद कूद और उछल उछल कर, गर्जते हुए लङ्का के चारों ओर दौड़ने लगे ॥ १९ ॥

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥ २० ॥

और यह कहने लगे बलवान् श्रीरामचन्द्र की जय, महाबली लक्ष्मण की जय, श्रीरामचन्द्र द्वारा रक्षित महाराज सुग्रीव की जय ॥ २० ॥

इत्येवं घोषयन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ।
अभ्यधावन्त लङ्कायाः प्राकारं कामरूपिणः ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीव की जय जयकार करते और सिंहनाद करते हुए कामरूपी वानर, लङ्का के परकोटों पर दौड़ने लगे ॥ २१ ॥

वीरबाहुः सुबाहुश्च नलश्च वनगोचरः ।
निपीड्योपनिविष्टास्ते प्राकारं हरियूथपाः ॥ २२ ॥

वीरबाहु, सुबाहु, नल और पनस ये वानरयूथपति, लङ्का के परकोटे को तोड़ कर पुरी के भीतर घुस गये ॥ २२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे चक्रुः [1]स्कन्धावारनिवेशनम्[2] ।
पूर्वद्वारं तु कुमुदः कोटीभिर्दशभिर्वृतः ॥ २३ ॥

और इसी अवसर में वहाँ उन लोगों ने सेना के विश्राम के लिये शिविरों (छावनी) की रचना की। कुमुद लङ्का के पूर्वद्वार को, दस करोड़ ॥ २३ ॥

आवृत्य बलवांस्तस्थौ हरिभिर्जितकाशिभिः ।
साहाय्यार्थं तु तस्यैव निविष्टः प्रघसो हरिः ॥ २४ ॥

विजयाभिलाषी वानरों सहित घेरे हुए खड़ा था और कुमुद की सहायता के लिये कपि प्रघस वहाँ उपस्थित था ॥ २४ ॥

पनसश्च महाबाहुर्वानरैर्बहुभिर्वृतः ।
दक्षिणं द्वारमागम्य वीरः शतवलिः कपिः ॥ २५ ॥

---

१ स्कन्धवार—शिबिरस्य। (गो०) २ निवेशनं—निर्माणं। (गो०)

तथा महाबलवान् पनस भी, बहुत से वानरों को लिये हुए वहाँ मौजूद था। वीर शतवली वानर दक्षिण द्वार पर ॥ २५ ॥

आवृत्य बलवांस्तस्थौ विंशत्या कोटिभिर्वृतः ।
सुषेणः पश्चिमद्वारं गतस्तारापिता हरिः ॥ २६ ॥

बीस करोड़ वानरी सेना ले कर खड़ा हुआ था। पश्चिमद्वार पर तारा के पिता सुषेण ॥ २६ ॥

आवृत्य बलवांस्तस्थौ षष्टिकोटिभिरावृतः ।
उत्तरं द्वारमासाद्य रामः सौमित्रिणा सह ॥ २७ ॥

साठ करोड़ वानरों को लिये हुए खड़ा था। उत्तरद्वार पर लक्ष्मण को अपने साथ लिये हुए श्रीरामचन्द्र जी स्वयं उपस्थित थे ॥ २७ ॥

आवृत्य बलवांस्तस्थौ सुग्रीवश्च हरीश्वरः ।
गोलाङ्गूलो महाकायो गवाक्षो भीमदर्शनः ॥ २८ ॥

उनके समीप ही कपिराज सुग्रीव भी थे। महाकाय और भयङ्कर गोलाङ्गूल गवाक्ष ॥ २८ ॥

वृतः कोट्या महावीर्यस्तस्थौ रामस्य पार्श्वतः ।
ऋक्षाणां भीमवेगानां धूम्रः शत्रुनिबर्हणः ॥ २९ ॥

एक करोड़ महाबली वानरों को साथ लिये हुए श्रीरामचन्द्र जी की बगल में खड़ा हुआ था। बड़े भयङ्कर वेगवाले रीछों के अधिपति और शत्रुहन्ता धूम्र भी ॥ २९ ॥

वृतः कोट्या महावीर्यस्तस्थौ रामस्य पार्श्वतः ।
सन्नद्धस्तु महावीर्यो गदापाणिर्विभीषणः ॥ ३० ॥

वृतो यत्तैस्तु सचिवैस्तस्थौ तत्र महाबलः ।
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ॥ ३१ ॥
समन्तात्परिधावन्तो ररक्षुर्हरिवाहिनीम् ।
ततः कोपपरीतात्मा रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ३२ ॥

महाबली एक करोड़ रीछों को साथ लिये हुए श्रीरामचन्द्र जी की बगल में खड़ा था। कवच धारण किये और हाथ में गदा लिये हुए विभीषण अपने चारों राक्षस मंत्रियों से घिरे हुए खड़े थे। वीर गज, गवाक्ष, गवय, शरभ और गन्धमादन चारों ओर दौड़ दौड़ कर, वानरी सेना की देखभाल कर रहे थे। ये देख राक्षसराज रावण ने क्रुद्ध हो ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

निर्याणं सर्वसैन्यानां द्रुतमाज्ञापयत्तदा ।
एतच्छ्रुत्वा ततो वाक्यं रावणस्य मुखोद्गतम् ॥ ३३ ॥
सहसा भीमनिर्घोषमुद्घुष्टं रजनीचरैः ।
ततः प्रचोदिता भेर्यश्चन्द्रपाण्डुरपुष्कराः[1] ॥ ३४ ॥

अपनी समस्त सेना को तुरन्त बाहिर निकाल उसको युद्ध करने को आज्ञा दी। रावण के मुख से युद्ध की आज्ञा सुन कर ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

हेमकोणाहता भीमा राक्षसानां समन्ततः ।
विनेदुश्च महाघोषाः शङ्खाः शतसहस्रशः ॥ ३५ ॥

राक्षसों ने सहसा बड़े ज़ोर से गर्जना की और नगाड़ों को चन्द्रमा के समान चमचमाते सोने की चोवों से बजाया तथा चारों ओर सैकड़ों हज़ारों शङ्खों का नाद होने लगा ॥ ३५ ॥

---

१ चन्द्रपाण्डुरपुष्कराः—चन्द्रशुभ्रमुखाः। (गो०)

राक्षसानः सुघोराणां मुखमारुतपूरिताः ।
ते बभुः शुभनीलाङ्गा[1]: सशङ्खा रजनीचराः ॥ ३६ ॥
विद्युन्मण्डलसन्नद्धाः सबलाका इवाम्बुदाः ।
निष्पतन्ति ततः सैन्या हृष्टा रावणचोदिताः ॥ ३७ ॥
समये पूर्यमाणस्य वेगा इव महोदधेः ।
ततो वानरसैन्येन मुक्तो नादः समन्ततः ॥ ३८ ॥

सोने के आभरणों से भूषित नील अङ्गवाले राक्षस मुख की फूँक से बजाते हुए शङ्खों सहित ऐसे शोभायमान जान पड़ते थे ; जैसे बिजली और बकपंक्ति युक्त मेघों की शोभा होती है । रावण की आज्ञा पाते ही योद्धा राक्षस प्रसन्न होते हुए, पूर्णमासी के समुद्र के वेग की तरह उमड़ कर, शत्रुसैन्य पर टूट पड़े । उस समय चारों ओर वानर वीर भी ऐसे गर्जे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

मलयः पूरितो येन ससानुप्रस्थकन्दरः ।
शङ्खदुन्दुभिसंघुष्टः सिंहनादस्तरस्विनाम् ॥ ३९ ॥
पृथिवीं चान्तरिक्षं च सागरं चैव नादयन् ।
गजानां बृंहितैः सार्धं हयानां हेषितैरपि ॥ ४० ॥

कि, जिससे मलयाचल के शिखर और कन्दराएँ प्रतिध्वनित हो उठीं । शङ्खों और नगाड़ों के शब्द और वीरों का सिंहनाद, पृथिवी आकाश और सागर में भर गया । इनके साथ ही हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट ॥ ३९ ॥ ४० ॥

---

१ शुभनीलाङ्गाः—आभरणप्रभाभिः शोभमानानि नीलानि चाङ्गानि येषां ते । (गो०)

रथानां नेमिघोषैश्च रक्षसां *पादनिस्वनैः ।
एतस्मिन्नन्तरे घोरः संग्रामः समवर्तत ॥ ४१ ॥
रक्षसां वानराणां च यथा देवासुरे पुरा ।
ते गदाभिः प्रदीप्ताभिः शक्तिशूलपरश्वधैः ॥ ४२ ॥

रथों की गड़गड़ाहट, और राक्षसों के पैरों की धपधप से बड़ा भारी शब्द हुआ। इतने ही में राक्षसों और वानरों का ऐसा बड़ा भारी युद्ध हुआ जैसा कि, पहिले ज़माने में देवताओं और असुरों का हो चुका था। एक ओर राक्षस चमचमाती गदाओं, शक्तियों, शूलों और परशों से ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

निजघ्नुर्वानरान्घोराः कथयन्तः स्वविक्रमान् ।
[वानराश्च महावीर्या राक्षसाञ्जघ्नुराहवे ॥ ४३ ॥

वानरों पर प्रहार करते हुए अपने पराक्रम का बखान कर रहे थे। दूसरी ओर बड़े बलवान् वानर युद्धक्षेत्र में राक्षसों का संहार कर रहे थे, और ॥ ४३ ॥

जयत्यतिबलो रामः लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीव इति शब्दो महानभूत् ॥ ४४ ॥

उच्च स्वर से बलवान श्रीरामचन्द्र की जै, महाबली लक्ष्मण जी की जै और कपिराज सुग्रीव की जै कहते हुए, वे वानर घोर शब्द कर रहे थे ॥ ४४ ॥

राजञ्जय जयेत्युक्त्वा स्वस्वनामकथान्ततः ।
तथा वृक्षैर्महाकायाः पर्वताग्रैश्च वानराः ॥ ४५ ॥]

---

* पाठान्तरे—" वदनस्वनः " ।

राक्षस रावणराज की जै जैकार कर अपने अपने नाम ले कर वानरों पर प्रहार कर रहे थे। बड़े भारी भारी डीलडौल के वानर गण वृक्षों और पर्वतशिखरों से ॥ ४५ ॥

निजघ्नुस्तानि रक्षांसि नखैर्दन्तैश्च वेगिताः।
राक्षसास्त्वपरे भीमाः प्राकारस्था महीगतान् ॥ ४६ ॥

नखों और दांतों से बड़े वेग से राक्षसों को मार रहे थे। परकोटे की दीवालों के ऊपर खड़े हुए भयङ्कर राक्षस, नीचे ज़मीन पर खड़े हुए ॥ ४६ ॥

[1]भिन्दिपालैश्च खड्गैश्च शूलैश्चैव व्यदारयन्।
वानराश्चापि संक्रुद्धाः प्राकारस्थान्महीगताः।
राक्षसान्पातयामासुः समाप्लुत्य प्लवङ्गमाः ॥ ४७ ॥

वानरों को गदाओं, तलवारों और शूलों से विदीर्ण कर रहे थे। ज़मीन पर खड़े हुए वानर भी अत्यन्त क्रुद्ध हो, परकोटे की दीवालों पर खड़े हुए राक्षसों के पास छलांगें मार कर पहुँच जाते और पकड़ पकड़ कर वहाँ से उनको नीचे पटक देते थे ॥ ४७ ॥

स सम्प्रहारस्तुमुलो मांसशोणितकर्दमः।
रक्षसां वानराणां च सम्बभूवाद्भुतोपमः ॥ ४८ ॥

इति द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥

राक्षसों और वानरों का बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। इस युद्ध में मांस और रुधिर की कीच हो गयी। यह युद्ध बड़ा ही अद्भुत हुआ ॥ ४८ ॥

युद्धकाण्ड का बयालीसवां सर्ग पूरा हुआ।

—*—

१ भिन्दिपालैः—गदाभेदैः। (गो०)

त्रिचत्वारिंशः सर्गः

—※—

युद्ध्यतां तु ततस्तेषां वानराणां महात्मनाम् ।
रक्षसां संबभूवाथ बलकोपः सुदारुणः ॥ १ ॥

परस्पर युद्ध करते हुए बड़े बलवान वानरों और राक्षसों की सेनाएँ अत्यन्त क्रुद्ध हो गयीं ॥ १ ॥

ते हयैः [1]काञ्चनापीडैर्ध्वजैश्चाग्निशिखोपमैः ।
रथैश्चादित्यसङ्काशैः कवचैश्च मनोरमैः ॥ २ ॥

राक्षस सुवर्ण की अग्निशिखा के समान चमचमाती कलिङ्गियों से भूषित घोड़ों से युक्त सूर्य की तरह दीप्तमान रथों पर सवार हो सुन्दर कवच पहिन ॥ २ ॥

निर्ययू राक्षसव्याघ्रा नादयन्तो दिशो दश ।
राक्षसा भीमकर्माणो रावणस्य जयैषिणः ॥ ३ ॥

वे भयङ्कर कर्मकारी राक्षसश्रेष्ठ, सिंहनाद कर, दसों दिशाओं को गुंजाते हुए, रावण की विजयकामना से युद्ध के लिये निकले ॥ ३ ॥

वानराणामपि चमूर्बृहती जयमिच्छताम् ।
अभ्यधावत् तां सेनां रक्षसां कामरूपिणाम् ॥ ४ ॥

वानरों की महती सेना भी जो श्रीरामचन्द्र की जै चाहती थी, उन कामरूपी राक्षसों के ऊपर टूट पड़ी ॥ ४ ॥

---

[1] काञ्चनापीडैः—स्वर्णमयशेखरैः । (गो०)

एतस्मिन्नन्तरे तेषामन्योन्यमभिधावताम् ।
रक्षसां वानराणां च द्वन्द्वयुद्धमवर्तत ॥ ५ ॥

इतने ही में दोनों ओर से परस्पर आक्रमण करने वाली राक्षसों और वानरों की सेनाओं में परस्पर घोर युद्ध होने लगा ॥ ५ ॥

अङ्गदेनेन्द्रजित्सार्धं वालिपुत्रेण राक्षसः ।
अयुध्यत महातेजास्त्र्यम्बकेण यथाऽन्तकः ॥ ६ ॥

वालिपुत्र अङ्गद के साथ महातेजस्वी इन्द्रजीत का युद्ध वैसा ही हुआ ; जैसा कि, महादेव का युद्ध अन्तकासुर से हुआ था ॥ ६ ॥

प्रजङ्घेन च सम्पातिर्नित्यं दुर्मर्षणो रणे ।
जम्बुमालिनमारब्धो हनुमानपि वानरः ॥ ७ ॥

समर में अति दुर्धर्ष सम्पाति वानर प्रजङ्घ राक्षस से भिड़ गया और हनुमान जम्बुमाली राक्षस से लड़ने लगे ॥ ७ ॥

सङ्गतः सुमहाक्रोधो राक्षसो रावणानुजः ।
समरे तीक्ष्णवेगेन मित्रघ्नेन विभीषणः ॥ ८ ॥

रावण के छोटे भाई विभीषण अत्यन्त कुपित हो अति तीक्ष्ण वेग से मित्रघ्न नामक राक्षस से लड़ने लगे ॥ ८ ॥

तपसेन गजः सार्धं राक्षसेन महाबलः ।
निकुम्भेन महातेजा नीलोऽपि समयुध्यत ॥ ९ ॥

महाबली गज, तपन नामक राक्षस के साथ और महातेजस्वी नील, निकुम्भ राक्षस के साथ युद्ध करने लगे ॥ ९ ॥

वानरेन्द्रस्तु सुग्रीवः प्रघसेन समागतः
सङ्गतः समरे श्रीमान्विरूपाक्षेण लक्ष्मणः ॥ १० ॥

वानरराज सुग्रीव की और प्रघसेन की भिडन्त हुई और श्रीमान् लक्ष्मण जी विरूपाक्ष से भिड़ गये ॥ १० ॥

अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च राक्षसः ।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च रामेण सह सङ्गताः ॥ ११ ॥

दुर्धर्ष अग्निकेतु का रश्मिकेतु राक्षस के साथ और सुप्तघ्न तथा यज्ञकोप नामी राक्षसों का श्रीरामचन्द्र जी के साथ युद्ध होने लगा ॥ ११ ॥

वज्रमुष्टिस्तु मैन्देन द्विविदेनाशनिप्रभः ।
राक्षसाभ्यां सुघोराभ्यां कपिमुख्यौ समागतौ ॥ १२ ॥

भयङ्कर राक्षस वज्रमुष्टि और अशनिप्रभ का युद्ध वानरश्रेष्ठ मैन्द और द्विवद के साथ हुआ ॥ १२ ॥

वीरः प्रतपनो घोरो राक्षसो रणदुर्धरः ।
समरे तीक्ष्णवेगेन नलेन समयुध्यत ॥ १३ ॥

रणदुर्धर वीर और भयङ्कर राक्षस प्रतपन ने, युद्ध में तीक्ष्ण वेग वाले नल के साथ युद्ध किया ॥ १३ ॥

धर्मस्य पुत्रो बलवान्सुषेण इति विश्रुतः ।
स विद्युन्मालिना सार्धमयुध्यत महाकपिः ॥ १४ ॥

धर्मपुत्र बलवान महाकपि सुषेण के साथ विद्युन्माली का युद्ध हुआ ॥ १४ ॥

वानराश्चापरे भीमा राक्षसैरपरैः सह ।
द्वन्द्वं समीयुर्बहुधा युद्धाय बहुभिः सह ॥ १५ ॥

अन्य बहुत से भयङ्कर वानर अन्य बहुत से राक्षसों से द्वन्द्वयुद्ध करने लगे ॥ १५ ॥

तत्रासीत्सुमहद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ।
रक्षसां वानराणां च वीराणां जयमिच्छताम् ॥ १६ ॥

एक दूसरे को जीतने की इच्छा रखने वाले वीर राक्षसों और वानरों का यह तुमुल महान् युद्ध रोमाञ्चकारी था ॥ १६ ॥

हरिराक्षसदेहेभ्यः प्रभूताः केशशाड्वलाः ।
शरीरसङ्घाटवहाः[1] प्रसुस्रुः शोणितापगाः ॥ १७ ॥

वानरों और राक्षसों के शरीरों से रक्त की नदियाँ बह रही थीं, जिनमें वीरों के बाल सिवार घास की तरह, और शरीर काष्ठसमूह की तरह देख पड़ते थे ॥ १७ ॥

आजघानेन्द्रजित्क्रुद्धो वज्रेणेव शतक्रतुः ।
अङ्गदं गदया वीरं शत्रुसैन्यविदारणम् ॥ १८ ॥

इन्द्रजीत ने अत्यन्त क्रुद्ध हो, शत्रु-सैन्य-संहारकारी वीर अङ्गद के वैसे ही एक गदा मारी; जैसे इन्द्र दैत्य के वज्र मारते हैं ॥ १८ ॥

तस्य काञ्चनचित्राङ्गं रथं साश्वं ससारथिम् ।
जघान समरे श्रीमानङ्गदो वेगवान्कपिः ॥ १९ ॥

तदनन्तर महावेगवान् अङ्गद ने भी गदा से मेघनाद के घोड़ों और सारथी सहित सुवर्ण-भूषित रथ को नष्ट कर डाला ॥ १९ ॥

सम्पातिस्तु त्रिभिर्बाणैः प्रजङ्घेन समाहतः ।
निजघानाश्वकर्णेन प्रजङ्घं रणमूर्धनि ॥ २० ॥

---

१ संघाटः—काष्ठसञ्चयः । (गो०)

उधर प्रजङ्घ ने सम्पाति के जब तीन बाण मारे, तब सम्पाति ने अश्वकर्ण वृक्ष के आघात से प्रजङ्घ को जान से मार डाला ॥ २० ॥

जम्बुमाली रथस्थस्तु [१]रथशक्त्या महाबलः ।
बिभेद समरे क्रुद्धो हनूमन्तं स्तनान्तरे ॥ २१ ॥

रथ में बैठे हुए महाबलवान् जम्बुमाली ने क्रुद्ध हो रथ में सदा रखी रहने वाली एक शक्ति (साँग) चला हनुमान जी की छाती घायल कर दी ॥ २१ ॥

तस्य तं रथमास्थाय हनूमान्मारुतात्मजः ।
प्रममाथ तलेनाशु सह तेनैव रक्षसा ॥ २२ ॥

तब पवननन्दन हनुमान जो उसके रथ पर चढ़ गये और मारे थप्पड़ों के उसे तुरन्त जान से मार कर, उसके रथ को भी चूर चूर कर डाला ॥ २२ ॥

नदन्प्रतपनो घोरो नलं सोऽप्यन्वधावत ।
नलः प्रतपनस्याशु पातयामास चक्षुषी ॥ २३ ॥

राक्षस प्रतपन गर्जता हुआ जब नल की ओर दौड़ा ; तब नल ने दौड़ कर उसके नेत्र निकाल लिये और उसे मार कर गिरा दिया ॥ २३ ॥

भिन्नगात्रः शरैस्तीक्ष्णैः क्षिप्रहस्तेन रक्षसा ।
ग्रसन्तमिव सैन्यानि प्रघसं वानराधिपः ॥ २४ ॥

प्रघस नामक राक्षस शीघ्रतापूर्वक पैने पैने बाणों से सुग्रीव को घायल कर रहा था और वानरी सेना को निगल जाना चाहता था ॥ २४ ॥

---

१ रथशक्त्या — रथएव सदा वर्तमानं या शक्त्या । (गो०)

सुग्रीवः सप्तपर्णेन निर्बिभेद जघान च ।
[प्रपीड्य शरवर्षेण राक्षसं भीमदर्शनम् ॥ २५ ॥
निजघान विरूपाक्षं शरेणैकेन लक्ष्मणः ।]
अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च राक्षसः ॥ २६ ॥
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च रामं निर्बिभिदुः शरैः ।
तेषां चतुर्णां रामस्तु शिरांसि निशितैः शरैः ॥ २७ ॥
क्रुद्धश्चतुर्भिश्चिच्छेद घोरैरग्निशिखोपमैः ।
वज्रमुष्टिस्तु मैन्देन मुष्टिना निहतो रणे ॥ २८ ॥

उसको वानरराज ने छितिउन के एक पेड़ से बड़ी तेज़ी के साथ घायल कर, जान से मार डाला। लक्ष्मण जी ने भयङ्कर राक्षस विरूपाक्ष के ऊपर बाणों की वर्षा कर, अन्त में उसके एक ऐसा बाण मारा कि, वह मर गया। दुर्धर्ष अग्निकेतु, रश्मिकेतु, सुप्तघ्न और यज्ञकोप नामक चार राक्षस, श्रीरामचन्द्र जी के बाण मार रहे थे। श्रीरामचन्द्र जी ने कुपित हो अग्निशिखा के तुल्य भयङ्कर चार पैने बाणों से इन चारों के सिर काट डाले। मैन्द ने मूँके मार मार कर वज्रमुष्टि की जान ले ली ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

पपात सरथः साश्वः [1]सुराट्ट* इव भूतले ।
[मित्रघ्नमरिदर्पघ्न आपतन्तं विभीषणः ॥ २९ ॥
आसाद्य गदया गुर्व्या जघान रणमूर्धनि ।
भिन्नगात्रः शरैस्तीक्ष्णैः क्षिप्रहस्तेन रक्षसा ॥ ३० ॥

वज्रमुष्टि अपने रथ और घोड़ों सहित भूमि पर उसी प्रकार गिर पड़ा; जिस प्रकार देवविमान भूमि पर गिरता है। विभीषण

---

१ सुराट्ट—देवविमानमिव। (रा०) * पाठान्तरे—" पुराट्ट "

ने अरिदर्पघ्न और आक्रमणकारी फुर्तीले मित्रघ्न को, जिसने विभीषण के शरीर को पैने पैने तीरों से छेद डाला था, अपनी भारी गदा के प्रहार से मार डाला ॥ २९ ॥ ३० ॥

निकुम्भस्तु रणे नीलं नीलाञ्जनचयप्रभम् ।]
निर्बिभेद शरैस्तीक्ष्णैः करैर्मेघमिवांशुमान् ॥ ३१ ॥

युद्ध में निकुम्भ ने, काले सुरमे के ढेर की तरह शरीर वाले नील वानर को पैने पैने बाणों से ऐसा छिन्न भिन्न कर डाला ; जैसे सूर्य अपनी किरणों से मेघ को छिन्न भिन्न कर डालते हैं ॥ ३१ ॥

पुनः शरशतेनाथ क्षिप्रहस्तो निशाचरः ।
बिभेद समरे नीलं निकुम्भः प्रजहास च ॥ ३२ ॥

फुर्तीले राक्षस निकुम्भ ने युद्ध में नील वानर के फिर सौ बाण मारे और बाण मार कर वह खूब हँसा ॥ ३२ ॥

तस्यैव रथचक्रेण नीलो विष्णुरिवाहवे ।
शिरश्चिच्छेद समरे निकुम्भस्य च सारथेः ॥ ३३ ॥

तब तो नील ने निकुम्भ के रथ के पहिये से, निकुम्भ का तथा उसके सारथी का सिर उसी तरह काट डाला ; जिस प्रकार विष्णु दैत्यों का सिर अपने सुदर्शन चक्र से काटते हैं ॥ ३३ ॥

वज्राशनिसमस्पर्शो द्विविदोऽप्यशनिप्रभम् ।
जघान गिरिशृङ्गेण मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥ ३४ ॥

वज्र के तुल्य मूँका मारने वाले द्विविद ने सब राक्षसों के सामने अशनिप्रभ राक्षस के पर्वत का शिखर मारा ॥ ३४ ॥

द्विविदं वानरेन्द्रं तु नगयोधिनमाहवे ।
शरैरशनिसङ्काशैः स विव्याधाशनिप्रभः ॥ ३५ ॥

तब समर में पेड़ों से लड़ने वाले द्विविद को अशनिप्रभ ने भी वज्रतुल्य बाणों से मारा ॥ ३५ ॥

स शरैरतिविद्धाङ्गो द्विविदः क्रोधमूर्छितः ।
सालेन सरथं साश्वं निजघानाशनिप्रभम् ॥ ३६ ॥

बाणों से घायल होने पर द्विविद ने अत्यन्त क्रुद्ध हो, एक साखू का पेड़ उखाड़ कर, घोड़े और रथ सहित अशनिप्रभ को मार डाला ॥ ३६ ॥

[नदन्प्रपतनो घोरो नलं सोऽप्यन्वधावत ।
नलः प्रतपनस्याशु पातयामास चक्षुषी ॥ ३७ ॥]

गरजता हुआ भयङ्कर राक्षस प्रपतन ज्योंहीं नल के ऊपर दौड़ा; त्योंहीं नल ने झटपट उसकी आँखें निकाल लीं ॥ ३७ ॥

विद्युन्माली रथस्थस्तु शरैः काञ्चनभूषणैः ।
सुषेणं ताडयामास ननाद च मुहुर्मुहुः ॥ ३८ ॥

रथ पर सवार विद्युन्माली सुवर्णभूषित बाणों से सुषेण को मार कर, वार वार गर्ज रहा था ॥ ३८ ॥

तं रथस्थमथो दृष्ट्वा सुषेणो वानरोत्तमः ।
गिरिशृङ्गेण महता रथमाशु न्यपातयत् ॥ ३९ ॥

तब कपिश्रेष्ठ सुषेण ने उसको रथ पर सवार देख, झट एक बड़ा पर्वतशिखर खींच कर उसके रथ पर मारा ॥ ३९ ॥

लाघवेन तु संयुक्तो विद्युन्माली निशाचरः ।
अपक्रम्य रथात्तूर्णं गदापाणिः क्षितौ स्थितः ॥ ४० ॥

किन्तु विद्युन्माली निशाचर बड़ी फुर्ती के साथ हाथ में गदा ले, रथ से कूद कर, ज़मीन पर जा खड़ा हुआ ॥ ४० ॥

तत: क्रोधसमाविष्टः सुषेणो हरिपुङ्गवः ।
शिलां सुमहतीं गृह्य निशाचरमभिद्रवत् ॥ ४१ ॥

यह देख कपिश्रेष्ठ सुषेण क्रुद्ध हुआ और एक बड़ी भारी शिला ले कर, विद्युन्माली की ओर झपटा ॥ ४१ ॥

तमापतन्तं गदया विद्युन्माली निशाचरः ।
वक्षस्यभिजघानाशु सुषेणं हरिसत्तमम् ॥ ४२ ॥

सुषेण को अपनी ओर आते देख, राक्षस विद्युन्माली ने बड़ी फुर्ती से वानरोत्तम सुषेण की छाती में गदा का प्रहार किया ॥४२॥

गदाप्रहारं तं घोरमचिन्त्य प्लवगोत्तमः ।
तां शिलां पातयामास तस्योरसि महामृधे ॥ ४३ ॥

कपिश्रेष्ठ सुषेण ने उस गदा के प्रहार की कुछ भी परवाह न की और उस महती शिला को विद्युन्माली की छाती पर दे पटका ॥ ४३ ॥

शिलाप्रहाराभिहतो विद्युन्माली निशाचरः ।
निष्पिष्टहृदयो भूमौ गतासुर्निपपात ह ॥ ४४ ॥

उसकी चोट से विद्युन्माली का हृदय चूर्ण हो गया और वह निर्जीव हो पृथिवी पर गिर पड़ा ॥ ४४ ॥

एवं तैर्वानरैः शूरैः शूरास्ते रजनीचराः ।
द्वन्द्वे विमृदितास्तत्र दैत्या इव दिवौकसैः ॥ ४५ ॥

इसी प्रकार शूर वानरों ने उन वीर राक्षसों को द्वन्द्वयुद्ध में वैसे ही हराया; जैसे देवताओं ने दैत्यों को हराया था ॥ ४५ ॥

भग्नैः खड्गैर्गदाभिश्च *शक्तितोमरपट्टसैः ।
अपविद्धैश्च भिन्नैश्च रथैः सांग्रामिकैर्हयैः ॥ ४६ ॥
निहतैः कुञ्जरैर्मत्तैस्तथा वानरराक्षसैः ।
चक्राक्षयुगदण्डैश्च भग्नैर्धरणिसंश्रितैः ।
बभूवायोधनं घोरं गोमायुगणसङ्कुलम् ॥ ४७ ॥

भालों, गदाओं, शक्तियों, तोमरों और तीरों से टूटे रथों और घोड़ों, मतवाले हाथियों तथा मरे हुए राक्षसों और वानरों से, टूटे रथ के पहियों, धुरियों और जुओं से रणभूमि भर गयी थी अथवा जिधर देखो उधर रणभूमि में ये ही चीजें पड़ी हुई देख पड़ती थीं। इनसे तथा शृङ्गालों से भरी हुई वह रणभूमि, बड़ी भयङ्कर जान पड़ती थी ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

कबन्धानि समुत्पेतुर्दिक्षु वानररक्षसाम् ।
विमर्दे तुमुले तस्मिन्देवासुररणोपमे ॥ ४८ ॥

वानरों और राक्षसों के सिरहीन धड़ अर्थात् कबन्ध; वैसे ही देख पड़ते थे जैसे कि, दैत्यों और देवताओं के भयङ्कर युद्ध में दिखलाई पड़ते थे ॥ ४८ ॥

विदार्यमाणा हरिपुङ्गवैस्तदा
निशाचराः शोणितदिग्धगात्राः ।
पुनः सुयुद्धं तरसा समास्थिता
दिवाकरस्यास्तमयाभिकाङ्क्षिणः ॥ ४९ ॥

इति त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥

---

* पाठान्तरे — " शक्तितोमरपट्टिशैः ।"

वानरश्रेष्ठों द्वारा क्षतविक्षत राक्षसों के शरीरों से रुधिर बहने लगा। तिस पर भी वे युद्ध करने के लिये सूर्यास्त होने पर, रात की प्रतीक्षा करने लगे ॥ ४६ ॥

युद्धकाण्ड का तैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः

—*—

युद्ध्यतामेव तेषां तु तदा वानररक्षसाम्।
रविरस्तं गतो रात्रिः प्रवृत्ता प्राणहारिणी ॥ १ ॥

वानरों और राक्षसों को इस प्रकार युद्ध करते करते सूरज डूब गया और राक्षस तथा वानरों की प्राणसंहारकारिणी रात आ उपस्थित हुई ॥ १ ॥

अन्योन्यं बद्धवैराणां घोराणां जयमिच्छताम्।
संप्रवृत्तं निशायुद्धं तदा वानररक्षसाम् ॥ २ ॥

परस्पर बैर बाँधे हुए और एक दूसरे को परास्त करने की इच्छा रखने वाले भयङ्कर वानरों और राक्षसों का रात में युद्ध होने लगा ॥ २ ॥

राक्षसोऽसीति हरयो हरिश्चासीति राक्षसाः।
अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥ ३ ॥

वानर कहते "तू राक्षस है" और राक्षस कहते "तू वानर है"—इस प्रकार एक दूसरे से कह कर, रात के उस घोर अंधकार में वे एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे ॥ ३ ॥

जहि दारय चैहीति कथं विद्रवसीति च ।
एवं सुतुमलः शब्दस्तस्मिंस्तमसि शुश्रुवे ॥ ४ ॥

'मारो मारो', 'काटो काटो', 'क्यों भागता है' आदि बातें कहते हुए उन लोगों का बड़ा कोलाहल सुनाई पड़ता था ॥ ४ ॥

कालाः काञ्चनसन्नाहास्तस्मिंस्तमसि राक्षसाः ।
संप्रादृश्यन्त शैलेन्द्रा दीप्तौषधिवना इव ॥ ५ ॥

सुवर्ण कवचधारी काले काले रंग के राक्षस, उस अन्धकार में ऐसे जान पड़ते थे; मानों प्रकाशमान जड़ी बूटियों के वन से भरे हुए बड़े बड़े पहाड़ हों ॥ ५ ॥

तस्मिंस्तमसि दुष्पारे राक्षसाः क्रोधमूर्छिताः ।
परिपेतुर्महावेगा भक्षयन्तः प्लवङ्गमान् ॥ ६ ॥

उस निविड़ अन्धकार में राक्षस अत्यन्त क्रुद्ध हो कर, बड़े वेग से वानरों की सेना में कूद पड़े और वानरों को खाने लगे ॥ ६ ॥

ते हयान्काञ्चनापीडान्ध्वजांश्चाग्निशिखोपमान् ।
आप्लुत्य दशनैस्तीक्ष्णैर्भीमकोपा व्यदारयन् ॥ ७ ॥

सुवर्ण की कलगियों से भूषित घोड़ों से युक्त और अग्निशिखा के समान चमचमाती रथों की ध्वजाओं को, वानर भी छलांग मार मार कर अपने पैने पैने दाँतों से अत्यन्त क्रुद्ध हो, चीरे फाड़े डालते थे ॥७॥

वानरा बलिनो युद्धेऽक्षोभयन्राक्षसीं चमूम् ।
कुञ्जरान्कुञ्जरारोहान्पताकाध्वजिनो रथान् ॥ ८ ॥
चकर्षुश्च ददंशुश्च दशनैः क्रोधमूर्छिताः ।
लक्ष्मणश्चापि रामश्च शरैराशीविषोपमैः ॥ ९ ॥

समर में बलवान वानर राक्षसी सेना को दुःख देते तथा गजों और महावतों तथा ध्वजाओं से शोभित रथों को पकड़ पकड़ कर खींच लेते और क्रुद्ध हो उनको दाँतों से फाड़ डालते थे । लक्ष्मण और श्रीरामचन्द्र सर्पाकार तीरों से ॥ ८ ॥ ९ ॥

दृश्यादृश्यानि रक्षांसि प्रवराणि निजघ्नतुः ।
तुरङ्गखुरविध्वस्तं रथनेमिसमुत्थितम् ॥ १० ॥

उन राक्षसों को, जो सामने थे और जो छिपे हुए थे, मार रहे थे । घोड़ों के खुरों से और रथ के पहियों से उड़ी हुई ॥ १० ॥

रुरोध कर्णनेत्राणि युद्ध्यतां धरणीरजः ।
वर्तमाने महाघोरे संग्रामे रोमहर्षणे ॥ ११ ॥

धूल, लड़ने वालों के कानों और आँखों में भर गयी । उस महाभयङ्कर रोमाञ्चकारी उपस्थित युद्ध में ॥ ११ ॥

रुधिरोदा महाघोरा नद्यस्तत्र प्रसुस्रुवुः ।
ततो भेरीमृदङ्गानां पणवानां च निःस्वनः ॥ १२ ॥
शङ्खवेणुस्वनोन्मिश्रः सम्बभूवाद्भुतोपमः ।
हतानां स्तनमानानां राक्षसानां च निःस्वनः ॥ १३ ॥

लोहू की बड़ी भयङ्कर नदियाँ बहने लगीं । अब नगाड़ों, मृदंगों और ढोलों के शब्द, शङ्खों और वेणु बाजों के शब्द से मिल कर, बड़ा अद्भुत सुन पड़ता था ; घायल राक्षसों के कराहने तथा चिल्लाने का ॥ १२ ॥ १३ ॥

शस्तानां वानराणां च सम्बभूवातिदारुणः ।
हतैर्वानरवीरैश्च शक्तिशूलपरश्वधैः ॥ १४ ॥

और प्रहार करते हुए वानरों के चीत्कार का बड़ा घोर शब्द सुन पड़ता था। मरे हुए वीर वानरों की लोथों पे, शक्ति, शूल, फरसा आदि आयुधों से, ॥ १४ ॥

निहतैः पर्वताग्रैश्च राक्षसैः कामरूपिभिः।
शस्त्रपुष्पोपहारा च तत्रासीद्युद्धमेदिनी ॥ १५ ॥

मरे हुए कामरूपी पर्वतशिखराकार राक्षसों से तथा शस्त्ररूपी फूलों से रणभूमि ढकी हुई थी ॥ १५ ॥

दुर्ज्ञेया दुर्निवेशा च शोणितास्रावकर्दमा।
सा बभूव निशा घोरा हरिराक्षसहारिणी ॥ १६ ॥

रणभूमि के स्थान न तो सहज में पहिचाने जाते थे और न वहाँ पैर रखने के लिये जगह ही थी। जिधर देखो उधर लोहू और माँस की कीचड़ ही कीचड़ देख पड़ती थी। वानरों और राक्षसों के प्राणों की लेवा वह रात, बड़ी भयङ्कर थी ॥ १६ ॥

कालरात्रीव भूतानां सर्वेषां दुरतिक्रमा।
ततस्ते राक्षसास्तत्र तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥ १७ ॥

और समस्त जीवों की दुस्तर कालरात्रि की तरह वह जान पड़ती थी। वहाँ पर समस्त राक्षस उस दारुण अन्धकार में ॥ १७ ॥

राममेवाभ्यवर्तन्त [1]संसृष्टाः शरवृष्टिभिः।
तेषामापततां शब्दः क्रुद्धानामपि गर्जताम् ॥ १८ ॥

एकत्र हो श्रीरामचन्द्र जी के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे। राक्षसों के दौड़ने तथा क्रुद्ध हो गर्जने का शब्द ॥ १८ ॥

---

१ संसृष्टाः—संमिलिताः। (गो०)

[1]उद्वर्त इव सप्तानां समुद्राणां प्रशुश्रुवे ।
तेषां रामः शरैः षड्भिः षट् जघान निशाचरान् ॥१९॥
निमेषान्तरमात्रेण शितैरग्निशिखोपमैः ।
यमशत्रुश्च दुर्धर्षो महापार्श्वमहोदरौ ॥ २० ॥
वज्रदंष्ट्रो महाकायस्तौ चोभौ शुकसारणौ ।
ते तु रामेण बाणौघैः सर्वे मर्मसु ताडिताः ॥ २१ ॥

वैसा ही सुन पड़ा ; जैसा कि प्रलयकाल में सातों समुद्रों का सुन पड़ता है । श्रीरामचन्द्र जी ने उन राक्षसों में से छः राक्षसों को अग्निशिखा तुल्य छः प्रदीप्त बाणों से पल भर में मार डाला । उन छः दुर्धर्ष राक्षसों के नाम थे, यमशत्रु, महापार्श्व, महोदर, वज्रदंष्ट्र और बड़े डीलडौल के शुक तथा सारण । इन छः के मर्मस्थल श्रीरामचन्द्र जी के बाणों से चुटीले हो गये थे ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

युद्धादपसृतास्तत्र सावशेषायुषोऽभवन् ।
तत्र काञ्चनचित्राङ्गैः शरैरग्निशिखोपमैः ॥ २२ ॥

मर्मस्थल घायल होने के कारण वे लड़ाई छोड़ भागे, किन्तु भाग कर भी बहुत देर तक जीते न रह सके । तदनन्तर काञ्चनभूषित अग्निशिखा के समान प्रदीप्त बाणों से श्रीरामचन्द्र जी ने ॥ २२ ॥

दिशश्चकार विमलाः प्रदिशश्च महाबलः ।
[रामनामाङ्कितैर्बाणैर्व्याप्तं तद्रणमण्डलम्] ॥ २३ ॥

समस्त दिशाओं और विदिशाओं को साफ कर दिया । श्रीराम नामाङ्कित बाणों से वहाँ का रणक्षेत्र व्याप्त हो गया ॥ २३ ॥

---

१ उद्वर्त--प्रलये । (गो०)

ये त्वन्ये राक्षसा भीमा रामस्याभिमुखे स्थिताः ।
तेऽपि नष्टाः समासाद्य पतङ्गा इव पावकम् ॥ २४ ॥

और भी जो कोई वीर राक्षस उनके सामने पड़े, वे भी उसी प्रकार नष्ट हो गये, जिस प्रकार पतंगे अग्नि के सामने पड़ने से नष्ट हो जाते हैं ॥ २४ ॥

सुवर्णपुङ्खैर्विशिखैः सम्पतद्भिः सहस्रशः ।
बभूव रजनी चित्रा खद्योतैरिव शारदी ॥ २५ ॥

चारों ओर सुनहले पुंख के बाणों के चलने से वह रात ऐसी जान पड़ती थी, जैसी जुगुनुओं से शरदृऋतु की रात मालूम पड़ती है ॥ २५ ॥

राक्षसानां च निनदैर्हरीणां चापि निःस्वनैः ।
सा बभूव निशा घोरा भूयो घोरतरा तदा ॥ २६ ॥

राक्षसों के नाद से और वानरों के गर्जन से वह भयङ्कर रात और भी अधिक भयङ्कर हो गयी थी ॥ २६ ॥

तेन शब्देन महता प्रवृद्धेन समन्ततः ।
त्रिकूटः कन्दराकीर्णः प्रव्याहरदिवाचलः ॥ २७ ॥

चारों ओर उस महान् कोलाहल के होने से त्रिकूटपर्वत की कन्दराएँ ऐसी प्रतिध्वनित हुईं, मानों वे बोल रही हों ॥ २७ ॥

गोलाङ्गूला महाकायास्तमसा तुल्यवर्चसः ।
संपरिष्वज्य बाहुभ्यां भक्षयन्रजनीचरान् ॥ २८ ॥

बड़े भारी डीलडौल के तथा काले रंग के गोलाङ्गूल जाति के वानर दोनों भुजाओं से राक्षसों को दबा दबा कर, उनको खा रहे थे ॥ २८ ॥

अङ्गदस्तु रणे शत्रुं निहन्तुं समुपस्थितः ।
रावणिं निजघानाशु सारथिं च हयानपि ॥ २९ ॥

उधर अङ्गद युद्धक्षेत्र में अपने शत्रुओं को मार रहे थे। उन्होंने मेघनाद पर वार करते हुए उसके रथ के सारथि और घोड़ों को बड़ी फुर्ती से मार डाला ॥ २९ ॥

वर्तमाने तदा घोरे संग्रामे भृशदारुणे ।
इन्द्रजित्तु रथं त्यक्त्वा हताश्वो हतसारथिः ॥ ३० ॥

अङ्गदेन महाकायस्तत्रैवान्तरधीयत ।
तत्कर्म वालिपुत्रस्य सर्वे देवा महर्षिभिः ॥ ३१ ॥

तुष्टुवुः पूजनार्हस्य तौ चोभौ रामलक्ष्मणौ ।
प्रभावं सर्वभूतानि विदुरिन्द्रजितो युधि ॥ ३२ ॥

तब उस अति दारुण एवं भयङ्कर युद्ध में अङ्गद द्वारा अपने सारथि और घोड़ों के मारे जाने पर, इन्द्रजीत रथ को त्याग कर वहीं अन्तर्धान हो गया। प्रशंसनीय वालितनय अङ्गद की इस वीरता को देख, समस्त देवता ऋषिगण तथा दोनों राजकुमार श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण भी सन्तुष्ट हुए। क्योंकि युद्ध में इन्द्रजीत कैसा बलवान था—यह बात सब लोग जानते थे ॥ ३०॥ ३१ ॥ ३२॥

अदृश्यः सर्वभूतानां योऽभवद्युधि दुर्जयः ।
तेन ते तं [1]महात्मानं तुष्टा दृष्ट्वा प्रधर्षितम् ॥ ३३ ॥

इन्द्रजीत प्राणिमात्र से युद्ध में दुर्जय था। उसको महाधैर्यवान् अङ्गद द्वारा पराजित देख, सब बड़े सन्तुष्ट हुए ॥ ३३ ॥

---

१ महात्मानं—महाधैर्यं। (गो०)

ततः प्रहृष्टाः कपयः ससुग्रीवविभीषणाः ।
साधुसाध्विति नेदुश्च दृष्ट्वा शत्रुं प्रधर्षितम् ॥ ३४ ॥

तदनन्तर शत्रु को पराजित देख, सब वानरों ने और सुग्रीव सहित विभीषण ने प्रसन्न हो, अङ्गद की "वाह वाह" कह कर, बड़ाई की ॥ ३४ ॥

इन्द्रजित्तु तदा तेन निर्जितो भीमकर्मणा ।
संयुगे वालिपुत्रेण क्रोधं चक्रे सुदारुणम् ॥ ३५ ॥

उस युद्ध में भीमकर्मा वालितनय अङ्गद द्वारा पराजित होने से इन्द्रजीत अत्यन्त क्रुद्ध हुआ ॥ ३५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे रामो वानरान्वाक्यमब्रवीत् ।
सर्वे भवन्तस्तिष्ठन्तु कपिराजेन सङ्गताः ॥ ३६ ॥

इसी बीच में श्रीरामचन्द्र जी ने वानरों को यह आज्ञा दी कि, आप सब लोग सुग्रीव के पास ठहरे रहें ॥ ३६ ॥

स ब्रह्मणा दत्तवरस्त्रैलोक्यं बाधते भृशम् ।
भवतामर्थसिद्ध्यर्थं कालेन स समागतः ॥ ३७ ॥
अद्यैव क्षमितव्यं मे भवन्तो विगतज्वराः ।
सोऽन्तर्धानगतः पापो रावणी रणकर्कशः ॥ ३८ ॥

(और वानरों से कहा) वह ब्रह्मा जी के वरदान से बलवान हो, तीनों लोकों को बहुत सताता है। आपका काम बनाने के लिये अब ठीक समय आ गया है। आप लोग उसे मेरे लिये छोड़ कर निश्चिन्त हो जाँय। (इतने में) रणकर्कश और पापी रावणपुत्र मेघनाद अन्तर्धान हो गया ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अदृश्यो निशितान्बाणान्मुमोचाशनिवर्चसः ।
स रामं लक्ष्मणं चैव घोरैर्नागमयैः शरैः ॥ ३९ ॥

और छिपे छिपे वज्र के समान चमचमाते पैने बाण छोड़ने लगा । भयङ्कर सर्पमय बाणों से श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण ॥ ३९ ॥

विभेद समरे क्रुद्धः सर्वगात्रेषु राक्षसः ।
मायया संवृतस्तत्र मोहयन्राघवौ युधि ॥ ४० ॥

के समस्त शरीर को, क्रुद्ध हो, युद्ध में, उस राक्षस ने क्षतविक्षत कर डाला । उस समय वह माया द्वारा बलवान हो, युद्ध में श्रीरामचन्द्र जी को मोहित करता हुआ ॥ ४० ॥

अदृश्यः सर्वभूतानां कूटयोधी निशाचरः ।
बबन्ध शरबन्धेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४१ ॥

उस कपटयोद्धा इन्द्रजीत ने सब की आँख बचा, बाणों के बंधनों से दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण को बाँध लिया ॥ ४१ ॥

तौ तेन पुरुषव्याघ्रौ क्रुद्धेनाशीविषैः शरैः ।
सहसा निहतौ वीरौ तदा प्रैक्षन्त वानराः ॥ ४२ ॥

उस समय दोनों वीर भाई विषधर सर्प तुल्य बाणों से सब वानरों के देखते देखते सहसा बँध गये ॥ ४२ ॥

प्रकाशरूपस्तु यदा न शक्तः
तौ बाधितुं राक्षसराजपुत्रः ।
मायां प्रयोक्तुं समुपाजगाम
बबन्ध तौ राजसुतौ *दुरात्मा ॥ ४३ ॥

इति चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥

---

* पाठान्तरे—" महात्मा ।" " महात्मा " अर्थात् बुद्धिमान् ।

जब रावणपुत्र मेघनाद प्रयत्न हो कर, श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण को न बाँध सका, तब उस दुरात्मा ने उन दोनों राजकुमारों को (माया का प्रयोग कर अर्थात्) कपट चाल से बाँधा ॥ ४३ ॥

युद्धकाण्ड का चवालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः

—*—

स तस्य गतिमन्विच्छन्राजपुत्रः प्रतापवान्।
दिदेशातिबलो रामो दश वानरयूथपान् ॥ १ ॥

प्रतापी एवं अतिबलवान राजकुमार श्रीरामचन्द्र जी ने मेघनाद को ढूँढ़ने के लिये दस वानरयूथपतियों को आज्ञा दी ॥ १ ॥

द्वौ सुषेणस्य दायादौ[1] नीलं च प्लवगर्षभम्।
अङ्गदं वालिपुत्रं च शरभं च तरस्विनम् ॥ २ ॥

विनतं जाम्बवन्तं च सानुप्रस्थं महाबलम्।
ऋषभं चर्षभस्कन्धमादिदेश परन्तपः ॥ ३ ॥

उन दस वानरयूथपतियों में दोनों सुषेण के पुत्र थे, कपिश्रेष्ठ नील, वालिपुत्र अङ्गद, बलवान शरभ, विनत, जाम्बवान, महाबली सानुप्रस्थ, ऋषभ और ऋषभस्कन्ध थे। इनको परन्तप श्रीरामचन्द्र जी ने आज्ञा दी ॥ २ ॥ ३ ॥

---

१ दायादौ—पुत्रौ। (गो०)

ते सम्प्रहृष्टा हरयो भीमानुद्यम्य पादपान् ।
आकाशं विविशुः सर्वे मार्गमाणा दिशो दश ॥ ४ ॥

ये सब के सब प्रसन्न हो बड़े बड़े भयङ्कर आकार वाले वृत्तों को हाथों में ले, आकाशमण्डल में पहुँचे और चारों ओर घूम फिर कर, इन्द्रजीत को ढूढ़ा ॥ ४ ॥

तेषां वेगवतां वेगमिषुभिर्वेगवत्तरैः ।
अस्त्रवित्परमास्त्रैस्तु वारयामास रावणिः ॥ ५ ॥

तं भीमवेगा हरयो नाराचैः क्षतविग्रहाः ।
अन्धकारे न ददृशुर्मेघैः सूर्यमिवावृतम् ॥ ६ ॥

अस्त्रविद्यावेत्ता रावणपुत्र मेघनाद ने इन वेगवान् वानरों के वेग को परमास्त्रों से रोका। वे भयङ्कर वेगवाले वानर बाणों की चोट खा कर, क्षतविक्षत हो गये और अन्धकार में मेघनाद को वैसे ही न देख सके, जैसे मेघों से आच्छादित सूर्य को कोई नहीं देख सकता ॥ ५ ॥ ६ ॥

रामलक्ष्मणयोरेव सर्वदेहभिदः शरान् ।
भृशमावेशयामास रावणिः समितिञ्जयः ॥ ७ ॥

समरविजयी मेघनाद ने शरीर को भेदन करने वाले बाणों से छेद छेद कर, श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण के शरीरों को चलनी कर डाला ॥ ७ ॥

[1]निरन्तरशरीरौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
क्रुद्धेनेन्द्रजिता वीरौ पन्नगैः शरतां गतैः ॥ ८ ॥

---

१ निरन्तरशरीरौ उपरिभागेअन्तररहित देहौ कृतौ (रा०)

क्रुद्ध हो वीर इन्द्रजीत ने दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण के शरीरों में इतने बाण मारे कि, शरीर में तिल रखने को भी जगह न रह गयी। उसके वे बाण नाग हो जाते थे॥ ८॥

तयोः क्षतजमार्गेण सुस्राव रुधिरं बहु।
तावुभौ च प्रकाशेते पुष्पिताविव किंशुकौ॥ ९॥

दोनों वीर भाइयों के शरीरों के घावों से बहुत सा खून बह रहा था और वे दोनों फूले हुए टेसू के पेड़ की तरह देख पड़ते थे॥ ९॥

ततः पर्यन्तरक्ताक्षो भिन्नाञ्जनचयोपमः।
रावणिर्भ्रातरौ वाक्यमन्तर्धानगतोऽब्रवीत्॥ १०॥

लाल लाल नेत्र किये अंजन के पहाड़ की तरह काला मेघनाद, छिपे छिपे ही दोनों भाइयों से बोला॥ १०॥

युद्ध्यमानमनालक्ष्यं शक्रोऽपि त्रिदशेश्वरः।
द्रष्टुमासादितुं वाऽपि न शक्तः किं पुनर्युवाम्॥ ११॥

अलक्षित युद्ध करते हुए मुझको जब देवराज इन्द्र ही नहीं देख सके और न मुझे मार ही सके, तब तुम दोनों की क्या गिनती है॥ ११॥

प्रावृताविषुजालेन राघवौ कङ्कपत्रिणा।
एष रोषपरीतात्मा नयामि यमसादनम्॥ १२॥

बाणजाल में फँसे हुए तुम दोनों रघुनन्दनों को मैं क्रुद्ध हो, इन कङ्कपत्रयुक्त बाणों से अभी (मार डाल कर) यमपुरी भेजे देता हूँ॥ १२॥

एवमुक्त्वा तु धर्मज्ञौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
निर्बिभेद शितैर्बाणैः प्रजहर्ष ननाद च॥ १३॥

इस प्रकार कह, वह दोनों धर्मज्ञ भाई श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को पैने पैने बाणों से क्षतविक्षत कर और अत्यन्त प्रसन्न हो नाद करने लगा ॥ १३ ॥

भिन्नाञ्जनचयश्यामो विस्फार्य विपुलं धनुः ।
भूयो भूयः शरान्घोरान्विससर्ज महामृधे ॥ १४ ॥

काजल के समान काला मेघनाद अपने विशाल धनुष को टंकारता हुआ, उस महारण में बार बार भयङ्कर बाणों को छोड़ने लगा ॥ १४ ॥

ततो मर्मसु मर्मज्ञो मज्जयन्निशिताञ्शरान् ।
रामलक्ष्मणयोर्वीरो ननाद च मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥

मर्मस्थलों को जानने वाला मेघनाद, श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी के सब सुकुमार अंगों में पैने पैने बाण मार कर, बारंबार गर्जने लगा ॥ १५ ॥

बद्धौ तु शरबन्धेन तावुभौ रणमूर्धनि ।
निमेषान्तरमात्रेण न शेकतुरुदीक्षितुम् ॥ १६ ॥

इस लड़ाई में बाणजाल में बंधे हुए, वे दोनों एक पल के लिये भी मेघनाद को न देख सके ॥ १६ ॥

ततो विभिन्नसर्वाङ्गौ शरशल्याचितावुभौ ।
ध्वजाविव महेन्द्रस्य रज्जुमुक्तौ प्रकम्पितौ ॥ १७ ॥

तब सर्वाङ्ग छिन्नभिन्न, बाणजाल में बंधे हुए दोनों भाई, रस्सी से रहित अर्थात् खुली हुई इन्द्र की ध्वजा की तरह काँपने लगे ॥ १७ ॥

तौ संप्रचलितौ वीरौ मर्मभेदेन कर्शितौ ।
निपेततुर्महेष्वासौ जगत्यां जगतीपती ॥ १८ ॥

मर्मस्थलों के विध जाने से व्याकुल महाधनुर्धारी जगत्पति श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण पृथिवी पर गिर पड़े ॥ १८ ॥

तौ वीरशयने वीरौ शयानौ रुधिरोक्षितौ ।
शरवेष्टितसर्वाङ्गावार्तौ परमपीडितौ ॥ १९ ॥

उनके शरीर रुधिर से तर बतर थे । वे दोनों वीरोचित शय्या पर पड़े हुए थे । सारे शरीर में बाण ही बाण गड़े हुए थे । अतः वे परम पीड़ित और विकल हो रहे थे ॥ १९ ॥

न ह्यविद्धं तयोर्गात्रे बभूवाङ्गुलमन्तरम् ।
नानिर्भिन्नं न चास्तब्धमाकराग्रादजिह्मगैः ॥ २० ॥

उन दोनों के शरीरों में एक अंगुल भी ऐसी जगह न थी, जहाँ बाण न गड़े हों । हाथों की अंगुलियों तक में बाण बिधे हुए थे ॥ २० ॥

तौ तु क्रूरेण निहतौ रक्षसा कामरूपिणा ।
असृक् सुस्रुवतुस्तीव्रं जलं प्रस्रवणाविव ॥ २१ ॥

क्रूर स्वेच्छाचारी मेघनाद ने उन दोनों को ऐसा मारा कि, दोनों भाइयों के अंगों से, झरने से जल झरने की तरह, रुधिर झर रहा था ॥ २१ ॥

पपात प्रथमं रामो विद्धो मर्मसु मार्गणैः ।
क्रोधादिन्द्रजिता येन पुरा शक्रो विनिर्जितः ॥ २२ ॥

जिस मेघनाद ने पूर्वकाल में इन्द्र को जीता था; उसके क्रोध में भर चलाये हुए बाणों से मर्मविद्ध हो, श्रीरामचन्द्र जी पहिले भूमि पर गिर पड़े ॥ २२ ॥

रुक्मपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैरधोगतिभिराशुगैः ।
नाराचैरर्धनाराचैर्भल्लैरञ्जलिकैरपि ॥ २३ ॥
विव्याध वत्सदन्तैश्च सिंहदंष्ट्रैः क्षुरैस्तथा ।
स वीरशयने शिश्ये विज्यमादाय कार्मुकम् ॥ २४ ॥

सुवर्ण पुंख वाले, पैनी नोंक के, ऊपर से नीचे की ओर बड़ी तेज़ी से आने वाले, सीधी नोंकों के, झुकी हुई नोंकों वाले, भाले जैसे, अङ्गुलि के आकार की नोंकों वाले, बछड़े के दाँत जैसी नोंक वाले, सिंह की डाढ़ों जैसी नोंक वाले और छुरा जैसी नोंक वाले बाणों से क्षतविक्षत हो, श्रीरामचन्द्र जी अपना प्रत्यञ्चारहित धनुष पटक, वीरशय्या पर सो गये ॥ २३ ॥ २४॥

भिन्नमुष्टिपरीणाहं त्रिणतं रत्नभूषितम् ।
बाणपातान्तरे रामं पतितं पुरुषर्षभम् ॥ २५ ॥

तीन स्थानों से झुके हुए और रत्नभूषित धनुष की मुठिया उनके हाथ से छूट गयी । तदनन्तर पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र को बाणशय्या पर पड़ा हुआ ॥ २५ ॥

स तत्र लक्ष्मणो दृष्ट्वा निराशो जीवितेऽभवत् ।
रामं कमलपत्राक्षं शरबन्धपरिक्षतम् ॥ २६ ॥
शुशोच भ्रातरं दृष्ट्वा पतितं धरणीतले ।
हरयश्चापि तं दृष्ट्वा सन्तापं परमं गताः ॥ २७ ॥

देख, लक्ष्मण जी उनके जीवन से निराश हो गये । कमलनेत्र, शरबन्धन में फँसे और घायल भाई श्रीरामचन्द्र को ज़मीन पर गिरा हुआ देख, लक्ष्मण जी शोकान्वित हो गये । वानर भी श्रीरामचन्द्र जी की यह दशा देख परम सन्तप्त हुए ॥ २६ ॥ २७ ॥

बद्धौ तु वीरौ पतितौ शयानौ
तौ वानराः सम्परिवार्य तस्थुः ।
समागता वायुसुतप्रमुख्या
विषादमार्ताः परमं च जग्मुः ॥ २८ ॥

इति पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥

दोनों वीर भाइयों को ज़मीन पर पड़ा हुआ देख, वानर लोग उन दोनों को घेर कर बैठ गये । फिर वायुपुत्र हनुमानादि प्रमुख वीर वानर, उन दोनों के समीप जा परम विषादित हुए ॥ २८ ॥

युद्धकाण्ड का पैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—※—

षट्चत्वारिंशः सर्गः

—※—

ततो [1]द्यां पृथिवीं चैव वीक्षमाणा वनौकसः ।
ददृशुः [2]सन्ततौ बाणैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ १ ॥

दोनों भाई श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को बाणों से व्याप्त देख, वानर ज़मीन आसमान ताकने लगे ॥ १ ॥

वृष्टवेवोपरते देवे कृतकर्मणि राक्षसे ।
आजगामाथ तं देशंससुग्रीवो विभीषणः ॥ २ ॥

जैसे इन्द्र वर्षा कर चुकते हैं, वैसे ही जब इन्द्रजीत बाणों की वर्षा कर चुका, तब वहाँ सुग्रीव सहित विभीषण पहुँचे ॥ २ ॥

---

१ द्यां—आकाशं । (गो०) २ सन्ततौ—व्याप्तौ । (गो०)

नीलद्विविदमैन्दाश्च सुषेणकुमुदाङ्गदाः ।
तूर्णं हनुमता सार्धमन्वशोचन्त राघवौ ॥ ३ ॥

नील, द्विविद, मैन्द, सुषेण, कुमुद और अङ्गद ; हनुमान के साथ मिल कर, दोनों भाइयों के विषय में शोकान्वित हुए ॥ ३ ॥

अचेष्टौ मन्दनिश्वासौ शोणितौघपरिप्लुतौ ।
शरजालाचितौ स्तब्धौ शयानौ शरतल्पयोः ॥ ४ ॥

दोनों भाई निश्चेष्ट, मन्द-श्वास-युक्त, रुधिर से तराबोर, बाणों से बिधे, शरशय्या पर सो रहे थे ॥ ४ ॥

निःश्वसन्तौ यथा सर्पौ निश्चेष्टौ मन्दविक्रमौ ।
रुधिरस्रावदिग्धाङ्गौ तापनीयाविव ध्वजौ ॥ ५ ॥

और सर्प की तरह साँस ले रहे थे, उनके शरीर चेष्टाहीन हो रहे थे, उनका पराक्रम मन्द पड़ गया था। उनके शरीर लोहू में सने हुए थे। वे दोनों सुवर्ण की दो ध्वजाओं की तरह भूमि पर पड़े हुए थे ॥ ५ ॥

तौ वीरशयने वीरौ शयानौ मन्दचेष्टितौ ।
यूथपैस्तैः परिवृतौ बाष्पव्याकुललोचनैः ॥ ६ ॥

वे दोनों वीर शय्या पर लेटे हुए, मन्द-चेष्टा-युक्त हो रहे थे। उन दोनों को वानरयूथपति घेरे हुए थे। उनके नेत्रों से आँसुओं की धारें बह रही थीं ॥ ६ ॥

राघवौ पतितौ दृष्ट्वा शरजालसमावृतौ ।
बभूवुर्व्यथिताः सर्वे वानराः सविभीषणाः ॥ ७ ॥

श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को शरजाल में फँसा हुआ देख, विभीषण सहित समस्त वानर व्यथित हुए ॥ ७ ॥

अन्तरिक्षं निरीक्षन्तो दिशः सर्वाश्च वानराः ।
न चैनं मायया च्छन्नं ददृशू रावणिं रणे ॥ ८ ॥

आकाश तथा समस्त दिशाओं की ओर देखते हुए भी, उन वानरों को माया के बल से छिपा हुआ मेघनाद युद्धक्षेत्र में कहीं भी न देख पड़ा ॥ ८ ॥

तं तु मायाप्रतिच्छन्नं माययैव विभीषणः ।
वीक्षमाणो ददर्शाथ भ्रातुः पुत्रमवस्थितम् ॥ ९ ॥

किन्तु माया के बल से छिपे हुए अपने भतीजे को, माया के बल से देखते हुए विभीषण ने देखा कि, वह (पास ही) खड़ा है ॥ ९ ॥

तमप्रतिमकर्माणमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ।
ददर्शान्तर्हितं वीरं वरदानाद्विभीषणः ॥ १० ॥
तेजसा यशसा चैव विक्रमेण च संयुतम् ।
इन्द्रजित्त्वात्मनः कर्म तौ शयानौ समीक्ष्य च ॥ ११ ॥

और जाना कि, युद्ध में इसके समान योद्धा दूसरा नहीं है। विभीषण ने देखा कि, वरदान के प्रभाव से छिपा हुआ मेघनाद तेज, यश और विक्रम से युक्त है। इन्द्रजीत अपनी करतूत से उन दोनों को पड़ा हुआ देख ॥ १० ॥ ११ ॥

उवाच परमप्रीतो हर्षयन्सर्वनैर्ऋतान् ।
दूषणस्य च हन्तारौ खरस्य च महाबलौ ॥ १२ ॥

स्वयं परम प्रसन्न हो और अन्य राक्षसों को हर्षित करता हुआ उनसे कहने लगा—देखो, खरदूषण के मारने वाले, दोनों महाबली ॥ १२ ॥

सादितौ मामकैर्बाणैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
नेमौ मोक्षयितुं शक्यावेतस्मादिषुबन्धनात् ॥ १३ ॥
सर्वैरपि समागम्य सर्षिसङ्घैः सुरासुरैः ।
यत्कृते चिन्तयानस्य शोकार्तस्य पितुर्मम ॥ १४ ॥

ये दोनों भाई राम और लक्ष्मण मेरे बाणों से मारे गये। भले ही समस्त देवता ऋषि और दैत्य मिल कर आवें, पर इनको अब कोई भी इस बाणबन्धन से छुड़ा नहीं सकता। जिनके लिये सोच विचार करते करते और शोक से विकल मेरे पिता ॥ १३ ॥ १४ ॥

अस्पृष्ट्वा शयनं गात्रैस्त्रियामा याति शर्वरी ।
कृत्स्नेयं यत्कृते लङ्का नदी वर्षास्विवाकुला ॥ १५ ॥

चार पहर रात खाट पर लेटे बिना ही बिता देते थे और जिसके कारण यह सारी की सारी लङ्का वर्षाकालीन नदी की तरह विकल हो रही थी ॥ १५ ॥

सोऽयं मूलहरोऽनर्थः सर्वेषां[1] निहतो मया ।
रामस्य लक्ष्मणस्यापि सर्वेषां च वनौकसाम् ॥ १६ ॥
विक्रमा निष्फलाः सर्वे यथा शरदि तोयदाः ।
एवमुक्त्वा तु तान्सर्वान्राक्षसान्परिपार्श्वतः ॥ १७ ॥

और जो हमारी सब की जड़ नाश करने वाला और अनर्थकारी था; उस राम को मैंने आज मार डाला। देखो, अब राम, लक्ष्मण और सब वानरों का समस्त पराक्रम वैसे ही व्यर्थ हो गया है, जैसे शरद्कालीन मेघ। अपने समीप खड़े हुए सब राक्षसों से यह कह कर. ॥ १६ ॥ १७ ॥

---

१ सर्वेषां अस्माकं मूलहरः । (गो०)

यूथपानपि तान्सर्वांस्ताडयामास रावणिः ।
नीलं नवभिराहत्य मैन्दं च द्विविदं तथा ॥ १८ ॥

मेघनाद ने समस्त वानरयूथपतियों को भी बाणों से घायल किया । नील के नौ और मैन्द तथा द्विविद के ॥ १८ ॥

त्रिभिस्त्रिभिरमित्रघ्नस्तताप प्रवरेषुभिः ।
जाम्बवन्तं महेष्वासो विद्ध्वा बाणेन वक्षसि ॥ १९ ॥

तीन तीन बड़े पैने पैने बाण शत्रुओं के नाश करने वाले मेघनाद ने मारे। बड़ा धनुष लिये हुए मेघनाद ने जाम्बवान की छाती में एक बाण मारा ॥ १६ ॥

हनूमतो वेगवतो विससर्ज शरान्दश ।
गवाक्षं शरभं चैव द्वावप्यमिततेजसौ ॥ २० ॥
द्वाभ्यां द्वाभ्यां महावेगो विव्याध युधि रावणिः ।
गोलाङ्गूलेश्वरं चैव वालिपुत्रमथाङ्गदम् ॥ २१ ॥
विव्याध बहुभिर्बाणैस्त्वरमाणोऽथ रावणिः ।
तान्वानरवरान्भित्त्वा शरैरग्निशिखोपमैः ॥ २२ ॥

फिर वेगवान हनुमान जी के दस बाण मार, अमित तेजस्वी गवाक्ष और शरभ के महावेगवान मेघनाद ने दो दो बाण मारे। गोलाङ्गूलों के अध्यक्ष अर्थात् गवाक्ष तथा वालिपुत्र अङ्गद के उस फुर्तीले मेघनाद ने बहुत से बाण मारे। उन वानरश्रेष्ठों को अग्निशिखा सदृश दमकते हुए बाणों से घायल कर ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

ननाद बलवांस्तत्र महासत्त्वः स रावणिः ।
तानर्दयित्वा बाणौघैस्त्रासयित्वा च वानरान् ॥ २३ ॥

वह महाबली मेघनाद बड़ी ज़ोर से गर्जा। वानरों को बाणों से घायल कर और उनको डराता हुआ॥ २३॥

प्रजहास महाबाहुर्वचनं चेदमब्रवीत्।
शरबन्धेन घोरेण मया बद्धौ [1]चमूमुखे॥ २४॥
सहितौ भ्रातरावेतौ निशामयत राक्षसाः।
एवमुक्तास्तु ते सर्वे राक्षसाः कूटयोधिनः॥ २५॥

महाबली इन्द्रजीत, अट्टहास कर यह बोला—हे राक्षसो! देखो मैंने युद्ध में बाणबन्धन से इन दोनों भाइयों सहित वानरी सेना को बाँध लिया है। उसके यह वचन सुन, कपट युद्ध करने वाले वे समस्त राक्षस,॥ २४॥ २५॥

परं विस्मयमाजग्मुः कर्मणा तेन हर्षिताः।
विनेदुश्च महानादान्सर्वतो जलदोपमाः॥ २६॥

परम विस्मित हुए और उसकी उस वीरता से हर्षित हुए। वे बादलों की तरह बड़े ज़ोर से गर्जने लगे॥ २६॥

हतो राम इति ज्ञात्वा रावणिं समपूजयन्।
निष्पन्दौ तु तदा दृष्ट्वा तावुभौ रामलक्ष्मणौ॥ २७॥
वसुधायां निरुच्छ्वासौ हतावित्यन्वमन्यत।
हर्षेण तु समाविष्ट इन्द्रजित्समितिञ्जयः॥ २८॥

"श्रीरामचन्द्र मारे गये" यह निश्चय कर, वे मेघनाद की प्रशंसा करने लगे। दोनों भाइयों की सांस चलती न देख और उनको निश्चेष्ट पृथिवी पर पड़ा देख, लोगों ने दोनों को मरा

---

१ चमूमुखे—संग्राममध्ये। (गो०)

हुआ मान लिया। शत्रुविजयी इन्द्रीजीत इससे स्वयं प्रसन्न होता हुआ ॥ २७ ॥ २८ ॥

प्रविवेश पुरीं लङ्कां हर्षयन्सर्वराक्षसान् ।
रामलक्ष्मणयोर्दृष्ट्वा शरीरे सायकैश्चिते ॥ २९ ॥
सर्वाणि चाङ्गोपाङ्गानि सुग्रीवं भयमाविशत् ।
तमुवाच परित्रस्तं वानरेन्द्रं विभीषणः ॥ ३० ॥
सबाष्पवदनं दीनं शोकव्याकुललोचनम् ।
अलं त्रासेन सुग्रीव बाष्पवेगो निगृह्यताम् ॥ ३१ ॥

तथा समस्त राक्षसों को हर्षित करता हुआ, लङ्का में गया। इधर श्रीरामचन्द्र जी एवं लक्ष्मण के समस्त अङ्गों और प्रत्यङ्गों को बाणों से विद्ध देख, सुग्रीव बहुत डरे। सुग्रीव को त्रस्त तथा शोक से विकल हो, दीन भाव से रोते देख, विभीषण ने उनसे कहा—हे सुग्रीव! इस समय डरने से काम न चलेगा। अतः आँसुओं के वेग को रोको अर्थात् अब रोना बन्द करो ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

एवं प्रायाणि[1] युद्धानि विजयो नास्ति नैष्ठिकः ।
सशेषभाग्यताऽस्माकं यदि वीर भविष्यति ॥ ३२ ॥

क्योंकि इस प्रकार के युद्धों में विजय किसी एक ही के लिये नियत नहीं है। हे वीर! यदि हम लोगों का कुछ भी सौभाग्य शेष होगा ॥ ३२ ॥

मोहमेतौ प्रहास्येते महात्मानौ महाबलौ ।
पर्यवस्थापयात्मानमनाथं मां च वानर ॥ ३३ ॥

---

१ एवंप्रायाणि—एवंविधानि। (गो०)

तो ये दोनों महाबलवान् महात्मा मूर्च्छा त्याग कर उठ बैठेंगे। हे वानर! अतः हे वानरराज! तुम स्वयं धीरज धारण करो और मुझ अनाथ को धीरज बँधाओ॥ ३३॥

सत्यधर्माभिरक्तानां नास्ति [1]मृत्युकृतं भयम्।
एवमुक्त्वा ततस्तस्य जलक्लिन्नेन पाणिना॥ ३४॥
सुग्रीवस्य शुभे नेत्रे प्रममार्ज विभीषणः।
ततः सलिलमादाय विद्यया परिजप्य च॥ ३५॥
सुग्रीवनेत्रे धर्मात्मा स ममार्ज विभीषणः।
प्रमृज्य वदनं तस्य कपिराजस्य धीमतः॥ ३६॥
अब्रवीत्कालसम्प्राप्तमसम्भ्रममिदं वचः।
न कालः कपिराजेन्द्र वैक्लव्यमनुवर्तितुम्॥ ३७॥
अतिस्नेहोऽप्यकालेऽस्मिन्मरणायोपकल्पते।
तस्मादुत्सृज्य वैक्लब्यं सर्वकार्यविनाशनम्॥ ३८॥

क्योंकि सत्यधर्म में स्थित जनों को अपमृत्यु का भय नहीं होता। यह कह कर धर्मात्मा विभीषण ने अपने हाथ में जल ले कर अमङ्गल की निवृत्ति और भ्रान्ति दूर करने के लिये, मंत्र से उसे अभिमंत्रित कर, उससे सुग्रीव की आँखें धोयीं। बुद्धिमान् वानरराज के नेत्र जल से पोंछ कर, विभीषण व्याकुलता निवारक, समयानुसार वचन बोले। हे वानरराज! यह समय कायरता दिखलाने का नहीं है। इस समय अति प्रेम भी घातक है। अतः तुम सब कार्यों को नष्ट करने वाली कायरता को त्याग दो॥ ३४॥ ३५॥ ३६॥ ॥ ३७॥ ३८॥

---

१ मृत्युकृतं—अपमृत्युकृतं। (गो०)

हितं [1]रामपुरोगाणां सैन्यानामनुचिन्त्यताम् ।
अथवा रक्ष्यतां रामो यावत्संज्ञाविपर्ययः ॥ ३९ ॥

श्रीरामचन्द्र प्रभृति सैनिकों के हित की चिन्ता करो। अथवा जब तक ये सचेत नहीं होते, तब तक इन्हींकी रक्षा करो ॥ ३९ ॥

लब्धसंज्ञौ हि काकुत्स्थौ भयं नो व्यपनेष्यतः ।
नैतत्किञ्चन रामस्य न च रामो मुमूर्षति ॥ ४० ॥

जब ये सचेत हो जाँयगे, तब ये ही हम लोगों को निर्भय कर देंगे। श्रीरामचन्द्र के लिये ये शरबन्धन कुछ भी नहीं है और न वे मरे ही हैं ॥ ४० ॥

न ह्येनं हास्यते लक्ष्मीर्दुर्लभा या गतायुषाम् ।
तस्मादाश्वासयात्मानं बलं चाश्वासय स्वकम् ॥ ४१ ॥

क्योंकि गतायु लोगों के लिये जो मुख की कान्ति दुर्लभ है, वह इनके मुखमण्डल पर अब भी विराजमान है। अतः तुम स्वयं धीरज धारण करो और अपने सैनिकों को धीरज बँधाओ ॥ ४१ ॥

यावत्कार्याणि सर्वाणि पुनः संस्थापयाम्यहम् ।
एते हि फुल्लनयनास्त्रासादागतसाध्वसाः ॥ ४२ ॥

जब तक मैं अन्य सब बातों की फिर से सुव्यवस्था करूँ; तब तक तुम सब सैनिकों को धीरज बँधा शान्त करो। वानरों की आँखें प्रसन्न देख पड़ती हैं। केवल डर से त्रस्त हो, ॥ ४२ ॥

कर्णे कर्णे [2]प्रकथिता हरयो हरिसत्तम ।
मां तु दृष्ट्वा प्रधावन्तमनीकं सम्प्रहर्षितुम् ॥ ४३ ॥

---

१ रामपुरोगाणां—रामप्रभृतीनां। (गो०) २ प्रकथिताः—पलायनार्थं प्रवृत्तकथा। (गो०)

हे कपिप्रवर! ये लोग आपस में कानाफूंसी कर भागने की सलाह कर रहे हैं। जब मैं सेना के बीच हर्षित हो इधर उधर दौड़ूँगा और ये लोग मुझे देखेंगे ॥ ४३ ॥

त्यजन्तु हरयस्त्रासं भुक्तपूर्वामिव स्रजम् ।
समाश्वास्य तु सुग्रीवं राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥ ४४ ॥

तब ये वानर उस प्रकार भय को त्याग देंगे, जिस प्रकार कुम्हलाई हुई पुष्पमाला त्याग दी जाती है। राक्षसेन्द्र विभीषण इस प्रकार वानरराज सुग्रीव को समझा ॥ ४४ ॥

विद्रुतं वानरानीकं तत्समाश्वासयत्पुनः ।
इन्द्रजित्तु महामायः सर्वसैन्यसमावृतः ॥ ४५ ॥

भागती हुई या भागने के लिये उद्यत वानरी सेना को समझाने लगे। उधर बड़ा मायावी इन्द्रजीत, अपनी समस्त राक्षसी सेना को साथ ले ॥ ४५ ॥

विवेश नगरीं लङ्कां पितरं चाभ्युपागमत् ।
तत्र रावणमासीनमभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥ ४६ ॥

लङ्का में जा, अपने पिता के पास पहुँचा। वहाँ सिंहासन पर विराजमान रावण को प्रणाम कर, मेघनाद ने हाथ जोड़ कर ॥४६॥

आचचक्षे प्रियं पित्रे निहतौ रामलक्ष्मणौ ।
उत्पपात ततो हृष्टः पुत्रं च परिषस्वजे ॥ ४७ ॥

पिता को रामलक्ष्मण के मारे जाने का प्रियसंवाद सुनाया। इस प्रियसंवाद को सुन कर, रावण उछल पड़ा और उसने हर्षित हो, पुत्र को अपनी छाती से लगा लिया ॥ ४७ ॥

रावणो रक्षसां मध्ये श्रुत्वा शत्रू निपातितौ ।
उपाघ्राय स मूर्ध्न्येनं पप्रच्छ प्रीतमानसः ॥ ४८ ॥

राक्षसों के बीच में बैठे हुए रावण ने अपने शत्रुओं के मारे जाने का समाचार सुन, इन्द्रजीत का माथा सूंघा और प्रसन्न हो उससे सब वृत्तान्त पूँछा ॥ ४८ ॥

पृच्छते च यथावृत्त पित्रे सर्वं न्यवेदयत् ।
यथा तौ शरबन्धेन निश्चेष्टौ निष्प्रभा कृतौ ॥ ४९ ॥

पिता के पूँछने पर उसने उनसे वह समस्त वृत्तान्त कहा जिस प्रकार उसने श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को शरबन्धन में बाँध कर, निश्चेष्ट और निष्प्रभ कर दिया था ॥ ४६ ॥

स हर्षवेगानुगतान्तरात्मा
श्रुत्वा वचस्तस्य महारथस्य ।
जहौ ज्वरं दाशरथेः समुत्थितं
प्रहृष्य वाचाऽभिननन्द पुत्रम् ॥ ५० ॥

इति षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥

महारथी मेघनाद के वचन सुन, रावण अत्यन्त हर्षित हुआ और श्रीरामचन्द्र के भय से उसके मन में जो सन्ताप उत्पन्न हो गया था, वह दूर हो गया । वह प्रसन्न हो पुत्र की बड़ाई करने लगा ॥५०॥

युद्धकाण्ड का छियालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—*—

सप्तचत्वारिंशः सर्गः

—*—

प्रतिप्रविष्टे लङ्कां तु कृतार्थे रावणात्मजे ।
राघवं परिवार्यार्ता ररक्षुर्वानरर्षभाः ॥ १ ॥

जब विजयी हो मेघनाद लङ्का में चला गया; तब प्रधान प्रधान वानर श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को घेर कर उनकी रक्षा करने लगे ॥ १ ॥

हनुमानङ्गदो नीलः सुषेणः कुमुदो नलः ।
गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ॥ २ ॥

उनमें हनुमान, अङ्गद, नील, सुषेण, कुमुद, नल, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन ॥ २ ॥

जाम्बवानृषभः स्कन्धो रम्भः शतवलिः पृथुः ।
व्यूढानीकाश्च यत्ताश्च द्रुमानादाय सर्वतः ॥ ३ ॥
वीक्षमाणा दिशः सर्वास्तिर्यगूर्ध्वं च वानराः ।
तृणेष्वपि च चेष्टत्सु राक्षसा इति मेनिरे ॥ ४ ॥

जाम्बवान, स्कन्ध, रम्भ, शतवलि, पृथु, ये सब अपनी अपनी सेनाओं के व्यूह बना कर तथा हाथों में बड़े बड़े पेड़ों को ले कर, ऊपर नीचे और चारों दिशाओं को ओर देखते हुए खड़े हो गये। उस समय उनकी ऐसी दशा हो रही थी कि, यदि वे तिनका भी हिलता देखते, तो वे वहाँ राक्षस का होना निश्चित कर लेते थे ॥ ३ ॥ ४ ॥

रावणश्चापि संहृष्टो विसृज्येन्द्रजितं सुतम् ।
आजुहाव: ततः सीतारक्षिणी राक्षसीस्तदा ॥ ५ ॥

रावण ने प्रसन्न हो अपने पुत्र इन्द्रजीत को विदा किया और सीता जी की रक्षा करने वाली राक्षसियों को अपने पास बुलवाया ॥ ५ ॥

राक्षस्यस्त्रिजटा चैव शासनात्समुपस्थिताः ।
ता उवाच ततो हृष्टो राक्षसी राक्षसाधिपः ॥ ६ ॥

उसकी आज्ञा पाते ही त्रिजटा सहित सब राक्षसी उसके समीप आईं । तब राक्षसराज अत्यन्त हर्षित हो, उन राक्षसियों से कहने लगा ॥ ६ ॥

हताविन्द्रजिताऽऽख्यात वैदेह्या रामलक्ष्मणौ ।
पुष्पकं च समारोप्य दर्शयध्वं हतौ रणे ॥ ७ ॥

तुम जा कर सीता से कहो कि, इन्द्रजीत ने श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को मार डाला । फिर उसको पुष्पकविमान में बिठा कर समरभूमि में उन दोनों मरे हुए को दिखलाओ ॥ ७ ॥

यदाश्रयादवष्टब्धा नेयं मामुपतिष्ठति ।
सोऽस्या भर्ता सह भ्रात्रा निरस्तो रणमूर्धनि ॥ ८ ॥

जिसके बल के गर्व से गर्वित हो वह मुझको कुछ नहीं समझती थी, वही उसका पति अपने भाई सहित युद्ध में मारा गया ॥ ८ ॥

निर्विशङ्का निरुद्विग्ना निरपेक्षा च मैथिली ।
मामुपस्थास्यते सीता सर्वाभरणभूषिता ॥ ९ ॥

अब कुछ भी सोच विचार न कर और शोक त्याग कर तथा श्रीरामचन्द्र के मिलने की आशा छोड़ कर और सब आभूषणों से भूषित हो कर, जानकी मेरे पास चली आवेगी ॥ ९ ॥

अद्य कालवशं प्राप्तं रणे रामं सलक्ष्मणम् ।
अवेक्ष्य विनिवृत्ताशा नान्यां गतिमपश्यती ॥ १० ॥

अब वह उन दोनों को मरा हुआ देख कर, निराश हो जायगी और अपनी रक्षा का अन्य उपाय न देख, ॥ १० ॥

निरपेक्षा विशालाक्षी मामुपस्थास्यते स्वयम् ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रावणस्य दुरात्मनः ॥ ११ ॥

और निरपेक्ष हो वह विशालनयनी स्वयं मेरे पास चली आवेगी। दुष्ट रावण के इन वचनों को सुन, ॥ ११ ॥

राक्षस्यस्तास्तथेत्युक्त्वा जग्मुर्वै यत्र पुष्पकम् ।
ततः पुष्पकमादाय राक्षस्यो रावणाज्ञया ॥ १२ ॥

और "बहुत अच्छा" कह, वे राक्षसी वहाँ गयीं, जहाँ पुष्पक विमान रखा था। वे राक्षसी रावण की आज्ञा से उस पुष्पक विमान को ले ॥ १२ ॥

अशोकवनिकास्थां तां मैथिलीं समुपानयन् ।
तामादाय तु राक्षस्यो भर्तृशोकपराजिताम् ॥ १३ ॥

और अशोकवाटिका में बैठी हुई जानकी जी के पास पहुँची। राक्षसियों ने पति के शोक से दुर्बल ॥ १३ ॥

सीतामारोपयामासुर्विमानं पुष्पकं तदा ।
ततः पुष्पकमारोप्य सीतां त्रिजटया सह ॥ १४ ॥

सीता को ले कर पुष्पकविमान पर सवार कराया। तदनन्तर त्रिजटा सहित सीता को पुष्पकविमान में बैठा ॥ १४ ॥

जग्मुर्दर्शयितुं तस्यै राक्षस्यो रामलक्ष्मणौ ।
रावणोऽकारयल्लङ्कां पताकाध्वजमालिनीम् ॥ १५ ॥

वे राक्षसी श्रीराम लक्ष्मण को दिखाने के लिये उसे (सीता को) ले गयीं। उधर रावण ने पताका और ध्वजाओं से लङ्का को सजवा दिया ॥ १५ ॥

प्राघोषयत हृष्टश्च लङ्कायां राक्षसेश्वरः ।
राघवो लक्ष्मणश्चैव हताविन्द्रजिता रणे ॥ १६ ॥

और सारे नगर में उस राक्षसराज ने प्रसन्न हो यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि, समर में इन्द्रजीत ने श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को मार डाला ॥ १६ ॥

विमानेनापि सीता तु गत्वा त्रिजटया सह ।
ददर्श वानराणां तु सर्वं सैन्यं निपातितम् ॥ १७ ॥

उधर त्रिजटा सहित पुष्पकविमान में बैठी हुई सीता ने रणक्षेत्र में जा कर देखा कि, (प्रायः) समस्त अथवा बहुत सी वानरी सेना मरी हुई पड़ी है ॥१७॥

प्रहृष्टमनसश्चापि ददर्श पिशिताशनान् ।
वानरांश्चापि दुःखार्तान्रामलक्ष्मणपार्श्वतः ॥ १८ ॥

सीता ने माँसभक्षी राक्षसों को अत्यन्त हर्षित देखा और (कुछ) दुखी वानरों को, श्रीरामचन्द्र के अगल बगल खड़े हुए देखा ॥ १८ ॥

ततः सीता ददर्शोभौ शयानौ शरतल्पयोः ।
लक्ष्मणं चापि रामं च विसंज्ञौ शरपीडितौ ॥१९॥

तदनन्तर सीता ने दोनों राजकुमारों को शरशय्या पर सोते हुए देखा। श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण बाणों की व्यथा से व्यथित और मूर्छित पड़े थे ॥ १९ ॥

विध्वस्तकवचौ वीरौ विप्रविद्धशरासनौ ।
सायकैश्छिन्नसर्वाङ्गौ शरस्तम्बमयौ क्षितौ ॥ २० ॥

उन दोनों वीरों के कवच टूट फूट गये थे तथा उनके धनुष अलग पड़े हुए थे। शरीरों के समस्त अङ्गप्रत्यङ्ग बाणों से विद्ध थे। वे ऐसे जान पड़ते थे, मानों बाणों के खम्भे पृथिवी पर पड़े हों ॥ २० ॥

तौ दृष्ट्वा भ्रातरौ तत्र वीरौ सा पुरुषर्षभौ ।
शयानौ पुण्डरीकाक्षौ कुमाराविव पावकी ॥ २१ ॥

पुरुषश्रेष्ठ, शूरवीर, कमलनयन दोनों भाइयों को सीता जी ने वहाँ अग्नि के पुत्रों की तरह सोते हुए पाया ॥२१॥

शरतल्पगतौ वीरौ तथा भूतौ नरर्षभौ ।
दुःखार्ता सुभृशं सीता सुचिरं विललाप ह ॥ २२ ॥

ऐसे वीर दोनों भाइयों को बाणशय्या पर शयन करते देख, अत्यन्त दुःखी हो, सीता अति करुणापूर्वक विलाप करने लगी ॥ २२ ॥

भर्तारमनवद्याङ्गी लक्ष्मणं चासितेक्षणा ।
प्रेक्ष्य पांसुषु वेष्टन्तौ रुरोद जनकात्मजा ॥ २३ ॥

अपने भर्त्ता और लक्ष्मण को धूल में लोटते देख, सर्वाङ्ग-सुन्दरी और काले नेत्रों वाली सीता रोने लगी ॥ २३ ॥

सा बाष्पशोकाभिहता समीक्ष्य
तौ भ्रातरौ देवसमप्रभावौ ।

वितर्कयन्ती निधनं तयोः सा
दुःखान्विता वाक्यमिदं जगाद ॥ २४ ॥

इति सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥

देवताओं के समान प्रभाव वाले उन दोनों भाइयों को इस दशा में देख, सीता मारे शोक के रोने लगी और उनके मरने के विषय में तर्क वितर्क करती हुई, तथा दुःखी हो यह बोली ॥ २४ ॥

युद्धकाण्ड का सैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—※—

अष्टचत्वारिंशः सर्गः

—※—

भर्तारं निहतं दृष्ट्वा लक्ष्मणं च महाबलम् ।
विललाप भृशं सीता करुणं शोककर्शिता ॥ १ ॥

अपने पति श्रीरामचन्द्र और महाबली लक्ष्मण को युद्ध में मरा हुआ देख, शोक से विकल सीता, करुणास्वर से बहुत विलाप करने लगी ॥ १ ॥

ऊचुर्लक्षणिनो ये मां पुत्रिण्यविधवेति च ।
तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ २ ॥

जो सामुद्रिक-शास्त्र-ज्ञाता मुझे पुत्रवती होने तथा सदा सौभाग्यवती बनी रहने की भविष्यद्वाणी कहते थे, वे सब सामुद्रिक-शास्त्र-वेत्ता आज श्रीरामचन्द्र जी के मारे जाने से मिथ्यावादी ठहरे अथवा उनकी भविष्यद्वाणी मिथ्या सिद्ध हुई ॥ २ ॥

यज्वनो महिषीं ये मामूचुः पत्नीं च सत्रिणः ।
तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ३ ॥

जिन सामुद्रिक शास्त्रवेत्ताओं ने मुझे बहुकाल व्यापी अश्वमेधादि यज्ञ करने वाले की पत्नी होने की बात बतलायी थी, वे सब आज युद्ध में श्रीरामचन्द्र के मारे जाने से झूठे हो गये ॥ ३ ॥

ऊचुः संश्रवणे ये मां द्विजाः कार्तान्तिकाः शुभाम् ।
तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ४ ॥

जिन भविष्यद्वक्ताओं ने मेरे सम्मुख मुझे शुभलक्षणों वाली सधवा बतलाया था, वे सब आज श्रीरामचन्द्र जी के मारे जाने से झूठे पड़ गये ॥ ४ ॥

वीरपार्थिवपत्नी त्वं ये धन्येति च मां विदुः ।
तेऽद्य सर्वे हते रामे ज्ञानिनोऽनृतवादिनः ॥ ५ ॥

जिन्होंने मुझको वीर राजाओं को रानियों की पूज्या (अर्थात् चक्रवर्ती की पत्नी) और सौभाग्यवती बतलाया था, वे सब भविष्यद्वक्ता आज श्रीरामचन्द्र जी के मारे जाने से झूठे पड़ गये ॥५॥

इमानि खलु पद्मानि पादयोर्यैः किल स्त्रियः ।
आधिराज्येऽभिषिच्यन्ते नरेन्द्रैः पतिभिः सह ॥ ६ ॥

जिन शुभचिन्हों के होने से कुलवती स्त्रियाँ अपने नरेन्द्रपतियों के साथ राजसिंहासन पर अभिषिक्त होती हैं ; वे कमल के चिन्ह मेरे चरणों में होते हुए भी, आज मैं उस चिन्ह के फल से वञ्चित हो गयी ॥ ६ ॥

वैधव्यं यान्ति यैर्नार्यो लक्षणैर्भाग्यदुर्लभाः ।
नात्मनस्तानि पश्यामि पश्यन्ती हतलक्षणा ॥ ७ ॥

जिन बुरे लक्षणों के होने से स्त्रियाँ विधवा हो, भाग्यहीन हो जाती हैं, उन लक्षणों में से कोई भी लक्षण मुझे अपने में नहीं देख पड़ता, तो भी मैं इस समय अपने को हतभाग्य पाती हूँ ॥ ७ ॥

सत्यनामानि पद्मानि स्त्रीणामुक्तानि लक्षणैः ।
तान्यद्य निहते रामे वितथानि भवन्ति मे ॥ ८ ॥

पण्डित लोग, जिन कमल आदि चिन्हों को, स्त्रियों के अङ्गों में होने से अमोघ फल देने वाले बतलाते हैं; उन सब चिन्हों का फल मेरे लिये झूठा हुआ जाता है ॥ ८ ॥

केशाः सूक्ष्माः समा नीला भ्रुवौ चासङ्गते मम ।
वृते चारोमशे जङ्घे दन्ताश्चाविरला मम ॥ ९ ॥

देखो मेरे बाल महीन, बराबर और नीले हैं; मेरी भौंहें मिली हुई नहीं—अलग अलग हैं, मेरी जाँघे गोल और रोमरहित हैं, दाँत अलग अलग है ॥ ९ ॥

शङ्खे नेत्रे करौ पादौ गुल्फावूरू च मे चितौ ।
अनुवृत्तनखाः स्निग्धाः समाश्चाङ्गुलयो मम ॥ १० ॥

मेरे दोनों नेत्रों के कोये शङ्खाकार हैं, मेरे हाथ पैर, घुटने, ऊरू सुडौल हैं। नख गोल और चिकने हैं और उगलियाँ बराबर हैं ॥ १० ॥

स्तनौ चाविरलौ पीनौ ममेमौ मग्नचूचुकौ ।
मग्ना चोत्सङ्गिनी नाभिः पार्श्वोरस्काश्च मे चिताः ॥ ११ ॥

मेरी छातियाँ एक दूसरे से मिली हुई और मोटी हैं। उनके अग्रभाग उभड़े हुए नहीं बल्कि गहरे हैं। मेरी नाभि गहरी है तथा कोख और छाती उभड़ी हुई हैं ॥ ११ ॥

मम वर्णो मणिनिभो मृदून्यङ्गरुहाणि च ।
प्रतिष्ठितां द्वादशभिर्मामूचुः शुभलक्षणाम् ॥ १२ ॥

मेरे शरीर का रंग मणि की तरह चमकीला है, मेरे रोंगटें कोमल हैं, दसों उङ्गलियों सहित दोनों पैरों के तलवे भूमि पर ठीक ठीक पड़ते हैं। इन सब चिन्हों से मुझको सब शुभलक्षणयुक्त बतलाते हैं ॥ १२ ॥

समग्रयवमच्छिद्रं पाणिपादं च वर्णवत्[1] ।
मन्दस्मितेत्येव च मां कन्यालक्षणिनो*विदुः ॥ १३ ॥

मेरी सब अंगुलियों के पोरुओं पर जौ के चिन्ह हैं, इन चिन्हों की रेखाएं खण्डित नहीं हैं। हाथ पैर की अंगुलियाँ घनी हैं, हाथ और पैर के तलवों का गुलाबी रंग है। शारीरिक लक्षण पहचानने वाले पण्डितों ने बतलाया था कि, यह कन्या मधुरहासिनी है ॥१३॥

आधिराज्येऽभिषेको मे ब्राह्मणैः पतिना सह ।
कृतान्तकुशलैरुक्तं तत्सर्वं वितथीकृतम् ॥ १४ ॥

मुझे देख ज्योतिषियों ने कहा था कि, पति के साथ इसका राज्याभिषेक होगा, किन्तु उनका यह कथन अब मिथ्या हो गया ॥ १४ ॥

शोधयित्वा जनस्थानं प्रवृत्तिमुपलभ्य च ।
तीर्त्वा सागरमक्षोभ्यं भ्रातरौ गोष्पदे[2] हतौ ॥ १५ ॥

देखो ये दोनों भाई जनस्थान में मुझे ढूढ़ कर और हनुमान से मेरा वृत्तान्त जान कर तथा अक्षोभ्य सागर को पार कर, यहाँ तक

---

१ वर्णवत्—अरुणवर्णं । (गो०) २ गोष्पदे—इन्द्रजिन्मायामात्र इति भावः । (गो०) * पाठान्तरे—" द्विजाः । "

आ गये थे ; किन्तु गाय के खुर के समान गढ़े भर जल में डूब गये अर्थात् इन्द्रजीत की तुच्छ माया से दोनों मारे गये ॥ १५ ॥

ननु वारुणमाग्नेयमैन्द्रं वायव्यमेव च ।
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव राघवौ प्रत्यपद्यताम् ॥ १६ ॥

ये दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण वारुण, आग्नेय, ऐन्द्र, वायव्य और ब्रह्मशिरस आदि अस्त्रों का चलाना जानने वाले थे ॥ १६ ॥

अदृश्यमानेन रणे मायया वासवोपमौ ।
मम नाथावनाथाया निहतौ रामलक्ष्मणौ ॥ १७ ॥

किन्तु हा ! माया से लुक छिप कर मारने वाले इन्द्रजीत ने मुझ अनाथिनी के इन्द्र के समान श्रीराम और लक्ष्मण दोनों रक्षकों को मार डाला ॥ १७ ॥

न हि दृष्टिपथं प्राप्य राघवस्य रणे रिपुः ।
जीवन्प्रति निवर्तेत यद्यपि स्यान्मनोजवः ॥ १८ ॥

जब कोई वैरी श्रीरामचन्द्र के सामने आ जाय ; तब फिर वह जीता जागता नहीं जा सकता । भले ही वह मन के समान वेगवान् क्यों न हो ॥ १८ ॥

न कालस्यातिभारोऽस्ति कृतान्तश्च सुदुर्जयः ।
यत्र रामः सह भ्राता शेते युधि निपातितः ॥ १९ ॥

हाय ! काल के लिये न तो कोई बड़ा भारी बोझ है और न कोई काल को जीत ही सकता है । तभी तो भाई सहित श्रीरामचन्द्र जी समरभूमि में मरे हुए पड़े हैं ॥ १९ ॥

न शोचामि तथा रामं लक्ष्मणं च महाबलम् ।
नात्मानं जननीं वाऽपि तथा श्वश्रूं तपस्विनीम् ॥ २० ॥

मुझे उतनी चिन्ता और उतना दुःख न तो महाबलवान श्रीरामचन्द्र तथा लक्ष्मण का है, न अपना और न अपनी माता का है, जितनी चिन्ता और जितना दुःख मुझे अपनी उस बापुरी सास का है ; ॥ २० ॥

साऽनुचिन्तयते नित्यं समाप्तव्रतमागतम् ।
कदा द्रक्ष्यामि सीतां च लक्ष्मणं च सराघवम् ॥ २१ ॥

जो नित्य यही सोचती हुई बैठी होगी कि, श्रीराम, लक्ष्मण और सीता वनवास की अवधि समाप्त कर, कब लौट घर आवेंगे और कब मैं उनको देखूँगी ॥ २१ ॥

परिदेवयमानां तां राक्षसी त्रिजटाब्रवीत् ।
मा विषादं कृथा देवि भर्ताऽयं तव जीवति ॥ २२ ॥

इस प्रकार विलाप करती हुई सीता जी से त्रिजटा बोली—तुम दुःखी मत हो। ये तुम्हारे पति मरे नहीं, जीवित हैं ॥ २२ ॥

कारणानि च वक्ष्यामि [1]महान्ति [2]सदृशानि च ।
यथेमौ जीवतो देवि भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ २३ ॥

हे देवि ! मैं तुमसे अपने कथन के समर्थन में स्पष्ट और पहिले के अनुभूत जैसे कारण कहती हूँ, जिनसे तुमको निश्चय हो जायगा कि, ये दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण जीवित हैं ॥ २३ ॥

न हि कोपपरीतानि हर्षपर्युत्सुकानि च ।
भवन्ति युधि योधानां मुखानि निहते पतौ ॥ २४ ॥

हे वैदेही ! जब सेना का मालिक मर जाता है, तब उस सेना के योद्धाओं के मुखमण्डल पर न तो क्रोध ही झलकता है और न वे हर्ष से उत्कण्ठित ही देख पड़ते हैं ॥ २४ ॥

---

१ महान्ति—स्फुटानि। (गो०) २ सदृशानि—पूर्वानुभूततुल्यानि। (गो०)

इदं विमानं वैदेहि पुष्पकं नाम नामतः ।
दिव्यं त्वां धारयेन्नैवं यद्येतौ गतजीवितौ ॥ २५ ॥

हे वैदेही ! यदि ये दोनों भाई मर गये होते, तो यह पुष्पक नामक दिव्य विमान, जिसमें तुम बैठी हो, कभी तुमको बैठा कर न उड़ता। (क्योंकि ये विधवाओं को अपने ऊपर नहीं चढ़ाता) ॥ २५ ॥

हतवीरप्रधाना हि हतोत्साहा निरुद्यमा ।
सेना भ्रमति संख्येषु हतकर्णेव नौर्जले ॥ २६ ॥

सेना के मालिक के मारे जाने पर सैनिकों का उत्साह जाता रहता है। वे कभी काम नहीं कर सकते, बल्कि वे मल्लाह रहित जल में पड़ी नाव की तरह डगमगाने लगते हैं ॥ २६ ॥

इयं पुनरसंभ्रान्ता निरुद्विग्ना *तपस्विनी ।
सेना रक्षति काकुत्स्थौ मया प्रीत्या निवेदितौ ॥ २७ ॥

हे तपस्विनी ! देखो, यह वानरी सेना उद्वेग रहित और सावधान हो, अपने दोनों मालिकों की रखवाली कर रही है। इसीसे मैंने तुमसे प्रीतिपूर्वक यह कहा कि, ये दोनों जीवित हैं ॥ २७ ॥

सा त्वं भव सुविस्रब्धा अनुमानैः सुखोदयैः ।
अहतौ पश्य काकुत्स्थौ स्नेहादेतद्ब्रवीमि ते ॥ २८ ॥

अतः तुम इन सुखसूचक चिन्हों के द्वारा इन दोनों के जीवित होने का विश्वास करो। मैं स्नेहवश तुमसे यह कह रही हूँ ॥ २८ ॥

अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन ।
चारित्रसुखशीलत्वात्प्रविष्टासि मनो मम ॥ २९ ॥

---

* पाठान्तरे—" तरस्विनी । "

हे सीते! मैंने न कभी तुमसे झूठ कहा और न कहूँगी। क्योंकि तुमने अपने शुभाचरणों के प्रभाव से मेरे मन में अपने लिये स्थान बना लिया है ॥ २६ ॥

नेमौ शक्यौ रणे जेतुं सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।
तादृशं दर्शनं दृष्ट्वा मया चावेदितं तव ॥ ३० ॥

इन दोनों को युद्ध में इन्द्रादि देवता तथा असुर भी नहीं हरा सकते। मैंने भली भाँति सोच विचार तथा इनको देख कर, तुमसे ऐसा कहा है ॥ ३० ॥

इदं च सुमहच्चिह्नं [1]शनैः पश्यस्व मैथिलि ।
निःसंज्ञावप्युभावेतौ नैव लक्ष्मीर्वियुज्यते ॥ ३१ ॥

हे सीते! सावधानतापूर्वक ज़रा इस चमत्कार को तो देख। यद्यपि ये दोनों बाणों की चोट से मूर्छित हो पड़े हुए हैं, तथापि इनके मुखमण्डल की कान्ति ज्यों की त्यों बनी हुई है ॥ ३१ ॥

प्रायेण गतसत्त्वानां पुरुषाणां गतायुषाम् ।
दृश्यमानेषु वक्त्रेषु परं भवति वैकृतम् ॥ ३२ ॥

बहुधा शक्तिरहित अथवा प्राणरहित और गतायु पुरुषों के मुखमण्डल पर मुर्दनी सी छा जाया करती है ॥ ३२ ॥

त्यज शोकं च मोहं च दुःखं च जनकात्मजे ।
रामलक्ष्मणयोरर्थे नाद्य शक्यमजीवितुम् ॥ ३३ ॥

हे जनकनन्दिनी! तुम शोक को, इस अपनी उलटी समझ को, और मनोव्यथा को त्याग दो। क्योंकि ये दोनों वीर श्रीराम और लक्ष्मण जीवित हैं, ये मर नहीं सकते ॥ ३३ ॥

---

१ शनैः—सावधानेन। (गो०)

श्रुत्वा तु वचनं तस्याः सीता सुरसुतोपमा ।
कृताञ्जलिरुवाचेदमेवमस्त्विति मैथिली ॥ ३४ ॥

देवकन्या के समान सीता त्रिजटा की इन बातों को सुन, हाथ जोड़ कर बोली ; हे त्रिजटे ! तुम्हारा वचन सत्य हो ॥ ३४ ॥

विमानं पुष्पकं तत्तु सन्निवर्त्य मनोजवम् ।
दीना त्रिजटया सीता लङ्कामेव प्रवेशिता ॥ ३५ ॥

तदनन्तर त्रिजटा मन के समान तेज चलने वाले पुष्पकविमान को लौटा कर, दुखियारी सीता को लङ्का में ले गयी ॥ ३५ ॥

ततस्त्रिजटया सार्धं पुष्पकादवरुह्य सा ।
अशोकवनिकामेव राक्षसीभिः प्रवेशिता ॥ ३६ ॥

त्रिजटा के साथ विमान से उतर सीता राक्षसियों सहित अशोकवाटिका में आयी ॥ ३६ ॥

प्रविश्य सीता बहुवृक्षषण्डां
तां राक्षसेन्द्रस्य विहारभूमिम् ।
सम्प्रेक्ष्य सञ्चिन्त्य च राजपुत्रौ
परं विषादं समुपाजगाम ॥ ३७ ॥

इति अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥

सीता ने नाना वृक्षों से युक्त राक्षसराज की उस विहारस्थली में प्रवेश किया और श्रीरामचन्द्र एवं लक्ष्मण का चिन्तवन कर वह बहुत दुःखी हुई ॥ ३७ ॥

युद्धकाण्ड का अड़तालीसवां सर्ग पूरा हुआ ।

—※—

एकोनपञ्चाशः सर्गः

—※—

घोरेण शरबन्धेन बद्धौ दशरथात्मजौ।
निःश्वसन्तौ यथा नागौ शयानौ रुधिरोक्षितौ ॥ १ ॥

घोर बाणबन्धन में बँधे हुए और सर्प की तरह फुफकारते हुए, दोनों दशरथकुमार रुधिर से तरबतर पड़े हुए थे ॥ १ ॥

सर्वे ते वानरश्रेष्ठाः ससुग्रीवा महाबलाः।
परिवार्य महात्मानौ तस्थुः शोकपरिप्लुताः ॥ २ ॥

महाबली सुग्रीव प्रमुख समस्त वानरश्रेष्ठ उन दोनों वीरों को चारों ओर से घेर कर उनकी रक्षा कर रहे थे और शोक में डूबे हुए थे ॥ २ ॥

एतस्मिन्नन्तरे रामः प्रत्यबुध्यत वीर्यवान्।
स्थिरत्वात्सत्त्वयोगाच्च शरैः सन्दानितोऽपि सन् ॥ ३ ॥

इतने में वीर्यवान् तथा पराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी नागपाश से जकड़े हुए होने पर भी, सचेत हुए। मानों सो कर जागे हों ॥ ३ ॥

ततो दृष्ट्वा सरुधिरं विषण्णं गाढमर्पितम्।
भ्रातरं दीनवदनं पर्यदेवयदातुरः ॥ ४ ॥

(और उठते ही) रुधिर से तर, दीनवदन और अति विषण्ण भाई लक्ष्मण को देख, वे आतुर हो, रोने लगे ॥ ४ ॥

किंनु मे सीतया कार्यं किं कार्यं जीवितेन वा।
शयानं योऽद्य पश्यामि भ्रातरं युधि निर्जितम् ॥ ५ ॥

जब मैं अपने भाई को युद्ध में पराजित हो अचेत पड़ा देख रहा हूँ, तब मैं सीता को ले कर ही और स्वयं जीवित रह कर ही क्या करूँगा ॥ ५ ॥

शक्या सीतासमा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता ।
न लक्ष्मणसमो भ्राता सचिवः [1]साम्परायिकः ॥ ६ ॥

इस संसार में खोजने पर सीता के समान स्त्री भले ही मिल जाय, किन्तु लक्ष्मण के समान भाई, सहायक और चतुर योद्धा नहीं मिल सकता ॥ ६ ॥

परित्यक्ष्याम्यहं *प्राणान्वानराणां तु पश्यताम् ।
यदि पञ्चत्वमापन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ ७ ॥

यदि कहीं सुमित्रानन्दन मर गये, तो मैं इन वानरों के सामने ही अपनी जान दे दूँगा ॥ ७ ॥

किंनु वक्ष्यामि कौसल्यां मातरं किंनु कैकयीम् ।
कथमम्बां सुमित्रां च पुत्रदर्शनलालसाम् ॥ ८ ॥

क्योंकि अयोध्या में जाकर पुत्रदर्शनाभिलाषिणी माता सुमित्रा से और अपनी माता कौशल्या तथा कैकेयी से मैं क्या कहूँगा ॥ ८ ॥

विवत्सां वेपमानां च क्रोशन्तीं कुररीमिव ।
कथमाश्वासयिष्यामि यदि यास्यामि तं विना ॥ ९ ॥

यदि मैं लक्ष्मणरहित अयोध्या जाऊँ, तो बिना बछड़े की गौ की तरह काँपती और कुररी की तरह विलाप करती हुई सुमित्रा माता को मैं क्या कह कर धीरज बँधाऊँगा ॥ ९ ॥

---

१ साम्परायिकः—युद्धे साधुः । (गो०) * पाठान्तरे—"प्राणं ।"

कथं वक्ष्यामि शत्रुघ्नं भरतं च यशस्विनम् ।
मया सह वनं यातो विना तेन गतः पुनः ॥ १० ॥

लक्ष्मण को साथ ले मैं वन में आया और उनके विना अब अयोध्या में जा कर, मैं यशस्वी भरत और शत्रुघ्न से क्या कहूँगा ॥ १० ॥

उपालम्भं न शक्ष्यामि सोढुं बत सुमित्रया ।
इहैव देहं त्यक्ष्यामि न हि जीवितुमुत्सहे ॥ ११ ॥

माता सुमित्रा का उलहना मुझसे सह्य न होगा । अतएव यहीं पर शरीर त्यागना ठीक है—मैं अब जीवित नहीं रहना चाहता ॥ ११ ॥

धिङ् मां दुष्कृतकर्माणमनार्यं यत्कृते ह्यसौ ।
लक्ष्मणः पतितः शेते शरतल्पे गतासुवत् ॥ १२ ॥

मुझ पापी अनार्य को धिक्कार है, जिसके लिये लक्ष्मण, मृतक समान शरशय्या पर पड़े सो रहे हैं ॥ १२ ॥

त्वं नित्यं स विषण्णं मामाश्वासयसि लक्ष्मण ।
गतासुर्नाद्य शक्नोषि मामार्तमभिभाषितुम् ॥ १३ ॥

हे लक्ष्मण ! जब मैं घबड़ाता था, तब तुम मुझे धीरज बँधाते थे । पर अब जब मैं अत्यन्त दुःखी हो रहा हूँ, तब तुम निर्जीव के समान होने के कारण मुझसे बातचीत नहीं कर सकते ॥ १३ ॥

येनाद्य निहता युद्धे राक्षसा विनिपातिताः ।
तस्यामेव क्षितौ वीरः स शेते निहतः परैः ॥ १४ ॥

हे वीर ! तुमने जिस संग्रामभूमि पर बहुत से राक्षस मार कर सुला दिये थे, उसी भूमि पर तुम शत्रु द्वारा बाणों से घायल हो स्वयं पड़े सो रहे हो ॥ १४ ॥

शयानः शरतल्पेऽस्मिन्स्वशोणितपरिप्लुतः ।
शरजालैश्चितो भाति भास्करोऽस्तमिव व्रजन् ॥ १५ ॥

इस बाणशय्या पर पड़े हुए और अपने रक्त से तर तुम्हारे शरीर में बाण ही बाण देख पड़ते हैं । इस समय तुम अस्ताचलगामी सूर्य की तरह जान पड़ते हो ॥ १५ ॥

बाणाभिहतमर्मत्वान्न शक्नोत्यभिभाषितुम् ।
रुजा चाब्रुवतोऽप्यस्य दृष्टिरागेण सूच्यते ॥ १६ ॥

तुम्हारे मर्मस्थल बाणों से विधे हुए हैं, इसीसे तुम बोल नहीं सकते ; पर तुम्हारे नेत्रों की लालिमा देखने से जान पड़ता है कि, तुम अत्यन्त पीड़ित हो रहे हो ॥ १६ ॥

यथैव मां वनं यान्तमनुयातो महाद्युतिः ।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम् ॥ १७ ॥

हे महाद्युति ! जिस प्रकार वन में आने के समय तुम मेरे पीछे पीछे आये थे ; उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे पीछे पीछे यमालय को चलूँगा ॥ १७ ॥

इष्टबन्धुजनो नित्यं मां च नित्यमनुव्रतः ।
इमामद्य गतोऽवस्थां ममानार्यस्य दुर्नयैः ॥ १८ ॥

यद्यपि इनको सभी भाइयों से प्रेम है ; तथापि यह सदा मेरे ही साथ रहते थे । सो मुझ दुष्ट की दुर्नीति के कारण ही आज यह इस दशा को प्राप्त हुए हैं ॥ १८ ॥

सुरुष्टेनापि वीरेण लक्ष्मणेन न संस्मरे ।
परुषं विप्रियं वाऽपि श्रावितं न कदाचन ॥ १९ ॥

मुझे स्मरण नहीं आता कि, शूरवीर लक्ष्मण ने क्रुद्ध होने पर भी कभी मुझसे कठोर या अप्रिय वचन कहे हों ॥ १९ ॥

विससर्जैकवेगेन पञ्चबाणशतानि यः ।
इष्वस्त्रेष्वधिकस्तस्मात्कार्तवीर्याच्च लक्ष्मणः ॥ २० ॥

ये लक्ष्मण पाँच पाँच सौ बाण एक बार छोड़ते थे; अतः बाण चलाने की विद्या में ये कार्तवीर्यार्जुन से भी बढ़ कर निपुण थे ॥२०॥

अस्त्रैरस्त्राणि यो हन्याच्छक्रस्यापि महात्मनः ।
सोऽयमुर्व्यां हतः शेते महार्हशयनोचितः ॥ २१ ॥

इन्द्र के चलाये अस्त्रों को अपने अस्त्रों से नष्ट करने की जिन महाबली में शक्ति थी और जो बड़ी बढ़िया सेजों पर सोने योग्य थे, सो आज भूमि पर मरे हुए पड़े हैं ॥ २१ ॥

तच्च मिथ्या प्रलप्तं मां प्रधक्ष्यति न संशयः ।
यन्मया न कृतो राजा राक्षसानां विभीषणः ॥ २२ ॥

देखो राक्षसों का राज्य मैंने विभीषण को देने के लिये कहा था किन्तु मैं उसे दे नहीं पाया । सो यह मिथ्याभाषण ही मुझे निस्सन्देह भस्म कर डालेगा ॥ २२ ॥

अस्मिन्मुहुर्ते सुग्रीव प्रतियातुमितोऽर्हसि ।
मत्वा हीनं मया राजन्रावणोऽभिद्रवेद्बली ॥ २३ ॥

हे सुग्रीव ! अब तुम यहाँ से इसी समय किष्किन्धा को लौट जाओ । क्योंकि मैं अब बलहीन हो गया हूँ । अतएव रावण तुमको असहाय पा कर, तुम्हारा तिरस्कार करेगा ॥ २३ ॥

अङ्गदं तु पुरस्कृत्य ससैन्यः ससुहृज्जनः ।
सागरं तर सुग्रीव नीलेन च नलेन च ॥ २४ ॥

अब तुम अङ्गद को आगे कर, नल और नील सहित सारी सेना को साथ ले समुद्र के पार चले जाओ ॥ २४ ॥

कृतं हनुमता कार्यं यदन्यैर्दुष्करं रणे ।
ऋक्षराजेन तुष्यामि गोलाङ्गूलाधिपेन च ॥ २५ ॥

हनुमान ने युद्ध में जैसी बहादुरी दिखाई है, वह दूसरों के लिये दुष्कर है। मैं जाम्बवान् और ऋषभ के कार्यों से भी सन्तुष्ट हूँ ॥ २५ ॥

अङ्गदेन कृतं कर्म मैन्देन द्विविदेन च ।
युद्धं केसरिणा संख्ये घोरं सम्पातिना कृतम् ॥ २६ ॥

अङ्गद, मैन्द, द्विविद, केसरी तथा सम्पाति ने भी युद्ध में बड़ी बहादुरी दिखलाई है ॥ २६ ॥

गवयेन गवाक्षेण शरभेण गजेन च ।
अन्यैश्च हरिभिर्युद्धं मदर्थे त्यक्तजीवितैः ॥ २७ ॥

गवय, गवाक्ष, शरभ, गज तथा अन्य वानरों ने भी अपनी अपनी जानों को हथेली पर रख, मेरे लिये युद्ध में बड़े बड़े बहादुरी के कार्य किये हैं ॥ २७ ॥

न चातिक्रमितुं शक्यं दैवं सुग्रीव मानुषैः ।
यत्तु शक्यं वयस्येन सुहृदा च परन्तप ॥ २८ ॥

हे सुग्रीव ! मनुष्य में यह शक्ति नहीं कि, वह भाग्य की रेख पर मेख मार दे। तो भी मित्र को मित्र के लिये और सुहृद को सुहृद के लिये जो करना चाहिये ॥ २८ ॥

कृतं सुग्रीव तत्सर्वं भवता धर्मभीरुणा ।
मित्रकार्यं कृतमिदं भवद्भिर्वानरर्षभाः ॥ २९ ॥

हे कपिश्रेष्ठ सुग्रीव ! अधर्म से डरने वाले आपने सब मित्रोचित कार्य मेरे लिये किया ॥ २६ ॥

अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं गन्तुमर्हथ ।
सुश्रुवुस्तस्य ते सर्वे वानराः परिदेवनम् ॥३०॥
वर्तयाञ्चक्रुरश्रूणिनेत्रैः [1]कृष्णेतरेक्षणाः ।
ततः सर्वाण्यनीकानि स्थापयित्वा विभीषणः ॥३१॥

अब मैं सब को बिदा करता हूँ, अब जिसकी जहाँ जाने की इच्छा हो चला जाय। श्रीरामचन्द्र जी का इस प्रकार विलाप सुन, वानर रो पड़े। उनके नेत्र रोते रोते लाल हो गये। इतने में विभीषण सब सेना को यथास्थान स्थापित कर ॥ ३० ॥ ३१ ॥

आजगाम गदापाणिस्त्वरितो यत्र राघवः ।
तं दृष्ट्वा त्वरितं यान्तं नीलाञ्जनचयोपमम् ।
वानरा दुद्रुवुः सर्वे मन्यमानास्तु रावणिम् ॥३२॥

इति एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥

और हाथ में गदा लिये हुए श्रीरामचन्द्र जी के पास आ पहुँचे। काजल की तरह काले रंग के विभीषण को त्वरापूर्वक आते देख और उनको मेघनाद समझ सब वानर भागने लगे ॥ ३२ ॥

युद्धकाण्ड का उनचासवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

१ कृष्णेतरेक्षणाः—रक्तेक्षणा इत्यर्थः। (गो०)

पञ्चाशः सर्गः

—※—

अथोवाच महातेजा हरिराजो महाबलः ।
किमियं व्यथिता सेना मूढवातेव नौर्जले ॥ १ ॥

महातेजस्वी एवं महाबली कपिराज सुग्रीव जी बोले कि, यह सेना क्यों उसी तरह डाँवाडोल हो रही है, जैसे प्रचण्ड पवन के लगने से जल में नाव डगमगाने लगती है ॥ १ ॥

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा वालिपुत्रोऽङ्गदोऽब्रवीत् ।
न त्वं पश्यसि रामं च लक्ष्मणं च महाबलम् ॥ २ ॥
शरजालाचितौ वीरावुभौ दशरथात्मजौ ।
शरतल्पे महात्मानौ शयानौ रुधिरोक्षितौ ॥ ३ ॥

सुग्रीव के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए वालिपुत्र अङ्गद ने कहा—क्या आप नहीं देखते कि, ये दोनों बलवान दशरथनन्दन वीर श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण बाणों से विधे हुए और लोहू में सने शरशय्या पर पड़े हुए हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

अथाब्रवीद्वानरेन्द्रः सुग्रीवः पुत्रमङ्गदम् ।
नानिमित्तमिदं मन्ये भवितव्यं भयेन तु ॥ ४ ॥

इस पर वानरराज सुग्रीव ने अपने पुत्र अङ्गद से कहा—इनके भयभीत होने का केवल यही एक कारण नहीं है, किन्तु मेरी समझ में कुछ और भी है ॥ ४ ॥

विषण्णवदना ह्येते त्यक्तप्रहरणा दिशः ।
प्रपलायन्ति हरयस्त्रासादुत्फुल्ललोचनाः ॥ ५ ॥

देखो, इन वानरों के चेहरों पर उदासी छायी हुई है, ये वृक्ष और शिला रूपी अपने आयुधों को पटक पटक कर भाग रहे हैं। डर के मारे इनके नेत्र चञ्चल हो रहे हैं ॥ ५ ॥

अन्योन्यस्य न लज्जन्ते न निरीक्षन्ति पृष्ठतः ।
विप्रकर्षन्ति चान्योन्यं पतितं लङ्घयन्ति च ॥ ६ ॥

भागते समय न तो एक दूसरे से लजाते हैं और न मुड़ कर पीछे की ओर ही देखते हैं। ये एक दूसरे को घसीटते हुए भाग रहे हैं और जो बीच में गिर पड़ता है, उसकी कुछ भी परवाह न कर उसे लांघ कर भागते चले जाते हैं ॥ ६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरो गदापाणिर्विभीषणः ।
सुग्रीवं वर्धयामास राघवं च *जयाशिषा ॥ ७ ॥

इतने में हाथ में गदा लिये हुए वीरवर विभीषण आ पहुँचे। उन्होंने सुग्रीव और श्रीरामचन्द्र को "जय हो" "जय हो" कह कर, आशीर्वाद दिया ॥ ७ ॥

विभीषणं तं सुग्रीवो दृष्ट्वा वानरभीषणम् ।
ऋक्षराजं समीपस्थं जाम्बवन्तमुवाच ह ॥ ८ ॥

वानरों के भय का कारण विभीषण को जान, सुग्रीव ने समीप बैठे हुए रीछों के राजा जाम्बवान से कहा ॥ ८ ॥

---

* पाठान्तरे—"निरैक्षत।"

विभीषणोऽयं सम्प्राप्तो यं दृष्ट्वा वानरर्षभाः ।
विद्रवन्ति परित्रस्ता रावणात्मजशङ्कया ॥ ९ ॥

देखो, यह विभीषण आये हैं, जिनको समस्त वानरश्रेष्ठ, मेघनाद समझ और भयभीत हो भाग रहे हैं ॥ ९ ॥

शीघ्रमेतान्सुसन्त्रस्तान्बहुधा विप्रधावितान् ।
पर्यवस्थापयाख्याहि विभीषणमुपस्थितम् ॥ १० ॥

सो तुम शीघ्र जाओ और उन त्रस्त और भागते हुए वानरों को यह समझा कर कि, यह मेघनाद नहीं है, विभीषण हैं, रोको ॥१०॥

सुग्रीवेणैवमुक्तस्तु जाम्बवानृक्षपार्थिवः ।
वानरान्सान्त्वयामास सन्निरुध्य प्रधावतः ॥ ११ ॥

जब सुग्रीव ने यह कहा, तब रीछों के राजा जाम्बवान ने वानरों को समझा कर, उन भागते हुए वानरों को, भागने से रोका ॥ ११ ॥

ते निवृत्ताः पुनः सर्वे वानरास्त्यक्तसम्भ्रमाः ।
ऋक्षराजवचः श्रुत्वा तं च दृष्ट्वा विभीषणम् ॥ १२ ॥

जाम्बवान की बातें सुन और विभीषण को देख, समस्त वानरों का भ्रम दूर हो गया और वे लौट आये ॥ १२ ॥

विभीषणस्तु रामस्य दृष्ट्वा गात्रं शरैश्चितम् ।
लक्ष्मणस्य च धर्मात्मा बभूव व्यथितेन्द्रियः ॥ १३ ॥

श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी के शरीरों को बाणों से बिधा हुआ देख, धर्मात्मा विभीषण बहुत विकल हुए ॥ १३ ॥

जलक्लिन्नेन हस्तेन तयोर्नेत्रे प्रमृज्य च ।
शोकसम्पीडितमना रुरोद विललाप च ॥ १४ ॥

हाथ में जल ले उन दोनों वीर राजकुमारों की आँखें धो कर, विभीषण शोकाकुल हो रोने लगे और विलाप करने लगे ॥ १४ ॥

इमौ तौ सत्त्वसम्पन्नौ विक्रान्तौ प्रियसंयुगौ ।
इमामवस्थां गमितौ राक्षसैः कूटयोधिभिः ॥ १५ ॥

वे विलाप कर कहने लगे—देखो, इन बलवान, पराक्रमी और युद्धप्रिय दोनों भाइयों को, कपटयुद्ध करने वाले राक्षसों ने यह क्या गति बना डाली है ॥ १५ ॥

भ्रातुः पुत्रेण मे तेन दुष्पुत्रेण दुरात्मना ।
राक्षस्या जिह्मया बुद्ध्या वञ्चितावृजुविक्रमौ ॥ १६ ॥

मेरे भाई के दुष्ट कुपुत्र ने, राक्षसी कपटबुद्धि से, इन सीधेसादे पराक्रमी लोगों को धोखा दिया है ॥ १६ ॥

शरैरिमावलं विद्धौ रुधिरेण समुक्षितौ ।
वसुधायामिमौ सुप्तौ दृश्येते [1]शल्यकाविवौ ॥ १७ ॥

देखो, ये दोनों भाई बाणों से बिधे और लोहू में भींगे हुए, दो सेही जानवरों की तरह दिखलाई पड़ रहे हैं ॥ १७ ॥

ययोर्वीर्यमुपाश्रित्य प्रतिष्ठा काङ्क्षिता मया ।
तावुभौ देहनाशाय प्रसुप्तौ पुरुषर्षभौ ॥ १८ ॥

हा ! जिनके बलबूते पर मैंने अपनी मानप्रतिष्ठा प्राप्त करने की आशा की थी, वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ अपने शरीर का नाश करने के लिये पृथिवी पर पड़े सो रहे हैं ॥ १८ ॥

---

१ शल्यकौ—कण्टकिवराहौ । (गो०)

जीवन्नद्य विपन्नोऽस्मि नष्टराज्यमनोरथः ।
प्राप्तप्रतिज्ञश्च रिपुः सकामो रावणः कृतः ॥ १९ ॥

आज मैं जीता हुआ मर गया। मन में राज्य प्राप्त करने की जो आशा लगी हुई थी, वह भी नष्ट हो गयी। अब तो वैरी रावण ही की प्रतिज्ञा पूरी हुई और उसका मनोरथ ही सफल हुआ ॥ १९ ॥

एवं विलपमानं तं परिष्वज्य विभीषणम् ।
सुग्रीवः सत्त्वसम्पन्नो हरिराजोऽब्रवीदिदम् ॥ २० ॥

इस प्रकार विलाप करते हुए विभीषण को गले लगा, बलवान सुग्रीव ने यह कहा ॥ २० ॥

राज्यं प्राप्स्यसि धर्मज्ञ लङ्कायां नात्र संशयः ।
रावणः सह पुत्रेण सकामं नेह लप्स्यते ॥ २१ ॥

हे धर्मज्ञ ! तुमको लङ्का का राज्य निश्चय ही मिलेगा और रावण तथा उसके पुत्र इन्द्रजीत का मनोरथ कभी पूरा न होगा ॥ २१ ॥

न रुजा पीडितावेतावुभौ राघवलक्ष्मणौ ।
त्यक्त्वा मोहं वधिष्येते सगणं रावणं रणे ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण इन दोनों को यह चोट विशेष हानिकारक न होगी। दोनों मूर्छा से जाग कर, सपरिवार रावण को मारेंगे ॥ २२ ॥

तमेनं सान्त्वयित्वा तु समाश्वास्य च राक्षसम् ।
सुषेणं श्वशुरं पार्श्वे सुग्रीवस्तमुवाच ह ॥ २३ ॥

कपिराज सुग्रीव इस प्रकार विभीषण को समझा, पास खड़े हुए अपने ससुर सुषेण नामक वानर से बोले—॥ २३ ॥

सह शूरैर्हरिगणैर्लब्धसंज्ञावरिन्दमौ ।
गच्छ त्वं भ्रातरौ गृह्य किष्किन्धां रामलक्ष्मणौ ॥२४॥

जब ये दोनों भाई अर्थात् श्रीराम और लक्ष्मण सचेत हो जाँय, तब तुम शूर वानरों सहित इनको अपने साथ ले, किष्किन्धा को चले जाओ ॥ २४ ॥

अहं तु रावणं हत्वा सपुत्रं सहबान्धवम् ।
मैथिलीमानयिष्यामि शक्रो नष्टामिव श्रियम् ॥ २५ ॥

रहा मैं, सो मैं तो पुत्रों तथा भाई बंदों सहित रावण को मार कर, सीता को उसी प्रकार छुड़ा कर और ले कर आऊँगा, जिस प्रकार इन्द्र नष्टहुई राज लक्ष्मी को लाये थे ॥ २५ ॥

श्रुत्वैतद्वानरेन्द्रस्य सुषेणो वाक्यमब्रवीत् ।
दैवासुरं महद्युद्धमनुभूतं[1] सुदारुणम् ॥ २६ ॥

कपिराज सुग्रीव के इन वचनों को सुन, सुषेण बोले—देवताओं और असुरों का जो बड़ा घोर संग्राम हुआ था, उसका मुझको हाल मालूम है ॥ २६ ॥

तदा स्म दानवा देवाञ्शरसंस्पर्शकोविदाः ।
निजघ्नुः शस्त्रविदुषश्छादयन्तो मुहुर्मुहुः ॥ २७ ॥

उस युद्ध में भी बाण चलाने की विद्या में निपुण दैत्यगण छिपे छिपे, इसी तरह शस्त्रविद्या में कुशल देवताओं को बार बार बाणों से तोप देते थे ॥ २७ ॥

तानार्तान्नष्टसंज्ञांश्च परासूंश्च बृहस्पतिः ।
विद्याभिर्मन्त्रयुक्ताभिरोषधीभिश्चिकित्सति ॥ २८ ॥

---

१ अनुभूतं—मया ज्ञातं । (गो०)

जब देवता पीड़ित, मूर्छित और प्राणहीन हो जाते, तब बृहस्पति जी मंत्रों के प्रयोग से तथा औषधियों के उपचार से उनको पुनः जीवित कर देते थे ॥ २८ ॥

तान्यौषधान्यानयितुं क्षीरोदं यान्तु सागरम् ।
जवेन वानराः शीघ्रं सम्पातिपनसादयः ॥ २९ ॥

उन जड़ी बूटियों के लाने के लिये सम्पाति, पनस आदि वानर शीघ्र ही क्षीरसमुद्र के तट पर जांय ॥ २९ ॥

हरयस्तु विजानन्ति पार्वतीस्ता महौषधीः ।
सञ्जीवकरणीं दिव्यां विशल्यां देवनिर्मिताम् ॥ ३० ॥

क्योंकि ये वानर उस पर्वतस्थित उन दोनों रूखरियों को भली भांति जानते हैं। उनमें से एक तो दिव्य *सञ्जीवनी है और दूसरी देवताओं की बनाई हुई †विशल्या है ॥ ३० ॥

चन्द्रश्च नाम द्रोणश्च क्षीरोदे सागरोत्तमे ।
अमृतं यत्र मथितं तत्र ते परमौषधी ॥ ३१ ॥

जहाँ श्रेष्ठ क्षीरसागर मथा गया था, वहाँ चक्र और द्रोण नाम के दो पर्वत हैं। उन्हीं पर बड़े काम की ये दोनों बूटियाँ मिलती हैं ॥ ३१ ॥

ते तत्र निहिते देवैः पर्वते परमौषधी ।
अयं वायुसुतो राजन्हनुमांस्तत्र गच्छतु ॥ ३२ ॥

ये दोनों बूटियाँ उन्ही दोनों पर्वतों में देवताओं द्वारा छिपायी गयी है। हे राजन्! उनको लाने के लिये हनुमान वहाँ जाँय ॥३२॥

---

* सञ्जीवनी से मृतप्राय रोगी जीवित होते हैं और † विशल्या के प्रयोग से घाव की पीड़ा दूर होती है और घाव भी पुर जाता है।

एतस्मिन्नन्तरे वायुर्मेघांश्चापि सविद्युतः ।
पर्यस्यन्सागरे तोयं कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ ३३ ॥

इसी बीच में प्रचण्ड पवन चलने लगा, बादलों में बिजली कड़कने लगी, समुद्र का जल हिलोरने लगा और ज़मीन काँपने लगी ॥ ३३ ॥

महता पक्षवातेन सर्वद्वीपमहाद्रुमाः ।
निपेतुर्भग्नविटपाः समूला लवणाम्भसि ॥ ३४ ॥

बड़े बड़े पंखों के हिलने से उत्पन्न वायु से सब टापुओं के बड़े बड़े पेड़, पत्तों और शाखाओं से रहित हो उखड़ उखड़ कर समुद्र में जा गिरे ॥ ३४ ॥

अभवन्पन्नगास्त्रस्ता [1]भोगिनस्तत्रवासिनः ।
शीघ्रं सर्वाणि [2]यादांसि जग्मुश्च लवणार्णवम् ॥ ३५ ॥

लङ्काद्वीप में रहने वाले समस्त बड़े बड़े सर्प और जलजन्तु मारे डर के शीघ्रतापूर्वक खारी समुद्र के जल में जा छिपे ॥ ३५ ॥

ततो मुहूर्ताद्गरुडं वैनतेयं महाबलम् ।
वानरा ददृशुः सर्वे ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ३६ ॥

इस उत्पात के एक मुहूर्त बाद जलते हुए अग्नि के समान प्रदीप्त विनतातनय गरुड़ को वानरों ने वहाँ देखा ॥ ३६ ॥

तमागतमभिप्रेक्ष्य नागास्ते विप्रदुद्रुवुः ।
यैस्तौ सत्पुरुषौ बद्धौ शरभूतैर्महाबलौ ॥ ३७ ॥

---

१ भोगिनः—प्रशस्तकायाः । (गो०) २ यादांसि—जलजन्तवश्च । (गो०)

गरुड़ जी को आते देख, वे साँप भागे जिन्होंने बाण रूप से उन दोनों महाबली सत्पुरुषों को बाँध लिया था ॥ ३७ ॥

ततः सुपर्णः काकुत्स्थौ दृष्ट्वा प्रत्यभिनन्दितः ।
विममर्श च पाणिभ्यां मुखे चन्द्रसमप्रभे ॥ ३८ ॥

तदनन्तर गरुड़ जी ने उन दोनों राजकुमारों को देख और उनका अभिनन्दन कर, उनके अंगों को अपने हाथ से स्पर्श कर दोनों के चन्द्रतुल्य मुखों को सुहराया ॥ ३८ ॥

वैनतेयेन संस्पृष्टास्तयोः संरुरुहुर्व्रणाः ।
सुवर्णे च तनू स्निग्धे तयोराशु बभूवतुः ॥ ३९ ॥

गरुड़ जी के छूते ही दोनों के घाव भर गये। उन दोनों वीरों के शरीर पहिले के समान सुन्दर रंग वाले और चिकने हो गये ॥ ३९ ॥

तेजो वीर्यं बलं चौज उत्साहश्च महागुणः ।
प्रदर्शनं च बुद्धिश्च स्मृतिश्च द्विगुणं तयोः ॥ ४० ॥

उन दोनों का तेज, पराक्रम, बल, कान्ति, उत्साह, सूक्ष्मार्थ परिज्ञान, विवेक, स्मृतिशक्ति आदि गरुड़ जी के करस्पर्श से पूर्व की अपेक्षा अब दुगुने अर्थात् बहुत अधिक हो गये ॥ ४० ॥

तावुत्थाप्य महावीर्यौ गरुडो वासवोपमौ ।
उभौ तौ सस्वजे हृष्टो रामश्चैनमुवाच ह ॥ ४१ ॥

इन्द्र के समान महाबलवान दोनों भाइयों को उठा कर और परम प्रसन्न हो कर, गरुड़ जी ने अपने गले लगाया। तब श्रीरामचन्द्र जी ने उनसे कहा ॥ ४१ ॥

भवत्प्रसादाद्व्यसनं रावणिप्रभवं महत् ।
आवामिह व्यतिक्रान्तौ पूर्ववद्बलिनौ कृतौ ॥ ४२ ॥

आपके अनुग्रह से हम इन्द्रजीत की उत्पन्न की हुई घोर विपत्ति से छूट गये और आपके किये प्रयत्न से हमारे शरीरों में पहिले जैसा बल पराक्रम आ गया है ॥ ४२ ॥

यथा तातं दशरथं यथाऽजं च पितामहम् ।
तथा भवन्तमासाद्य हृदयं मे प्रसीदति ॥ ४३ ॥

इस समय आपको देख मुझे वैसी ही प्रसन्नता हो रही है, जैसी कि, पितामह महाराज अज और पिता महाराज दशरथ के मिलने से प्राप्त होती ॥ ४३ ॥

को भवान्रूपसम्पन्नो दिव्यस्रगनुलेपनः ।
वसानो विरजे वस्त्रे दिव्याभरणभूषितः ॥ ४४ ॥

आप रूपवान हैं, दिव्य-पुष्प-माला पहिने हुए तथा सुगन्धित चन्दनादि लगाये हुए हैं। आप निर्मल वस्त्र धारण किये हुए हैं और अच्छे अच्छे आभूषणों से भूषित हैं। यह तो बतलाइये, आप हैं कौन ? ॥ ४४ ॥

तमुवाच महातेजा वैनतेयो महाबलः ।
पतत्रिराजः प्रीतात्मा हर्षपर्याकुलेक्षणः ॥ ४५ ॥

इस पर महातेजस्वी और महाबलवान विनतानन्दन पक्षिराज गरुड़ जी आनन्द से उत्फुल्लनयन हो प्रसन्नतापूर्वक बोले ॥ ४५ ॥

अहं सखा ते काकुत्स्थ प्रियः प्राणो बहिश्चरः ।
गरुत्मानिह सम्प्राप्तो युवाभ्यां साह्यकारणात् ॥ ४६ ॥

हे काकुत्स्थ ! मैं बाहिर घूमने वाला, तुम्हारा प्राणों के समान प्यारा मित्र हूँ । मेरा नाम गरुड़ है और मैं आपकी सहायता करने को यहाँ आया हूँ ॥ ४६ ॥

असुरा वा महावीर्या दानवा वा महाबलाः ।
सुराश्चापि सगन्धर्वाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम् ॥ ४७ ॥
नेमं मोक्षयितुं शक्ताः शरबन्धं सुदारुणम् ।
मायाबलादिन्द्रजिता निर्मितं क्रूरकर्मणा ॥ ४८ ॥

बड़े बड़े पराक्रमी असुर अथवा महाबली इन्द्र को आगे कर, गन्धर्वों सहित देवता भी यदि चाहते कि, तुमको इस अत्यन्त कठिन बाणबंधन से छुड़ा लें, तो वे भी नहीं छुड़ा सकते थे । क्योंकि क्रूरकर्मा इन्द्रजीत ने ये बन्धन माया के बल से बनाये हैं ॥४७॥४८॥

एते नागाः काद्रवेयास्तीक्ष्णदंष्ट्रा विषोल्बणाः ।
रक्षोमायाप्रभावेन शरा भूत्वा त्वदाश्रिताः ॥ ४९ ॥

हे रघुनन्दन ! ये नाग कद्रू के पुत्र हैं, इनके बड़े पैने दाँत हैं और ये बड़े ही विषैले हैं । परन्तु मेघनाद की माया के प्रभाव से ये सर्प, बाण रूप हो कर, आपको आ आ कर काटते थे ॥ ४६ ॥

सभाग्यश्चासि धर्मज्ञ राम सत्यपराक्रम ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा समरे रिपुघातिना ॥ ५० ॥

हे सत्यपराक्रम धर्मज्ञ राम ! तुम समर में शत्रुओं को मारने वाले अपने भाई लक्ष्मण सहित, बड़े भाग्यवान हो ॥ ५० ॥

इमं श्रुत्वा तु वृत्तान्तं त्वरमाणोऽहमागतः ।
सहसा युवयोः स्नेहात्सखित्वमनुपालयन् ॥ ५१ ॥

मैं इस वृत्तान्त को सुनते ही, आप दोनों के प्रति स्नेह होने के कारण, मित्रधर्म का पालन करने को, दौड़ा हुआ, यहां आया हूँ (अर्थात् आप दोनों इस लिये भाग्यवान् हैं जो मुझे आपकी इस विपत्ति की सूचना शीघ्र मिल गयी) ॥ ५१ ॥

मोक्षितौ च महाघोरादस्मात्सायकबन्धनात् ।
अप्रमादश्च कर्तव्यो युवाभ्यां नित्यमेव हि ॥ ५२ ॥

इस महादारुण बाणबंधन से मैंने आपको मुक्त कर दिया, अब आप लोगों को प्रमाद छोड़ कर, बड़ी सावधानी से युद्ध सम्बन्धी कार्य सदा करने चाहिये ॥ ५२ ॥

प्रकृत्या राक्षसाः सर्वे संग्रामे कूटयोधिनः ।
शूराणां शुद्धभावानां भवतामार्जवं बलम् ॥ ५३ ॥

क्योंकि राक्षस लोग स्वभाव ही से संग्राम करने में बड़े धोखेबाज़ होते हैं और शूरवीर होने के कारण आप लोग शुद्धभाव ही को श्रेष्ठबल समझते हैं ॥ ५३ ॥

तन्न विश्वसितव्यं वो राक्षसानां रणाजिरे ।
एतेनैवोपमानेन नित्यं जिह्मा हि राक्षसाः ॥ ५४ ॥

अतः युद्ध में इन दुष्ट राक्षसों का आप विश्वास न करें और राक्षसों के कपटयुद्ध करने के विषय में, आप मेघनाद ही का उदाहरण ले लें ॥ ५४ ॥

एवमुक्त्वा ततो रामं सुपर्णः सुमहाबलः ।
परिष्वज्य सुहृत्स्निग्धमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥ ५५ ॥

महाबली गरुड़ जी, इस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी से कह और उनसे बड़ी प्रीति के साथ मिल भेंट कर, मधुर वाणी से बोले ॥ ५५ ॥

सखे राघव धर्मज्ञ रिपूणामपि वत्सल ।
अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि गमिष्यामि यथागतम् ॥ ५६ ॥

हे धर्मज्ञ मित्र राघव ! आप तो शत्रु पर भी दया दिखलाने वाले हैं। अब यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं जहाँ से आया हूँ, वहाँ लौट कर चला जाऊँ ॥ ५६ ॥

न च कौतूहलं कार्यं सखित्वं प्रति राघव ।
कृतकर्मा रणे वीर सखित्वमनुवेत्स्यसि ॥ ५७ ॥

हे राघव ! इस मैत्री के बारे में आप कुछ भी विस्मय न करें। हे वीर ! जब आप इस युद्ध से निश्चिन्त हो चुकेंगे, तब आपको इस मैत्री का ठीक ठीक वृत्तान्त मालूम हो जायगा ॥ ५७ ॥

बालवृद्धावशेषां तु लङ्कां कृत्वा शरोर्मिभिः ।
रावणं च रिपुं हत्वा सीतां समुपलप्स्यसे ॥ ५८ ॥

आप अपने बाणों की लहरों से इस लङ्का को ऐसा कर देंगे कि, बूढ़े और बालकों को छोड़ और कोई न रह जायगा और आप अपने बैरी रावण को मार कर सीता को भी पावेंगे ॥ ५८ ॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं सुपर्णः शीघ्रविक्रमः ।
रामं च विरुजं कृत्वा मध्ये तेषां वनौकसाम् ॥ ५९ ॥

यह कह कर और श्रीरामचन्द्र जी को आरोग्य कर बड़े फुर्तीले गरुड़ जी ने वानरों के बीच बैठे हुए ॥ ५९ ॥

प्रदक्षिणं ततः कृत्वा परिष्वज्य च वीर्यवान् ।
जगामाकाशमाविश्य सुपर्णः पवनो यथा ॥ ६० ॥

उन महाबली श्रीरामचन्द्र जी को गले लगाया और उनकी परिक्रमा की। तदनन्तर गरुड़ जी आकाशमार्ग से उसी प्रकार तेज़ी से चले गये; जिस प्रकार पवन चलता है ॥ ६० ॥

*विरुजौ राघवौ दृष्ट्वा ततो वानरयूथपाः ।
सिंहनादांस्तदा नेदुर्लाङ्गूलान्दुधुवुस्तदा ॥ ६१ ॥

श्रीरामचन्द्र जी को नीरोग देख, वानरयूथपति पूँछें फटकार फटकार कर, सिंहनाद करने लगे ॥ ६१ ॥

ततो भेरीः समाजघ्नुर्मृदङ्गांश्चाप्यनादयन् ।
दध्मुः शङ्खान्संप्रहृष्टाः क्ष्वेलन्त्यपि यथापुरम् ॥ ६२ ॥

उन लोगों ने भेरी मृदङ्ग बजाये तथा अत्यन्त हर्षित हो शङ्ख-ध्वनि की तथा पहिले की तरह सिंहनाद किया ॥ ६२ ॥

आस्फोट्यास्फोट्य विक्रान्ता वानरा नगयोधिनः ।
द्रुमानुत्पाट्य विविधांस्तस्थुः शतसहस्रशः ॥ ६३ ॥

वृक्षों से लड़ने वाले सैकड़ों हज़ारों वीर वानर, उछल कूद मचाते, वृक्षों को उखाड़ और हाथों में ले, राक्षसों से लड़ने के लिये खड़े हो गये ॥ ६३ ॥

विसृजन्तो महानादांस्त्रासयन्तो निशाचरान् ।
लङ्काद्वाराण्युपाजग्मुर्योद्धुकामाः प्लवङ्गमाः ॥ ६४ ॥

वे वानर बड़े ज़ोर से गरजते और राक्षसों को भयभीत करते हुए, लड़ने के लिये लङ्का के द्वारों पर जा डटे ॥ ६४ ॥

---

* पाठान्तरे—"निरुजौ।"

ततस्तु भीमस्तुमुलो निनादो
बभूव शाखामृगयूथपानाम् ।
क्षये निदाघस्य यथा घनानां
नादः सुभीमो नदतां निशीथे ॥ ६५ ॥

इति पञ्चाशः सर्गः ॥

ग्रीष्म के अन्त में अर्थात् वर्षा के आरम्भ में, जिस प्रकार बादलों की गर्जना हुआ करती है; उसी प्रकार आधीरात को वानरों की सेना के गर्जने का अत्यन्त भयङ्कर शब्द हुआ ॥ ६५ ॥

युद्धकाण्ड का पचासवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—※—

एकपञ्चाशः सर्गः

—※—

तेषां सुतुमुलं शब्दं वानराणां तरस्विनाम् ।
नर्दतां राक्षसैः सार्धं तदा शुश्राव रावणः ॥ १ ॥

महापराक्रमी उन गर्जते हुए वानरों का तुमुल शब्द, राक्षसों सहित रावण ने सुना ॥ १ ॥

स्निग्धगम्भीरनिर्घोषं श्रुत्वा स निनदं भृशम् ।
सचिवानां ततस्तेषां मध्ये वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

उस स्पष्ट और गम्भीर ध्वनि को बारंबार सुन, मंत्रियों के बीच बैठा हुआ रावण कहने लगा ॥ २ ॥

यथाऽसौ सम्प्रहृष्टानां वानराणां समुत्थितः ।
बहूनां सुमहानादो मेघानामिव गर्जताम् ॥ ३ ॥

यह तो बादलों की गर्जन की तरह बहुत से वानरों का हर्षनाद सा सुन पड़ता है ॥ ३ ॥

व्यक्तं सुमहती प्रीतिरेतेषां नात्र संशयः ।
तथा हि विपुलैर्नादैश्चुक्षुभे वरुणालयः ॥ ४ ॥

इसमें अब कुछ भी सन्देह नहीं कि, वहाँ कोई बड़ी भारी खुशी की बात हुई है। क्योंकि इनके गर्जन से समुद्र क्षुब्ध हो उठा है ॥४॥

तौ तु बद्धौ शरैस्तीक्ष्णैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
अयं च सुमहान्नादः शङ्कां जनयतीव मे ॥ ५ ॥

वे दोनों भाई राम और लक्ष्मण तो पैने तीरों के बंधन से जकड़ दिये गये थे। सो अब इस महानाद को सुन, मेरे मन में शङ्का उत्पन्न हो गयी है ॥ ५ ॥

एतत्तु वचनं चोक्त्वा मन्त्रिणो राक्षसेश्वरः ।
उवाच नैर्ऋतांस्तत्र समीपपरिवर्तिनः ॥ ६ ॥

राक्षसेश्वर रावण मंत्रियों से इस प्रकार कह, पास बैठे हुए राक्षसों से बोला ॥ ६ ॥

ज्ञायतां तूर्णमेतेषां सर्वेषां वनचारिणाम् ।
शोककाले समुत्पन्ने हर्षकारणमुत्थितम् ॥ ७ ॥

तुम लोग जाओ और तुरन्त पता लगाओ कि, ऐसे शोक के समय में वानरों के इस प्रकार प्रसन्न होने का कारण क्या है ॥ ७ ॥

तथोक्तास्तेन संभ्रान्ताः प्राकारमधिरुह्य ते ।
ददृशुः पालितां सेनां सुग्रीवेण महात्मना ॥ ८ ॥

इस प्रकार रावण की आज्ञा पा वे घबड़ाये हुए राक्षस परकोटे की दीवाल पर चढ़ गये। वहाँ से उन्होंने सुग्रीव रक्षित वानरी सेना को देखा ॥ ८ ॥

तौ च मुक्तौ सुघोरेण शरबन्धेन राघवौ ।
समुत्थितौ महावेगौ विषेदुः प्रेक्ष्य राक्षसाः ॥ ९ ॥

और (देखा कि), वे महावेगवान दोनों रघुनन्दन उस अत्यन्त दारुण शरबन्धन से मुक्त हो कर उठ बैठे हैं। ये देख वे राक्षस दुःखी हुए ॥ ९ ॥

सन्त्रस्तहृदयाः सर्वे प्राकारादवरुह्य ते ।
विषण्णवदना घोरा राक्षसेन्द्र मुपस्थिताः ॥ १० ॥

और भयभीत हो परकोटे की दीवाल से नीचे उतर आये और अत्यन्त उदास हो रावण के पास गये ॥ १० ॥

तदप्रियं दीनमुखा रावणस्य निशाचराः ।
कृत्स्नं निवेदयामासुर्यथावद्वाक्यकोविदाः ॥ ११ ॥

उन वाक्यकोविद निशाचरों ने उदास हो कर, रावण को वहाँ का समस्त अप्रिय संवाद यथावत् सुनाया ॥ ११ ॥

यौ ताविन्द्रजिता युद्धे भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
निबद्धौ शरबन्धेन निष्प्रकम्पभुजौ कृतौ ॥ १२ ॥

उन्होंने कहा—महाराज ! जिन दोनों भाइयों को मेघनाद ने बाणबंधन से ऐसा जकड़ दिया था कि, वे दोनों अपनी भुजाओं को हिला डुला भी नहीं सकते थे ॥ १२ ॥

विमुक्तौ शरबन्धेन तौ दृश्येते रणाजिरे ।
पाशानिव गजौ छित्त्वा गजेन्द्रसमविक्रमौ ॥ १३ ॥

वे गजेन्द्र-सम-विक्रमी दोनों भाई समरभूमि में इस समय शर-बंधन से ऐसे मुक्त देख पड़ते हैं, जैसे जालबंधन को काटे हुए हाथी ॥ १३ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां राक्षसेन्द्रो महाबलः ।
चिन्ताशोकसमाक्रान्तो विषण्णवदनोऽब्रवीत् ॥ १४ ॥

महाबली राक्षसराज उनके ये वचन सुन, अत्यन्त चिन्तित हो शोकान्वित हो गया और उसका चेहरा फीका पड़ गया। वह कहने लगा ॥ १४ ॥

घोरैर्दत्तवरैर्बद्धौ शरैराशीविषोपमैः ।
अमोघैः सूर्यसङ्काशैः प्रमथ्येन्द्रजिता युधि ॥ १५ ॥

देखो, मेघनाद ने जिन बाणों से बलपूर्वक युद्ध में उन दोनों को बाँधा था, वे बाण विषधर सर्प की तरह भयङ्कर थे, वरदान से उसे वे प्राप्त हुए थे। वे बाण कभी निष्फल जाने वाले न थे और सूर्य की तरह चमचमाते थे ॥ १५ ॥

तदस्त्रबन्धमासाद्य यदि मुक्तौ रिपू मम ।
संशयस्थमिदं सर्वमनुपश्याम्यहं बलम् ॥ १६ ॥

यदि मेरे वे दोनों शत्रु उन शरबन्धनों में बंध कर भी मुक्त हो गये, तो मुझे अब अपनी समस्त राक्षसी सेना के जीवित रहने में सन्देह है ॥ १६ ॥

निष्फलाः खलु संवृत्ताः शरा पावकतेजसः ।
आदत्तं यैस्तु संग्रामे रिपूणां मम जीवितम् ॥ १७ ॥

बड़े अचंभे की बात है कि, जिन सब अस्त्रों ने रणक्षेत्र में बारंबार शत्रुओं का संहार किया था, आज वे ही अग्नि के समान तेजस्वी अस्त्र मेरे दुर्भाग्य से निष्फल हो गये और उन बाणों ने शत्रु को जीवनदान दे दिया ॥ १७ ॥

एवमुक्त्वा तु संक्रुद्धो निःश्वसन्नुरगो यथा ।
अब्रवीद्रक्षसां मध्ये धूम्राक्षं नाम राक्षसम् ॥ १८ ॥

यह कहता हुआ रावण बहुत क्रुद्ध हुआ और साँप की तरह फुंसकारने लगा। फिर वह राक्षसों के बीच बैठा हुआ धूम्राक्ष नामक राक्षस से बोला ॥ १८ ॥

बलेन महता युक्तो रक्षसां भीमविक्रम ।
त्वं वधायाभिनिर्याहि रामस्य सह वानरैः ॥ १९ ॥

तुम भयङ्कर पराक्रमी राक्षसों की बड़ी सेना लेकर समस्त वानरों सहित राम को मार डालने के लिये शीघ्र जाओ ॥ १६ ॥

एवमुक्तस्तु धूम्राक्षो राक्षसेन्द्रेण धीमता ।
कृत्वा प्रणामं संहृष्टो निर्जगाम नृपालयात् ॥ २० ॥

जब बुद्धिमान रावण ने धूम्राक्ष से इस प्रकार कहा, तब वह राक्षसराज को प्रणाम कर, प्रसन्न होता हुआ राजभवन से निकला ॥ २० ॥

अभिनिष्क्रम्य तद्द्वारं बलाध्यक्षमुवाच ह ।
त्वरयस्व बलं तूर्णं किं चिरेण युयुत्सतः ॥ २१ ॥

राजभवन के द्वार पर आ उसने सेनापति से कहा बहुत जल्द सेना तैयार करो, क्योंकि लड़ने वाले के लिये विलंब करने से लाभ ही क्या ॥ २१ ॥

धूम्राक्षवचनं श्रुत्वा बलाध्यक्षो बलानुगः ।
बलमुद्योजयामास रावणस्याज्ञया द्रुतम् ॥ २२ ॥

धूम्राक्ष के वचन सुन और रावण से आज्ञा ले, सेनापति ने तुरन्त सेना सजा दी ॥ २२ ॥

ते [1]बद्धघण्टा बलिनो घोररूपा निशाचराः ।
विगर्जमानाः संहृष्टा धूम्राक्षं पर्यवारयन् ॥ २३ ॥

अपनी शूरवीरता प्रदर्शित करने को कमर में घंटा बाँधे हुए भयङ्कर रूप वाले राक्षस योद्धा, अत्यन्त गर्जते हुए और प्रसन्न होते हुए धूम्राक्ष को घेर कर आ खड़े हुए ॥ २३ ॥

विविधायुधहस्ताश्च शूलमुद्गरपाणयः ।
गदाभिः पट्टिशैर्दण्डैरायसैर्मुसलैर्भृशम् ॥ २४ ॥

परिघैर्भिन्दिपालैश्च भल्लैः प्रासैः परश्वधैः ।
निर्ययू राक्षसा दिग्भ्यो नर्दन्तो जलदा यथा ॥ २५ ॥

उनके हाथों में विविध प्रकार के शूल, मुद्गर, गदा, पट्ट, डंडे, तलवारें, मूसल, परिघ, भिन्दिपाल (गदा विशेष), भाले, फरसे और कुल्हाड़ियाँ थीं । वे लोग बादलों की तरह चारो ओर से गर्जते हुए वहाँ से चले ॥ २४ ॥ २५ ॥

रथैः कवचिनस्त्वन्ये ध्वजैश्च समलंकृतैः ।
सुवर्णजालविहितैः खरैश्च विविधाननैः ॥ २६ ॥

बहुत से राक्षस कवच पहिने हुए थे और रथों पर सवार थे । रथों के ऊपर ध्वजाएँ फहरा रही थीं । सोने के जाल (ज़रदोज़ी

---

१ बद्धघण्टाः—शूरत्वज्ञापनाय कटिबद्धघण्टा इत्यर्थः । (गो०)

के काम की पर्दा-उघार) उन रथों पर पड़े हुए थे और उन रथों में विविध मुखाकृति के खच्चर जुते हुए थे ॥ २६ ॥

हयैः परमशीघ्रैश्च गजेन्द्रैश्च मदोत्कटैः ।
निर्ययू राक्षसव्याघ्रा व्याघ्रा इव दुरासदाः ॥ २७ ॥

बहुत से राक्षस सिपाही बहुत तेज़ चलने वाले घोड़ों पर सवार थे और बहुत से मतवाले हाथियों पर चढ़े हुए थे। वे राक्षसव्याघ्र दुर्धर्ष व्याघ्र की तरह चले ॥ २७ ॥

वृकसिंहमुखैर्युक्तं खरैः कनकभूषणैः ।
आरुरोह रथं दिव्यं धूम्राक्षः खरनिःस्वनः ॥ २८ ॥

भेड़िये और सिंह के मुख की आकृति के खच्चरों से जुते हुए सुवर्णभूषित दिव्य रथ में बैठा, गधे की तरह रेंकता हुआ, धूम्राक्ष वहाँ से चला ॥ २८ ॥

स निर्यातो महावीर्यो धूम्राक्षो राक्षसैर्वृतः ।
प्रहसन्पश्चिमद्वारं हनूमान्यत्र यूथपः ॥ २९ ॥

महाबली धूम्राक्ष, राक्षसों से घिरा हुआ और अट्टहास करता हुआ, लङ्का के पश्चिमद्वार से वहाँ जा निकला, जहाँ वानरी सेना का परिचालन हनुमान जी कर रहे थे ॥ २९ ॥

रथप्रवरमास्थाय खरयुक्तं खरस्वनम् ।
प्रयान्तं तु महाघोरं राक्षसं भीमविक्रमम् ॥ ३० ॥

खच्चर जुते हुए उत्कृष्ट रथ में बैठे और गधे की तरह रेंकते हुए महाभयङ्कर रूप वाले और महापराक्रमी राक्षस धूम्राक्ष को, युद्धयात्रा करते हुए, ॥ ३० ॥

अन्तरिक्षगता घोराः शकुनाः प्रत्यवारयन् ।
रथशीर्षे महान्भीमो गृध्रश्च निपपात ह ॥ ३१ ॥

आकाश में होते हुए बड़े बड़े बुरे शकुनों ने रोका। यथा—उसके रथ के ऊपर एक बड़ा भारी गिद्ध गिरा ॥ ३१ ॥

ध्वजाग्रे [1]ग्रथिताश्चैव निपेतुः [2]कुणपाशनाः ।
रुधिरार्द्रो महाञ्श्वेतः कबन्धः पतितो भुवि ॥ ३२ ॥

विस्वरं चोत्सृजन्नादं धूम्राक्षस्य समीपतः ।
ववर्ष रुधिरं देवः सञ्चचाल च मेदिनी ॥ ३३ ॥

मुर्दे खाने वाले गीधों की टोली इस राक्षस के रथ की ध्वजा के ऊपर गिरती थी। फिर सफेद रंग का, रक्त से तर, अमङ्गल शब्द करता हुआ एक कबन्ध, धूम्राक्ष के पास भूमि पर धड़ाम से गिरा। बादलों ने खून की वर्षा की; ज़मीन काँपने लगी ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

प्रतिलोमं ववौ वायुर्निर्घातसमनिःस्वनः ।
तिमिरौघावृतास्तत्र दिशश्च न चकाशिरे ॥ ३४ ॥

स तूत्पातांस्तदा दृष्ट्वा राक्षसानां भयावहान् ।
प्रादुर्भूतान्सुघोरांश्च धूम्राक्षो व्यथितोऽभवत् ।
मुमुहू राक्षसाः सर्वे धूम्राक्षस्य पुरःसराः ॥ ३५ ॥

बिजली गिरने के समान शब्द करती हुई हवा सामने से चलने लगी। चारों ओर अंधकार ही अंधकार छा गया। दिशाएँ प्रकाश शून्य हो गयीं। राक्षसों के लिये भयोत्पादक इन महाभयङ्कर

---

१ ग्रथिताः—मिलिताः। (गो०) २ कुणपाशनाः—गृध्राः। (गो०)

उत्पातों को होते हुए देख, धूम्राक्ष बहुत व्यथित हुआ और उसके आगे चलने वाले राक्षस घबड़ा गये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

ततः सुभीमो बहुभिर्निशाचरै-
र्वृतोऽभिनिष्क्रम्य रणोत्सुको बली ।
ददर्श तां राघवबाहुपालितां
महौघकल्पां बहुवानरीं चमूम् ॥ ३६ ॥

इति एकपञ्चाशः सर्गः ॥

रणोत्सुक एवं महाबलवान धूम्राक्ष, बड़े बड़े भयङ्कर राक्षसों से घिरा हुआ, लङ्कापुरी के बाहिर गया और वहाँ उसने श्रीरामचन्द्र जी के भुजबल से रक्षित, सागर के समान बड़ी भारी वानरी सेना देखी ॥ ३६ ॥

युद्धकाण्ड का इक्यावनवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—*—

द्विपञ्चाशः सर्गः

—*—

धूम्राक्षं प्रेक्ष्य निर्यान्तं राक्षसं भीमविक्रमम् ।
विनेदुर्वानराः सर्वे प्रहृष्टा युद्धकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥

भीम पराक्रमी धूम्राक्ष को आते देख, युद्धाभिलाषी सब वानर अत्यन्त प्रसन्न हुए और नाद करने लगे ॥ १ ॥

तेषां सुतुमुलं युद्धं सञ्जज्ञे हरिरक्षसाम् ।
अन्योन्यं पादपैर्घोरं निघ्नतां शूलमुद्गरैः ॥ २ ॥

वानरों और राक्षसों का घोर युद्ध हुआ। वानर वृक्षों से और राक्षस शूल मुद्गरों से एक दूसरे के ऊपर प्रहार करने लगे ॥ २ ॥

घोरैश्च परिघैश्चित्रैस्त्रिशूलैश्चापि संहतैः ।
राक्षसैर्वानरा घोरैर्विनिकृत्ताः समन्ततः ॥ ३ ॥

बड़े बड़े त्रिशूलों और परिघों से एक साथ प्रहार कर, भयङ्कर राक्षसों ने (रणभूमि में) चारों ओर वानरों को मार कर डाल दिया ॥ ३ ॥

वानरै राक्षसाश्चापि द्रुमैर्भूमौ [1]समीकृताः ।
राक्षसाश्चापि संक्रुद्धा वानरान्निशितैः शरैः ॥ ४ ॥
विव्यधुर्घोरसङ्काशैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ।
ते गदाभिश्च भीमाभिः पट्टिशैः कूटमुद्गरैः ॥ ५ ॥
घोरैश्च परिघैश्चित्रैस्त्रिशूलैश्चापि *संश्रितैः ।
विदार्यमाणा रक्षोभिर्वानरास्ते महाबलाः ॥ ६ ॥

वानरों ने राक्षसों को पेड़ों से मार मार कर ज़मीन में सुला दिया। तब राक्षसों ने भी क्रुद्ध हो वानरों को घोर कालाग्नि तुल्य कंकपत्र लगे हुए और सीधे जाने वाले, पैने बाणों से बेध डाला। भयङ्कर गदाओं, शूल, पटों, काँटेदार मुगद्रों, भयङ्कर परिघों, रंग बिरंगे त्रिशूलों से राक्षसों द्वारा बिदारित होना वे महाबली वानर ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

अमर्षाज्जनितोद्धर्षाश्चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ।
शरनिर्भिन्नगात्रास्ते शूलनिर्भिन्नदेहिनः ॥ ७ ॥

---

१ समीकृताः—पातिता। (गो०) * पाठान्तरे—"संशितैः।"

न सह सके और निर्भय तथा प्रसन्न हो लड़ने लगे। जब उनके शरीर विध गये और त्रिशूलों से विदीर्ण हो गये ॥ ७ ॥

जगृहुस्ते द्रुमांस्तत्र शिलांश्च हरियूथपाः ।
ते भीमवेगा हरयो नर्दमानास्ततस्ततः ॥ ८ ॥

तब सब वानरयूथपतियों ने वृक्ष और शिलाएँ हाथों में ले लीं। फिर वे भयङ्कर वेग वाले वानर चारों ओर गर्जते हुए ॥ ८ ॥

ममन्थू राक्षसान्भीमान्नामानि च बभाषिरे ।
तद्बभूवाद्भुतं घोरं युद्ध वानररक्षसाम् ॥ ९ ॥
शिलाभिर्विविधाभिश्च बहुभिश्चैव पादपैः ।
राक्षसा मथिताः केचिद्वानरैर्जितकाशिभिः[१] ॥ १० ॥

तथा अपने नाम कह कह कर राक्षस वीरों को मथने लगे। यह वानर और राक्षसों का युद्ध विविध शिलाओं और बहुत से वृक्षों से भयङ्कर और अद्भुत हुआ। किसी किसी वानर ने दम साध कर अथवा निर्भय हो राक्षसों का भली भांति संहार किया ॥ ९ ॥ १० ॥

ववमू रुधिरं केचिन्मुखै रुधिरभोजनाः ।
पार्श्वेषु दारिताः केचित्केचिद्राशीकृता द्रुमैः ॥ ११ ॥

अनेक रुधिर भोजी राक्षस रुधिर उगलने लगे। किसी किसी की पसलियाँ टूट गयीं तथा कोई कोई वृक्षों की मार से ढेर हो गये ॥ ११ ॥

शिलाभिश्चूर्णिताः केचित्केचिद्दन्तैर्विदारिताः ।
ध्वजैर्विमथितैर्भग्नैः खरैश्च विनिपातितैः ॥ १२ ॥

---

१ जितकाशिभिः—जितभयैः, जितश्वासैर्वा । (रा०)

किसी किसी राक्षस को शिलाओं के प्रहार से चूर कर दिया और किसी किसी को दाँतों से चीथ डाला। किसी किसी के रथ की ध्वजा तोड़ फोड़ कर नष्ट कर डाली और किसी किसी के रथ में जुते हुए खच्चर मार कर ज़मीन पर डाल दिये ॥ १२ ॥

*रथैर्विध्वंसिताः केचिद्व्यथिता रजनीचराः ।
गजेन्द्रैः पर्वताकारैः पर्वताग्रैर्वनौकसाम् ॥ १३ ॥

मथितैर्वाजिभिः कीर्णं सारोहैर्वसुधातलम् ।
वानरैर्भीमविक्रान्तैराप्लुत्याप्लुत्य वेगितैः ॥ १४ ॥

राक्षसाः करजैस्तीक्ष्णैर्मुखेषु विनिकर्तिताः ।
विवर्णवदना भूयो विप्रकीर्णशिरोरुहाः ॥ १५ ॥

कोई कोई राक्षस रथों से कुचले जाकर व्यथित हुए। पर्वत-शिखर के समान वानरों की चलायी हुई शिलाओं के प्रहार से मरे हुए पर्वताकार हाथियों तथा सवारों सहित मरे हुए घोड़ों से रणभूमि पूर्ण हो गयी थी। भयङ्कर विक्रमशाली वेगवान वानरों ने बारंबार उछलकूद कर अपने नखों से राक्षसों के मुख नोच डाले थे। सिरों के बाल नुच जाने से राक्षसों के मुख बदरंग हो गये थे ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

मूढाः शोणितगन्धेन निपेतुर्धरणीतले ।
अन्ये परमसंक्रुद्धा राक्षसा भीमनिःस्वनाः ॥ १६ ॥

रुधिरगन्ध से मूर्छित हो राक्षसगण भूमि पर गिर पड़े। अन्य भयङ्कर गर्जन करने वाले राक्षस अत्यन्त कुपित हुए ॥ १६ ॥

---

* पाठान्तरे—"रथैर्विध्वंसितैश्चापि पतितै रजनीचरैः ।"

तलैरेवाभिधावन्ति वज्रस्पर्शसमैर्हरीन् ।
वानरैरापतन्तस्ते वेगिता वेगवत्तरैः ॥ १७ ॥

और वज्र के समान थप्पड़ तान वानरों की ओर दौड़े। किन्तु वेगवान वानर, उन आते हुए राक्षसों को बड़ी फुर्ती से ॥ १७ ॥

मुष्टिभिश्चरणैर्दन्तैः पादपैश्चावपोथिताः ।
वानरैर्हन्यमानास्ते राक्षसा विप्रदुद्रुवुः ॥ १८ ॥

घूँसों, लातों,, दाँतों और वृक्षों से मार गिराते थे। वानरों की मार से वे राक्षस युद्धभूमि छोड़ कर भाग खड़े हुए ॥ १८ ॥

सैन्यं तु विद्रुतं दृष्ट्वा धूम्राक्षो राक्षसर्षभः ।
क्रोधेन कदनं चक्रे वानराणां युयुत्सताम् ॥ १९ ॥

राक्षसश्रेष्ठ धूम्राक्ष ने अपनी सेना को तितिर बितिर होते देख, युद्ध करते हुए उन वानरों का नाश करना आरम्भ किया ॥ १९ ॥

प्रासैः प्रमथिताः केचिद्वानराः शोणितस्रवाः ।
मुद्गरैराहताः केचित्पतिता धरणीतले ॥ २० ॥

उसने किसी किसी के परिघ मारा, जिससे उनके शरीरों से रक्त बहने लगा। अनेक वानर मुद्गरों की मार से पृथिवी पर गिर पड़े ॥ २० ॥

परिघैर्मथिताः केचिद्भिन्दिपालैर्विदारिताः ।
पट्टिशैराहताः केचिद्विह्वलन्तो गतासवः ॥ २१ ॥

धूम्राक्ष ने किसी को परिघ से मारा, किसी को गदा विशेष से विदीर्ण कर डाला। बहुत से वानर तो पट्टिशों की मार से घबड़ा कर पृथिवी पर गिर कर मर गये ॥ २१ ॥

केचिद्विनिहताः शूलै रुधिरार्द्रा वनौकसः ।
केचिद्विद्राविता नष्टाः संक्रुद्धै राक्षसैर्युधि ॥ २२ ॥

कितने ही वानर त्रिशूलों के लगने से रक्त से तरबतर हो गये। क्रुद्ध राक्षसों द्वारा खदेड़े जा कर अनेक वानर युद्ध में मारे गये ॥ २२ ॥

विभिन्नहृदयाः केचिदेकपार्श्वेन दारिताः ।
विदारितास्त्रिशूलैश्च केचिदान्त्रैर्विनिःसृताः ॥ २३ ॥

अनेक वानरों के कलेजे चीर डाले गये, किसी किसी की एक कोख ही चीर डाली गयी। किसी किसी वानर की, त्रिशूल लगने से आँते निकल पड़ीं ॥ २३ ॥

तत्सुभीमं महायुद्धं हरिराक्षससङ्कुलम् ।
प्रबभौ शब्दबहुलं शिलापादपसङ्कुलम् ॥ २४ ॥

वानरों और राक्षसों का बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। उस समय युद्धभूमि लड़ते हुए राक्षसों और वानरों के तर्जन गर्जन से तथा शिलाओं और वृक्षों से भर गयी ॥ २४ ॥

धनुर्ज्यातन्त्रिमधुरं हिक्कातालसमन्वितम् ।
मन्दस्तनितसङ्गीतं युद्धगान्धर्वमाबभौ ॥ २५ ॥

उस समय इस युद्ध ने सङ्गीत का रूप धारण किया था। धनुष के रोदे तो मानों मधुर वीणा थे, वीरों के गिरने के समय की हिचकियाँ मानों ताल के समान थीं। अशक्तों का धीरे से बोलना, मानों मन्द मधुर गायन था ॥ २५ ॥

धूम्राक्षस्तु धनुष्पाणिर्वानरान्रणमूर्धनि ।
हसन्विद्रावयामास दिशस्तु शरवृष्टिभिः ॥ २६ ॥

इस प्रकार राक्षस धूम्राक्ष ने संग्रामभूमि में धनुष धारण कर सब दिशाओं को बाण की वृष्टि से ढक दिया और हँसते हँसते सब वानरों को मार भगाया ॥ २६ ॥

धूम्राक्षेणार्दितं सैन्यं व्यथितं वीक्ष्य मारुतिः ।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः प्रगृह्य विपुलां शिलाम् ॥ २७ ॥

धूम्राक्ष द्वारा वानरी सेना को नष्ट और पीड़ित होते देख, हनुमान जी अत्यन्त कुपित हुए। उन्होंने एक बड़ी भारी शिला उठा ली और उसे ले वे आगे बढ़े ॥ २७ ॥

क्रोधाद्द्विगुणताम्राक्षः पितृतुल्यपराक्रमः ।
शिलां तां पातयामास धूम्राक्षस्य रथं प्रति ॥ २८ ॥

अपने पिता पवन के समान पराक्रमी हनुमान जी ने, क्रोध से अपनी आँखे दुगुनी लाल कर, वह शिला धूम्राक्ष के रथ के ऊपर फैंकी ॥ २८ ॥

आपतन्तीं शिलां दृष्ट्वा गदामुद्यम्य सम्भ्रमात् ।
रथादाप्लुत्य वेगेन वसुधायां व्यतिष्ठत ॥ २९ ॥

उस शिला को अपने रथ की ओर आते देख, धूम्राक्ष घबड़ाया और हाथ में गदा ले, वह रथ से तुरन्त पृथिवी पर कूद पड़ा ॥ २९ ॥

सा प्रमथ्य रथं तस्य निपपात शिला भुवि ।
सचक्रकूबरं साश्वं सध्वजं सशरासनम् ॥ ३० ॥

वह शिला उस रथ को नष्ट कर ज़मीन पर जा गिरी। पहिये, धुरी, घोड़े, ध्वजा और धनुष सहित ॥ ३० ॥

स भङ्क्त्वा तु रथं तस्य हनुमान्मारुतात्मजः ।
रक्षसां कदनं चक्रे सस्कन्धविटपैर्द्रुमैः ॥ ३१ ॥

धूम्राक्ष के रथ को नष्ट कर, पवननन्दन हनुमान जी ने डालियों सहित बड़े बड़े वृक्षों से राक्षसों का नाश करना आरम्भ किया ॥३१॥

विभिन्नशिरसो भूत्वा राक्षसाः शोणितोक्षिताः ।
द्रुमैः प्रव्यथिताश्चान्ये निपेतुर्धरणी तले ॥ ३२ ॥

वृक्षों के प्रहार से राक्षसों के सिर फटने लगे। खून से तर बतर हो वृक्षों की मार से राक्षस मर मर कर ज़मीन पर गिरने लगे ॥३२॥

विद्राव्य राक्षसं सैन्यं हनुमान्मारुतात्मजः ।
गिरेः शिखरमादाय धूम्राक्षमभिदुद्रुवे ॥ ३३ ॥

पवननन्दन हनुमान जी इस प्रकार राक्षसी सेना को तितर बितर कर, एक पर्वतशिखर उखाड़ धूम्राक्ष की ओर दौड़े ॥ ३३ ॥

तमापतन्तं धूम्राक्षो गदामुद्यम्य वीर्यवान् ।
विनर्दमानः सहसा हनुमन्तमभिद्रवत् ॥ ३४ ॥

हनुमान जी को शिला लिये अपनी ओर आते देख, वीर्यवान धूम्राक्ष भी सहसा हाथ में गदा ले गर्जता हुआ हनुमान जी की ओर झपटा ॥ ३४ ॥

ततः क्रुद्धस्तु वेगेन गदां तां बहुकण्टकाम् ।
पातयामास धूम्राक्षो मस्तके तु हनूमतः ॥ ३५ ॥

धूम्राक्ष ने क्रोध में भर बड़े ज़ोर से बहुत से काँटों से युक्त एक गदा हनुमान जी के सिर को ताक कर मारी ॥ ३५ ॥

ताडितः स तया तत्र गदया भीमरूपया ।
स कपिर्मारुतबलस्तं प्रहारमचिन्तयन् ॥ ३६ ॥

उस भयङ्कर गदा के लगने पर पवन के समान बलवान हनुमान जी ने, उस गदा के प्रहार की कुछ भी परवाह न की ॥ ३६ ॥

धूम्राक्षस्य शिरोमध्ये गिरिशृङ्गमपातयत् ।
स विह्वलितसर्वाङ्गो गिरिशृङ्गेण ताडितः ॥ ३७ ॥

और धूम्राक्ष के सिर पर वह पर्वतशिखर पटक दिया। उस पर्वतशिखर के लगने से धूम्राक्ष के समस्त अङ्ग बेकाम हो गये और वह टूटे फूटे एक पर्वत की तरह अचानक ज़मीन पर गिर पड़ा ॥३७॥

पपात सहसा भूमौ विकीर्ण इव पर्वतः ।
धूम्राक्षं निहतं दृष्ट्वा हतशेषा निशाचराः ।
त्रस्ताः प्रविविशुर्लङ्कां वध्यमानाः प्लवङ्गमैः ॥ ३८ ॥

धूम्राक्ष को मरा हुआ देख, मरने से बचे हुए राक्षस, वानरों की मार से डर कर लङ्का में भाग गये ॥ ३८ ॥

स तु पवनसुतो निहत्य शत्रुं
क्षतजवहाः सरितश्च सन्निकीर्य ।
रिपुवधजनितश्रमो महात्मा
मुदमगमत्कपिभिश्च पूज्यमानः ॥ ३९ ॥

इति द्विपञ्चाशः सर्गः ॥

महात्मा पवननन्दन हनुमान जी इस प्रकार शत्रुओं को मार और रणभूमि में खून की नदी बहा, शत्रु-संहार-जनित श्रम से थके हुए होने पर भी, वानरों से सम्मानित हो, अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥३९॥

युद्धकाण्ड का बावनवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

त्रिपञ्चाशः सर्गः

—※—

धूम्राक्षं निहतं श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो निःश्वसन्नुरगो यथा ॥ १ ॥

राक्षसेश्वर रावण धूम्राक्ष के मारे जाने का संवाद सुन, बहुत क्रुद्ध हुआ और मारे क्रोध के साँप की तरह फुंसकारने लगा ॥ १ ॥

दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य क्रोधेन कलुषीकृतः ।
अब्रवीद्राक्षसं शूरं वज्रदंष्ट्रं महाबलम् ॥ २ ॥

वह क्रोध से अधीर हो और गर्म गर्म साँस ले, महाबली एवं शूर वज्रदंष्ट्र राक्षस से बोला ॥ २ ॥

गच्छ त्वं वीर निर्याहि राक्षसैः परिवारितः ।
जहि दाशरथिं रामं सुग्रीवं वानरैः सह ॥ ३ ॥

हे वीर ! तुम अपने साथ राक्षसों की सेना ले कर जाओ और दशरथनन्दन राम का तथा वानरी सेना सहित सुग्रीव का नाश कर आओ ॥ ३ ॥

तथेत्युक्त्वा द्रुततरं मायावी राक्षसेश्वरः ।
निर्जगाम बलैः सार्धं बहुभिः परिवारितः ॥ ४ ॥

राक्षसेश्वर की यह आज्ञा पा, वह मायावी सेनापति बहुत सी राक्षसी सेना साथ ले, युद्ध के लिये निकला ॥ ४ ॥

नागैरश्वैः खरैरुष्ट्रैः संयुक्तः सुसमाहितः ।
पताकाध्वजचित्रैश्च रथैश्च समलंकृतः ॥ ५ ॥

उसके साथ हाथी, घोड़े, खच्चर और ऊँट तथा ध्वजा पताकाओं से सजे हुए रथ थे ॥ ५ ॥

ततो विचित्रकेयूरमुकुटैश्च विभूषितः ।
तनुत्राणि च संरुध्य सधनुर्निर्ययौ द्रुतम् ॥ ६ ॥

बढ़िया बाजू बाँधे और सिर पर मुकुट धारण किये तथा कवच पहिन तथा हाथ में धनुष ले वज्रदंष्ट्र शीघ्रता पूर्वक बाहिर निकला ॥ ६ ॥

पताकालंकृतं दीप्तं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।
रथं प्रदक्षिणं कृत्वा समारोहच्चमूपतिः ॥ ७ ॥

पताकाओं से अलङ्कृत, चमचमाते तथा सुवर्णभूषित रथ की प्रदक्षिणा कर, सेनापति वज्रदंष्ट्र उस पर सवार हुआ ॥ ७ ॥

यष्टिभिस्तोमरैश्चित्रैः शूलैश्च मुसलैरपि ।
भिन्दिपालैश्च पाशैश्च शक्तिभिः पट्टिशैरपि ॥ ८ ॥
खड्गैश्चक्रैर्गदाभिश्च निशितैश्च परश्वधैः ।
पदातयश्च निर्यान्ति विविधाः शस्त्रपाणयः ॥ ९ ॥

डंडे, रंगबिरंगे तोमर, शूल, मूसल, गदाविशेष, पाश, पट्ट, खड्ग, चक्र, गदा और तेज़ परसे आदि विविध आयुधों को हाथों में लिये हुए पैदल सैनिक निकले ॥ ८ ॥ ९ ॥

विचित्रवाससः सर्वे दीप्ता राक्षसपुङ्गवाः ।
गजा मदोत्कटाः शूराश्चलन्त इव पर्वताः ॥ १० ॥

वे सब राक्षसश्रेष्ठ सैनिक रंगबिरंगी पोशाकें पहिने हुए थे और (उन बहुमूल्य पोशाकों से) प्रदीप्त हो (दमक) रहे थे । मत्त और

युद्धविद्या में शिक्षित हाथी ऐसे जान पड़ते थे, मानों चलते फिरते पहाड़ हों ॥ १० ॥

ते युद्धकुशलै रूढास्तोमराङ्कुशपाणिभिः ।
अन्ये [1]लक्षणसंयुक्ताः शूरा रूढा महाबलाः ॥ ११ ॥

वे सब युद्ध में निपुण थे और उनके ऊपर भाले और अङ्कुश हाथों में लिये हुए सैनिक सवार थे । इनके अतिरिक्त और भी महाबली वीर राक्षस घोड़ों पर सवार थे ॥ ११ ॥

तद्राक्षसबलं घोरं विप्रस्थितमशोभत ।
प्रावृट्काले यथा मेघा नर्दमानाः सविद्युतः ॥ १२ ॥

वर्षाऋतु में बिजली की कड़कड़ाहट के साथ गरजते हुए बादलों की जैसी शोभा होती है, उसी प्रकार युद्ध करने के लिये जाती हुई राक्षसी सेना शोभायमान हो रही थी ॥ १२ ॥

निःसृता दक्षिणद्वारादङ्गदो यत्र यूथपः ।
तेषां निष्क्रममाणानामशुभं समजायत ॥ १३ ॥

यह सेना लङ्का के दक्षिणी फाटक से निकली, जहाँ पर वानर-यूथ-पति अङ्गद थे । जिस समय यह राक्षसी सेना युद्ध करने के लिये निकली, उस समय बड़े बड़े असगुन हुए ॥ १३ ॥

आकाशाद्विघनात्तीव्रा उल्काश्चाभ्यपतंस्तदा ।
वमन्त्यः पावकज्वालाः शिवा घोरं ववाशिरे ॥ १४ ॥

बिना मेघ के ही आकाश से तीव्र बिजली और उल्का गिरने लगी। गीदड़ियाँ अपने मुखों से अग्नि की लपटें निकालती हुई, भयङ्कर चीत्कार करने लगीं ॥ १४ ॥

---

१ लक्षणसंयुक्तोअन्येअश्वाश्च शूरारूढा निर्याताः । (रा०)

व्याहरन्ति मृगा घोरा रक्षसां निधनं तदा ।
समापतन्तो योधास्तु प्रास्खलन्भयमोहिताः ॥ १५ ॥

उस समय जानवर ऐसी बोलियाँ बोल रहे थे, जिनसे मालूम पड़ता था कि, मानों वे राक्षसों के नाश की सूचना दे रहे थे । अतः भय से मोहित हो, राक्षसवीर फिसल फिसल पड़ते थे ॥ १५ ॥

एतानौत्पातिकान्दृष्ट्वा वज्रदंष्ट्रो महाबलः ।
धैर्यमालम्ब्य तेजस्वी निर्जगाम रणोत्सुकः ॥ १६ ॥

किन्तु रणोत्सुक, महाबली एवं तेजस्वी वज्रदंष्ट्र, इन उत्पातों को देख कर भी, धैर्य धारण कर चला ही जाता था ॥ १६ ॥

तांस्तु निष्क्रमतो दृष्ट्वा वानरा जितकाशिनः ।
प्रणेदुः सुमहानादान्पूरयंश्च दिशो दश ॥ १७ ॥

उस ओर विजयी वानर उन राक्षसों को लङ्का के बाहिर निकलते देख, इतनी ज़ोर से गर्जे कि, उनके गर्जने के शब्द से दसों दिशाएँ प्रतिध्वनित होने लगीं ॥ १७ ॥

ततः प्रवृत्तं तुमुलं हरीणां राक्षसैः सह ।
घोराणां भीमरूपाणामन्योन्यवधकाङ्क्षिणाम् ॥ १८ ॥

तदनन्तर एक दूसरे को मार डालने के आकांक्षी, भयङ्कर एवं बलवान वानरों और राक्षसों की घमासान लड़ाई हुई ॥ १८ ॥

निष्पतन्तो महोत्साहा भिन्नदेहशिरोधराः ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गा न्यपतञ्जगतीतले ॥ १९ ॥

(देखते ही देखते) अति उत्साह पूर्वक लड़ने वाले राक्षस योद्धाओं के रक्त में सने धड़, ज़मीन पर पड़े हुए दिखलाई पड़ने लगे ॥ १९ ॥

केचिदन्योन्यमासाद्य शूराः परिघपाणयः ।
चिक्षिपुर्विविधं शस्त्रं समरेष्वनिवर्तिनः ॥ २० ॥

लड़ाई के मैदान में शत्रु को कभी पीठ न दिखलाने वाले वीर राक्षस, हाथ में परिघ लिये हुए, वानरों के ऊपर विविध प्रकार के शस्त्र चला रहे थे ॥ २० ॥

द्रुमाणां च शिलानां च शस्त्राणां चापि निःस्वनः ।
श्रूयते सुमहांस्तत्र घोरो हृदयभेदनः ॥ २१ ॥

इस युद्ध में पेड़ों, पत्थरों और शस्त्रों के प्रहारों का ऐसा भयानक शब्द हो रहा था, जिससे सुनने से हृदय दहला जाता था ॥ २१ ॥

रथनेमिस्वनस्तत्र धनुषश्चापि निःस्वनः ।
शङ्खभेरीमृदङ्गानां बभूव तुमुलः स्वनः ॥ २२ ॥

रथों के पहियों की घरघराहट का, धनुष की टंकार का और शङ्ख भेरी तथा मृदङ्गों के बजने का बड़ा भारी शब्द हो रहा था ॥ २२ ॥

केचिदस्त्राणि संसृज्य बाहुयुद्धमकुर्वत ।
तलैश्च चरणैश्चापि मुष्टिभिश्च द्रुमैरपि ॥ २३ ॥

अनेक राक्षस तो हथियारों को फेंक, वानरों से मल्लयुद्ध कर रहे थे। कितने ही थप्पड़ों, लातों, घूँसों और पेड़ों से लड़ रहे थे ॥ २३ ॥

जानुभिश्च हताः केचिद्भिन्नदेहाश्च राक्षसाः ।
शिलाभिश्चूर्णिताः केचिद्वानरैर्युद्धदुर्मदैः ॥ २४ ॥

युद्धदुर्मद वानरों ने अनेक राक्षसों को घुटनों की मार से चूर चूर कर डाला और कितने ही वानरों के फेंके हुए पत्थरों की मार से पिस गये ॥ २४ ॥

वज्रदंष्ट्रो भृशं बाणै रणे वित्रासयन्हरीन् ।
चचार लोकसंहारे पाशहस्त इवान्तकः ॥ २५ ॥

अपनी सेना की यह दुर्दशा देख, वज्रदंष्ट्र ने युद्ध में बहुत से बाण चला, वानरों को त्रस्त कर डाला और वह वानरों का संहार करने के लिये पाशधारी यम की तरह रणभूमि में घूमने लगा ॥ २५ ॥

बलवन्तोऽस्त्रविदुषो नानाप्रहरणा रणे ।
जघ्नुर्वानरसैन्यानि राक्षसाः क्रोधमूर्छिताः ॥ २६ ॥

अन्य बलवान राक्षस भी अत्यन्त क्रुद्ध हो, युद्ध करने के समय शस्त्रों का प्रयोग कर, वानरी सेना का नाश कर रहे थे ॥ २६ ॥

निघ्नतो राक्षसान्दृष्ट्वा सर्वान्वालिसुतो रणे ।
क्रोधेन द्विगुणाविष्टः संवर्तक इवानलः ॥ २७ ॥

वानरों को नष्ट करते हुए राक्षसों को देख, अङ्गद दूने क्रुद्ध हुए। उनका क्रोध प्रलयकालीन अग्नि की तरह धधक उठा ॥ २७ ॥

तान्राक्षसगणान्सर्वान्वृक्षमुद्यम्य वीर्यवान् ।
अङ्गदः क्रोधताम्राक्षः सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ २८ ॥

मारे क्रोध के अङ्गद के नेत्र लाल हो गये। तब वीर्यवान अङ्गद एक वृक्ष उखाड़ उससे राक्षसों को वैसे ही मारने लगे, जैसे सिंह क्षुद्र मृगों को मारता है ॥ २८ ॥

चकार कदनं घोरं शक्रतुल्यपराक्रमः ।
अङ्गदाभिहतास्तत्र राक्षसा भीमविक्रमाः ॥ २९ ॥
विभिन्नशिरसः पेतुर्विकृत्ता इव पादपाः ।
रथैरश्वैर्ध्वजैश्चित्रैः शरीरैर्हरिरक्षसाम् ॥ ३० ॥
रुधिरेण च संछन्ना भूमिर्भयकरी तदा ।
हारकेयूरवस्त्रैश्च *शस्त्रैश्च समलंकृता ।
भूमिर्भाति रणे तत्र शारदीव यथा निशा ॥ ३१ ॥

इन्द्र समान पराक्रमी अङ्गद ने बहुत से राक्षसों को मार डाला। अङ्गद द्वारा मारे गये उन भयङ्कर पराक्रमी राक्षसों के सिर फूट गये और वे कटे हुए वृक्ष की तरह भूमि पर गिर गये। रथों, घोड़ों, रंगबिरंगी ध्वजाओं, मरे हुए राक्षसों और वानरों की लोथों तथा रुधिर से रणभूमि ढक गयी और बड़ी भयङ्कर जान पड़ने लगी। हार, विजायठ, वस्त्र और आयुधों से अलङ्कृत रणभूमि ऐसी शोभायमान हुई, जैसी शरद्ऋतु की रात ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अङ्गदस्य च वेगेन तद्राक्षसबलं महत् ।
प्राकम्पत तदा तत्र पवनेनाम्बुदो यथा ॥ ३२ ॥

इति त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥

जिस प्रकार पवन के वेग से मेघों की घटाएँ तितर बितर हो जाती हैं, उसी प्रकार अङ्गद की मार से, वह राक्षसों की महती सेना तितर बितर हो गयी ॥ ३२ ॥

युद्धकाण्ड का तिरपनवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

* पाठान्तरे—"छत्रैश्च ।"

चतुःपञ्चाशः सर्गः

बलस्य च निघातेन अङ्गदस्य जयेन च ।
राक्षसः क्रोधमाविष्टो वज्रदंष्ट्रो महाबलः ॥ १ ॥

राक्षसी सैन्य का मारा जाना और अङ्गद की जीत को देख, महाबली राक्षस वज्रदंष्ट्र कुपित हुआ ॥ १ ॥

स विस्फार्य धनुर्घोरं शक्राशनिसमस्वनम् ।
वानराणामनीकानि प्राकिरच्छरवृष्टिभिः ॥ २ ॥

उसने अपने इन्द्र के वज्र के समान भयङ्कर धनुष को टंकोरा और बाणों की वृष्टि से वानरी सेना को छितरा दिया ॥ २ ॥

राक्षसाश्चापि मुख्यास्ते रथेषु समवस्थिताः ।
नानाप्रहरणाः शूराः प्रायुध्यन्त तदा रणे ॥ ३ ॥

यह देख रथों पर सवार तथा विविध प्रकार के अस्त्र शस्त्र धारण किये हुए अन्य मुख्य मुख्य राक्षस वीर भी युद्ध करने लगे ॥ ३ ॥

वानराणां तु शूरा ये सर्वे ते प्लवगर्षभाः ।
आयुध्यन्त शिलाहस्ताः समवेताः समन्ततः ॥ ४ ॥

वानरों में जो वीर थे, वे सब भी एकत्र हो हाथों में शिला उठा उठा चारों ओर से उन पर टूट पड़े ॥ ४ ॥

तत्रायुधसहस्राणि तस्मिन्नायोधने भृशम् ।
राक्षसा कपिमुख्येषु पातयांश्चक्रिरे तदा ॥ ५ ॥

इस महायुद्ध में राक्षसों ने हज़ारों हथियार चला, वानर सेनापतियों पर आक्रमण किया ॥ ५ ॥

वानराश्चापि रक्षस्तु गिरीन्वृक्षान्महाशिलाः ।
प्रवीराः पातयामासुर्मत्तवारणसन्निभाः ॥ ६ ॥

उधर मस्त गजेन्द्र के समान विशाल वपुधारी बड़े शूरवीर वानरों ने भी, पहाड़ों, वृक्षों और शिलाओं से राक्षसों पर आक्रमण किया ॥ ६ ॥

शूराणां युध्यमानानां समरेष्वनिवर्तिनाम् ।
तद्राक्षसगणानां च सुयुद्धं समवर्तत ॥ ७ ॥

युद्ध से मुख न मोड़ने वाले और समराभिलाषी वीर वानरों और वीर राक्षसों में बड़ी घमासान लड़ाई हुई ॥ ७ ॥

प्रभिन्नशिरसः केचिच्छिन्नैः पादैश्च बाहुभिः ।
शस्त्रैरर्पितदेहास्तु रुधिरेण समुक्षिताः ॥ ८ ॥

इस युद्ध में किसी का सिर कटा था, किसी के पैर कटे थे और किसी की भुजाएँ कटी थीं। किसी का सारा शरीर शस्त्र से टुकड़े टुकड़े हो जाने के कारण ख़ून से तरबतर भूमि पर पड़ा था ॥ ८ ॥

हरयो राक्षसाश्चैव शेरते गां समाश्रिताः ।
कङ्कगृध्र[1]बलैराढ्या गोमायुगणसङ्कुलाः ॥ ९ ॥

इस प्रकार क्षतविक्षत बहुत से राक्षस और वानर, युद्धभूमि में मरे हुए पड़े थे। उनकी लोथों पर कङ्क, गीध, श्येन और शृगाल लिपटे हुए थे ॥ ९ ॥

---

१ बलः—श्येन विशेषः। (गो०)

कबन्धानि समुत्पेतुर्भीरूणां भीषणानि वै।
भुजपाणिशिरश्छिन्नाश्छिन्नकायाश्च भूतले ॥ १० ॥
वानरा राक्षसाश्चापि निपेतुस्तत्र वै रणे।
ततो वानरसैन्येन हन्यमानं निशाचरम् ॥ ११ ॥

कायरों को डराते हुए योद्धाओं के सिररहित धड़, उठ खड़े होते थे। उस रणभूमि में अनेक वानर और राक्षस भूमि पर गिरे पड़े देख पड़ते थे। इनमें से किसी की बाँहें, किसी के हाथ, किसी का सिर और किसी के शरीर के अन्य अवयव कट गये थे। राक्षसों को मारती हुई वानरी सेना ने ॥ १० ॥ ११ ॥

प्राभज्यत[1] बलं सर्वं वज्रदंष्ट्रस्य पश्यतः।
राक्षसान्भयवित्रस्तान्हन्यमानान्प्लवङ्गमैः ॥ १२ ॥

वज्रदंष्ट्र के सामने ही समस्त राक्षसी सेना को भग्न (तितिर बितिर) कर डाला। भयभीत राक्षसों को वानरों द्वारा मारे जाते हुए ॥ १२ ॥

दृष्ट्वा स रोषताम्राक्षो वज्रदंष्ट्रः प्रतापवान्।
प्रविवेश धनुष्पाणिस्त्रासयन्हरिवाहिनीम् ॥ १३ ॥

देख, प्रतापी वज्रदंष्ट्र के नेत्र मारे क्रोध के लाल हो गये। वह हाथ में धनुष ले वानरी सेना में घुस पड़ा और उसने वानरों को त्रस्त कर डाला ॥ १३ ॥

शरैर्विदारयामास कङ्कपत्रैरजिह्मगैः।
बिभेद वानरांस्तत्र सप्ताष्टौ नव पञ्च च ॥ १४ ॥

---

१ प्राभज्यत—भग्नभूत। (रा०)

विव्याध परमक्रुद्धो वज्रदंष्ट्रः प्रतापवान् ।
त्रस्ताः सर्वे हरिगणाः शरैः संकृत्तदेहिनः ॥ १५ ॥

वह सीधे कङ्कपत्र युक्त बाणों से वानरों के शरीरों को विदीर्ण करने लगा। वह प्रतापी वज्रदंष्ट्र अत्यन्त क्रुद्ध हो, इस तरह बाण छोड़ता था कि, एक बार में एक ही बाण से कभी पाँच, कभी सात और कभी नौ तक वानर विध जाते थे। बाणों से शरीरों के बिधने पर समस्त वानर भयभीत हो गये ॥ १४ ॥ १५ ॥

अङ्गदं सम्प्रधावन्ति प्रजापतिमिव प्रजाः ।
ततो हरिगणान्भग्नान्दृष्ट्वा वालिसुतस्तदा ॥ १६ ॥
क्रोधेन वज्रदंष्ट्रं तमुदीक्षन्तमुदैक्षत ।
वज्रदंष्ट्रोऽङ्गदश्चोभौ सङ्गतौ हरिराक्षसौ ॥ १७ ॥

और वे अङ्गद के पास वैसे ही दौड़ कर गये; जैसे सतायी हुई प्रजा, प्रजापति (ब्रह्मा) के पास जाती है। तब वालितनय अङ्गद ने वानरों को छिन्न भिन्न होते देख, अपनी ओर घूरते हुए वज्रदंष्ट्र को क्रोध में भर कर देखा। फिर अङ्गद और वज्रदंष्ट्र दोनों ही आपस में भिड़ गये ॥ १६ ॥ १७ ॥

चेरतुः परमक्रुद्धौ हरिमत्तगजाविव ।
ततः शरसहस्रेण वालिपुत्रं महाबलः ॥ १८ ॥
जघान मर्मदेशेषु शरैरग्निशिखोपमैः ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गो वालिसूनुर्महाबलः ॥ १९ ॥

वे दोनों परमक्रुद्ध हो सिंह और मतवाले गज की तरह युद्ध-क्षेत्र में पैतरे बदलते हुए घूमने लगे। इतने में महाबली बज्रदंष्ट्र ने

अग्निशिखा के समान एक सहस्र बाण अङ्गद के मर्मस्थलों में मारे। इनकी चोट से महाबली अङ्गद का सारा शरीर रक्त से तर बतर हो गया॥ १८॥ १९॥

चिक्षेप वज्रदंष्ट्राय वृक्षं भीमपराक्रमः।
दृष्ट्वा पतन्तं तं वृक्षमसम्भ्रान्तश्च राक्षसः॥ २०॥

तब भीम पराक्रमी अङ्गद ने एक पेड़ उखाड़ कर वज्रदंष्ट्र के ऊपर फेंका। उस वृक्ष को अपने ऊपर आते देख, वज्रदंष्ट्र ज़रा भी न घबड़ाया और उसने॥ २०॥

चिच्छेद बहुधा सोऽपि निकृत्तः पतितो भुवि।
तं दृष्ट्वा वज्रदंष्ट्रस्य विक्रमं प्लवगर्षभः॥ २१॥

बाणों से उसके भी अनेक टुकड़े कर डारे। वह वृक्ष टुकड़े टुकड़े हो कर भूमि पर गिर पड़ा। अङ्गद ने वज्रदंष्ट्र का यह विक्रम देख,॥ २१॥

प्रगृह्य विपुलं शैलं चिक्षेप च ननाद च।
समापतन्तं तं दृष्ट्वा रथादाप्लुत्य वीर्यवान्॥ २२॥

एक बड़ी भारी शिला उठा कर उसके ऊपर फैंकी और वे बड़ी ज़ोर से गर्जे। उस शिला को आते देख, बहादुर वज्रदंष्ट्र रथ से कूद पड़ा॥ २२॥

गदापाणिरसम्भ्रान्तः पृथिव्यां समतिष्ठत।
*अङ्गदेन †शिलाक्षिप्ता गत्वा तु रणमूर्धनि॥ २३॥

और हाथ में गदा ले बड़ी सावधानी से भूमि पर जा खड़ा हुआ। अङ्गद की फैंकी हुई शिला ने रणभूमि में जा॥ २३॥

---

* पाठान्तरे—"साङ्गदेन।" † पाठान्तरे—"गदाऽऽक्षिप्ता।"

स चक्रकूबरं साश्वं प्रममाथ रथं तदा ।
ततोऽन्यं गिरिमाक्षिप्य विपुलं द्रुमभूषितम् ॥ २४ ॥

पहिये जुए और घोड़ों सहित रथ के चूर चूर कर डाला। तदनन्तर अङ्गद ने एक दूसरी बड़ी शिला मय वृक्षों के उखाड़ी और वज्रदंष्ट्र के लक्ष्य कर फैंकी ॥ २४ ॥

वज्रदंष्ट्रस्य शिरसि पातयामास सोऽङ्गदः ।
अभवच्छोणितोद्गारी वज्रदंष्ट्रः स मूर्छितः ॥ २५ ॥

(अङ्गद की फैंकी हुई वह शिला जा कर) वज्रदंष्ट्र के सिर पर गिरी। उसके गिरते ही रक्त की वमन कर, वज्रदंष्ट्र मूर्छित हो गया ॥ २५ ॥

मुहूर्तमभवन्मूढो गदामालिङ्ग्य निःश्वसन् ।
स लब्धसंज्ञो गदया वालिपुत्रमवस्थितम् ॥ २६ ॥

वह एक मुहूर्त तक मूर्छित रह, अपनी गदा को छाती से चिपटाये हुए लंबी लंबी साँसे लेता रहा। जब वह सचेत हुआ और अङ्गद को अपने सामने खड़ा देखा, तब गदा से ॥ २६ ॥

जघान परमक्रुद्धो वक्षोदेशे निशाचरः ।
गदां त्यक्त्वा ततस्तत्र मुष्टियुद्धमवर्तत ॥ २७ ॥

उसने अत्यन्त क्रुद्ध हो अङ्गद की छाती में प्रहार किया। फिर गदा को पटक, वह अङ्गद के साथ मूँकों से लड़ने लगा ॥ २७ ॥

अन्योन्यं जघ्नतुस्तत्र तावुभौ हरिराक्षसौ ।
रुधिरोद्गारिणौ तौ तु प्रहारैर्जनितश्रमौ ॥ २८ ॥

दोनों वानर और राक्षस एक दूसरे को मारते हुए ख़ून की वमन करने लगे और एक दूसरे पर प्रहार करते करते थक गये ॥ २८ ॥

बभूवतुः सुविक्रान्तावङ्गारकबुधाविव ।
ततः परमतेजस्वी अङ्गदः कपिकुञ्जरः ॥ २९ ॥

उस समय वे दोनों महापराक्रमी वीर, मङ्गल और बुध की तरह जान पड़ते थे । तदनन्तर परमतेजस्वी कपिकुञ्जर अङ्गद ॥ २९ ॥

उत्पाट्य वृक्षं स्थितवान्बहुपुष्पफलान्वितम्* ।
जग्राह [1]चार्षभं चर्म खड्गं च विपुलं शुभम् ॥ ३० ॥

फूलों और पुष्पों से लदे हुए वृक्ष को उखाड़ और उसे हाथ में ले खड़े हो गये । यह देख वज्रदंष्ट्र ने भालू के चर्म की बनी ढाल ली और एक लंबी तथा पैनी तलवार ॥ ३० ॥

किङ्किणीजालसंछन्नं [2]चर्मणा च परिष्कृतम् ।
विचित्रांश्चेरतुर्मार्गान्रुषितौ कपिराक्षसौ ॥ ३१ ॥

म्यान से खींच ली । इस तलवार की मूँठ में बहुत सी झुनझुनियाँ लगी हुई थीं । अङ्गद और वज्रदंष्ट्र क्रुद्ध हो विचित्र ढंग से पैंतरे बदलते हुए एक दूसरे के ऊपर चोट करने का अवसर ढूढ़ने लगे ॥ ३१ ॥

जघ्नतुश्च तदाऽन्योन्यं निर्दयं जयकाङ्क्षिणौ ।
व्रणैः सास्रैरशोभेतां पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ ३२ ॥

---

१ आर्षभं चर्म—ऋषभ चर्मपिनद्धं फलकं । (गो०) २ चर्मणा—खड्गकोशेन । (गो०) * पाठान्तरे—"फलाश्चितम् ।"

वे दोनों जय की अभिलाषा से दया छोड़, एक दूसरे पर वार करने लगे। चोट के कारण उन दोनों के शरीरों में घाव हो गये थे, जिनसे रक्त बह रहा था। उस समय वे दोनों फूले हुए टेसू के पेड़ की तरह देख पड़ते थे ॥ ३२ ॥

युध्यमानौ परिश्रान्तौ जानुभ्यामवनीं गतौ।
निमेषान्तरमात्रेण अङ्गदः कपिकुञ्जरः ॥ ३३ ॥

उदतिष्ठत दीप्ताक्षो दण्डाहत इवोरगः।
निर्मलेन सुधौतेन खड्गेनास्य[1] महच्छिरः ॥ ३४ ॥

जघान वज्रदंष्ट्रस्य वालिसूनुर्महाबलः।
रुधिरोक्षितगात्रस्य बभूव पतितं द्विधा ॥ ३५ ॥

लड़ते लड़ते वे दोनों थक कर घुटने टेक कर, भूमि पर बैठ गये। पल भर में कपिश्रेष्ठ अङ्गद लाठी से कुचले हुए सर्प की तरह लाल लाल नेत्र कर, उठ खड़े हुए। फिर वज्रदंष्ट्र की पैनी और चमचमाती हुइ तलवार से, वालितनय अङ्गद ने वज्रदंष्ट्र का बड़ा भारी सिर धड़ से काट डाला। लोहू लुहान हो, वज्रदंष्ट्र की देह दो टूक हो, भूमि पर गिर पड़ी ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

स रोषपरिवृत्ताक्षं शुभं खड्गहतं शिरः।
वज्रदंष्ट्रं हतं दृष्ट्वा राक्षसा भयमोहिताः ॥ ३६ ॥

उसके दोनों नेत्र उलट गये और पैनी तलवार से कटा हुआ उसका सिर गिर पड़ा। वज्रदंष्ट्र को मरा हुआ देख कर, उसके साथ के राक्षस सैनिक बहुत डर गये ॥ ३६ ॥

---

[1] अस्य वज्रदंष्ट्रस्य। (गो०)

त्रस्ताः प्रत्यपतँल्लङ्कां वध्यमानाः प्लवङ्गमैः ।
विषण्णवदना दीना ह्रिया किञ्चिदवाङ्मुखाः ॥ ३७ ॥

और वानरों की मार खाते हुए लङ्का में भाग गये। उस समय वे सब केवल उदास ही नहीं थे, किन्तु लज्जा के मारे अपने सिर नीचे किये हुए थे ॥ ३७ ॥

निहत्य तं वज्रधरप्रभावः
स वालिसूनुः कपिसैन्यमध्ये ।
जगाम हर्षं [1]महितो महाबलः
सहस्रनेत्रस्त्रिदशैरिवावृतः ॥ ३८ ॥

इति चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥

इन्द्र के समान प्रभाव वाले महाबली वालितनय अङ्गद, वज्रदंष्ट्र को मार कर और वानरों के बीच सराहे जा कर, उसी प्रकार प्रसन्न हुए; जिस प्रकार देवताओं से घिरे हुए इन्द्र प्रसन्न होते हैं ॥ ३८ ॥

युद्धकाण्ड का चौवनवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

पञ्चपञ्चाशः सर्गः

—*—

वज्रदंष्ट्रं हतं श्रुत्वा वालिपुत्रेण रावणः ।
बलाध्यक्षमुवाचेदं कृताञ्जलिमवस्थितम् ॥ १ ॥

---

१ महितः—प्रशंसितः ।

अङ्गद के हाथ से वज्रदंष्ट्र का मारा जाना सुन, हाथ जोड़े खड़े हुए सेनाध्यक्ष से रावण ने कहा ॥ १ ॥

शीघ्रं निर्यान्तु दुर्धषा राक्षसा भीमविक्रमाः ।
अकम्पनं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रास्त्रकोविदम् ॥ २ ॥

भीम पराक्रमी दुर्धर्ष राक्षस, तुरन्त सर्वअस्त्रशस्त्र चलाने में प्रवीण अकम्पन को आगे कर, लड़ने को बाहिर निकले ॥ २ ॥

एष शास्ता च गोप्ता च नेता च युधि सम्मतः[1] ।
भूतिकामश्च मे नित्यं नित्यं च समरप्रियः ॥ ३ ॥

क्योंकि अकम्पन शत्रुसैन्य को मारने वाला, अपनी सेना को बचाने वाला और प्रसिद्ध योद्धा सेनापति है। यह मेरा सदा हितकारी बन्धु है और युद्धकार्य में इसकी बड़ी रुचि है ॥ ३ ॥

एष जेष्यति काकुत्स्थौ सुग्रीवं च महाबलम् ।
वानरांश्चापरान्घोरान्हनिष्यति परन्तपः ॥ ४ ॥

यह, महाबलवान् सुग्रीव सहित श्रीराम और लक्ष्मण को युद्ध में पराजित करेगा और यही शत्रुहन्ता अन्य भयङ्कर वानरों को भी मार डालेगा ॥ ४ ॥

परिगृह्य स तामाज्ञां रावणस्य महाबलः ।
बलं सन्त्वरयामास तदा लघुपराक्रमः ॥ ५ ॥

रावण की आज्ञा पा कर महाबली और पराक्रम दिखलाने में फुर्तीले सेनाध्यक्ष ने सेना को तुरन्त तैयार होने की आज्ञा दी ॥ ५ ॥

---

१ सम्मतः—प्रसिद्धः । (गो०)

ततो नानाप्रहरणा भीमाक्षा भीमदर्शनाः ।
निष्पेतू रक्षसां मुख्या बलाध्यक्षप्रचोदिताः ॥ ६ ॥

सेनाध्यक्ष की आज्ञा पाते ही, भयङ्कर नेत्रों वाले और भयङ्कर सूरत शक्ल के मुख्य मुख्य राक्षस विविध प्रकार के शस्त्र लेकर निकले ॥ ६ ॥

रथमास्थाय विपुलं तप्तकाञ्चनकुण्डलः ।
मेघाभो मेघवर्णश्च मेघस्वनमहास्वनः ॥ ७ ॥

राक्षसैः संवृतो भीमैस्तदा निर्यात्यकम्पनः ।
न हि कम्पयितुं शक्यः सुरैरपि महामृधे ॥ ८ ॥

मेघ के समान बड़े डीलडौल का और मेघ ही की तरह काले रंग का तथा मेघ ही की तरह गर्जने वाला और कानों में सोने के कुण्डल पहिने हुए अकम्पन, एक बड़े रथ में बैठ तथा भयङ्कर राक्षसों को साथ ले, बाहिर निकला। बड़े बड़े युद्धों में देवता भी इसको युद्ध में नहीं डिगा सके थे ॥ ७ ॥ ८ ॥

अकम्पनस्ततस्तेषामादित्य इव तेजसा ।
तस्य निर्धावमानस्य संरब्धस्य युयुत्सया ॥ ९ ॥

इसीसे इसका अकम्पन नाम पड़ा था। यह तेजस्वी अकम्पन अपनी सेना के बीच सूर्य की तरह चमचमा रहा था। युद्ध करने की इच्छा से क्रुद्ध हो, दौड़ते हुए अकम्पन के ॥ ९ ॥

अकस्माद्दैन्यमागच्छद्धयानां रथवाहिनाम् ।
व्यस्फुरन्नयनं चास्य सव्यं युद्धाभिनन्दिनः ॥१०॥

रथ में जुते घोड़े अकस्मात् उदास हो गये। युद्ध का सदा अभिनन्दन करने वाले अकम्पन का बाँया नेत्र फड़कने लगा ॥१०॥

विवर्णो मुखवर्णश्च गद्गदश्चाभवत्स्वनः ।
अभवत्सुदिने चापि [1]दुर्दिनं रूक्षमारुतम् ॥११॥

उसका चेहरा फीका पड़ गया और कण्ठस्वर गद्गद हो गया। सुदिन होने पर भी उसके लिये वह दुर्दिन हो गया अर्थात् सूर्य बादल में छिप गये और रूखी हवा चलने लगी ॥ ११ ॥

ऊचुः खगा मृगाः सर्वे वाचः क्रूरा भयावहाः ।
स सिंहोपचितस्कन्धः शार्दूलसमविक्रमः ॥१२॥

समस्त पशुपक्षी क्रूर और भयावनी बोलियाँ बोलने लगे। सिंह समान ऊँचे कन्धों वाला और शार्दूल के समान विक्रमी अकम्पन, ॥१२॥

तानुत्पातानचिन्त्यैव निर्जगाम रणाजिरम् ।
तदा निर्गच्छतस्तस्य रक्षसः सह राक्षसैः ॥१३॥

इन उत्पातों की कुछ भी परवाह न कर, संग्राम भूमि में गया। सेना सहित उसके जाते ही ॥ १३ ॥

बभूव सुमहान्नादः क्षोभयन्निव सागरम् ।
तेन शब्देन वित्रस्ता वानराणां महाचमूः ॥१४॥

बड़ा भारी शब्द हुआ, जिसने मानों समुद्र को भी खलबला दिया। उस शब्द से वह वानरों की बड़ी सेना भी डर गयी ॥ १४ ॥

द्रुमशैलप्रहरणा योद्धुं समवतिष्ठत ।
तेषां युद्धं महारौद्रं संजज्ञे हरिरक्षसाम् ॥१५॥

---

१ दुर्दिनं—मेघच्छन्नदिनं। (गो०)

लड़ने के लिये पेड़ों और शिलाओं को लिये हुए खड़े वानरों और राक्षसों में महाभयङ्कर युद्ध हुआ ॥ १५ ॥

रामरावणयोरर्थे समभित्यक्तजीविनाम् ।
सर्वे ह्यतिबलाः शूराः सर्वे पर्वतसन्निभाः ॥१६॥

ये वानर और राक्षस यथाक्रम श्रीरामचन्द्र और रावण के लिये अपनी अपनी जाने हथेली पर रखे हुए थे। ये सब ही बड़े बली और बहादुर थे और सब के शरीर पर्वतों की तरह विशाल थे ॥ १६ ॥

हरयो राक्षसश्चैव परस्परजिघांसवः ।
तेषां विनर्दतां शब्दः संयुगेऽतितरस्विनाम् ॥१७॥

वानर और राक्षस एक दूसरे की जान लेने को तुले हुए थे। इस युद्ध में अति वेग वाले योद्धाओं के गर्जने का शब्द ॥ १७ ॥

शुश्रुवे सुमहान्क्रोधादन्योन्यमभिगर्जताम् ।
रजश्चारुणवर्णाभं सुभीममभवद्भृशम् ॥१८॥

उद्भूतं हरिरक्षोभिः संरुरोध दिशो दश ।
अन्योन्यं रजसा तेन कौशेयोद्धूतपाण्डुना ॥१९॥

संवृतानि च भूतानि ददृशुर्न रणाजिरे ।
न ध्वजा न पताका वा *वर्म वा तुरगोऽपि वा ॥२०॥

आयुधं स्यन्दनं वाऽपि ददृशे तेन रेणुना ।
शब्दश्च सुमहांस्तेषां नर्दतामभिधावताम् ॥२१॥

---

* पाठान्तरे—"चर्म"।

सुनाई पड़ने लगा। उभय दलों के क्रुद्ध हो गर्जन तर्जन का बड़ा भयानक शब्द हुआ। राक्षसों और वानरों की सेनाओं के सञ्चार से बहुत सी लाल रंग की बड़ी भयङ्कर धूल उड़ी, जो दसों दिशाओं में छा गयी। क्या ध्वजा, क्या पताका, क्या कवच, क्या घोड़ा, क्या आयुध, क्या रथ—कोई भी वस्तु उस धूल के कारण नहीं देख पड़ती थी। तब हाँ, वानरों और राक्षसों के गर्जने और दौड़ने का बड़ा भारी कोलाहल ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

श्रूयते तुमुले युद्धे न रूपाणि चकाशिरे।
हरीनेव सुसंक्रुद्धा हरयो जघ्नुराहवे ॥२२॥

उस तुमुल युद्ध में अवश्य सुनाई पड़ता था, किन्तु उनका रूप नहीं देख पड़ता था। उस भयङ्कर अन्धकार में अत्यन्त क्रुद्ध हो वानरों के साथ वानर ही युद्ध करते हुए मार रहे थे ॥ २२ ॥

राक्षसाश्चापि रक्षांसि निजघ्नुस्तिमिरे तदा।
परांश्चैव विनिघ्नन्तः स्वांश्च वानरराक्षसाः ॥२३॥

इसी प्रकार उस अन्धकार में राक्षस भी राक्षसों को मार रहे थे। अर्थात् उस अन्धकार में अपने पराये की पहिचान नहीं हो सकती थी। वानर और राक्षस दोनों अपने अपने शत्रुओं के साथ ही साथ अपने पक्ष वालों को भी मार रहे थे ॥ २३ ॥

रुधिरार्द्रां तदा चक्रुर्महीं पङ्कानुलेपनाम्।
ततस्तु रुधिरौघेण सिक्तं व्यपगतं रजः ॥२४॥

यह युद्ध ऐसा भयङ्कर हुआ कि, युद्धभूमि में रक्त की कीच हो गयी। रुधिर की धार बहने से वहाँ की धूल दब गयी ॥ २४ ॥

शरीरशवसङ्कीर्णा बभूव च वसुन्धरा ।
द्रुमशक्तिशिलाप्रासैर्गदापरिघतोमरैः ॥२५॥

रणभूमि लोथों से ढक गयी । पेड़ों, शक्तियों, शिलाओं, प्रासों, गदाओं, परिघों और तोमरों से ॥ २५ ॥

हरयो राक्षसाश्चैव जघ्नुरन्योन्यमोजसा ।
बाहुभिः परिघाकारैर्युध्यन्तः पर्वतोपमाः ॥२६॥

वानर और राक्षस एक दूसरे पर बलपूर्वक प्रहार कर रहे थे । परिघाकार भुजाओं से युद्ध करते हुए पर्वत की समान ॥ २६ ॥

हरयो भीमकर्माणो राक्षसाञ्जघ्नुराहवे ।
राक्षसास्त्वपि संक्रुद्धाः प्रासतोमरपाणयः ॥२७॥
कपीन्निजघ्निरे तत्र शस्त्रैः परमदारुणैः ।
अकम्पनः सुसंक्रुद्धो राक्षसानां चमूपतिः ॥२८॥

इधर से तो भयङ्कर कर्मकारी वानर राक्षसों को मार रहे थे और उधर से राक्षस भी क्रुद्ध हो, हाथ में प्रास और तोमर आदि अत्यन्त दारुण शस्त्र ले, उनसे वानरों को मार रहे थे । साथ ही राक्षसी सेना का सेनापति अकम्पन अत्यन्त क्रुद्ध हो, ॥ २७ ॥ २८ ॥

[1] संहर्षयति तान्सर्वान्राक्षसान्भीमविक्रमान् ।
हरयस्त्वपि रक्षांसि महाद्रुममहाश्मभिः ॥२९॥

उन भीम विक्रमी समस्त राक्षसों को उत्साहित कर रहा था । वानर भी बड़े बड़े पेड़ों और बड़ी बड़ी शिलाओं से राक्षसों को ॥ २९ ॥

---

१ संहर्षयति—उत्साहयति । (गो०)

विदारयन्त्यभिक्रम्य[1] शस्त्राण्याच्छिद्य[2] वीर्यतः ।
एतस्मिन्नन्तरे वीरा हरयः कुमुदो नलः ॥३०॥
मैन्दश्च द्विविदः क्रुद्धाश्चक्रुर्वेगमनुत्तमम् ।
ते तु वृक्षैर्महावेगा राक्षसानां [3]चमूमुखे ॥३१॥
कदनं सुमहच्चक्रुर्लीलया[4] हरियूथपाः ।
ममन्थू राक्षसान्सर्वे वानरा गणशो भृशम् ॥३२॥

इति पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥

उनसे उनके शस्त्रों को बलपूर्वक छीन छीन कर, सामना करते थे। इतने में वीर वानर कुमुद, नल, मैन्द और द्विविद क्रुद्ध हो कर बड़े वेग से लड़ने लगे। युद्ध में वे बड़े वेगवान वानरयूथपति बड़े बड़े पेड़ों से अनायास बड़े बड़े राक्षसों को मार कर गिराने लगे। इन वानरों ने बहुत से राक्षसों को मथ डाला ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

युद्धकाण्ड का पचपनवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—※—

षट्पञ्चाशः सर्गः

—※—

तदृष्ट्वा सुमहत्कर्म कृतं वानरसत्तमैः ।
क्रोधमाहारयामास युधि तीव्रमकम्पनः ॥ १ ॥

समर में वानरश्रेष्ठों की बहादुरी देख, अकम्पन बहुत क्रुद्ध हुआ ॥ १ ॥

---

१ अभिक्रम्य—अभिमुखी भूय। (गो०) २ आच्छिद्य—अपहृत्य। (गो०)
३ चमूमुखे—रणमध्ये। (गो०) ४ लीलया—अनायासेन। (गो०)

क्रोधमूर्छितरूपस्तु धून्वन्परमकार्मुकम् ।
दृष्ट्वा तु कर्म शत्रूणां सारथिं वाक्यमब्रवीम् ॥ २ ॥

उसने क्रुद्ध हो अपने धनुष का रोदा टंकोरा और शत्रुओं की वीरता देख, वह अपने सारथी से कहने लगा ॥ २ ॥

तत्रैव तावत्त्वरितं रथं प्रापय सारथे ।
यत्रैते बहवो घ्नन्ति सुबहून्राक्षसान्रणे ॥ ३ ॥

हे सारथे ! तुम तुरन्त मेरा रथ उस जगह पहुँचा दो, जहाँ पर युद्ध में बहुत से वानरगण बहुत बहुत से राक्षसों को मार रहे हैं ॥ ३ ॥

एतेऽत्र बलवन्तो हि भीमकायश्च वानराः ।
द्रुमशैलप्रहरणास्तिष्ठन्ति [1]प्रमुखे मम ॥ ४ ॥

जो विपुल-शरीर-धारी वानर वृक्षों और शिलाओं को लिये हुए, समर की अभिलाषा से मेरे सामने खड़े हैं, बड़े बलवान हैं ॥ ४ ॥

एतान्निहन्तुमिच्छामि समरश्लाघिनो ह्यहम् ।
एतैः प्रमथितं सर्वं दृश्यते राक्षसं बलम् ॥ ५ ॥

अतः समर में बड़ाई चाहने वाला, मैं इन बलवान वानरों को मारना चाहता हूँ। क्योंकि इन्हीं लोगों द्वारा समस्त राक्षसी सेना का नाश होता हुआ देख पड़ता है ॥ ५ ॥

ततः [2]प्रजवनाश्वेन रथेन रथिनांवरः ।
हरीनभ्यहनत्क्रोधाच्छरजालैरकम्पनः ॥ ६ ॥

---

१ प्रमुखे—अग्रे । (गो०) २ प्रजवनाश्वेन —वेगवदश्वेन । (गो०)

रथियों (वीरों) में श्रेष्ठ अकम्पन, अत्यन्त तेज़ चलने वाले घोड़ों के रथ में बैठा हुआ और क्रोध में भर, बहुत से बाण छोड़ता हुआ, वानरों को मारने लगा ॥ ६ ॥

न स्थातुं वानराः शेकुः किं पुनर्योद्धुमाहवे ।
अकम्पनशरैर्भग्नाः सर्व एव विदुद्रुवुः ॥ ७ ॥

अकम्पन ने उस समय ऐसी मारकाट मचायी कि, उसके बाणों की मार से सब वानर भाग खड़े हुए, उससे युद्ध करना तो एक ओर रहा, उसके सामने भी कोई न खड़ा रह सका ॥ ७ ॥

तान्मृत्युवशमापन्नानकम्पनवशं गतान् ।
समीक्ष्य हनुमाञ्ज्ञातीनुपतस्थे महाबलः ॥ ८ ॥

परन्तु महाबली हनुमान जी अपनी जाति वाले (वानरों) को अकम्पन के बाणों से विवश और मृत्यु के मुख में जाते देख, अकम्पन का सामना करने को आगे बढ़े ॥ ८ ॥

तं महाप्लवगं दृष्ट्वा सर्वे प्लवगयूथपाः ।
समेत्य समरे वीराः संहृष्टाः पर्यवारयन् ॥ ९ ॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान जी को अकम्पन का सामना करने को आगे बढ़ते देख, अन्य वानरश्रेष्ठ फिर जुड़बटुर कर एकत्र हो गये और प्रसन्न हो हनुमान जी की सहायता के लिये उनके साथ हो लिये ॥ ९ ॥

अवस्थितं हनूमन्तं ते दृष्ट्वा हरियूथपाः ।
बभूवुर्बलवन्तो हि बलवन्तं समाश्रिताः ॥१०॥

बलवान हनुमान जी को अकम्पन का सामना करने को खड़ा होते देख, और उनका सहारा पा, उन भागे हुए वानर यूथपतियों का उत्साह बढ़ा ॥ १० ॥

अकम्पनस्तु शैलाभं हनूमन्तमवस्थितम् ।
महेन्द्र इव धाराभिः शरैरभिववर्ष ह ॥११॥

अपने सामने पर्वत की तरह अटल अचल हनुमान जी को खड़ा देख, अकम्पन ने उन पर उसी प्रकार बाणवृष्टि की; जिस प्रकार इन्द्र जल की वृष्टि करते हैं ॥ ११ ॥

अचिन्तयित्वा बाणौघाञ्शरीरे पतिताञ्शितान् ।
अकम्पनवधार्थाय मनो दध्रे महाबलः ॥१२॥

अपने शरीर में पैने पैने असंख्य बाणों के लगने की ओर कुछ भी ध्यान न दे, महाबली हनुमान जी ने अकम्पन के मारने का उपाय सोचा ॥ १२ ॥

स प्रहस्य महातेजा हनूमान्मारुतात्मजः ।
अभिदुद्राव तद्रक्षः कम्पयन्निव मेदनीम् ॥१३॥

वे महातेजस्वी पवननन्दन हनुमान जी पृथ्वी को कंपाते और अट्टहास करते हुए, अकम्पन पर झपटे ॥ १३ ॥

तस्याभिनर्दमानस्य दीप्यमानस्य तेजसा ।
बभूव रूपं दुर्धर्षं दीप्तस्येव विभावसोः ॥१४॥

उस समय सिंहनाद करते हुए और तेज से दीप्यमान पवन-नन्दन ऐसे जान पड़े, मानों दहकती हुई आग हो। उस समय उनका रूप दुर्धर्ष हो गया ॥ १४ ॥

आत्मानमप्रहरणं ज्ञात्वा क्रोधसमन्वितः ।
शैलमुत्पाटयास वेगेन हरिपुङ्गवः ॥१५॥

अपने पास कोई आयुध न जान, कपिश्रेष्ठ हनुमान जी ने क्रोध में भर, बड़े वेग से एक पर्वत उखाड़ लिया ॥ १५ ॥

तं गृहीत्वा महाशैलं पाणिनैकेन मारुतिः ।
स विनद्य महानादं भ्रामयामास वीर्यवान् ॥१६॥

बलवान पवननन्दन ने उस पर्वत को एक हाथ से उठा लिया और उसे घुमाते हुए वे बड़ी ज़ोर से गरजे ॥ १६ ॥

ततस्तमभिदुद्राव राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ।
पुरा हि नमुचिं संख्ये वज्रेणेव पुरन्दरः ॥१७॥

उस पर्वत को लिये हुए हनुमान जी उस राक्षसश्रेष्ठ अकम्पन की ओर वैसे ही दौड़े, जैसे पहिले किसी समय इन्द्र वज्र लिये हुए नमुचि की ओर दौड़े थे ॥ १७ ॥

अकम्पनस्तु तद्दृष्ट्वा गिरिशृङ्गं समुद्यतम् ।
दूरादेव महाबाणैरर्धचन्द्रैर्व्यदारयत् ॥१८॥

हनुमान जी को हाथ में पर्वत लिए मारने को तैयार देख, अकम्पन ने दूर ही से अर्धचन्द्राकार बड़े बड़े बाण मार कर, पर्वत के टुकड़े टुकड़े कर डाले ॥ १८ ॥

तत्पर्वताग्रमाकाशे रक्षोबाणविदारितम् ।
विशीर्णं पतितं दृष्ट्वा हनुमान्क्रोधमूर्छितः ॥१९॥

आकाश ही में (अर्थात् मारने के लिये हाथ में ऊपर किये हुए) उस पर्वतशृङ्ग को अकम्पन के बाणों से चूर चूर हो कर नीचे गिरते देख, हनुमान जी अत्यन्त क्रुद्ध हुए ॥ १९ ॥

सोऽश्वकर्णं समासाद्य रोषदर्पान्वितो हरिः ।
तूर्णमुत्पाटयामास महागिरिमिवोच्छ्रितम् ॥२०॥

रोष में भरे हुए हनुमान जी ने अश्वकर्ण (एक प्रकार का शालवृक्ष) वृक्ष के समीप जा, तुरन्त उसे उखाड़ लिया । वह अश्वकर्ण वृक्ष एक बड़े पहाड़ की तरह लंबा था ॥ २० ॥

तं गृहीत्वा महास्कन्धं सोऽश्वकर्णं महाद्युतिः ।
प्रहस्य परया प्रीत्या भ्रामयामास संयुगे ॥२१॥

महाद्युतिमान हनुमान जी ने युद्धक्षेत्र में उस मोटे तने के अश्वकर्ण को ले कर, परम प्रसन्न हो और अट्टहास करते हुए, उसे घुमाया ॥ २१ ॥

प्रधावन्नुरुवेगेन प्रभञ्जंस्तरसाद्रुमान् ।
हनुमान्परमक्रुद्धश्चरणैर्दारयक्षितिम् ॥२२॥

क्रोध और दर्प में भर हनुमान जी ऐसे ज़ोर से दौड़े कि, उनकी जाँघों की रगड़ से, कितने ही पेड़ टूट टूट कर गिर पड़े और उनके पैरों की धमक से पृथिवी धसने लगी ॥ २२ ॥

गजांश्च सगजारोहान्सरथान्रथिनस्तथा ।
जघान हनुमान्धीमान्राक्षसांश्च पदातिगान् ॥२३॥

बुद्धिमान् हनुमान जी ने उस वृक्ष से कितने ही महावतों सहित हाथियों को, रथियों सहित रथों को तथा अनेक पैदल राक्षस सिपाहियों को नष्ट कर डाला ॥ २३ ॥

तमन्तकमिव क्रुद्धं समरे प्राणहारिणम् ।
हनुमन्तमभिप्रेक्ष्य राक्षसा विप्रदुद्रुवुः ॥२४॥

काल की तरह क्रुद्ध और युद्ध में प्राणनाश करने वाले हनुमान जी को देख, राक्षस योद्धा युद्ध छोड़ भाग खड़े हुए ॥२४॥

तमापतन्तं संक्रुद्धं राक्षसानां भयावहम् ।
ददर्शाकम्पनो वीरश्चुक्रोध च ननाद च ॥२५॥

राक्षस सेनापति वीर अकम्पन, राक्षसों को भय उपजाने वाले हनुमान जी को, अत्यन्त क्रुद्ध हो आक्रमण करते देख, अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और गर्जा ॥ २५ ॥

स चतुर्दशभिर्बाणैः शितैर्देहविदारणैः ।
निर्बिभेद हनुमन्तं महावीर्यमकम्पनः ॥२६॥

उस महाबली अकम्पन ने पैने और शरीर को विदीर्ण करने वाले १४ बाण हनुमान जी के मार कर, उनको घायल कर दिया ॥ २६ ॥

स तदा प्रतिविद्धस्तु बह्वीभिः शरवृष्टिभिः ।
हनुमान्ददृशे वीरः [1]प्ररूढ इव सानुमान् ॥२७॥

बहुत से बाणों की वृष्टि से घायल होने पर, वीर हनुमान जी वृक्षों से युक्त एक गिरिशृङ्ग की तरह देख पड़ते थे ॥ २७ ॥

विरराज महाकायो महावीर्यो महामनाः ।
पुष्पिताशोकसङ्काशो विधूम इव पावकः ॥२८॥

महाकाय, महाबलवान् और महामना हनुमान जी उस समय ऐसे शोभायमान हो रहे थे, जैसे फूला हुआ अशोक का वृक्ष अथवा बिना धुए की (धधकती हुई) आग ॥ २८ ॥

---

१ प्ररूढः — प्ररूढवृक्षः । (गो०)

ततोऽन्यं वृक्षमुत्पाट्य कृत्वा वेगमनुत्तमम् ।
शिरस्यभिजघानाशु राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ॥२९॥

अब हनुमान जी ने एक दूसरा पेड़ उखाड़ लिया और बड़े ज़ोर से उसे तुरन्त राक्षसश्रेष्ठ अकम्पन के सिर पर दे मारा ॥ २६ ॥

स वृक्षेण हतस्तेन सक्रोधेन महात्मना ।
राक्षसो वानरेन्द्रेण पपात च ममार च ॥३०॥

क्रोध से पूर्ण, महाबली एवं वानरश्रेष्ठ हनुमान जी द्वारा वृक्ष के प्रहार से घायल हो, वह राक्षस उसी क्षण पृथिवी पर गिर कर मर गया ॥३०॥

तं दृष्ट्वा निहतं भूमौ राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ।
व्यथिता राक्षसाः सर्वे क्षितिकम्प इव द्रुमाः ॥३१॥

राक्षसश्रेष्ठ अकम्पन को ज़मीन पर मरा हुआ पड़ा देख, उसकी सेना के अन्य राक्षस योद्धा वैसे ही व्यथित हो थर्रा उठे, जैसे भूकम्प होने पर वृक्ष थर्रा उठते हैं ॥ ३१ ॥

त्यक्तप्रहरणाः सर्वे राक्षसास्ते पराजिताः ।
लङ्कामभिययुस्त्रस्ता वानरैस्तैरभिद्रुताः ॥३२॥

उन पराजित राक्षसों ने अपने अपने हथियार पटक दिये और वानरों द्वारा खदेड़े जा कर, वे भयभीत हो लङ्का की ओर भाग गये ॥३२॥

ते मुक्तकेशाः सम्भ्रान्ता भग्नमानाः पराजिताः ।
स्रवच्छ्रमजलैरङ्गैः श्वसन्तो विप्रदुद्रुवुः ॥३३॥

इस प्रकार भागते समय उन राक्षसों की बड़ी दुर्गति हो रही थी। उनके सिर के बाल बिखर गये थे। उस समय घबड़ाये हुए

होने के कारण और हार जाने के कारण उनका मान भङ्ग हो चुका था। उनके शरीरों से पसीना टपक रहा था और वे हाँफते हुए भागे जा रहे थे ॥३३॥

अन्योन्यं प्रममन्थुस्ते विविशुर्नगरं भयात् ।
पृष्ठतस्ते *हनूमन्तं प्रेक्षमाणा मुहुर्मुहुः ॥३४॥

वे मारे डर के आपस में एक दूसरे से लटपटाते किसी तरह लङ्का में पहुँचे। किन्तु भागते समय भी वे बार बार फिर फिर कर अपने पीछे हनुमान जी को देखते जाते थे ॥३४॥

तेषु लङ्कां प्रविष्टेषु राक्षसेषु महाबलाः ।
समेत्य हरयः सर्वे हनुमन्तमपूजयन् ॥३५॥

उन महाबली राक्षसों के भाग कर लङ्का में घुस जाने पर, सब वानरों ने एकत्र हो (अर्थात् एक स्वर से) हनुमान जी की प्रशंसा की ॥३५॥

सोऽपि प्रहृष्टस्तान्सर्वान्हरीन्प्रत्यभ्यपूजयत्[1] ।
हनुमान्सत्त्वसम्पन्नो यथार्हमनुकूलतः ॥३६॥

बलवान हनुमान जी ने भी परम प्रसन्न हो, उन सब वानरों से कहा कि, आप ही लोगों की सहायता से मैंने यह विजय पायी है। फिर उन्होंने वानरों को गले लगा और उनके साथ यथायोग्य बातचीत कर, उनको उत्साहित किया ॥३६॥

[**नोट**—यहाँ पर आदिकवि ने, एक विजयी वीर द्वारा, अपनी विजयिनी सेना के योद्धाओं के प्रति, विजय के पीछे, विजयी सेनापति के कर्त्तव्य का पालन करवाया है।]

---

१ प्रत्यभ्य पूजयत्—भवत्साहाय्येनेव मया जितमित्येवमिति भावः। (गो०)
* पाठान्तरे—" सुसंमूढः "।

विनेदुश्च यथाप्राणं हरयो जितकाशिनः ।
चकर्षुश्च पुनस्तत्र सप्राणानपि राक्षसान् ॥३७॥

अब विजयी वानर बड़े ज़ोर से गर्जे और अधमरे राक्षसों को भी घसीटने लगे ॥ ३७ ॥

स वीरशोभामभजन्महाकपिः
समेत्य रक्षांसि निहत्य मारुतिः ।
महासुरं भीममित्रनाशनं
यथैव विष्णुर्बलिनं चमूमुखे ॥३८॥

जिस प्रकार भगवान् विष्णु, महाभयङ्कर एवं शत्रुहन्ता (मधु कैटभादि) बड़े बड़े असुरों को मार कर, शोभायमान हुए थे, उसी प्रकार पवननन्दन हनुमान जी राक्षसों को मार वीरोचित शोभा से शोभायमान हुए ॥ ३८ ॥

अपूजयन्देवगणास्तदा कपिं
स्वयं च रामोऽतिबलश्च लक्ष्मणः ।
तथैव सुग्रीवमुखाः प्लवङ्गमा
विभीषणश्चैव महाबलस्तथा ॥३९॥

इति षट्पञ्चाशः सर्गः ॥

तदनन्तर देवताओं ने, स्वयं अति बलवान् श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी ने, तथा सुग्रीवादि प्रमुख वानरों ने और महा बलवान् विभीषण ने हनुमान जी की प्रशंसा की ॥ ३९ ॥

युद्धकाण्ड का छप्पनवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—*—

सप्तपञ्चाशः सर्गः

—※—

अकम्पनवधं श्रुत्वा क्रुद्धो वै राक्षसेश्वरः ।
किञ्चिद्दीनमुखश्चापि सचिवांस्तानुदैक्षत ॥ १ ॥

अकंपन के मारे जाने का संवाद सुन, राक्षसराज रावण क्रुद्ध हुआ और उदास हो, अपने मंत्रियों की ओर निहारने लगा ॥ १ ॥

स तु ध्यात्वा मुहूर्तं तु मन्त्रिभिः संविचार्य च ।
ततस्तु रावणः [1]पूर्वदिवसे राक्षसाधिपः ॥ २ ॥

उसने थोड़ी देर तक कुछ सोचा और तदनन्तर मंत्रियों से परामर्श किया । फिर राक्षसराज रावण दोपहर के होने के पूर्व ही ॥ २ ॥

पुरीं परिययौ लङ्कां सर्वान्गुल्मानवेक्षितुम् ।
तां राक्षसगणैर्गुप्तां गुल्मैर्बहुभिरावृताम् ॥ ३ ॥

ददर्श नगरीं लङ्कां पताकाध्वजमालिनीम् ।
रुद्धां तु नगरीं दृष्ट्वा रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ४ ॥

उस पुरी की मोर्चेबंदी देखने को लङ्कापुरी में चारों ओर घूमा । राक्षसों से रक्षित, अनेक मोर्चेबंदियों से युक्त तथा ध्वजापताकाओं एवं मालाओं से सुसज्जित लङ्कापुरी को तथा वानरों द्वारा डाले हुए पुरी के घेरों को देख, राक्षसराज रावण ने, ॥ ३ ॥ ४ ॥

*उवाचात्महितं काले प्रहस्तं युद्धकोविदम् ।
पुरस्योपनिविष्टस्य सहसा पीडितस्य च ॥ ५ ॥

---

१ पूर्वदिवसे—दिविसस्य पूर्वभागे । (गो०) * पाठान्तरे—"उवाचामर्षतः ।"

नान्यं युद्धात्प्रपश्यामि मोक्षं युद्धविशारद ।
अहं वा कुम्भकर्णो वा त्वं वा सेनापतिर्मम ॥ ६ ॥

और विपत्तिकाल में अपने हितैषी एवं युद्धविशारद प्रहस्त से कहा—हे युद्धविशारद ! शत्रु की सेना लङ्कापुरी को चारों ओर से घेर कर पुरवासियों को जिस प्रकार तंग कर रही है, उससे तो युद्ध करने के सिवाय, इन लोगों से छुटकारा पाने का, अन्य कोई उपाय मुझे नहीं देख पड़ता ; किन्तु स्वयं मैं, अथवा कुम्भकर्ण अथवा मेरे सेनापति तुम, ॥ ५ ॥ ६ ॥

इन्द्रजिद्वा निकुम्भो वा वहेयुर्भारमीदृशम् ।
स त्वं बलमतः शीघ्रमादाय परिगृह्य[1] च ॥ ७ ॥
विजयायाभिनिर्याहि यत्र सर्वे वनौकसः ।
निर्याणादेव ते नूनं [2]चपला हरिवाहिनी ॥ ८ ॥

अथवा इन्द्रजीत, अथवा निकुम्भ—ये ही इस भार को उठा सकते हैं । अतएव तुम सेना को साथ ले कर तथा रथ में सवार हो कर, विजयप्राप्ति के लिये, वहाँ शीघ्र जाओ, जहाँ वे सब वानर ठहरे हुए हैं । तुम्हारे जाते ही वानरी सेना घबड़ा जायगी ॥ ७ ॥ ८ ॥

नर्दतां राक्षसेन्द्राणां श्रुत्वा नादं द्रविष्यति ।
चपला ह्यविनीताश्च चलचित्ताश्च वानराः ॥ ९ ॥

राक्षसश्रेष्ठों का गर्जन सुन वानर इधर उधर भाग जायँगे । क्योंकि वानर चपल, अशिक्षित और चञ्चलचित्त होते हैं ॥ ९ ॥

---

१ परिगृह्य—रथमास्थितः त्वं । (शि०) २ चपला—धैर्यरहिता । (गो०)

न सहिष्यन्ति ते नादं सिंहनादमिव द्विपाः ।
विद्रुते च बले तस्मिन्रामः सौमित्रिणा सह ॥ १० ॥

वे तुम्हारा गर्जन तर्जन वैसे ही न सह सकेंगे, जैसे हाथी सिंह का गर्जन नहीं सह सकता। जब वानरी सेना भाग जायगी, तब लक्ष्मण सहित रामचन्द्र ॥ १० ॥

[1]अवशस्ते निरालम्बः प्रहस्त वशमेष्यति ।
[2]आपत्संशयिता [3]श्रेयो न तु निःसंशयीकृता ॥ ११ ॥

प्रभुत्वरहित और निरालंब हो, तुम्हारे अधीन हो जाँयगे। हे प्रहस्त! इस समय सन्देह तो हार ही में है, हमारे विजय में तो ज़रा भी संशय नहीं है। अथवा हे प्रहस्त! इस समय यह नहीं कहा जा सकता कि, कौन मारा जायगा; किन्तु हम लोगों की जीत निस्संशय है ॥ ११ ॥

प्रतिलोमानुलोमं वा यद्वा नो मन्यसे हितम् ।
रावणेनैवमुक्तस्तु प्रहस्तो वाहिनीपतिः ॥ १२ ॥

ऐसी दशा में मेरे इस कथन के प्रतिकूल या अनुकूल, जिसमें मेरा हित तुम समझो, वही करो। जब रावण ने इस प्रकार कहा; तब सेनापति प्रहस्त ॥ १२ ॥

राक्षसेन्द्रमुवाचेदमसुरेन्द्रमिवोशना ।
राजन्मन्त्रितपूर्वं नः कुशलैः सह मन्त्रिभिः ॥ १३ ॥

रावण से वैसे ही बोला, जैसे दैत्यराज से शुक्राचार्य बोलते हैं। हे राजन्! हम लोगों ने कुशल मंत्रियों के साथ इस सम्बन्ध में परामर्श किया था ॥ १३ ॥

---

१ अवशः—प्रभुत्वरहितः। (गो०) २ आपत्—मृतिः परभवभवदुःखं वा। (रा०) ३ श्रेयो—विजयस्तु। (रा०)

विवादश्चापि नो वृत्तः समवेक्ष्य परस्परम् ।
प्रदानेन तु सीतायाः श्रेयो व्यवसितं मया ॥ १४ ॥

परन्तु उस समय आपस में विवाद उठ खड़ा हुआ और सब की एक सम्मति न हो पायी। (किन्तु) मैंने आपको सीता के दे डालने का परामर्श दिया था और इसीमें भलाई समझी थी ॥ १४ ॥

अप्रदाने पुनर्युद्धं दृष्टमेतत्तथैव नः ।
सोऽहं [1]दानैश्च [2]मानैश्च सततं पूजितस्त्वया[3] ॥१५॥

उस समय मैंने यह भी कह दिया था कि, यदि सीता न दी गयी, तो युद्ध करना ही पड़ेगा। सो वही युद्ध करने का समय प्राप्त हुआ है। हे राक्षसराज! समय पर भूषणादि प्रदान कर तथा मुझसे प्रिय भाषण (मेरा जीवन तुम्हारे ही अधीन है आदि बातें कह) कर, तुमने सदा मुझे सन्मानित किया अथवा मेरा उत्कर्ष बढ़ाया है ॥ १५ ॥

सान्त्वैश्च विविधैः काले किं न कुर्यां प्रियं तव ।
न हि मे जीवितं रक्ष्यं पुत्रदारधनानि वा ॥ १६ ॥

और विविध प्रकार से समझा बुझा कर धैर्य बंधाया है। अतः इस विपत्तिकाल में, मैं तुम्हारे हितसाधन का काम क्यों न करूँगा? अब मुझे न तो अपने प्राणों की रक्षा की चिन्ता है और न पुत्र स्त्री तथा धनधान्य की कुछ ममता ही है ॥ १६ ॥

त्वं पश्य मां जुहूषन्तं त्वदर्थं जीवितं युधि ।
एवमुक्त्वा तु भर्तारं रावणं वाहिनीपतिः ॥ १७ ॥

---

१ दानैः—भूषणादिप्रदानैः। (गो०) २ मानैः—त्वदधीनं जीवितमित्यादि प्रियभाषणैः। (गो०) ३ पूजितः—उत्कर्षमापादितः। (गो०)

उवाचेदं बलाध्यक्षान्प्रहस्तः पुरतः स्थितान् ।
समानयत मे शीघ्रं राक्षसानां महद्बलम् ॥ १८ ॥

तुम देखो कि, मैं किस प्रकार तुम्हारे लिये इस युद्ध में अपने प्राणों की आहुति देता हूँ । इस प्रकार अपने स्वामी रावण से कह कर, सेनापति प्रहस्त ने सामने खड़े हुए सेनाध्यक्षों से कहा । मेरी राक्षसों की महती सेना सजा कर तुरन्त ले आओ ॥ १७ ॥ १८ ॥

मद्बाणाशनिवेगेन हतानां च रणाजिरे ।
अद्य तृप्यन्तु मांसादाः पक्षिणः काननौकसाम् ॥ १९ ॥

आज इस युद्धभूमि में मेरे बाणों की मार से मरे हुए वानरों के मांस से मांसभक्षी पक्षी तृप्त होंगे ॥ १६ ॥

इत्युक्तास्ते प्रहस्तेन बलाध्यक्षाः कृतत्वराः ।
बलमुद्योजयामासुस्तस्मिन्राक्षसमन्दिरे ॥ २० ॥

इस प्रकार जब प्रहस्त ने कहा, तब वे सेनाध्यक्ष शीघ्रतापूर्वक प्रहस्त के घर ही पर सेना एकत्र करने लगे ॥ २० ॥

सा बभूव मुहूर्तेन तिग्मनानाविधायुधैः ।
लङ्का राक्षसवीरैस्तैर्गजैरिव समाकुला ॥ २१ ॥

थोड़ी ही देर में विविध प्रकार के आयुधधारी भयङ्कर वीर राक्षसों से, गजों की तरह लङ्कापुरी भर गयी ॥ २१ ॥

हुताशनं तर्पयतां ब्राह्मणांश्च नमस्यताम् ।
आज्यगन्धप्रतिवहः सुरभिर्मरुतो ववौ ॥ २२ ॥

मङ्गलकामना के लिये अनेक राक्षस हवन करने लगे । बहुतों ने ब्राह्मणों की वन्दना की । होम किये हुए घी की सुगन्धि मिलने के कारण सुगन्धित हवा चलने लगी ॥ २२ ॥

स्रजश्च विविधाकारा जगृहुस्त्वभिमन्त्रिताः ।
संग्रामसज्जाः संहृष्टा धारयन्राक्षसास्तदा ॥ २३ ॥

युद्ध में जाने के लिये उद्यत अनेक राक्षस, मंत्र से अभिमंत्रित विविध प्रकार के फूलों की मालायें ले और उनको धारण कर बड़े प्रसन्न हुए ॥ २३ ॥

सधनुष्काः कवचिनो वेगादाप्लुत्य राक्षसाः ।
[1]रावणं प्रेक्ष्य राजानं प्रहस्तं पर्यवारयन् ॥ २४ ॥

धनुष लिये और कवच पहिने हुए राक्षसों ने सवारियों से नीचे उतर अपने राजा रावण को प्रणाम किया और प्रहस्त के पास जा और उसे घेर कर वे खड़े हो गये ॥ २४ ॥

अथामन्त्र्य च राजानं भेरीमाहत्य भैरवाम् ।
आरुरोह रथं दिव्यं प्रहस्तः सज्जकल्पितम् ॥ २५ ॥

फिर अति घोर भेरी बजवा और रावण से आज्ञा ले, प्रहस्त सजे हुए एक दिव्य रथ पर चढ़ा ॥ २५ ॥

हयैर्महाजवैर्युक्तं सम्यक्सूतसुसंयतम् ।
महाजलदनिर्घोषं साक्षाच्चन्द्रार्कभास्वरम् ॥ २६ ॥

उस रथ में बड़े शीघ्रगामी घोड़े जुते हुए थे और बड़ा चतुर रथवान उसको हाँकता था। जब वह रथ चलता था, तब बादलों की गड़गड़ाहट जैसा शब्द होता था। वह चन्द्र सूर्य की तरह प्रकाशमान था ॥ २६ ॥

उरगध्वजदुर्धर्षं सुवरूथं स्वपस्करम् ।
सुवर्णजालसंयुक्तं प्रहसन्तमिव श्रिया ॥ २७ ॥

---

१ रावणंप्रेक्ष्यः—स्वामितया प्रधानंरावणं अभिवन्द्येत्यर्थः । (गो०)

उसके ऊपर सर्पाकार ध्वजा फहरा रही थी, उसके ऊपर के कलस सुन्दर थे। वह सुवर्ण से भूषित था अथवा उसमें सोने की जाली लगी हुई थी। वह अपने को देख अपनी सुन्दरता की शोभा से मानों आप ही हँस रहा था ॥ २७ ॥

ततस्तं रथमास्थाय रावणार्पितशासनः ।
लङ्काया निर्ययौ तूर्णं बलेन महताऽऽवृतः ॥ २८ ॥

ऐसे दिव्य रथ पर सवार हो और रावण की आज्ञा ले प्रहस्त, बड़ी भारी राक्षसी सेना सहित तुरन्त लङ्का से निकला ॥ २८ ॥

ततो दुन्दुभिनिर्घोषः पर्जन्यनिनदोपमः ।
वादित्राणां च निनदः पूरयन्निव *मेदिनीम् ॥ २९ ॥

उस समय मेघगर्जन की तरह नगाड़े बजे और अन्य बाजों के बजने से सब पृथिवी भर गयी ॥ २९ ॥

शुश्रुवे शङ्खशब्दश्च प्रयाते वाहिनीपतौ ।
निनदन्तः स्वरान्घोरान्राक्षसा जग्मुरग्रतः ॥ ३० ॥

जिस समय प्रहस्त चला, उस समय शङ्ख की ध्वनि सुन पड़ी। उसके आगे आगे गर्जते हुए राक्षस चले ॥ ३० ॥

भीमरूपा महाकायाः प्रहस्तस्य पुरःसराः ।
नरान्तकः कुम्भहनुर्महानादः समुन्नतः ॥ ३१ ॥

भयङ्कर रूपधारी बड़े बड़े डीलडौल के राक्षस प्रहस्त के आगे आगे चलते थे। नरान्तक कुम्भहनु, महानाद, समुन्नत ॥ ३१ ॥

---

* पाठान्तरे—"सागरम्।"

प्रहस्तसचिवा ह्येते निर्ययुः परिवार्य तम् ।
व्यूहेनैव सुघोरेण पूर्वद्वारात्स निर्ययौ ॥ ३२ ॥

ये प्रहस्त के सचिव थे और ये सब उसको चारों ओर से घेर कर जा रहे थे। घोर व्यूह की रचना कर, प्रहस्त लङ्का के पूर्वद्वार से बाहिर निकला ॥ ३२ ॥

गजयूथनिकाशेन बलेन महता वृतः ।
सागरप्रतिमौघेन वृतस्तेन बलेन सः ॥ ३३ ॥

उस समय उसके साथ हाथियों के झुंड की तरह एक बड़ी भारी सेना थी। वह सागर की तरह अपार सेना से घिरा हुआ जा रहा था ॥ ३३ ॥

प्रहस्तो निर्ययौ तूर्णं कालान्तकयमोपमः ।
तस्य निर्याणघोषेण राक्षसानां च नर्दताम् ॥ ३४ ॥

कालान्तक यम की तरह प्रहस्त बड़ी शीघ्रता से लङ्का के बाहिर निकला। उस समय उसके रथ के चलने की गड़गड़ाहट से तथा राक्षसों के गर्जने से ॥ ३४ ॥

लङ्कायां सर्वभूतानि विनेदुर्विकृतैः स्वरैः ।
व्यभ्रमाकाशमाविश्य मांसशोणितभोजनाः ॥ ३५ ॥

समस्त लङ्कावासी जीव विकट स्वर से चिल्लाने लगे। मेघशून्य आकाश में उड़ते हुए रुधिर और माँसभोजी ॥ ३५ ॥

मण्डलान्यपसव्यानि खमाश्चक्रू रथं प्रति ।
वमन्त्यः पावकज्वालाः शिवा घोरा ववाशिरे ॥ ३६ ॥

पक्षी रथ की बाईं ओर चक्कर काटने लगे। गीदड़ियाँ मुखों से आग की लपटें निकाल निकाल, चिल्लाने लगीं ॥ ३६ ॥

अन्तरिक्षात्पपातोल्का वायुश्च परुषो ववौ ।
अन्योन्यमभिसंरब्धा ग्रहाश्च न चकाशिरे ॥ ३७ ॥

आकाश से उल्कापात होने लगा—रूखी हवा भी चलने लगी। क्रुद्ध हो आपस में ग्रहों का युद्ध होने लगा। अतः समस्त ग्रह प्रभाहीन हो गये ॥ ३७ ॥

मेघाश्च खरनिर्घोषा रथस्योपरि रक्षसः ।
ववृषू रुधिरं चास्य सिषिचुश्च पुरःसरान् ॥ ३८ ॥

मेघ कठोर शब्द कर, प्रहस्त के रथ के ऊपर रुधिर की वर्षा कर, रथ के आगे चलने वालों को रुधिर से तर करने लगे ॥ ३८ ॥

केतुमूर्धनि गृध्रोऽस्य निलीनो दक्षिणामुखः ।
तदन्नुभयतः पार्श्वं समग्रामहरत्प्रभाम् ॥ ३९ ॥

प्रहस्त की सेना के झंडे के ऊपर दक्षिण को मुँह कर गीध आ बैठा और अपने दोनों पंखों को चोंच से खुजलाने लगा। उसने प्रहस्त की सारी शोभा हर ली ॥ ३९ ॥

सारथेर्बहुशश्चास्य *संग्राममभिवर्तिनः ।
[1]प्रतोदो न्यपतद्धस्तात्सूतस्य हयसादिनः ॥ ४० ॥

रणभूमि में अनेक बार गये हुए, अनेक युद्धों में सम्मिलित हो चुकने वाले, सूतकुल में उत्पन्न रथ हाँकने वाले रथवान के हाथ से बार बार चाबुक गिरा ॥ ४० ॥

---

१ प्रतोदः—तोत्रंन्यपतत्। (शि०) * पाठान्तरे—"संग्राममवगाहतः।"

निर्याणश्रीश्च यास्यासीद्भास्वरा [1]वसुदुर्लभा ।
सा ननाश मुहूर्तेन समे च स्खलिता हयाः ॥ ४१ ॥

युद्धयात्रा करते समय प्रकाशमान और अष्टवसुओं के लिये भी दुर्लभ जो श्री प्रहस्त की थी, वह थोड़ी ही देर में नष्ट हो गयी और समतल भूमि में दौड़ते हुए घोड़े गिर पड़े ॥ ४१ ॥

प्रहस्तं त्वभिनिर्यान्तं प्रख्यातबलपौरुषम् ।
युधि नानाप्रहरणा कपिसेनाऽभ्यवर्तत ॥ ४२ ॥

प्रसिद्ध बल पौरुष वाले प्रहस्त को निकलते देख, रणभूमि में वानरगण वृक्ष शिला आदि विविध प्रकार के आयुध ले, उससे लड़ने को तैयार हो गये ॥ ४२ ॥

अथ घोषः सुतुमुलो हरीणां समजायत ।
वृक्षानारुजतां[2] चैव गुर्वीरागृह्णतां शिलाः ॥ ४३ ॥

कपिसेना में बड़ा भारी हल्ला मचा । वे बड़े बड़े वृक्षों को उखाड़ने और बड़ी भारी भारी शिलाओं को तोड़ने लगे ॥ ४३ ॥

नदतां राक्षसानां च वानराणां च गर्जताम् ।
उभे प्रमुदिते सैन्ये रक्षोगणवनौकसाम् ॥ ४४ ॥

एक ओर राक्षस नाद कर रहे थे दूसरी ओर वानर गर्ज रहे थे । राक्षसी और वानरी दोनों सेनाओं में हर्ष छाया हुआ था ॥४४॥

वेगितानां समर्थानामन्योन्यवधकाङ्क्षिणाम् ।
परस्परं चाह्वयतां निनादः श्रूयते महान् ॥ ४५ ॥

---

१ वसुदुर्लभा—अष्टवसुदुर्लभा । (गो०) २ आरुजतां—उन्मूलयतां । (गो०)

ये बलवान राक्षस और वेगवान वानर दोनों ही एक दूसरे का नाश करने के लिये फुर्तीले और युद्ध करने में समर्थ तथा एक दूसरे का नाश करने की अभिलाषा रखने वाले योद्धा युद्ध के लिये एक दूसरे को ललकार रहे थे । अतः बड़ा भारी होहल्ला सुन पड़ता था ॥ ४५ ॥

ततः प्रहस्तः कपिराजवाहिनीम्
अभिप्रतस्थे विजयाय दुर्मतिः ।
विवृद्धवेगां च विवेश तां चमूं
यथा मुमूर्षुः शलभो विभावसुम् ॥ ४६ ॥

इति सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥

तदनन्तर राक्षसी सेना का सेनापति खोटी बुद्धि वाला प्रहस्त, युद्ध में विजय प्राप्त करने की इच्छा से, अत्यन्त वेग से वानरों की सेना पर वैसे ही झपटा, जैसे अपने प्राण गँवाने के लिये पतंग दहकते हुए अग्नि पर झपटता है ॥ ४६ ॥

युद्धकाण्ड का सत्तावनवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—*—

अष्टपञ्चाशः सर्गः

—*—

ततः प्रहस्तं निर्यान्तं दृष्ट्वा भीमपराक्रमम् ।
उवाच सस्मितं रामो विभीषणमरिन्दमः ॥ १ ॥

भीम पराक्रमी प्रहस्त को लङ्का से बाहिर निकलते देख, शत्रुहन्ता श्रीरामचन्द्र जी ने मुसक्या कर विभीषण से कहा ॥ १ ॥

क एष सुमहाकायो बलेन महता वृतः ।
*आचक्ष्व मे महाबाहो वीर्यवन्तं निशाचरम् ॥ २ ॥

हे महाबाहो ! मुझे बतलाओ यह वीर्यवान और बड़े डीलडौल वाला कौन निशाचर है, जिसके साथ बड़ी भारी सेना है ॥ २ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच विभीषणः ।
एष सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो नाम राक्षसः ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के ये वचन सुन उत्तर में विभीषण ने कहा—यह रावण का सेनापति है । इस राक्षस का नाम प्रहस्त है ॥ ३ ॥

लङ्कायां राक्षसेन्द्रस्य त्रिभागबलसंवृतः ।
वीर्यवानस्त्रविच्छूरः प्रख्यातश्च पराक्रमे ॥ ४ ॥

लङ्का में रावण के अधीन जितनी सेना है, उसमें से एक तिहाई सेना इसके अधीन है । यह अस्त्रों का चलाना जानता है और एक प्रसिद्ध पराक्रमी है ॥ ४ ॥

ततः प्रहस्तं निर्यान्तं भीमं भीमपराक्रमम् ।
गर्जन्तं सुमहाकायं राक्षसैरभिसंवृतम् ॥ ५ ॥

भीम पराक्रमी और विशालकाय प्रहस्त, राक्षसी सेना के साथ गर्जता हुआ लङ्का के बाहिर आया ॥ ५ ॥

ददर्श महती सेना वानराणां बलीयसाम् ।
अतिसञ्जातरोषाणां प्रहस्तमभिगर्जताम् ॥ ६ ॥

उसने वानरों की बड़ी बलवान सेना को देखा, जो उसे (प्रहस्त को) देख अत्यन्त कुपित हो गर्ज रही थी ॥ ६ ॥

---

* एक संस्करण में इसके पूर्व यह और है —"आगच्छति महावेगः किंरूपबलपौरुषः ।"

खड्गशक्त्यृष्टिबाणाश्च शूलानि मुसलानि च ।
गदाश्च परिघाः प्रासा विविधाश्च परश्वधाः ॥ ७ ॥
धनूंषि च विचित्राणि राक्षसानां जयैषिणाम् ।
प्रगृहीतान्यशोभन्त वानरानभिधावताम् ॥ ८ ॥

जीतने की इच्छा किये हुए राक्षस, तलवार, शक्ति, डंडे, बाण, शूल, मूसल, गदा, बेंडा (या मुगदर) प्रास तथा विविध प्रकार के परश्वध तथा विचित्र धनुषों को हाथ में लेकर, वानरों पर आक्रमण करते हुए उनके अस्त्रशस्त्र शोभायमान होते थे ॥ ७ ॥ ८ ॥

जगृहुः पादपांश्चापि पुष्पितान्वानरर्षभाः ।
शिलाश्च विपुला दीर्घा योद्धुकामाः प्लवङ्गमाः ॥ ९ ॥

दूसरी ओर वानरश्रेष्ठों ने भी पुष्पित पेड़ और बड़ी लंबी चौड़ी शिलाएँ, राक्षसों से लड़ने के लिये हाथों में ले ली थीं ॥ ६ ॥

तेषामन्योन्यमासाद्य संग्रामः सुमहानभूत् ।
बहूनामश्मवृष्टिं च शरवृष्टिं च वर्षताम् ॥ १० ॥

परस्पर दोनों सेनाएँ जब भिड़ गयीं ; तब बड़ा विकट युद्ध हुआ । दोनों ही ओर के योद्धा, एक दूसरे के ऊपर शिलाओं और बाणों की वर्षा करने लगे ॥ १० ॥

बहवो राक्षसा युद्धे बहून्वानरयूथपान् ।
वानरा राक्षसांश्चापि निजघ्नुर्बहवो बहून् ॥ ११ ॥

इस लड़ाई में बहुत से राक्षसों ने बहुत से वानर यूथपतियों को और बहुत से वानरों ने बहुत से राक्षसों को मार डाला ॥ ११ ॥

शूलैः प्रमथिताः केचित्केचिच्च परमायुधैः[1] ।
परिघैराहताः केचित्केचिच्छिन्नाः परश्वधैः ॥ १२ ॥

कोई कोई वानर शूलों से, कोई कोई चक्रों से, कोई कोई परिघों से मारे गये और कोई कोई फरसों से काट डाले गये ॥ १२ ॥

निरुच्छ्वासाः कृताः केचित्पतिता धरणीतले ।
विभिन्नहृदयाः केचिदिषुसन्धानसन्दिताः ॥ १३ ॥

कोई कोई तो वेदम हो भूमि पर गिर पड़े, किसी का कलेजा चीर डाला गया, किसी के शरीर बाणों से विध गये ॥ १३ ॥

केचिद्द्विधा कृताः खड्गैः स्फुरन्तः पतिता भुवि ।
वानरा राक्षसैः शूलैः पार्श्वतश्च विदारिताः ॥ १४ ॥

कोई कोई तलवार से दो टुकड़े किये जाकर ज़मीन पर पड़े छटपटा रहे थे। वीर राक्षसों ने वानरों की कोखें शूलों से फाड़ डालीं ॥ १४ ॥

वानरैश्चापि संक्रुद्धैः राक्षसौघाः समन्ततः ।
पादपैर्गिरिशृङ्गैश्च सम्पिष्टा वसुधातले ॥ १५ ॥

वानरों ने भी क्रुद्ध हो चारों ओर रणभूमि में पेड़ों और शिलाओं के प्रहार से राक्षसों के दल के दल चूर्ण कर, पृथिवी पर गिरा दिये ॥ १५ ॥

वज्रस्पर्शतलैर्हस्तैर्मुष्टिभिश्च हता भृशम् ।
वेमुः शोणितमास्येभ्यो विशीर्णदशनेक्षणाः ॥ १६ ॥

वानरों के वज्र समान थप्पड़ों और मूँकों की मार से मारे जा कर, राक्षस मुँह से ख़ून गिराने लगे। बहुत से राक्षसों के दांतों

---

१ परमायुधैः—चक्रैः । (गो०)

को वानरों ने तोड़ डाला, बहुत से राक्षसों की आँखें निकाल लीं ॥ १६ ॥

आर्तस्वनं च स्वनतां सिंहनादं च नर्दताम् ।
बभूव तुमुलः शब्दो हरीणां रक्षसां युधि ॥ १७ ॥

उस समय वानरों और राक्षसों की लड़ाई में घायलों के आर्तनाद का और वीरों के सिंहनाद का बड़ा भारी शब्द हुआ ॥ १७ ॥

वानरा राक्षसाः क्रुद्धा [1]वीरमार्गमनुव्रताः ।
विवृत्तनयनाः क्रूराश्चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥ १८ ॥

क्रोध में भर अपना अपना युद्धकौशल दिखलाते हुए वानर और राक्षस, नेत्र टेढ़े कर कर और निडर हो, बड़ी निष्ठुरता से युद्ध कर रहे थे ॥ १८ ॥

नरान्तकः कुम्भहनुर्महानादः समुन्नतः ।
एते प्रहस्तसचिवाः सर्वे जघ्नुर्वनौकसः ॥ १९ ॥

प्रहस्त के ये सब दीवान नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद और समुन्नत वानरों को मार रहे थे ॥ १९ ॥

तेषामापततां शीघ्रं निघ्नतां चापि वानरान् ।
द्विविदो गिरिशृङ्गेण जघानैकं नरान्तकम् ॥ २० ॥

वे चारों खदेड़ खदेड़ कर वानरों को मार रहे थे कि, द्विविद ने पर्वत के एक शिखर से नरान्तक को मार डाला ॥ २० ॥

दुर्मुखः *पुनरुत्पाट्य कपिः स विपुलद्रुमम् ।
राक्षसं क्षिप्रहस्तस्तु समुन्नतमपोथयत् ॥ २१ ॥

---

१ वीरमार्गं—युद्धकौशलं । (गो०)   * पाठान्तरे—"पुनरुत्थाय ।"

कपिश्रेष्ठ दुर्मुख ने एक विशाल वृक्ष उखाड़ कर फुर्ती के साथ लड़ते लड़ते समुन्नत को पीस डाला ॥ २१ ॥

जाम्बवांस्तु सुसंक्रुद्धः प्रगृह्य महतीं शिलाम् ।
पातयामास तेजस्वी महानादस्य वक्षसि ॥ २२ ॥

तेजस्वी जाम्बवान् ने क्रोध में भर एक बड़ी भारी शिला उठा कर, महानाद की छाती में दे मारी ॥ २२ ॥

अथ कुम्भहनुस्तत्र तारेणासाद्य वीर्यवान् ।
वृक्षेणाभिहतो मूर्ध्नि प्राणान्सन्त्याजयद्रणे ॥ २३ ॥

कपिवर वीर्यवान् तार ने एक बड़े पेड़ के प्रहार से कुम्भहनु के सिर को चकनाचूर कर दिया। इस प्रहार से कुम्भहनु ने भी युद्ध करते हुए अपने प्राण त्याग दिये ॥ २३ ॥

अमृष्यमाणस्तत्कर्म प्रहस्तो रथमास्थितः ।
चकार कदनं घोरं धनुष्पाणिर्वनौकसाम् ॥ २४ ॥

वानरों द्वारा इस प्रकार राक्षसों का संहार प्रहस्त को असह्य हुआ। वह रथ में बैठा हुआ और धनुष बाण ले वानरों का नाश करने लगा ॥ २४ ॥

आवर्त इव सञ्जज्ञे उभयोः सेनयोस्तदा ।
क्षुभितस्याप्रमेयस्य सागरस्येव निःस्वनः ॥ २५ ॥

उस समय दोनों ओर की सेना वेग से जल के भँवर की तरह चक्कर खाने लगी और खलबलाते हुए अपार समुद्र की तरह सेनाओं में शब्द होने लगा ॥ २५ ॥

महता हि शरौघेण प्रहस्तो युद्धकोविदः ।
अर्दयामास संक्रुद्धो वानरान्परमाहवे ॥२६॥

युद्धविशारद प्रहस्त क्रुद्ध हो, बड़े बड़े बाणों की वृष्टि कर वानरों को मार रहा था ॥ २६ ॥

वानराणां शरीरैश्च राक्षसानां च मेदिनी ।
बभूव निचिता घोरा पतितैरिव पर्वतैः ॥२७॥

उस समय मरे हुए वानरों और राक्षसों की लोथों से पटी हुई रणभूमि, ऐसी जान पड़ती थी ; मानों पर्वतों से भरी हुई पृथिवी हो ॥ २७ ॥

सा मही रुधिरौघेण प्रच्छन्ना सम्प्रकाशते ।
संछन्ना माधवे मासि पलाशैरिव पुष्पितैः ॥२८॥

युद्धक्षेत्र की वह रक्त-रञ्जित-भूमि ऐसी शोभा दे रही थी, जैसी वसन्तऋतु में टेसुओं के फूलों से ढकी हुई भूमि शोभायमान हुआ करती है ॥ २८ ॥

हतवीरौघवप्रां तु भग्नायुधमहाद्रुमाम् ।
शोणितौघमहातोयां यमसागरगामिनीम् ॥२९॥

उस रणरूपी नदी में वीरों की लोथें तो नदी के उभय तट थे, टूटे हुए शस्त्र बड़े बड़े वृक्ष थे, उसमें रुधिर ही जल था । ऐसी वह नदी यमरूपी महासागर में जाकर गिरती थी ॥ २९ ॥

यकृत्प्लीहमहापङ्कां विनिकीर्णान्त्रशैवलाम् ।
भिन्नकायशिरोमीनामङ्गावयवशाद्वलाम्[1] ॥३०॥

---

१ शाद्वल —भूजन्यतृणानि यस्यांस्तां । (गो०)

इस नदी में यकृत (दहिनी कोख का माँस) और प्लीहा (पिलही—बाईं कोख का माँस) रूपी कीचड़ था, इधर उधर बिखरी हुई आँते रूपी इसमें सिवार (जल में उत्पन्न होने वाली घास विशेष) थी। कटे हुए शरीर और सिर रूपी उसमें मछलियाँ थीं। कटे हुए हाथ पैर कान नाक आदि शरीर के अवयव रूपी घास फूस, उस नदी में उतरा रहा था ॥ ३० ॥

गृध्रहंसगणाकीर्णां कङ्कसारससेविताम् ।
मेदःफेनसमाकीर्णामार्तस्तनितनिःस्वनाम् ॥३१॥

उस नदी के तट पर गीध, हंस, कंक, सारस, बैठे हुए थे। वीरों का चर्बीरूपी फेन नदी में उतरा रहा था। घायल वीरों का आर्त्तस्वर मानों उस नदी के जल का कलकल शब्द था ॥३१॥

तां कापुरुषदुस्तारां युद्धभूमिमयीं नदीम् ।
नदीमिव घनापाये हंससारससेविताम् ॥३२॥

वह युद्धभूमिमयी नदी, कायरों के लिये दुस्तर थी। जैसे शरदऋतु में नदियाँ हंस, सारस आदि जलतटवासी पक्षियों से सेवित होती हैं ॥ ३२ ॥

राक्षसाः कपिमुख्याश्च तेरुस्तां दुस्तरां नदीम् ।
यथा पद्मरजोध्वस्तां नलिनीं गजयूथपाः ॥३३॥

और कमलपराग से वर्णान्तर को प्राप्त नदी को पार कर गजेन्द्र, जैसे लाल रंग के हो जाते हैं, वैसे ही इस दुस्तर रणरूपी नदी को पार कर, वानरश्रेष्ठों और वीर राक्षसों के शरीर लाल रंग के हो गये ॥ (गो०) ॥ ३३ ॥

ततः सृजन्तं बाणौघान्प्रहस्तं स्यन्दने स्थितम् ।
ददर्श तरसा नीलो विनिघ्नन्तं प्लवङ्गमान् ॥३४॥

प्रहस्त को रथ पर सवार हो बड़े वेग से बाणों की वर्षा द्वारा वानरों का संहार करते हुए वानरसेनापति नील ने देखा ॥ ३४ ॥

उद्धूत इव वायुः खे महदभ्रबलं बलात् ।
समीक्ष्याभिद्रुतं युद्धे प्रहस्तो वाहिनीपतिः ॥३५॥

और पवन के वेग से आकाश में उड़ते हुए बड़े बड़े बादलों के समान सेनापति प्रहस्त ने अपनी सेना को युद्ध से भागते देखा ॥३५॥

रथेनादित्यवर्णेन नीलमेवाभिदुद्रुवे ।
स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठो विकृष्य परमाहवे ॥३६॥
नीलाय व्यसृजद्बाणान्प्रहस्तो वाहिनीपतिः ।
ते प्राप्य विशिखा नीलं विनिर्भिद्य समाहिताः ॥३७॥

सूर्य सम प्रकाशित रथ को बढ़वा, प्रहस्त, नील के सामने गया। फिर धनुर्धारियों में श्रेष्ठ सेनापति प्रहस्त ने अपने बड़े धनुष को खैंच कर नील के ऊपर बाण छोड़े। वे बाण नील के शरीर को वेध कर, ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

महीं जग्मुर्महावेगा रुषिता इव पन्नगाः ।
नीलः शरैरभिहतो निशितैर्ज्वलनोपमैः ॥३८॥
स तं परमदुर्धर्षमापतन्तं महाकपिः ।
प्रहस्तं ताडयामास वृक्षमुत्पाट्य वीर्यवान् ॥३९॥

बड़े वेग से वैसे ही ज़मीन में घुस गये; जैसे क्रुद्ध सर्प बड़ी फुर्ती से अपने बिल में घुस जाता है। अग्नि के समान चमचमाते पैने बाणों से घायल हो कर भी बलवान नील ने, उस परम दुर्धर्ष प्रहस्त को अपने ऊपर आक्रमण करते देख, एक पेड़ उखाड़ कर उसके मारा ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

स तेनाभिहतः क्रुद्धो नदन्राक्षसपुङ्गवः ।
ववर्ष शरवर्षाणि प्लवङ्गानां चमूपतौ ॥४०॥

उस वृक्ष के लगने पर क्रुद्ध हो गर्जते हुए राक्षसश्रेष्ठ प्रहस्त ने वानरों के सेनापति नील के ऊपर बाणों की वर्षा की ॥ ४० ॥

तस्य बाणगणान्घोरान्राक्षसस्तस्य महाबलः ।
अपारयन्वारयितुं प्रत्यगृह्णान्निमीलितः ॥४१॥

उस महाबली प्रहस्त के भयङ्कर बाणों को रोकने में असमर्थ हो नील ने नेत्र बन्द कर उन्हें वैसे ही सहन किया ॥ ४१ ॥

यथैव गोवृषो वर्षं शारदं शीघ्रमागतम् ।
एवमेव प्रहस्तस्य शरवर्षं दुरासदम् ॥४२॥
निमीलिताक्षः सहसा नीलः सेहे सुदारुणम् ।
रोषितः शरवर्षेण सालेन महता महान् ॥४३॥

जैसे शरदऋतु की शीघ्र होने वाली वर्षा को वृषभ सहन कर लेता है। इस प्रकार प्रहस्त की दुस्सह और सुदारुण बाणवृष्टि को नील ने नेत्र बन्द कर सहन कर लिया। फिर उस शरवृष्टि से अत्यन्त क्रुद्ध हो और साल का एक बड़ा पेड़ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

प्रजघान हयान्नीलः प्रहस्तस्य मनोजवान् ।
ततः स चापमुद्गृह्य प्रहस्तस्य महाबलः ॥४४॥

उखाड़, नील ने उससे प्रहस्त के रथ के, मन के समान शीघ्रगामी घोड़ों को मार डाला। तदनन्तर प्रहस्त के हाथ से उसका धनुष छीन कर महाबली ॥ ४४ ॥

बभञ्ज तरसा नीलो ननाद च पुनः पुनः।
विधनुस्तु कृतस्तेन प्रहस्तो वाहिनीपतिः ॥४५॥

नील ने बलपूर्वक तोड़ डाला और फिर बार बार वह गर्जा। धनुष रहित किये जाने पर सेनापति प्रहस्त, ॥ ४५ ॥

प्रगृह्य मुसलं घोरं स्यन्दनादवपुप्लुवे।
तावुभौ वाहिनीमुख्यौ जातवैरौ तरस्विनौ ॥४६॥

एक मूसल ले रथ के नीचे कूद पड़ा। अन्त में दोनों बलवान सेनापति एक दूसरे के महाशत्रु हो गये थे ॥ ४६ ॥

स्थितौ क्षतजदिग्धाङ्गौ [1]प्रभिन्नाविव कुञ्जरौ।
उल्लिखन्तौ सुतीक्ष्णाभिर्दंष्ट्राभिरितरेतरम् ॥४७॥

मतवाले हाथियों के समान लड़ते लड़ते वे दोनों लोहूलुहान हो गये थे। दोनों ही एक दूसरे को अपने पैने पैने दांतों से चौंथ रहे थे ॥ ४७ ॥

सिंहशार्दूलसदृशौ सिंहशार्दूलचेष्टितौ।
विक्रान्तविजयौ वीरौ समरेष्वनिवर्तिनौ ॥४८॥

वे दोनों पराक्रम में सिंह और शार्दूल के समान थे और सिंह और शार्दूल ही की तरह लड़ भी रहे थे। वे दोनों बड़े पराक्रमी, तथा विजयी वीर थे और युद्ध में कभी पीठ फेरने वाले न थे ॥४८॥

काङ्क्षमाणौ यशः प्राप्तुं वृत्रवासवयोः समौ।
आजघान तदा नीलं ललाटे मुसलेन सः ॥४९॥

---

१ प्रभिन्नौ--मत्तौ। (गो०)

प्रहस्तः परमायत्तस्तस्य सुस्राव शोणितम् ।
ततः शोणितदिग्धाङ्गः प्रगृह्य सुमहातरुम् ॥५०॥

वे दोनों ही वीर वृत्रासुर और इन्द्र की तरह लड़ते हुए यशप्रार्थी थे । अर्थात् बड़ाई अथवा नामवरी चाहते थे। लड़ते लड़ते प्रहस्त ने नील के ललाट में बड़ी ज़ोर से मूसल मारा, जिससे उसके सिर से रुधिर की धार बहने लगी। तब रुधिर से तरबतर नील ने एक बड़ा भारी पेड़ उखाड़ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

प्रहस्तस्योरसि क्रुद्धो विससर्ज महाकपिः ।
तमचिन्त्यप्रहारं स प्रगृह्य मुसलं महत् ॥५१॥

और बड़े क्रोध के साथ उसे प्रहस्थ की छाती में मारा। किन्तु प्रहस्त ने उस वृक्ष के प्रहार को कुछ भी न समझा। बड़ा भारी मूसल ले ॥ ५१ ॥

अभिदुद्राव बलिनं बलान्नीलं प्लवङ्गमम् ।
तमुग्रवेगं संरब्धमापतन्तं महाकपिः ॥५२॥

वह बड़े ज़ोर से बलवान नील के ऊपर झपटा। कपिश्रेष्ठ महा वेगवान नील ने उस उग्र वेगवान् राक्षस को क्रोध में भर अपनी ओर आते देख, ॥ ५२ ॥

ततः सम्प्रेक्ष्य जग्राह महावेगो महाशिलाम् ।
तस्य युद्धाभिकामस्य मृधे मुसलयोधिनः ॥५३॥

एक बड़ी शिला उठा ली और उस युद्धाभिलाषी और मूसल से लड़ने वाले प्रहस्त के सिर पर तुरन्त पटक दी ॥ ५३ ॥

प्रहस्तस्य शिलां नीलो मूर्ध्नि तूर्णमपातयत् ।
सा तेन कपिमुख्येन विमुक्ता महती शिला ॥५४॥
बिभेद बहुधा घोरा प्रहस्तस्य शिरस्तदा ।
स गतासुर्गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः ॥५५॥

कपिश्रेष्ठ नील की फैंकी हुई उस शिला के प्रहार से प्रहस्त का सिर चकनाचूर हो गया अथवा शिला लगने से प्रहस्थ के सिर के बहुत से टुकड़े हो गये। नील की फैंकी हुई उस शिला के प्रहार से प्रहस्त निर्जीव, कान्तिहीन, बलहीन और निश्चेष्ट हो कर ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

पपात सहसा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ।
प्रभिन्नशिरसस्तस्य बहु सुस्राव शोणितम् ॥५६॥

वैसे ही सहसा पृथ्वी पर गिर पड़ा ; जैसे कटा हुआ पेड़ गिर पड़ता है। प्रहस्त के कटे हुए सिर से बहुत सा रक्त बहा ॥ ५६ ॥

शरीरादपि सुस्राव गिरेः प्रस्रवणं यथा ।
हते प्रहस्ते नीलेन तदकम्प्यं महद्बलम् ॥५७॥

सिर ही से नहीं बल्कि उसके सारे शरीर से वैसे ही रक्त झरा जैसे पहाड़ से जल झरता है। नील द्वारा प्रहस्त के मारे जाने पर प्रहस्त की कभी विचलित न होने वाली महती सेना के ॥ ५७ ॥

राक्षसामप्रहृष्टानां लङ्कामभिजगाम ह ।
न शेकुः समरे स्थातुं निहते वाहिनीपतौ ॥५८॥

राक्षस लोग उदास हो लङ्कापुरी में चले गये। क्योंकि अपने सेनापति के मारे जाने पर वे युद्ध में वैसे ही न टिक सके ॥ ५८ ॥

सेतुबन्धं समासाद्य विकीर्णं सलिलं यथा ।
हते तस्मिश्चमूमुख्ये राक्षसास्ते निरुद्यमाः ॥५९॥

जैसे बाँध टूट जाने पर पानी नहीं टिक सकता । प्रहस्त के मारे जाने पर वे समस्त राक्षस निरुद्यम हो ॥ ५९ ॥

रक्षःपतिगृहं गत्वा ध्यानमूकत्वमास्थिताः ।
प्राप्ताः शोकार्णवं तीव्रं निःसंज्ञा इव तेऽभवन् ॥६०॥

राक्षसराज रावण के भवन में गये और चुपचाप ध्यान लगाये हुए खड़े हो गये । वे राक्षस तीव्रशोकरूपी समुद्र में निमग्न हो, अचेत से हो गये थे ॥ ६० ॥

ततस्तु नीलो विजयी महाबलः
प्रशस्यमानः स्वकृतेन कर्मणा ।
समेत्य रामेण सलक्ष्मणेन च
प्रहृष्टरूपस्तु बभूव यूथपः ॥६१॥

इति अष्टपञ्चाशः सर्गः ॥

महाबली वानरयूथपति नील विजयी हो, श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण के पास गये और अपनी बहादुरी के लिये उनसे अपनी प्रशंसा सुन, वे अत्यन्त हर्षित हुए ॥ ६१ ॥

युद्धकाण्ड का अट्ठावनवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—※—

एकोनषष्टितमः सर्गः

—※—

तस्मिन्हते राक्षससैन्यपाले
प्लवङ्गमानामृषभेण युद्धे ।
भीमायुधं सागरतुल्यवेगं
विदुद्रुवे राक्षसराज सैन्यम् ॥ १ ॥

जब नील ने सेनापति प्रहस्त को मार डाला, तब भयङ्कर आयुध धारण किये राक्षसराज रावण की सेना, समुद्र के वेग की तरह, ज़ोर से भाग खड़ी हुई ॥ १ ॥

गत्वाथ रक्षोधिपतेः शशंसुः
सेनापतिं पावकसूनुशस्तम् ।
तच्चापि तेषां वचनं निशम्य
रक्षोधिपः क्रोधवशं जगाम ॥ २ ॥

और राक्षसपति के पास जा कर अग्निनन्दन नील द्वारा प्रहस्त का मारा जाना निवेदन किया। उन लोगों के वचन सुन रावण भी अत्यन्त क्रुद्ध हुआ ॥ २ ॥

संख्ये प्रहस्तं निहतं निशम्य
शोकार्दितः क्रोधपरीतचेताः ।
उवाच तान्नैर्ऋतयोधमुख्या-
निन्द्रो यथा चामरयोधमुख्यान् ॥ ३ ॥

युद्ध में प्रहस्त का मारा जाना सुन, शोकाकुल और क्रुद्ध हो रावण, अन्य सेनापतियों से वैसे ही बोला, जैसे इन्द्र अपने मुख्य मुख्य योद्धा देवताओं से बोलते हैं ॥ ३ ॥

नावज्ञा रिपवे कार्या यैरिन्द्रबलसूदनः ।
सूदितः सैन्यपालो मे सानुयात्रः सकुञ्जरः ॥ ४ ॥

हे राक्षसों! जिन शत्रुओं ने, इन्द्र का मान भङ्ग करने वाले सेनापति प्रहस्त को, उसके अनुयायी योद्धाओं तथा हाथियों सहित मार डाला, उन शत्रुओं को तुच्छ न समझना चाहिये ॥ ४ ॥

सोऽहं रिपुविनाशाय विजयायाविचारयन् ।
स्वयमेव गमिष्यामि रणशीर्षं तदद्भुतम्[1] ॥ ५ ॥

अब मैं स्वयं उस अद्भुत रणक्षेत्र में उन शत्रुओं को मारने तथा विजय प्राप्त करने के लिये जाऊँगा ॥ ५ ॥

अद्य तद्वानरानीकं रामं च सह लक्ष्मणम् ।
निर्दहिष्यामि बाणौघैर्वनं दीप्तैरिवाग्निभिः ॥ ६ ॥
[अद्य सन्तर्पयिष्यामि पृथिवीं कपिशोणितैः ।
रामं च लक्ष्मणं चैव प्रेषयिष्ये यमक्षयम् ॥]

आज मैं उस वानरी सेना को तथा लक्ष्मण सहित श्रीराम को अपने बाणों से उसी प्रकार दग्ध कर दूँगा; जैसे दहकती हुई आग वन को भस्म कर देती है। आज मैं वानरों के रक्त से मेदिनी की प्यास बुझा दूँगा और राम लक्ष्मण को यमालय भेज दूँगा ॥ ६ ॥

स एवमुक्त्वा ज्वलनप्रकाशं
रथं तुरङ्गोत्तमराजयुक्तम् ।

---

१ अद्भुतं—दुर्बलैः प्रबलविनाशनादाश्चर्यं । (गो०)

[1]प्रकाशमानं वपुषा[2] ज्वलन्तं
समारुरोहामरराजशत्रुः ॥ ७ ॥

अलङ्कारों की जगमगाहट से चमचमाता तथा स्वरूपतः दीप्तमान इन्द्र का शत्रु रावण, उत्तम घोड़ों से युक्त तथा अग्नि के समान चमचमाते रथ पर सवार हुआ ॥ ७ ॥

स शङ्खभेरीपणवप्रणादै-
रास्फोटितक्ष्वेलितसिंहनादैः ।
[3]पुण्यैः स्तवैश्चाप्यभिपूज्यमान-
स्तदा ययौ राक्षसराजमुख्यः ॥ ८ ॥

उस समय तुरही, शङ्ख और ढोल बजने लगे। वीरों ने ताल ठोंके और अपनी बड़ाई कर कर उन्होंने सिंहनाद किया। सुन्दर स्तुतियों द्वारा प्रशंसित हो, रावण ने युद्धयात्रा की ॥ ८ ॥

स शैलजीमूतनिकाशरूपै-
र्मांसादनैः पावकदीप्तनेत्रैः ।
बभौ वृतो राक्षसराजमुख्यो
भूतैर्वृतो रुद्र *इवामरेशः ॥ ९ ॥

पहाड़ों की तरह तथा बादल की तरह बड़े डीलडौल के, अग्नि की तरह चमकते नेत्रों वाले, तथा माँसभक्षी राक्षसों के साथ रावण; उसी प्रकार शोभायमान हुआ, जिस प्रकार महादेव जी, भूतों के बीच शोभित होते हैं ॥ ९ ॥

---

१ प्रकाशमानं—अलङ्कारैर्भासमानं। (गो०) २ वपुषा ज्वलन्तं—स्वरूपत एव प्रकाशमानं। (गो०) ३ पुण्यैः—चारुभिः। (गो०) * पाठान्तरे—" इवासुरेशः।"

ततो नगर्याः सहसा *महौजसा
निष्क्रम्य तद्वानरसैन्यमुग्रम् ।
महार्णवाभ्रस्तनितं ददर्श
समुद्यतं पादपशैलहस्तम् ॥१०॥

तदनन्तर उस महातेजस्वी रावण ने सेना सहित लङ्कापुरी के बाहिर जा, महासागर एवं महामेघ के समान गर्जते हुए तथा युद्ध करने को हाथ में शिलाएँ तथा पेड़ लिये हुए उग्ररूप वाले वानरों की सेना को देखा ॥१०॥

तद्राक्षसानीकमतिप्रचण्डम्
आलोक्य रामो भुजगेन्द्रबाहुः[1] ।
विभीषणं [2]शस्त्रभृतां वरिष्ठ-
मुवाच [3]सेनानुगतः पृथुश्रीः ॥११॥

राक्षसों की उस प्रचण्ड सेना को देख, युद्ध के लिये उत्सुक हो बाहुयुगल पसारे हुए तथा विजयश्री से कान्तिमान तथा अपने स्वामी की रक्षा के लिये चारों ओर स्थित वानरी सेना से घिरे हुए, श्रीरामचन्द्र जी ने वीरभटों के तारतम्य अर्थात् बलाबल को जानने वाले विभीषण से कहा ॥११॥

नानापताकाध्वजछत्रजुष्टं
प्रासासिशूलायुधशस्त्रजुष्टम् ।

---

१ भुजगेन्द्रबाहुः—युद्धौत्सुक्येन प्रवर्धमानबाहुः । (गो०) २ शस्त्रभृतानां-वरिष्टं वीरभटतारतम्यज्ञमिति भावः । (रा०) ३ सेनानुगतः—स्वामिसंरक्षणाय सर्वतः समवेत सेनापरिवृतः । (गो०) * पाठान्तरे—" महौजा । "

सैन्यं गजेन्द्रोपमनागजुष्टं
कस्येदमक्षोभ्यमभीरुजुष्टम् ॥१२॥

नाना प्रकार की ध्वजाओं तथा छत्र से युक्त; प्रास, शूल, धनुषादि आयुधों को धारण किये हुए, निडर और अचल राक्षसों से युक्त एवं ऐरावत हाथी के समान हाथियों से सेवित यह सेना किसको है ॥१२॥

ततस्तु रामस्य निशम्य वाक्यं
विभीषणः शक्रसमानवीर्यः ।
शशंस रामस्य बलप्रवेकं
महात्मनां राक्षसपुङ्गवानाम् ॥१३॥

श्रीरामचन्द्र जी के ये वचन सुन, इन्द्र के समान पराक्रमी विभीषण उन महाधैर्यवान राक्षसश्रेष्ठों की सैन्यप्रवर का परिचय देते हुए कहने लगे ॥१३॥

योऽसौ गजस्कन्धगतो महात्मा
नवोदितार्कोपमताम्रवक्त्रः ।
प्रकम्पयन्नागशिरोऽभ्युपैति
ह्यकम्पनं त्वेनमवेहि राजन् ॥१४॥

हे राजन्! जो धैर्यवान् और प्रातःकालीन सूर्य की तरह लाल मुख वाला वीर हाथी के ऊपर बैठा हुआ हाथी का सिर कम्पाता चला आता है यह (दूसरा) अकम्पन है ॥ १४ ॥

योऽसौ रथस्थो मृगराजकेतुः
धून्वन्धनुः शक्रधनुःप्रकाशम् ।

करीव भात्युग्रविवृत्तदंष्ट्रः
स इन्द्रजिन्नाम वरप्रधानः ॥१५॥

जो सिंह की ध्वजा से युक्त रथ पर चढ़, इन्द्र के धनुष के समान अपने धनुष को बार बार टङ्कोरता हुआ, बड़े बड़े दाँत निकाले हुए हाथी की तरह शोभित चला आता है; यह वरदान प्राप्त किये हुए राक्षसश्रेष्ठ इन्द्रजीत है ॥१५॥

यश्चैष विन्ध्यास्तमहेन्द्रकल्पो
धन्वी रथस्थोऽतिरथोऽतिवीरः[1]।
विस्फारयंश्चापमतुल्यमानं
नाम्नातिकायोऽतिविवृद्धकायः ॥१६॥

जो विन्ध्याचल, अस्ताचल और महेन्द्राचल के समान ऊँचा, तेजस्वी और अचल धनुष बाण लिये, हज़ार घोड़ों से युक्त रथ में सवार, बड़ा शूरवीर, बड़े भारी धनुष को टङ्कोरता हुआ चला आता है; वह बड़े भारी शरीर वाला अतिकाय नाम का राक्षस है ॥ १६ ॥

योऽसौ नवार्कोदिततामुचक्षुः
आरुह्य घण्टानिनदप्रणादम्।
गजं खरं गर्जति वै महात्मा
महोदरो नाम स एष वीरः ॥१७॥

यह जो प्रातःकालीन सूर्य के समान लाल लाल नेत्र वाला, घंटा बजाते हुए हाथी पर सवार हो, बड़ा कठोर शब्द करता हुआ चला आता है, यह महाधैर्यवान् महोदर नामक वीर है ॥ १७ ॥

---

१ अतिरथः—सहस्राश्वयुक्तत्वेनातिशयित रथः। (गो०)

योऽसौ हयं काञ्चनचित्रभाण्डम्
आरुह्य सन्ध्याभ्रगिरिप्रकाशम् ।
प्रासं समुद्यम्य मरीचिनद्धं
पिशाच एषोऽशनितुल्यवेगः ॥१८॥

जो विविध प्रकार के सुवर्ण भूषणों से भूषित, सन्ध्याकालीन मेघ अथवा पर्वत के समान ऊँचे घोड़े पर सवार हो, किरनों की झालरदार प्रास उठाये चला आता है, इस वज्र के समान वेगवान वीर का नाम पिशाच है ॥ १८ ॥

यश्चैष शूलं निशितं प्रगृह्य
विद्युत्प्रभं किङ्करवज्रवेगम् ।
वृषेन्द्रमास्थाय गिरिप्रकाशम्
आयाति योऽसौ त्रिशिरा यशस्वी ॥१९॥

सो हाथ में, वज्र से भी अधिक वेगवान और बिजली की तरह चमचमाता पैना त्रिशूल लिये हुए, पहाड़ के समान ऊँचे वृषभश्रेष्ठ पर चढ़ा हुआ आ रहा है, यह यशस्वी त्रिशिरा है ॥ १९ ॥

असौ च जीमूतनिकाशरूपः
कुम्भः पृथुव्यूढसुजातवक्षाः ।
समाहितः पन्नगराजकेतुः
विस्फारयन्भाति धनुर्विधून्वन् ॥२०॥

यह जो मेघ के समान रूपवाला है, जिसकी छाती मांसल, विशाल और सुन्दर है, तथा जो सावधान होकर नागराज की ध्वजा फहराता हुआ, तथा धनुष को टङ्कोरता हुआ चला आता है, कुम्भ है ॥ २० ॥

यश्चैष जाम्बूनदवज्रजुष्टं
दीप्तं [1]सधूमं परिघं प्रगृह्य ।
आयाति रक्षोबलकेतुभूत-
स्त्वसौ निकुम्भोऽद्भुतघोरकर्मा ॥२१॥

यह जो सुवर्ण का बना और हीरा जटित सधूमअग्नि की तरह प्रदीप्त परिघ (लोहे का मुग्दर) लिये हुए है, राक्षसी सेना का पताका रूप अर्थात् राक्षसी सेना में प्रधान बना हुआ चला आता है, यह अद्भुत रणकर्म करने वाला निकुम्भ है ॥ २१ ॥

यश्चैष चापासिशरौघजुष्टं
पताकिनं पावकदीप्तरूपम् ।
रथं समास्थाय विभात्युदग्रो
नरान्तकोऽसौ नगशृङ्गयोधी ॥२२॥

जो धनुष, तलवार, बाणों के समूह से युक्त, पताका सहित, अग्नि की तरह चमचमाते रथ पर चढ़ा हुआ, बहुत लंबा दिखलाई पड़ता है, यह नरान्तक है। जब इसे अपने साथ कोई युद्ध करने योग्य नहीं मिलता; तब यह अपनी भुजाओं की खुजली मिटाने को पहाड़ों के शिखरों से लड़ा करता है ॥ २२ ॥

यश्चैष नानाविधघोररूपैः
व्याघ्रोष्ट्रनागेन्द्रमृगाश्ववक्त्रैः ।
भूतैर्वृतो भाति विवृत्तनेत्रैः
सोऽसौ सुराणामपि दर्पहन्ता ॥२३॥

---

१ सधूमं—सधूममिवस्थितं । (गो०)

यह जो व्याघ्र, ऊट, हाथी, मृग, घोड़ा आदि विविध प्रकार के भयङ्कर मुखाकृति वाले तथा घूर्णित नेत्रों वाले भूतों को साथ लिये हुए बैठा है, तथा जो देवताओं के भी दर्प को दलन करने वाला है, ॥ २३ ॥

यत्रैतदिन्द्रप्रतिमं विभाति
छत्रं सितं सूक्ष्मशलाकमग्र्यम् ।
अत्रैष रक्षोधिपतिर्महात्मा
भूतैर्वृतो रुद्र इवावभाति ॥ २४ ॥

जिसके ऊपर इन्द्र की तरह सफेद तथा पतली कमानियों का छाता तना हुआ है, वही राक्षसराज रावण है और वह भूतों से घिरे हुए महादेव जी की तरह शोभित हो रहा है ॥ २४ ॥

असौ किरीटी चलकुण्डलास्यो
नगेन्द्रविन्ध्योपमभीमकायः ।
महेन्द्रवैवस्वतदर्पहन्ता
रक्षोधिपः सूर्य इवावभाति ॥ २५ ॥

जो मुकुट धारण किये हुए है तथा जिसका मुखमण्डल झलमलाते हुए कुण्डलों से अलङ्कृत है, जिसका शरीर हिमालय अथवा विन्ध्याचल की तरह भयङ्कर है और जो इन्द्र तथा यम के अभिमान को भी चूर चूर करने वाला है और जो सूर्य को तरह प्रदीप्त जान पड़ता है; वही राक्षसों का राजा अर्थात् रावण है ॥ २५ ॥

प्रत्युवाच ततो रामो विभीषणमरिन्दमम् ।
अहो दीप्तो[1] महातेजा[2] रावणो राक्षसेश्वरः ॥ २६ ॥

---

१ दीप्तः—कान्तिमान् । (गो०) २ महातेजाः—महाप्रतापः । (गो०)

यह सुन श्रीरामचन्द्र जी ने शत्रुहन्ता विभीषण से कहा, वाह! सचमुच राक्षसराज रावण बड़ा कान्तिमान और बड़ा प्रतापी है ॥ २६ ॥

आदित्य इव दुष्प्रेक्षो रश्मिभिर्भाति रावणः ।
*न व्यक्तं लक्षये ह्यस्य रूपं तेजः समावृतम् ॥ २७ ॥

किरणों से चमकने वाले सूर्य की तरह इसको और कोई नहीं ताक सकता। मारे तेज के रावण का रूप भी स्पष्ट दिखलाई नहीं पड़ता ॥ २७ ॥

देवदानववीराणां वपुर्नैवंविधं भवेत् ।
यादृशं राक्षसेन्द्रस्य वपुरेतत्प्रकाशते ॥ २८ ॥

राक्षसराज रावण का जैसा रूप दिखलाई पड़ रहा है, वैसा रूप तो किसी भी शूरवीर देवता अथवा दानव का नहीं है ॥ २८ ॥

सर्वे पर्वतसङ्काशाः सर्वे पर्वतयोधिनः ।
सर्वे दीप्तायुधधरा योधाश्चास्य महौजसः ॥ २९ ॥

इस महाबली के साथ जो योद्धा हैं, वे भी तो सब के सब पर्वत के समान विशाल शरीरधारी, पर्वतों से लड़ने वाले तथा चमचमाते आयुध लिये हुए हैं ॥ २९ ॥

भाति राक्षसराजोऽसौ प्रदीप्तैर्भीमविक्रमैः ।
भूतैः परिवृतस्तीक्ष्णैर्देहवद्भिरिवान्तकः ॥ ३० ॥

इन योद्धाओं के बीच राक्षसराज रावण, वैसे ही शोभित हो रहा है; जैसे उग्र एवं प्रशस्त शरीर वाले तथा भूतों से घिरे हुए साक्षात् यमराज ॥ ३० ॥

---

* पाठान्तरे—"सुव्यक्तं।"

दिष्ट्याऽयमद्य पापात्मा मम दृष्टिपथं गतः ।
अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि सीताहरणसम्भवम् ॥ ३१ ॥

मेरे सौभाग्य से यह दुष्टात्मा आज मेरे सामने आ गया है। आज मैं सीताहरण का क्रोध इस पर छोड़ूँगा ॥ ३१ ॥

एवमुक्त्वा ततो रामो धनुरादाय वीर्यवान् ।
लक्ष्मणानुचरस्तस्थौ समुद्धृत्य शरोत्तमम् ॥ ३२ ॥

यह कह वीर्यवान् श्रीरामचन्द्र जी धनुष ले और अच्छा बाण निकाल तथा लक्ष्मण को पीछे कर खड़े हो गये ॥ ३२ ॥

ततः स रक्षोधिपतिर्महात्मा
रक्षांसि तान्याह महाबलानि ।
द्वारेषु चर्यागृहगोपुरेषु
सुनिर्वृतास्तिष्ठत निर्विशङ्काः ॥ ३३ ॥

तदनन्तर महाधैर्यवान रावण ने अपने बड़े बलवान राक्षसों को आज्ञा दी कि, तुम लोग रनवास के फाटकों पर, राजमार्ग पर, विशाल भवनों के द्वारों पर, तथा लङ्का के बाहिरी फाटकों पर जाकर चैन से निडर हो खड़े हो जाओ ॥ ३३ ॥

इहागतं मां सहितं भवद्भिः
वनौकसश्छिद्रमिदं विदित्वा ।
शून्यां पुरीं दुष्प्रसहां प्रमथ्य
प्रधर्षयेयुः सहसा समेताः ॥ ३४ ॥

नहीं तो यदि कहीं इन चञ्चल वानरों को हम लोगों की यह कमज़ोरी मालूम हो गयी कि, आप सब लोग मेरे साथ रणभूमि

में चले आये हैं और लङ्कापुरी सूनी पड़ी है, तो ये दुष्प्रवेश्य पुरी में घुस पुरी को ध्वंस्त कर डालेंगे ॥ ३४ ॥

विसर्जयित्वा सहितांस्ततस्तान्
गतेषु रक्षःसु यथानियोगम् ।
व्यदारयद्वानरसागरौघं
महाझषः पूर्णमिवार्णवौघम् ॥ ३५ ॥

इस प्रकार समझा कर, जब उसने राक्षसों को विदा कर दिया, तब वह स्वयं वानरों के सागररूपी जल को वैसे ही खलबलाने लगा; जैसे कोई बड़ा भारी मत्स्य महासागर के जल में खलबली पैदा कर देता है ॥ ३५ ॥

तमापतन्तं सहसा समीक्ष्य
दीप्तेषुचापं युधि राक्षसेन्द्रम् ।
महत्समुत्पाट्य महीधराग्रं
दुद्राव रक्षोधिपतिं हरीशः ॥ ३६ ॥

रावण को वानरी सेना पर आक्रमण कर, आग के समान तीक्ष्ण बाणों को चलाते देख, कपिराज सुग्रीव पर्वत के एक भारी शिखर को ले उसकी ओर झपटे ॥ ३६ ॥

तच्छैलशृङ्गं बहुवृक्षसानुं
प्रगृह्य चिक्षेप निशाचराय ।
तमापतन्तं सहसा समीक्ष्य
बिभेद बाणैस्तपनीयपुङ्खैः ॥ ३७ ॥

जब अनेक वृक्षों और शृङ्गों से युक्त उस पर्वतशिखर को सुग्रीव ने रावण के ऊपर फैंका, तब सहसा उसको अपने ऊपर गिरते देख, रावण ने अपने सुवर्ण की फोंक वाले बाणों से चूर चूर कर डाला ॥ ३७ ॥

तस्मिन्प्रवृद्धोत्तमसानुवृक्षे
शृङ्गे विकीर्णे पतिते पृथिव्याम् ।
महाहिकल्पं शरमन्तकाभं
समाददे राक्षसलोकनाथः ॥ ३८ ॥

जब वह बड़े बड़े वृक्षों और शृङ्गों से युक्त बड़ा भारी पर्वत-शिखर टूक टूक हो कर ज़मीन पर गिर पड़ा; तब राक्षसराज रावण ने सांप के आकार का, काल के समान एक बाण अपने धनुष पर रखा ॥ ३८ ॥

स तं गृहीत्वाऽनिलतुल्यवेगं
सविस्फुलिङ्गज्वलनप्रकाशम् ।
बाणं महेन्द्राशनितुल्यवेगं
चिक्षेप सुग्रीववधाय रुष्टः ॥ ३९ ॥

रावण ने पवन के तथा इन्द्र के वज्र के समान वेग वाले और चिनगारियाँ निकलते हुए अग्नि की तरह चमचमाते उस बाण को ले और क्रोध कर, सुग्रीव के ऊपर उसका वध करने के लिये छोड़ा ॥ ३९ ॥

स सायको रावणबाहुमुक्तः
शक्राशनिप्रख्यवपुः शिताग्रः ।

सुग्रीवमासाद्य बिभेद वेगात्
[1]गुहेरिता क्रौञ्चमिवोग्रशक्तिः ॥ ४० ॥

रावण के हाथ से छूटे हुए पैने बाण ने इन्द्र के वज्र की तरह दृढ़ सुग्रीव के शरीर को बड़े ज़ोर से वैसे ही वेधा ; जैसे स्कन्ध ने अपनी शक्ति से क्रौंच पर्वत को वेधा था ॥ ४० ॥

स सायकार्तो विपरीतचेताः
कूजन्पृथिव्यां निपपात वीरः ।
तं प्रेक्ष्य भूमौ पतितं विसंज्ञं
नेदुः प्रहृष्टा युधि यातुधानाः ॥ ४१ ॥

उस बाण के आघात से कपिराज सुग्रीव विकल हो आर्तनाद करते हुए धड़ाम से धरती पर गिर पड़े। उनको धरती पर मूर्छित पड़ा देख, परमप्रसन्न हो राक्षसों की सेना ने गर्जना की ॥ ४१ ॥

ततो गवाक्षो गवयः सुदंष्ट्र-
स्तथर्षभो ज्योतिमुखो *नलश्च ।
शैलान्समुद्यम्य विवृद्धकायाः
प्रदुद्रुवुस्तं प्रति राक्षसेन्द्रम् ॥ ४२ ॥

तब बड़े बड़े शरीर वाले गवाक्ष, गवय, सुदंष्ट्र, ऋषभ, ज्योतिमुख, नल, बड़ी बड़ी शिलाएँ ले रावण के ऊपर दौड़े ॥ ४२ ॥

तेषां प्रहारान्स चकार मोघान्
रक्षोधिपो बाणगणैः शिताग्रैः ।

---

१ गुहः—स्कन्धः । (गो०) * पाठान्तरे—"नभश्च ।"

तान्वानरेन्द्रानपि बाणजालैः
बिभेद जाम्बूनदचित्रपुङ्खैः ॥ ४३ ॥

किन्तु राक्षसराज रावण ने उन समस्त फैंकी हुई शिलाओं को पैने बाणों से टुकड़े टुकड़े कर व्यर्थ कर डाला। तदनन्तर उन वानरों को भी उसने सुवर्ण के पुँखों वाले बाणों से बेध डाला ॥ ४३ ॥

ते वानरेन्द्रास्त्रिदशारिबाणै:
भिन्ना निपेतुर्भुवि भीमकायाः ।
ततस्तु तद्वानरसैन्यमुग्रं
प्रच्छादयामास स बाणजालैः ॥ ४४ ॥

वे भीमकाय प्रसिद्ध वानर रावण के मारे हुए बाणों से घायल हो धरती पर गिर पड़े। तदनन्तर रावण ने बाणसमूह से समस्त वानरी सेना को ढक दिया ॥ ४४ ॥

ते वध्यमानाः पतिताः प्रवीरा
नानद्यमाना भयशल्यविद्धाः ।
शाखामृगा रावणसायकार्ता
जग्मुः शरण्यं शरणं स्म रामम् ॥ ४५ ॥

रावण के बाणों की चोट से घायल हो बहुत से प्रसिद्ध वीर वानर धरती पर लोट गये। बहुत से रावण के भय तथा बाणों की चोट के कारण दुःख भरे स्वर से चिल्लाने लगे। रावण के बाणों की चोट से सताये हुए बहुत से वानर शरणागतवत्सल श्रीरामचन्द्र जी के शरण में गये ॥ ४५ ॥

ततो [1]महात्मा स धनुर्धनुष्मा-
नादाय रामः सहसा जगाम ।
तं लक्ष्मणः प्राञ्जलिरभ्युपेत्य
उवाच वाक्यं परमार्थयुक्तम् ॥ ४६ ॥

तब शरण आये हुए की रक्षा करने वाले, प्रशस्त धनुषधारी अर्थात् धनुष से युद्ध करने में समर्थ, श्रीरामचन्द्र जी धनुष उठा तुरन्त चल दिये। उस समय हाथ जोड़ कर लक्ष्मण जी ने परमार्थ युक्त अर्थात् परम प्रयोजनीय ये वचन कहे ॥ ४६ ॥

काममार्यः सुपर्याप्तो वधायास्य दुरात्मनः ।
विधमिष्याम्यहं नीचमनुजानीहि मां प्रभो ॥ ४७ ॥

हे आर्य ! यद्यपि आप इस पराई स्त्री को हरने वाले पापी को मारने में सर्वदा समर्थ हैं, तथापि हे प्रभो ! इस नीच को तो मैं ही मारूँगा । अतः मुझे ही आज्ञा दीजिये ॥ ४७ ॥

तमब्रवीन्महातेजा रामः सत्यपराक्रमः ।
गच्छ यत्नपरश्चापि भव लक्ष्मण संयुगे ॥ ४८ ॥

लक्ष्मण जी के ये वचन सुन, सत्यपराक्रमी, महातेजस्वी, श्रीरामचन्द्र जी ने कहा कि, हे लक्ष्मण ! जाओ ; किन्तु युद्ध में सावधानी से काम करना ॥ ४८ ॥

रावणो हि महावीर्यो रणेऽद्भुतपराक्रमः ।
त्रैलोक्येनापि संक्रुद्धो दुष्प्रसह्यो न संशयः ॥ ४९ ॥

---

१ महात्मा—शरणागत तारतम्य सः । (गो०)

क्योंकि, रावण महाबलवान है और युद्ध में अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित करने वाला है। यदि यह क्रुद्ध हो जाय, तो समस्त त्रैलोक्यवासी भी इसके पराक्रम को नहीं सम्हाल सकते। यह निस्सन्देह बात है ॥ ४९ ॥

तस्य च्छिद्राणि मार्गस्व स्वच्छिद्राणि च लक्षय।
चक्षुषा धनुषा यत्नाद्रक्षात्मानं समाहितः ॥ ५० ॥

अपने ऊपर उसका वार बचा कर, उसके ऊपर वार करने की ताक में रहना। साथ ही सावधान रह कर धनुष द्वारा यत्नपूर्वक अपनी रक्षा करते रहना ॥ ५० ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा परिष्वज्याभिपूज्य[1] च।
अभिवाद्य ततो रामं ययौ सौमित्रिराहवम् ॥ ५१ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के ये वचन सुन और उनके गले लग, एवं उनकी प्रदक्षिणा कर तथा उनको प्रणाम कर, लक्ष्मण जी प्रस्थानित हुए ॥ ५१ ॥

स रावणं वारणहस्तबाहुः
दर्दश दीप्तोद्यतभीमचापम्।
प्रच्छादयन्तं शरवृष्टिजालै-
स्तान्वानरान्भिन्नविकीर्णदेहान् ॥ ५२ ॥

रणभूमि में जा लक्ष्मण जी ने देखा कि, रावण की भुजाएँ हाथी की सूँड़ की तरह उतार चढ़ाव की हैं। वह चमचमाते भयङ्कर धनुष को हाथ में लिये घायल वानरों के ऊपर बाणों की वर्षा कर उनको तोपे दे रहा है ॥ ५२ ॥

---

१ अभिपूज्य--प्रदक्षिणी कृत्येत्यर्थः। (गो०)

तमालोक्य महातेजा हनुमान्मारुतात्मजः ।
निवार्य शरजालानि प्रदुद्राव स रावणम् ॥ ५३ ॥

महातेजस्वी पवननन्दन हनुमान जी उस रावण को देख, तथा उसके चलाये हुए बाणों को हटा, उसके ऊपर टूट पड़े ॥ ५३ ॥

रथं तस्य समासाद्य भुजमुद्यम्य दक्षिणम् ।
त्रासयन्रावणं धीमान्हनुमान्वाक्यमब्रवीत् ॥ ५४ ॥

बुद्धिमान हनुमान जी, रावण के रथ पर चढ़ गये और दहिना हाथ उठा उसको धमकाते हुए यह वचन बोले ॥ ५४ ॥

देवदानवगन्धर्वैर्यक्षैश्च सह राक्षसैः ।
अवध्यत्वं त्वया प्राप्तं वानरेभ्यस्तु ते भयम् ॥ ५५ ॥

यद्यपि तू देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष और राक्षसों के हाथ से न मारे जाने का वर प्राप्त कर चुका है, तथापि वानरों से तो तुझे अपने मारे जाने का भय बना ही हुआ है ॥ ५५ ॥

एष मे दक्षिणो बाहुः पञ्चशाखः समुद्यतः ।
विधमिष्यति ते देहाद्भूतात्मानं चिरोषितम् ॥ ५६ ॥

देख, पाँच अँगुलियों वाला यह मेरा दहिना हाथ उठा हुआ है। यह तेरे शरीर में बहुत दिनों से रहने वाले प्राण को बाहिर निकाल देगा ॥ ५६ ॥

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं रावणो भीमविक्रमः ।
संरक्तनयनः क्रोधादिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५७ ॥

भयङ्कर पराक्रमी रावण हनुमान जी के इन वचनों को सुन, मारे क्रोध के लाल लाल नेत्र कर उनसे बोला ॥ ५७ ॥

क्षिप्रं प्रहर निःशङ्कं स्थिरां कीर्तिमवाप्नुहि ।
ततस्त्वां ज्ञातविक्रान्तं नाशयिष्यामि वानर ॥ ५८ ॥

हे वानर ! निःशङ्क हो तुम मुझ पर वार करो ; जिससे चिरस्थायिनी कीर्ति तुम्हें प्राप्त हो । पीछे से मैं भी तुम्हारा पराक्रम जान कर, तुम्हें मार डालूँगा ॥ ५८ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा वायुसूनुर्वचोऽब्रवीत् ।
प्रहृतं हि मया पूर्वमक्षं स्मर सुतं तव ॥ ५९ ॥

रावण के ये वचन सुन, पवननन्दन हनुमान जी ने कहा—मेरा पराक्रम जानने के लिये अपने पुत्र अक्षकुमार के मेरे हाथ से मारे जाने का स्मरण कर ले ॥ ५९ ॥

एवमुक्तो महातेजा रावणो राक्षसेश्वरः ।
आजघानानिलसुतं तलेनोरसि वीर्यवान् ॥ ६० ॥

यह कठोर वचन सुन, महातेजस्वी राक्षसराज रावण ने पवननन्दन हनुमान जी की छाती में एक चपेटा मारा ॥ ६० ॥

स तलाभिहतस्तेन चचाल च मुहुर्मुहुः ।
स्थित्वा मुहूर्तं तेजस्वी स्थैर्यं कृत्वा महामतिः ॥ ६१ ॥

उस तलप्रहार से हनुमान जी बार बार चक्कर खाने लगे । थोड़ी देर बाद तेजस्वी एवं महाबुद्धिमान् हनुमान जी ने सावधान हो कर ॥ ६१ ॥

आजघानाभिसंक्रुद्धस्तलेनैवामरद्विषम् ।
ततस्तलेनाभिहतो वानरेण महात्मना ॥ ६२ ॥

उस देवताओं के शत्रु रावण के अत्यन्त कुपित हो एक थप्पड़ जमाया। धैर्यवान् हनुमान जी के थप्पड़ के आघात से ॥ ६२ ॥

दशग्रीवः समाधूतो यथा भूमिचलेऽचलः ।
संग्रामे तं तथा दृष्ट्वा रावणं तलताडितम् ॥ ६३ ॥

रावण उसी प्रकार चलायमान हो गया, जिस प्रकार पृथिवी के कंपायमान होने पर पहाड़ चलायमान हो जाते हैं। युद्ध में रावण को थप्पड़ से पिटा हुआ देख, ॥ ६३ ॥

ऋषयो वानराः सिद्धा नेदुर्देवाः सहासुरैः ।
अथाश्वास्य महातेजा रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६४ ॥

ऋषि, वानर, सिद्ध, देवता दानव सभी हर्षनाद करने लगे। थोड़ी देर बाद सावधान हो महातेजस्वी रावण कहने लगा ॥६४॥

साधु वानर वीर्येण श्लाघनीयोऽसि मे रिपुः ।
रावणेनैवमुक्तस्तु मारुतिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ६५ ॥

हे वानर! वाह तू मेरा शत्रु होने पर भी, तेरा बलवीर्य प्रशंसनीय है। रावण के इस प्रकार कहने पर, पवननन्दन हनुमान जी बोले ॥ ६५ ॥

धिगस्तु मम वीर्येण यस्त्वं जीवसि रावण ।
सकृत्तु प्रहरेदानीं दुर्बुद्धे किं विकत्थसे ॥ ६६ ॥

अरे रावण! धिक्कार है मेरे बलवीर्य को, जो तू मेरा थपेड़ा खा कर भी अभी जीवित है। अरे प्रहार के तारतम्य को न जानने वाले दुर्बुद्धे! तू क्यों वृथा बड़ाई करता है। अब एक बार फिर तू मेरे ऊपर चोट कर ॥ ६६ ॥

ततस्त्वां मामिका मुष्टिर्नयिष्यति यमक्षयम् ।
ततो मारुतवाक्येन क्रोधस्तस्य तदाऽऽज्वलत् ॥ ६७ ॥

तदनन्तर मेरा यह मूँका तुझे यमराज के पास पहुँचावेगा। हनुमान जी के इन जले कटे वचनों को सुन रावण का क्रोध भड़का ॥ ६७ ॥

संरक्तनयनो यत्नान्मुष्टिमुद्यम्य दक्षिणम् ।
पातयामास वेगेन वानरोरसि वीर्यवान् ॥ ६८ ॥

उस बलवान ने लाल लाल नेत्र कर दहिने हाथ का घूँसा बड़ी ज़ोर से हनुमान जी की छाती में मारा ॥ ६८ ॥

हनुमान्वक्षसि व्यूढे[1] सञ्चचाल पुनः पुनः ।
[2]विह्वलं तु तदा दृष्ट्वा हनुमन्तं महाबलम् ॥ ६९ ॥

हनुमान जी की विशाल छाती में घूँसे की चोट लगने से वे बार बार हिलने लगे। तब महाबली हनुमान को मूर्छित देख ॥ ६९ ॥

रथेनातिरथः शीघ्रं नीलं प्रति समभ्यगात् ।
राक्षसानामधिपतिर्दशग्रीवः प्रतापवान् ॥ ७० ॥

अतिरथ रावण अपना रथ नील के पास ले गया। राक्षसों के अधिपति प्रतापी दशग्रीव रावण ने ॥ ७० ॥

पन्नगप्रतिमैर्भीमैः परमर्मातिभेदिभिः ।
शरैरादीपयामास[3] नीलं हरिचमूपतिम् ॥ ७१ ॥

---

१ व्यूढे—विशाले। (गो०) २ विह्वलं—मूर्च्छितं। (गो०) ३ आदीपयामास—आसमन्ताज्ज्वालयामास। (गो०)

नागों की तरह भयङ्कर और शत्रु के मर्म को वेधने वाले बाणों से कपिसेनापति नील के समस्त शरीर को दाग डाला अर्थात् घायल कर दिया ॥ ७१ ॥

स शरौघसमायस्तो नीलः कपिचमूपतिः ।
करेणैकेन शैलाग्रं रक्षोधिपतयेऽसृजत् ॥ ७२ ॥

बहुत से बाण लगने पर भी सेनापति नील ने एक हाथ से एक पर्वतशृङ्ग रावण के ऊपर फैंका ॥ ७२ ॥

हनुमानपि तेजस्वी समाश्वस्तो महामनाः ।
विप्रेक्षमाणो युद्धेप्सुः सरोषमिदमब्रवीत् ॥ ७३ ॥
नीलेन सह संयुक्तं रावणं राक्षसेश्वरम् ।
अन्येन युध्यमानस्य न युक्तमभिधावनम् ॥ ७४ ॥

इतने में उधर महामना हनुमान जी भी सावधान हो गये और युद्ध करने की इच्छा से रावण को खोजने लगे। जब उन्होंने देखा कि, राक्षसराज रावण नील के साथ लड़ रहा है, तब क्रुद्ध हो उससे वे बोले। हे रावण! तुम दूसरे के साथ युद्ध कर रहे हो, अतः इस समय तुम्हारे ऊपर आक्रमण करना मुझे उचित नहीं ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

रावणोऽपि महातेजास्तच्छृङ्गं सप्तभिः शरैः ।
आजघान सुतीक्ष्णाग्रैस्तद्विकीर्णं पपात ह ॥ ७५ ॥

महातेजस्वी रावण ने भी नील के फैंके पर्वतशृङ्ग को, सात पैने बाण मार कर, टुकड़े टुकड़े कर दिया और वह पर्वतशृङ्ग चूर चूर हो पृथिवी पर गिर पड़ा ॥ ७५ ॥

तद्विकीर्णं गिरेः शृङ्गं दृष्ट्वा हरिचमूपतिः ।
कालाग्निरिव जज्वाल क्रोधेन परवीरहा ॥ ७६ ॥

उस पर्वतशृङ्ग को चूर हुआ देख, शत्रुहन्ता सेनापति नील क्रोध के मारे कालाग्नि की तरह प्रज्वलित हो उठे ॥ ७६ ॥

सोऽश्वकर्णान्धवान्सालांश्चूतांश्चापि सुपुष्पितान् ।
अन्यांश्च विविधान्वृक्षान्नीलश्चिक्षेप संयुगे ॥ ७७ ॥

नील ने फूलों से लदे अश्वकर्ण, ढाक, साल, आम तथा अन्य विविध प्रकार के वृक्षों को उखाड़ उखाड़ कर, रावण के ऊपर फैंका ॥ ७७ ॥

स तान्वृक्षान्समासाद्य प्रतिचिच्छेद रावणः ।
अभ्यवर्षत्सुघोरेण शरवर्षेण पावकिम् ॥ ७८ ॥

रावण ने नील के फैंके उन समस्त वृक्षों को बाणों से काट कर ज़मीन पर डाल दिया और नील के ऊपर बड़े बड़े भयङ्कर बाणों की वर्षा की ॥ ७८ ॥

अभिवृष्टः शरौघेण मेघेनेव महाचलः ।
ह्रस्वं कृत्वा तदा रूपं ध्वजाग्रे निपपात ह ॥ ७९ ॥

पहाड़ पर जिस प्रकार मेघवृष्टि होती है, उसी प्रकार नील पर बाणों की वर्षा होने पर, नील अपना छोटा रूप बना, रावण के रथ की ध्वजा पर कूद पड़े ॥ ७९ ॥

पावकात्मजमालोक्य ध्वजाग्रे समुपस्थितम् ।
जज्वाल रावणः क्रोधात्ततो नीलो ननाद च ॥ ८० ॥

नील को ध्वजा के ऊपर बैठा हुआ देख, जब रावण क्रोध से जलने लगा ; तब नील ने घोर सिंहनाद किया ॥ ८० ॥

ध्वजाग्रे धनुषश्चाग्रे किरीटाग्रे च तं हरिम् ।
लक्ष्मणोऽथ हनूमांश्च दृष्ट्वा रामश्च विस्मिताः ॥ ८१ ॥

कभी रावण की ध्वजा के ऊपर, कभी उसके धनुष के ऊपर और कभी उसके मुकुट के ऊपर नील को कूदते देख, श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण तथा हनुमान को बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ८१ ॥

रावणोऽपि महातेजाः कपिलाघवविस्मितः ।
अस्त्रमाहारयामास दीप्तमाग्नेयमद्भुतम् ॥ ८२ ॥

महातेजस्वी रावण भी नील की इस फुर्ती को देख, विस्मित हुआ और उसने नील को मारने के लिये एक चमचमाते अद्भुत बाण को अग्नि के मंत्र से अभिमंत्रित कर, नील के ऊपर छोड़ा ॥ ८२ ॥

ततस्ते चक्रुर्हृष्टा लब्धलक्षाः[१] प्लवङ्गमाः ।
नीललाघवसम्भ्रान्तं दृष्ट्वा रावणमाहवे ॥ ८३ ॥

दूसरी ओर वानरगण, नील और रावण के युद्ध में, नील की फुर्ती से रावण को विकल देख और इसे एक आनन्दप्रद कौतुक जान, परम हर्षित हो गर्ज रहे थे ॥ ८३ ॥

वानराणां च नादेन संरब्धो रावणस्तदा ।
सम्भ्रमाविष्टहृदयो न किञ्चित्प्रत्यपद्यत ॥ ८४ ॥

वानरों का हर्षनाद सुन रावण खिसिया गया, पर वह उस समय ऐसा घबड़ाया हुआ था कि, उससे कुछ भी करते धरते न बन पड़ा ॥ ८४ ॥

---

१ लब्धलक्षाः—लब्धहर्षविषयाः । (गो०)

आग्नेयेनाथ संयुक्तं गृहीत्वा रावणः शरम् ।
ध्वजशीर्षस्थितं नीलमुदैक्षत निशाचरः ॥ ८५ ॥

हाथ में अग्नि के मंत्र से अभिमंत्रित बाण ले और ध्वजा के ऊपर बैठे हुए नील की ओर रावण ने देखा ॥८५॥

ततोऽब्रवीन्महातेजा रावणो राक्षसेश्वरः ।
कपे लाघवयुक्तोऽसि [1]मायया परयाऽनया ॥ ८६ ॥

तदनन्तर महातेजस्वी राक्षसराज रावण ने नील से कहा—अरे वानर! तुम धोखा देने में बड़े फुर्तीले हो ॥८६॥

जीवितं खलु रक्षस्व यदि शक्तोऽसि वानर ।
तानि तान्यात्मरूपाणि सृजसि त्वमनेकशः ॥ ८७ ॥

किन्तु हे वानर! यदि तुममें शक्ति हो तो अब अपने प्राण बचाओ। यद्यपि तुम अपने अनेक रूप बना लेते हो ॥ ८७ ॥

तथापि त्वां मया *मुक्तः सायकोऽस्त्रप्रयोजितः ।
जीवितं परिरक्षन्तं जीविताद्भ्रंशयिष्यति ॥८८॥

तथापि मेरा चलाया हुआ यह अभिमंत्रित बाण, लाख बचाव करने पर भी, तुम्हें नष्ट कर ही डालेगा ॥ ८८ ॥

एवमुक्त्वा महाबाहू रावणो राक्षसेश्वरः ।
सन्धाय बाणमस्त्रेण चमूपतिमताडयत् ॥ ८९ ॥

महाबाहु राक्षसराज रावण ने यह कह कर, मंत्र से अभिमंत्रित कर वह बाण सेनापति नील के ऊपर छोड़ा ॥ ८९ ॥

---

१ मायया—वञ्चनया। (रा०) * पाठान्तरं—"युक्तः।"

सोऽस्त्रयुक्तेन बाणेन नीलो वक्षसि ताडितः ।
निर्दह्यमानः सहसा निपपात महीतले ॥९०॥

वह अभिमंत्रित बाण नील को छाती में लगा। उस अस्त्र के मारे नील का सारा शरीर जल उठा और वे सहसा नीचे धरती पर गिर पड़े ॥ ९० ॥

पितृमाहात्म्यसंयोगादात्मनश्चापि तेजसा ।
जानुभ्यामपतद्भूमौ न च प्राणैर्व्ययुज्यत ॥ ९१ ॥

नील एक तो अग्नि के पुत्र ही थे, दूसरे स्वयं भी बड़े तेजस्वी थे, अतः घुटने के बल ज़मीन पर गिर कर भी वे निर्जीव नहीं हुए ॥९१॥

विसंज्ञं वानरं दृष्ट्वा दशग्रीवो रणोत्सुकः ।
रथेनाम्बुदनादेन सौमित्रिमभिदुद्रुवे ॥ ९२ ॥

रावण ने नील को मूर्छित देख, युद्ध की कामना से, मेघ की तरह गड़गड़ाते हुए रथ को हँकवा, लक्ष्मण जी पर आक्रमण किया ॥ ९२ ॥

आसाद्य रणमध्ये तु वारयित्वा स्थितो ज्वलन् ।
धनुर्विस्फारयामास कम्पयन्निव मेदनीम् ॥ ९३ ॥

रणक्षेत्र में पहुँच अपने तेज से प्रदीप्त रावण, वानरों को हटा और अपने धनुष को टङ्कोर पृथिवी को कम्पायमान सा करने लगा ॥९३॥

तमाह सौमित्रिरदीनसत्त्वो
विस्फारयन्तं धनुरप्रमेयम् ।
अभ्येहि मामेव निशाचरेन्द्र
न वानरांस्त्वं प्रतियोद्धुमर्हः ॥ ९४ ॥

तब प्रबल प्रतापी लक्ष्मण रावण को अपना विशाल धनुष टङ्कोरते देख, उससे बोले—हे राक्षसेन्द्र! मेरे पास आओ और मुझसे लड़ो, क्योंकि तुम उन वानरों से लड़ने योग्य नहीं हो ॥९४॥

स तस्य वाक्यं प्रतिपूर्णघोषं
ज्याशब्दमुग्रं च निशम्य राजा ।
आसाद्य सौमित्रिमवस्थितं तं
कोपान्वितो वाक्यमुवाच रक्षः ॥ ९५ ॥

रावण, लक्ष्मण का वचन और घोषपरिपूर्ण उनकी प्रत्यञ्चा का शब्द सुन, समीप खड़े हुए लक्ष्मण जी से रोषयुक्त वचन बोला— ॥ ९५ ॥

दिष्टयासि मे राघव दृष्टिमार्गं
प्राप्तोऽन्तगामी विपरीतबुद्धिः ।
अस्मिन्क्षणे यास्यसि मृत्युदेशं
संसाद्यमानो मम बाणजालैः ॥ ९६ ॥

हे लक्ष्मण! मरने के समय विपरीत बुद्धि हो जाने के कारण ही तुम सौभाग्य वश मेरे सामने आये हो। अब तुम इसी क्षण मेरे बाणों की चोट से यमपुर सिधारोगे ॥ ९६ ॥

तमाह सौमित्रिरविस्मयानो
गर्जन्तमुद्वृत्तशिताग्रदंष्ट्रम् ।
राजन्न गर्जन्ति महाप्रभावा
विकत्थसे पापकृतां वरिष्ठ ॥ ९७ ॥

रावण के इन वचनों को सुन और उनकी तृणवत् भी परवाह न कर, लक्ष्मण जी बोले। हे रावण! तू पापियों का अगुआ है,

इसीसे तू अपने बड़े बड़े उजले दांत बाहर निकाल, अपना बखान कर रहा है। किन्तु जो वास्तव में प्रतापी लोग होते हैं, वे इस प्रकार गर्जते नहीं ॥ ९७ ॥

जानामि वीर्यं तव राक्षसेन्द्र
बलं प्रतापं च पराक्रमं च।
अवस्थितोऽहं शरचापपाणिः
आगच्छ किं मोघविकत्थनेन ॥ ९८ ॥

हे राक्षसेन्द्र! मैं तेरे वीर्य, बल, प्रताप और पराक्रम को जानता हूँ। मैं तो धनुष बाण लिये तेरे पास ही तो खड़ा हूँ। आ और मुझसे लड़। व्यर्थ की बक बक करने से लाभ ही क्या है ॥९८॥

स एवमुक्तः कुपितः ससर्ज
रक्षोऽधिपः सप्त शरान्सुपुङ्खान्।
ताँल्लक्ष्मणः काञ्चनचित्रपुङ्खैः
चिच्छेद बाणैर्निशिताग्रधारैः ॥ ९९ ॥

लक्ष्मण की इस फटकार को सुन राक्षसराज रावण ने सात सुन्दर पुङ्ख लगे बाण छोड़े। उन सातों बाणों को लक्ष्मण जी ने, सुवर्णभूषित फोंक लगे हुए और अत्यन्त पैनी धार वाले बाणों से काट डाला ॥ ९९ ॥

तान्प्रेक्षमाणः सहसा निकृत्तान्
निकृत्तभोगानिव पन्नगेन्द्रान्।
लङ्केश्वरः क्रोधवशं जगाम
ससर्ज चान्यान्निशितान्पृषत्कान् ॥१००॥

लंकेश्वर रावण ने, अपने बाणों को शरीर कटे सर्पों की तरह सहमा टुकड़े टुकड़े हुए देख, अत्यन्त क्रुद्ध हो, लक्ष्मण जी पर अन्य पैने बाण छोड़े ॥ १०० ॥

स बाणवर्षं तु ववर्ष तीव्रं
रामानुजः कार्मुकसम्प्रयुक्तम् ।
क्षुरार्धचन्द्रोत्तमकर्णिभल्लैः
शरांश्च चिच्छेद न चुक्षुभे च ॥१०१॥

परन्तु श्री लक्ष्मण जी ने उन पैने बाणों की वर्षा से विचलित न हो, अपने धनुष पर रख रावण के ऊपर बाणों की वर्षा की और छुरे, अर्द्धचन्द्र, कर्णि और भाले के आकार के बाणों से रावण के छोड़े समस्त बाणों को काट कर टुकड़े टुकड़े कर डाला ॥१०१॥

स बाणजालान्यथ तानि तानि
मोघानि पश्यंस्त्रिदशारिराजः ।
विसिष्मिये लक्ष्मणलाघवेन
पुनश्च बाणान्निशितान्मुमोच ॥१०२॥

इन्द्रशत्रु राजा रावण अपने अमोघ बाणों को व्यर्थ जाते देख तथा लक्ष्मण जी की फुर्ती देख, बड़ा चकित हुआ और उसने फिर पैने पैने बाण छोड़े ॥ १०२ ॥

स लक्ष्मणश्चाशु शरान्शिताग्रान्
महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगान् ।
सन्धाय चापे ज्वलनप्रकाशान्
ससर्ज रक्षोधिपतेर्वधाय ॥१०३॥

तब लक्ष्मण जी ने भी धनुष को चढ़ा इन्द्र के वज्र के समान वेगवान् और अग्नि के समान चमचमाते बाण रावण का वध करने के लिये छोड़े॥ १०३ ॥

स तान्प्रचिच्छेद हि राक्षसेन्द्रः
छित्त्वा च तांल्लक्ष्मणमाजघान ।
शरेण कालाग्निसमप्रभेण
स्वयंभुदत्तेन ललाटदेशे ॥१०४॥

किन्तु राक्षसराज रावण ने उन समस्त बाणों को काट कर ब्रह्मप्रदत्त एवं प्रलयाग्नि तुल्य प्रचण्ड बाण लक्ष्मण जी के माथे में मारा ॥ १०४ ॥

स लक्ष्मणो रावणसायकार्तः
चचाल चापं शिथिलं प्रगृह्य ।
पुनश्च संज्ञां प्रतिलभ्य कृच्छ्रात्
चिच्छेद चापं त्रिदशेन्द्रशत्रोः ॥१०५॥

उस बाण के लगने से लक्ष्मण विचलित हुए, धनुष जिस हाथ से पकड़े थे, वह कुछ ढीला पड़ गया, किन्तु कुछ ही देर बाद स्वस्थ होकर, उन्होंने इन्द्रशत्रु रावण का धनुष काट डाला ॥१०५॥

निकृत्तचापं त्रिभिराजघान
बाणैस्तदा दाशरथिः शिताग्रैः ।
स सायकार्तो विचचाल राजा
कृच्छ्राच्च संज्ञां पुनराससाद ॥१०६॥

उसका धनुष काट कर लक्ष्मण जी ने तीन पैने पैने बाण उसके ऐसे मारे, जिनके आघात से विचलित हो वह मूर्च्छित हो गया। फिर वह बड़ी कठिनाई से सचेत हुआ॥ १०६॥

स कृत्तचापः शरताडितश्च
मेदार्द्रगात्रो रुधिरावसिक्तः।
जग्राह शक्तिं समुदग्रशक्तिः
स्वयंभुदत्तां युधि देवशत्रुः ॥१०७॥

धनुष कट जाने और लक्ष्मण जी के छोड़े बाणों के आघात के कारण चर्बी मिले रक्त से उसका सारा शरीर तरबतर हो गया। अन्त में प्राण बचने का अन्य उपाय न देख, उस देवशत्रु रावण ने, ब्रह्मा की दी हुई, लड़ाई में कभी निष्फल न जाने वाली शक्ति उठायी ॥१०७॥

स तां विधूमानलसन्निकाशां
वित्रासिनीं वानरवाहिनीनाम्।
चिक्षेप शक्तिं तरसा ज्वलन्तीं
सौमित्रये राक्षसराष्ट्रनाथः ॥१०८॥

राक्षसों के राजा रावण ने, लक्ष्मण जी को लक्ष्य कर, वानरी सेना को भयभीत करने वाली और धूम सहित अग्नि की तरह धप धप कर जलती हुई शक्ति छोड़ी॥ १०८॥

तामापतन्तीं भरतानुजोऽस्त्रैः
जघान बाणैश्च हुताग्निकल्पैः।
तथापि सा तस्य विवेश शक्तिः
[1]बाह्वन्तरं दाशरथेर्विशालम् ॥१०९॥

---

१ वाह्वान्तरंवक्षः। (गो०)

उस शक्ति को अपने ऊपर आते देख यद्यपि लक्ष्मण जी ने बहुत से अग्नि के समान बाण चला उसे काट कर गिरा देना चाहा, तथापि वह लक्ष्मण जी की विशाल छाती में लगी ॥१०९॥

स शक्तिमाञ्शक्तिसमाहतः सन्
मुहुः प्रजज्वाल रघुप्रवीरः ।
तं विह्वलन्तं सहसाभ्युपेत्य
जग्राह राजा तरसा भुजाभ्याम् ॥११०॥

तब वे शक्तिमान लक्ष्मण जी उस शक्ति के लगने से घायल हो भूमि पर गिर पड़े। उनको मूर्च्छित हो पृथिवी पर गिरा देख, रावण झपटा और दोनों भुजाओं में दबा उसने चाहा कि, उनको उठा कर ले जाऊँ ॥ ११० ॥

हिमवान्मन्दरो मेरुस्त्रैलोक्यं वा सहामरैः ।
शक्यं भुजाभ्यामुद्धर्तुं न संख्ये भरतानुजः ॥१११॥

परन्तु जो रावण हिमालय, मन्दराचल और सुमेरु पर्वत अथवा देवताओं सहित तीनों लोकों को अपनी भुजाओं में दबा कर उठा सकता था, वह रणक्षेत्र में पड़े लक्ष्मण को न उठा सका ॥ १११ ॥

शक्त्या ब्राह्मयापि सौमित्रिस्ताडितस्तु स्तनान्तरे ।
विष्णोरचिन्त्यं स्वं भागमात्मानं प्रत्यनुस्मरन् ॥११२॥

यद्यपि उस काल लक्ष्मण की छाती में ब्रह्मा की दी हुई शक्ति लगी थी, तथापि अपने आपको विष्णु का अचिन्त्य अंश होने का स्मरण कर, वे इतने भारी हो गये थे कि, रावण जैसा बली व्यक्ति भी उनको न उठा सका ॥११२॥

[नोट—अचिन्त्य अंश से अभिप्राय "मानवी-कल्पना से परे" है]

ततो दानवदर्पघ्नं सौमित्रिं देवकण्टकः ।
तं पीडयित्वा [1]बाहुभ्यामप्रभुर्लङ्घनेऽभवत् ॥११३॥

देवताओं के कण्टक रावण ने, दानवदर्पापहारी लक्ष्मण को दोनों भुजाओं में दबा कर उठाना चाहा; किन्तु वह उठा न सका ॥११३॥

अथैवं वैष्णवं भागं मानुषं देहमास्थितम् ।
अथ वायुसुतः क्रुद्धो रावणं समभिद्रवत् ॥११४॥

इसका कारण यही था कि, लक्ष्मण जी विष्णु भगवान का अंशावतार थे और मनुष्य रूप में अवतीर्ण हुए थे। लक्ष्मण को गिरते तथा रावण को उन्हें उठाने का प्रयत्न करते देख, हनुमान जी बड़े क्रुद्ध हुए और झट वहाँ जा पहुँचे जहाँ रावण लक्ष्मण जी को पकड़ कर उठाने का प्रयत्न कर रहा था ॥ ११४ ॥

आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना ।
तेन मुष्टिप्रहारेण रावणो राक्षसेश्वरः ॥११५॥

और पहुँचते ही क्रोध में भर वज्र के समान एक मूँका रावण की छाती में मारा। उस मूँके की चोट से राक्षसराज रावण ने ॥ ११५ ॥

जानुभ्यामवतद्भूमौ चचाल च पपात च ।
आस्यैः सनेत्रश्रवणैर्ववाम रुधिरं बहु ॥११६॥

घुटने टेक दिये और घुमरी खा कर भूमि पर गिर पड़ा। उसके मुख, आँखों और कानों से बहुत सा रक्त बहने लगा ॥११६॥

---

१ अप्रभुः असमर्थः। (गो०) २ लङ्घने—उद्धरणे। (गो०)

विघूर्णमानो निश्चेष्टो रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसंज्ञो मूर्छितश्चासीन्न च स्थानं समालभत् ॥११७॥

कुछ देर बाद जब वह उठा तब भी उसको घुमरी आने लगी। वह निश्चेष्ट हो अपने रथ में जा लुढ़क पड़ा। उस समय भी उसे होश नहीं था; वह मूर्च्छित था। फिर होश में आने पर भी उसे यह ज्ञान न था कि उस समय वह कहाँ है ॥ ११७॥

विसंज्ञं रावणं दृष्ट्वा समरे भीमविक्रमम् ।
ऋषयो वानराः सर्वे नेदुर्देवाः सवासवाः ॥११८॥

भयङ्कर विक्रमवान् रावण को युद्ध में मूर्च्छित देख, ऋषि, वानर और इन्द्र सहित समस्त देवतागण हर्षनाद करने लगे ॥११८॥

हनुमानपि तेजस्वी लक्ष्मणं रावणार्दितम् ।
अनयद्राघवाभ्याशं बाहुभ्यां परिगृह्य तम् ॥११९॥

उधर तेजस्वी हनुमान जी रावण द्वारा घायल किये गये लक्ष्मण को, अपनी दोनों भुजाओं में दबा श्रीरामचन्द्र जी के पास ले आये ॥ ११९ ॥

वायुसूनोः सुहृत्त्वेन भक्त्या परमया च सः ।
शत्रूणामप्रकम्प्योऽपि लघुत्वमगमत्कपेः ॥१२०॥

यद्यपि लक्ष्मण जी को शत्रु रावण तिल भर भी नहीं डुला सका था, तथापि हनुमान जी के सौहार्द्र और अपने में भक्ति का विचार कर, हनुमान जी के लिये लक्ष्मण जी हलके हो गये थे ॥१२०॥

तं समुत्सृज्य सा शक्तिः सौमित्रिं युधि दुर्जयम् ।
रावणस्य रथे तस्मिन्स्थानं पुनरुपागता ॥१२१॥

समर में दुर्जेय लक्ष्मण को त्याग वह शक्ति फिर रावण के रथ में जा पहुँची ॥ १२१ ॥

[1]आश्वस्तश्च [2]विशल्यश्च लक्ष्मणः शत्रुसूदनः ।
[3]विष्णोर्भागममीमांस्यमात्मानं प्रत्यनुस्मरन् ॥१२२॥

शत्रुहन्ता लक्ष्मण जी अपने को अचिन्त्य विष्णु भगवान का अंश समझ सचेत हुए । उनकी छाती का घाव पुर गया ॥१२२॥

रावणोऽपि महातेजाः प्राप्य संज्ञां महाहवे ।
आददे निशितान्बाणाञ्जग्राह च महद्धनुः ॥१२३॥

महातेजस्वी रावण ने भी उस महायुद्ध में सचेत हो फिर अपना विशाल धनुष उठाया और पैने पैने बाण छोड़े ॥१२३॥

निपातितमहावीरां द्रवन्तीं वानरीं चमूम् ।
राघवस्तु रणे दृष्ट्वा रावणं समभिद्रवत् ॥१२४॥

रावण के हाथ से अनेक वीर वानरों का मारा जाना तथा वानरी सेना को भागते देख, श्रीरामचन्द्र जी ने रावण पर आक्रमण किया ॥१२४॥

अथैनमुपसंगम्य हनुमान्वाक्यमब्रवीत् ।
मम पृष्ठं समारुह्य राक्षसं शास्तुमर्हसि ॥१२५॥

श्रीरामचन्द्र जी को रावण पर आक्रमण करते देख, हनुमान जी ने उनके समीप जा कर प्रार्थना की कि, आप मेरी पीठ पर बैसे ही सवार होकर रावण का वध कीजिये ॥१२५॥

---

१ आश्वस्तः—लब्धसंज्ञः (गो०) २ विशल्यः—प्ररूढव्रणमुखः। (गो०)
३ अमीमांस्यं—अचिन्त्यं। (गो०)

विष्णुर्यथा गरुत्मन्तं बलवन्तं समाहितः ।
तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्यं वायुपुत्रेण भाषितम् ॥१२६॥
आरुरोह महाशूरो बलवन्तं महाकपिम् ।
रथस्थं रावणं संख्ये ददर्श मनुजाधिपः ॥१२७॥

जैसे विष्णु भगवान गरुड़ की पीठ पर सवार हो दैत्य से लड़े थे। हनुमान जी के कहे हुए इन वचनों को सुन, बड़े शूरवीर श्रीरामचन्द्र जी महाबलवान हनुमान जी की पीठ पर सवार हो गये। नरेन्द्र श्रीरामचन्द्र जी ने समरभूमि में रावण को रथ में बैठा हुआ देखा ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

तमालोक्य महातेजाः प्रदुद्राव स राघवः ।
वैरोचनिमिव क्रुद्धो विष्णुरभ्युद्यतायुधः ॥१२८॥

उसे देख वे उस पर वैसे ही लपके जैसे विष्णु भगवान शस्त्र उठा बलि पर लपके थे ॥१२८॥

ज्याशब्दमकरोतीव्रं वज्रनिष्पेषनिःस्वनम् ।
गिरा गम्भीरया रामो राक्षसेन्द्रमुवाच ह ॥१२९॥

वहाँ जा उन्होंने अपने धनुष के रोदे का वज्र के समान भयङ्कर शब्द किया। फिर गम्भीर वाणी से श्रीरामचन्द्र जी ने राक्षसराज से कहा ॥१२६॥

तिष्ठतिष्ठ मम त्वं हि कृत्वा विप्रियमीदृशम् ।
क्व नु राक्षसशार्दूल गतो मोक्षमवाप्स्यसि ॥१३०॥

अरे राक्षसशार्दूल ! खड़ा रह ! खड़ा रह !! तू इस प्रकार मेरा अप्रिय कार्य कर अथवा मुझे चिढ़ा कर कहाँ जा कर, मुझसे बच सकता है ॥१३०॥

यदीन्द्रवैवस्वतभास्करान्वा
स्वयंभुवैश्वानरशङ्करान्वा ।
गमिष्यसि त्वं दश वा दिशोऽथवा
तथापि मे नाद्य गतो विमोक्ष्यसे ॥१३१॥

यदि तू इन्द्र, यम, सूर्य, शिव, अग्नि और ब्रह्मा के भी शरण में जायगा या दसों दिशाओं में भी भाग कर जायगा, तो भी तू मुझसे नहीं बच सकता ॥ १३१ ॥

यश्चैव शक्त्याभिहतस्त्वयाऽद्य
इच्छन्विषादं सहसाभ्युपेतः ।
स एव रक्षोगणराज मृत्युः
सपुत्रपौत्रस्य तवाद्य युद्धे ॥१३२॥

जिनको (लक्ष्मण को तूने आज) शक्ति से मार मुझे जो दुःख दिया है, उसको शान्त करने के लिये, मैं तेरे तथा तेरे पुत्र पौत्रों के मारने की प्रतिज्ञा कर, आज समरभूमि में आया हूँ ॥१३२॥

एतेन चाप्यद्भुतदर्शनानि
शरैर्जनस्थानकृतालयानि ।
चतुर्दशान्यात्तवरायुधानि
रक्षस्सहस्राणि निषूदितानि ॥१३३॥

मैंने ही अपने बाणों से जनस्थानवासी श्रेष्ठ अस्त्रशस्त्र धारण किये हुए, विलक्षण सूरत शक्ल के चौदह हज़ार राक्षसों को मार गिराया था ॥१३३॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रो महाकपिम् ।
वायुपुत्रं महावीर्यं वहन्तं राघवं रणे ।
आजघान शरैस्तीक्ष्णैः कालानलशिखोपमैः ॥१३४॥

श्रीरामचन्द्र जी के इन वचनों को सुन राक्षसराज रावण ने कपिश्रेष्ठ महाबलवान पवननन्दन के, जो समरभूमि में श्रीरामचन्द्र जी को अपनी पीठ पर चढ़ाये हुए थे (हनुमान जी के घूँसे के आघात को स्मरण कर) कालाग्नि के समान पैने पैने बाण मारे ॥ १३४ ॥

राक्षसेनाहवे तस्य ताडितस्यापि सायकैः ।
स्वभावतेजोयुक्तस्य भूयस्तेजोऽभ्यवर्धत ॥१३५॥

इस लड़ाई में रावण के छोड़े बाण हनुमान जी के लगे, किन्तु स्वभाव से तेजस्वी होने के कारण उनका तेज और भी अधिक बढ़ा ॥१३५॥

ततो रामो महातेजा रावणेन कृतव्रणम् ।
दृष्ट्वा प्लवगशार्दूलं कोपस्य वशमेयिवान् ॥१३६॥

तब महातेजस्वी श्रीरामचन्द्र, कपिश्रेष्ठ हनुमान जी के शरीर में रावण के किये हुए घावों को देख, अत्यन्त कुपित हुए ॥१३६॥

तस्याभिचङ्क्रम्य रथं सचक्रं
साश्वध्वजच्छत्रमहापताकम् ।
ससारथिं साशनिशूलखड्गं
रामः प्रचिच्छेद शरैः सुपुङ्खैः ॥१३७॥

और सुन्दर पर वाले बाणों से रावण के रथ के पहिये, ध्वजा, छत्र, बड़ी पताका, वज्र, शूल, तलवार के टूक टूक कर डाले और उसने रथ के घोड़ों तथा सारथि को मार डाला ॥१३७॥

अथेन्द्रशत्रुं तरसा जघान
बाणेन वज्राशनिसन्निभेन ।
भुजान्तरे व्यूढसुजातरूपे
वज्रेण मेरुं भगवानिवेन्द्रः ॥१३८॥

जैसे बलवान इन्द्र ने सुमेरु पर्वत को चूर्ण कर डाला था ; वैसे ही वज्र के समान बाण को श्रीरामचन्द्र जी ने रावण की सुन्दर विशाल छाती में मारा ॥१३८॥

यो वज्रपाताशनिसन्निपातन्
न चुक्षुभे नापि चचाल राजा ।
स रामबाणाभिहतो भृशार्तः
चचाल चापं च मुमोच वीरः ॥१३९॥

जो वीर रावण बड़े बड़े वज्रों के आघात से कभी न तो घबड़ाया था और न विचलित हुआ था, वही आज श्रीरामचन्द्र के बाण की चोट से अत्यन्त पीड़ित हो, विचलित हो गया और उसके हाथ से धनुष भी गिर पड़ा ॥ १३९ ॥

तं विह्वलन्तं प्रसमीक्ष्य रामः
समाददे दीप्तमथार्धचन्द्रम् ।
तेनार्कवर्णं सहसा किरीटं
चिच्छेद रक्षोधिपतेर्महात्मा ॥१४०॥

जब श्रीरामचन्द्र जी ने राक्षसराज रावण को मूर्च्छित देखा, तब उन्होंने चमचमाता एक अर्धचन्द्राकार बाण छोड़, उसके सूर्य के समान चमचमाते मुकुट को काट गिराया ॥१४०॥

तं निर्विषाशीविषसन्निकाशं
शान्तार्चिषं सूर्यमिवाप्रकाशम् ।
गतश्रियं कृत्तकिरीटकूटम्
उवाच रामो युधि राक्षसेन्द्रम् ॥१४१॥

उस समय रावण की दशा ठीक वैसी ही थी जैसी विषहीन सर्प की अथवा शान्त हुई किरणों से युक्त प्रकाशरहित सूर्य की होती है। उस समय वह कान्तिहीन हो गया था। उसके समस्त किरीट कट गये थे। ऐसे रावण से समरभूमि में श्रीरामचन्द्र जी बोले ॥ १४१ ॥

कृतं त्वया कर्म महत्सुभीमं
हतप्रवीरश्च कृतस्त्वयाहम् ।
तस्मात्परिश्रान्त इव व्यवस्य
न त्वां शरैर्मृत्युवशं नयामि ॥१४२॥

देख तूने मेरे प्रधान वीरों को मार बड़ा भयङ्कर काम किया है। इस समय मैं तुझे थका हुआ जान, अपने बाणों से तुझे जान से नहीं मारता ॥१४२॥

गच्छानुजानामि [1]रणार्दितस्त्वं
प्रविश्य रात्रिंचरराज लङ्काम् ।
आश्वास्य निर्याहि रथी च धन्वी
तदा बलं द्रक्ष्यसि मे रथस्थः ॥१४३॥

---

१ रणार्दित—युद्धे श्रान्तः। (गो०)

अब तू चला जा, क्योंकि मैं जानता हूँ कि, तू लड़ते लड़ते श्रान्त हो गया है। हे निशाचर! अब तू लङ्का में जाकर अपनी थकावट दूर कर और दूसरे रथ में बैठ तथा दूसरा धनुष ले कर आ जा। तब मेरा बल देखना॥ १४३॥

स एवमुक्तो हतदर्पहर्षो
निकृत्तचापः स हताश्वसूतः।
शरार्दितः कृत्तमहाकिरीटो
विवेश लङ्कां सहसा स राजा॥ १४४॥

इस प्रकार श्रीराम जी द्वारा दुत्कारा हुआ रावण तुरन्त लङ्का में चला गया। श्रीराम जी ने उसका धनुष तोड़ डाला था। उसके रथ के घोड़े व उसके सारथी को मार डाला था। उसके मुकुटों को काट कर गिरा दिया था। वह स्वयं भी बाणों की चोट से विकल हो रहा था। उसका दर्प और हर्ष नष्ट हो चुका था॥ १४४॥

तस्मिन्प्रविष्टे रजनीचरेन्द्रे
महाबले दानवदेवशत्रौ।
हरीन्विशल्यान्सह लक्ष्मणेन
चकार रामः परमाहवाग्रे॥ १४५॥

देवता और दानवों का शत्रु महाबली राक्षसराज रावण जब लङ्का में घुस गया, तब श्रीरामचन्द्र जी ने लक्ष्मण जी के तथा उन समस्त वानरों के, जो समरभूमि में घायल हुए पड़े थे, लगे हुए बाण निकाल डाले और औषधोपचार से सब की व्यथा दूर की॥ १४५॥

तस्मिन्प्रभिन्ने[1] त्रिदशेन्द्रशत्रौ
सुरासुरा भूतगणा दिशश्च[2] ।
[3]ससागराः सर्षिमहोरगाश्च
तथैव भूम्यम्बु[4]चराश्च हृष्टाः ॥ १४६ ॥

इति एकोनषष्टितमः सर्गः ॥

इन्द्रशत्रु रावण को रण में इस प्रकार पराजित हुआ देख, देवता, दानव, भूत, दिक्पाल, समुद्रवासी, ऋषि, महोरग तथा पृथिवीचारी एवं जलचारी समस्त जीवधारी प्रसन्न हुए॥ १४६ ॥

युद्धकाण्ड का उनसठवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—※—

षष्टितमः सर्गः

—※—

स प्रविश्य पुरीं लङ्कां रामबाणभयार्दितः ।
भग्नदर्पस्तदा राजा बभूव [5]व्यथितेन्द्रियः ॥ १ ॥

रावण लङ्का में चला गया, किन्तु वहाँ श्रीरामचन्द्र जी के बाणों के भय से वह दुःखी हुआ। उसका गर्व दूर हो गया और उसका मन बहुत दुःखी हुआ॥ १ ॥

---

१ प्रभिन्ने—पराजिते । (गो०) २ दिशः—दिक्पालाः । (गो०) ३ सागराः—सागरवासिनः । (गो०) ४ अम्बुचराः—सागरभिन्न अम्बुचराः । (गो०) ५ व्यथितेन्द्रियः—दुःखितमनस्कः । (गो०)

मातङ्ग इव सिंहेन गरुडेनेव पन्नगः ।
अभिभूतोऽभवद्राजा राघवेण महात्मना ॥ २ ॥

जिस तरह सिंह से हाथी और गरुड़ से साँप पीड़ित हो विकल होता है, उसी प्रकार महाबलवान श्रीरामचन्द्र जी से पराजित होने पर रावण विकल हुआ ॥ २ ॥

[1]ब्रह्मदण्डप्रकाशानां विद्युत्सदृशवर्चसाम् ।
स्मरन्राघवबाणानां विव्यथे राक्षसेश्वरः ॥ ३ ॥

वशिष्ठ जी के ब्रह्मदण्ड के समान समस्त अस्त्र शस्त्रों को ग्रसने वाले और बिजुली की तरह चमचमाते बाणों का स्मरण कर, राक्षसेश्वर रावण व्यथित हो रहा था ॥ ३ ॥

स काञ्चनमयं दिव्यमाश्रित्य परमासनम् ।
विप्रेक्षमाणो रक्षांसि रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥

रावण सोने के बढ़िया सिंहासन पर बैठ और राक्षसों की ओर निहार कर कहने लगा ॥ ४ ॥

सर्वं तत्खलु मे मोघं यत्तप्तं परमं तपः ।
यत्समानो महेन्द्रेण मानुषेणास्मि निर्जितः ॥ ५ ॥

देखो मैंने जो तप किया था वह सब आज निश्चय ही व्यर्थ हो गया। क्योंकि इन्द्र के तुल्य मुझ पराक्रमी को एक मनुष्य ने हरा दिया ॥ ५ ॥

इदं तद्ब्रह्मणो घोरं वाक्यं मामभ्युपस्थितम् ।
मानुषेभ्यो विजानीहि भयं त्वमिति तत्तथा ॥ ६ ॥

---

1 ब्रह्मदण्ड—सर्वास्त्रनिगरणक्षमो वसिष्ठदण्डो वा ब्रह्मास्त्रं वा । (गो०)

ब्रह्मा का यह भयङ्कर कथन कि, तुझे मनुष्यों से भय होगा—आज मेरे सामने उपस्थित है ॥ ६ ॥

देवदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः ।
अवध्यत्वं मया प्राप्तं मानुषेभ्यो न याचितम् ॥ ७ ॥

हा ! मैंने ब्रह्मा जी से देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग द्वारा न मारे जाने का वरदान तो माँगा; किन्तु मनुष्यों द्वारा न मारे जाने का वर न माँगा ॥ ७ ॥

तमिमं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम् ।
इक्ष्वाकुकुलनाथेन अनरण्येन यत्पुरा ॥ ८ ॥

अतः दशरथ के इस पुत्र को मैं वही मनुष्य समझता हूँ जिसके विषय में इक्ष्वाकुकुल सम्भूत अनरण्य ने मुझे शाप दिया था अथवा मुझसे भविष्यद्वाणी कही थी ॥ ८ ॥

उत्पत्स्यते हि मद्वंशे पुरुषो राक्षसाधम ।
यस्त्वां सपुत्रं सामात्यं सबलं साश्वसारथिम् ॥ ९ ॥
निहनिष्यति संग्रामे त्वां कुलाधम दुर्मते ।
शप्तोऽहं वेदवत्या च यदा सा धर्षिता पुरा ॥ १० ॥

उन्होंने कहा था कि, हे राक्षसाधम ! मेरे वंश में एक ऐसा पुरुष उत्पन्न होगा, जो तुझ कुलाधम दुष्ट को, तेरे पुत्रों को, मंत्रियों को, सैनिकों को और अश्वों सहित तेरे सारथी को युद्ध में मारेगा। मैंने जब बरजोरी वेदवती को पकड़ा था (अर्थात् उसके साथ बलात्कार किया था) तब उसने भी मुझे शाप दिया था ॥ ९ ॥ १० ॥

सेयं सीता महाभागा जाता जनकनन्दिनी ।
उमा नन्दीश्वरश्चापि रम्भा वरुणकन्यका ॥ ११ ॥

जान पड़ता है वही वेदवती अब यह महाभागा सीता के रूप में जन्मी है। इनके अतिरिक्त उमा, नन्दीश्वर, रम्भा और वरुण की कन्या (पुञ्जिकस्थली) ने ॥ ११ ॥

यथोक्तास्तपसा प्राप्तं न मिथ्या ऋषिभाषितम् ।
एतदेवाभ्युपागम्य[1] यत्नं कर्तुमिहार्हथ ॥ १२ ॥

तपप्रभाव से जो कुछ कहा था वह मेरे सामने है। भला ऋषियों का कथन भी कहीं मिथ्या हो सकता है। अब तुम लोग यह सब जान कर शत्रु को पराजित करने के लिये उचित उपाय करो ॥ १२ ॥

राक्षसाश्चापि तिष्ठन्तु [2]चर्यागोपुरमूर्धसु ।
स चाप्रतिमगम्भीरो देवदानवदर्पहा ॥ १३ ॥

वह उपाय यह कि, प्रथम तो गोपुरों की बगल के उन रास्तों के ऊपर, जो पहरेदार सैनिकों के घूमने के लिये बने हुए हैं, तथा नगरों के बाहिर जाने वाले फाटकों के ऊपर राक्षस पहरा दें। फिर अतुलित गंभीरतायुक्त और देव दानवों के दर्प को दूर करने वाले ॥ १३ ॥

ब्रह्मशापाभिभूतस्तु कुम्भकर्णो विबोध्यताम् ।
स पराजितमात्मानं प्रहस्तं च निषूदितम् ॥ १४ ॥
ज्ञात्वा रक्षोबलं भीममादिदेश महाबलः ।
द्वारेषु यत्नः क्रियतां प्राकारश्चाधिरुह्यताम् ॥ १५ ॥

कुम्भकर्ण को, जो ब्रह्मा जी के शाप से सो रहा है, जगाना चाहिये। महाबली रावण ने अपना पराजय और प्रहस्त का

---

१ अभ्युपागम्य: —ज्ञात्वा। (गो०) २ चर्यागोपुरपार्श्वस्थभटसंचार-प्रदेशाः। (गो०)

मारा जाना देख कर ही भयङ्करी राक्षसी सेना को आज्ञा दी कि, (वानर नगर में न घुस आवे) अतः राक्षस, नगर के द्वारों पर पहिरा दें और परकोटों की दीवालों पर चढ़ कर नगरी की रक्षा करें ॥ १४ ॥ १५ ॥

निद्रावशसमाविष्टः कुम्भकर्णो विबोध्यताम् ।
सुखं स्वपिति निश्चिन्तः कामोपहतचेतनः ॥ १६ ॥

गहरी नींद में पड़े सोते हुए कुम्भकर्ण को जगाओ। क्योंकि काम के वशवर्ती होने के कारण उसकी बुद्धि मारी गयी है, इसीसे वह मज़े में बेखटके सोया करता है ॥ १६ ॥

नव षट् सप्त चाष्टौ च मासान्स्वपिति राक्षसः ।
मन्त्रयित्वा प्रसुप्तोऽयमितस्तु नवमेऽहनि ॥ १७ ॥

सो भी एक दो दिन नहीं, कभी नौ, कभी छः, कभी सात और कभी आठ महीने तक वह पड़ा सोया ही करता है। अन्तिम बार वह मुझसे परामर्श कर नौ दिन हुए तब जा कर सोया है ॥ १७॥

तं तु बोधयत क्षिप्रं कुम्भकर्णं महाबलम् ।
स तु संख्ये महाबाहुः ककुदः सर्वरक्षसाम् ॥ १८ ॥

उस महाबली कुम्भकर्ण को शीघ्र जगाओ। वह महाबलवान युद्ध करने में सब राक्षसों से श्रेष्ठ है ॥ १८ ॥

वानरान्राजपुत्रौ च क्षिप्रमेव वधिष्यति ।
एष केतुः[1] परः संख्ये मुख्यो वै सर्वरक्षसाम् ॥ १९ ॥

---

१ परःकेतुः—केतुवत् सर्वोन्नतः भविष्यतीति शेषं । (शि०) परंकेतुः—अतिप्रकाशवीर्य इत्यर्थः । (रा०)

वह शीघ्र ही दोनों राजकुमारों को और समस्त वानरों को मार डालेगा। वह सब राक्षसों में मुख्य है और युद्धक्षेत्र में वह भंडे की तरह सब से ऊँचा देख पड़ेगा ॥ १९ ॥

कुम्भकर्णः सदा शेते मूढो ग्राम्यसुखे रतः ।
रामेण हि निरस्तस्य संग्रामेऽस्मिन्सुदारुणे ॥ २० ॥

किन्तु मूढ़ कुम्भकर्ण ग्राम्यसुख (स्त्री पुत्रादिकों के सुख) में अनुरागी रह कर सदा सोया ही करता है। इस दारुण संग्राम में मैं जो राम से हार गया हूँ ॥ २० ॥

भविष्यति न मे शोकः कुम्भकर्णे विबोधिते ।
किं करिष्याम्यहं तेन शक्रतुल्यबलेन हि ॥ २१ ॥
ईदृशे व्यसने प्राप्ते यो न साह्याय कल्पते ।
ते तु तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः ॥ २२ ॥

सो जब कुम्भकर्ण जागेगा तब इस हार का मेरा शोक दूर हो जायगा। यदि ऐसी आफत विपत्ति में भी इन्द्र के समान पराक्रमी कुम्भकर्ण मेरी कुछ भी सहायता न करेगा; तो मैं उसे लेकर क्या करूँगा। राक्षसराज रावण के इन वचनों को सुन वे राक्षस ॥ २१ ॥ २२ ॥

जग्मुः [1]परमसम्भ्रान्ताः कुम्भकर्णनिवेशनम् ।
ते रावण समादिष्टा मांसशोणितभोजनाः ॥ २३ ॥
गन्धमाल्यांस्तथा भक्ष्यानादाय सहसा ययुः ।
तां प्रविश्य महाद्वारां सर्वतो योजनायताम् ॥ २४ ॥

---

१ परमसम्भ्रान्ताः—कथमेनं अकाले प्रबोधयिष्याम इति व्याकुलाः । (गो०)

इस विचार से कि, हम क्यों कर कुसमय में कुम्भकर्ण को जगावें, विकल होते हुए, कुम्भकर्ण के घर को गये। वे रक्त-मांस-भोजी राक्षस, रावण की आज्ञा के अनुसार कुम्भकर्ण के लिये सुगन्धित पुष्पों की फूल मालाएँ तथा बहुत सी खाने की वस्तुएँ अपने साथ ले तुरन्त चल दिये। वे कुम्भकर्ण की गुफा में घुस गये। गुफा का द्वार बड़ा ऊँचा था और वह योजन भर लंबी चौड़ी थी ॥ २३ ॥ २४ ॥

कुम्भकर्णगुहां रम्यां सर्वगन्धप्रवाहिनीम् ।
कुम्भकर्णस्य निःश्वासादवधूता महाबलाः ॥ २५ ॥

कुम्भकर्ण की गुफा के भीतर फूलों की सुगन्धि आ रही थी और वह बड़ी रमणीक थी। किन्तु कुम्भकर्ण ऐसे ज़ोर से सांस खींचता और छोड़ता था कि, वे महाबली राक्षस उसके भीतर घुस नहीं पाते थे ॥ २५ ॥

प्रतिष्ठमानः कृच्छ्रेण यत्नात्प्रविविशुर्गुहाम् ।
तां प्रविश्य गुहां रम्यां शुभां काञ्चनकुट्टिमाम् ॥ २६ ॥

बड़ी कठिनता से गुफा में वे ठड़े रह सके और बड़ा प्रयत्न करने पर उसके भीतर जा सके। उस रमणीक गुफा का फ़र्श सोने का बना हुआ था ॥ २६ ॥

ददृशुर्नैऋतव्याघ्रं शयानं भीमदर्शनम् ।
ते तु तं विकृतं सुप्तं विकीर्णमिव पर्वतम् ॥ २७ ॥

उन राक्षसों ने देखा कि, भयङ्कर सूरतशक्ल का राक्षसव्याघ्र अर्थात् कुम्भकर्ण पड़ा सो रहा है। उन्होंने उसे एक गिरे हुए पहाड़ की तरह बुरी तरह सोते हुए पाया ॥ २७ ॥

कुम्भकर्णं महानिद्रं सहिताः प्रत्यबोधयन् ।
ऊर्ध्वरोमाञ्चिततनुं श्वसन्तमिव पन्नगम् ॥ २८ ॥

तब उन सब राक्षसों ने मिल कर प्रगाढ़ निद्रा में सोते हुए कुम्भकर्ण को जगाया। उस समय कुम्भकर्ण के सब रोंगटे खड़े थे और वह सर्प की तरह फुंसकारें छोड़ रहा था ॥ २८ ॥

त्रासयन्तं महाश्वासैः शयानं भीमदर्शनम् ।
भीमनासापुटं तं तु पातालविपुलाननम् ॥ २९ ॥

भयङ्कर सूरतवाला और सोता हुआ कुम्भकर्ण अपनी इन लंबी लंबी साँसों से उन राक्षसों को त्रस्त कर रहा था। उसकी नाक के दोनों छिद्र बड़े भयङ्कर थे और मुख तो पाताल की तरह बड़ा जान पड़ता था ॥ २९ ॥

शय्यायां न्यस्तसर्वाङ्गं मेदोरुधिरगन्धिनम् ।
काञ्चनाङ्गदनद्धाङ्गं किरीटिनमरिन्दमम् ॥ ३० ॥

वह बिछौने पर लेटा हुआ था और वहाँ चर्बी और लोहू की दुर्गन्धि आ रही थी। उसकी भुजाओं पर दो बाजूबंद बँधे हुए थे। शत्रुहन्ता कुम्भकर्ण सिर पर किरीट धारण किये हुए था ॥ ३० ॥

ददृशुर्नैर्ऋतव्याघ्रं कुम्भकर्णं महाबलम् ।
ततश्चक्रुर्महात्मानः कुम्भकर्णाग्रतस्तदा ॥ ३१ ॥

मांसानां मेरुसङ्काशं राशिं परमतर्पणम् ।
मृगाणां महिषाणां च वराहाणां च सञ्चयान् ॥ ३२ ॥

उन राक्षसों ने महाबली राक्षसव्याघ्र कुम्भकर्ण की यह दशा देखी, तदनन्तर उन लोगों ने कुम्भकर्ण के समीप, अत्यन्त तृप्तकर

मांस के पहाड़ की तरह एक ऊँचा ढेर लगा दिया। (मरे हुए) मृगों, भैसों और सुअरों के वहाँ ढेर लगाये गये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

चक्रुर्नैर्ऋतशार्दूला राशिमन्नस्य चाद्भुतम् ।
ततः शोणितकुम्भांश्च मद्यानि विविधानि च ॥ ३३ ॥

फिर उन राक्षसश्रेष्ठों ने अन्न का विस्मयकारी एक बड़ा ढेर लगा दिया। फिर रक्त से भरे बहुत से कलसे तथा विविध प्रकार की मदिराएँ ॥ ३३ ॥

पुरस्तात्कुम्भकर्णस्य चक्रुस्त्रिदशशत्रवः ।
लिलिपुश्च परार्ध्येन चन्दनेन परन्तपम् ॥ ३४ ॥

उन राक्षसों ने कुम्भकर्ण के सामने (पास) रख दीं। फिर उत्तम सुगन्धित चन्दन से उसका शरीर पोता गया ॥ ३४ ॥

दिव्यैराच्छादयामासुर्माल्यैर्गन्धैः सुगन्धिभिः ।
धूपं सुगन्धं ससृजुस्तुष्टुवुश्च परन्तपम् ॥ ३५ ॥

अच्छी अच्छी सुगन्धित पुष्पों की मालाएँ उसे पहनायी गयीं, तथा सुगन्धित द्रव्य उसे सुँघायी गयीं। राक्षस उस शत्रुहन्ता कुम्भकर्ण के सामने उग्रगन्ध वाली धूप आदि सुगन्धित वस्तुएँ रख, उसकी स्तुति करने लगे ॥ ३५ ॥

जलदा इव चोन्नेदुर्यातुधानास्ततस्ततः ।
शङ्खानापूरयामासुः शशाङ्कसदृशप्रभान् ॥ ३६ ॥

बादलों की गर्जन के समान बड़े ज़ोर से वे सब राक्षस उसके चारों ओर खड़े हो कर चिल्लाने लगे। उन्होंने चन्द्र समान सफेद शङ्ख बजाये ॥ ३६ ॥

तुमुलं युगपच्चापि विनेदुश्चाप्य मर्षिताः ।
नेदुरा[1]स्फोटयामासु[2]श्चिक्षिपुस्ते निशाचराः ।
कुम्भकर्णविबोधार्थं चक्रुस्ते विपुलं स्वनम् ॥ ३७ ॥

इस पर भी जब कुम्भकर्ण न जागा, तब कुपित हो सब राक्षसों ने एक साथ घोर शब्द किया । तिस पर भी जब उसकी नींद न टूटी, तब बड़ी ज़ोर से चिल्ला कर उसके शरीर पर वे प्रहार करने लगे तथा उसके शरीर को पकड़ कर हिलाने लगे । कुम्भकर्ण को जगाने के लिये वे बड़ी ज़ोर से चिल्लाये ॥ ३७ ॥

सशङ्खभेरीपणवप्रणाद-
मास्फोटितक्ष्वेलितसिंहनादम् ।
दिशो द्रवन्तस्त्रिदिवं किरन्तः
श्रुत्वा विहङ्गाः सहसा निपेतुः ॥ ३८ ॥

उस समय उस गुफा में शङ्ख, तुरही, ढोल आदि बाजों के बजने का शब्द तथा राक्षसों के ताल ठोकने का, गर्जने का तथा सिंहनाद करने का शब्द मिल कर, एक ऐसा होहल्ला मचा कि, उसे सुन पक्षी इधर उधर भागे, किन्तु आकाश में पहुँच कर भी जब उनका भय दूर न हुआ, तब वे धड़ाम धड़ाम भूमि पर गिरने लगे ॥ ३८ ॥

यदा भृशं तैर्निनदैर्महात्मा[3]
न कुम्भकर्णो बुबुधे प्रसुप्तः ।

---

१ आस्फोटयामासुः—ताड़यामासुः । (गो०) २ चिक्षिपुः—शरीरं कंपयामासुः । (गो०) ३ महात्मा—महाशरीरः । (गो०)

ततो [1]भुसुण्ठीर्मुसलानि सर्वे
रक्षोगणास्ते जगृहुर्गदाश्च ॥ ३९ ॥

इतना होहल्ला करने पर भी जब वह महाकाय न जागा, तब उन सब ने मिल कर मुगदर, मूसल और गदाएँ उठायीं ॥ ३९ ॥

तं शैलशृङ्गैर्मुसलैर्गदाभि-
र्वृक्षैस्तलैर्मुद्गरमुष्टिभिश्च ।
सुखप्रसुप्तं भुवि कुम्भकर्णं
रक्षांस्युदग्राणि तदा निजघ्नुः ॥ ४० ॥

और पर्वतशिखरों, मूसलों, गदाओं, वृत्तों, थप्पड़ों, मुगदरों और मूँकों से, भूमि पर सुख से सोते हुए कुम्भकर्ण की छाती में वे राक्षस प्रहार करने लगे ॥ ४० ॥

तस्य निःश्वासवातेन कुम्भकर्णस्य रक्षसः ।
राक्षसा बलवन्तोऽपि स्थातुं नाशक्नुवन्पुरः ॥ ४१ ॥

उस समय कुम्भकर्ण की साँस ऐसे ज़ोर से चल रही थी कि, उसकी साँस के पवन के कारण वे राक्षस बलवान होने पर भी उसके सामने खड़े भी नहीं रह सकते थे ॥ ४१ ॥

ततः [2]परिहिता गाढं राक्षसा भीमविक्रमाः ।
मृदङ्गपणवान्भेरीः शङ्खकुम्भगणांस्तदा ॥ ४२ ॥
दशराक्षससाहस्रा युगपत्पर्यवादयन् ।
नीलाञ्जनचयाकारास्ते तु तं प्रत्यबोधयन् ॥ ४३ ॥

---

१ भुसुण्ठी—मुद्गरविशेषः । (गो०) २ परिहिताः—दृढीकृतपरिधानाः । (गो०)

इतने पर भी जब कुम्भकर्ण न जागा, तब वे लोग कमर कस कर तैयार हुए और मृदङ्ग, ढोल, तुरही, शङ्ख आदि बाजे ले, कुम्भकर्ण को जगाने के लिये, काजल के ढेर के समान काले दस हज़ार राक्षसों ने मिल कर, एक साथ बजाये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अभिघ्नन्तो नदन्तश्च नैव संविविदे तु सः ।
यदा चैनं न शेकुस्ते प्रतिबोधयितुं तदा ॥ ४४ ॥

फिर वे राक्षस बाजे बजा कर अनेक प्रकार के प्रहार भी करते जाते थे। वे केवल बाजे ही नहीं बजाते थे, बल्कि गर्ज भी रहे थे। किन्तु जब वे इन उपायों से भी उसको न जगा सके ॥ ४४ ॥

ततो गुरुतरं यत्नं दारुणं समुपाक्रमन् ।
अश्वानुष्ट्रान्खरान्नागाञ्जघ्नुर्दण्डकशाङ्कुशैः ॥ ४५ ॥

तब उन्होंने इससे भी अधिक कठोर और गुरुतर उपायों को काम में लाने का विचार निश्चय किया। वह यह कि, कुम्भकर्ण को रुंधवाने के लिये वे घोड़ों, ऊँटों, गधों, हाथियों को डंडों, चाबुकों और अंकुशों से मार मार कर उसके ऊपर चलाने लगे ॥ ४५ ॥

भेरीशङ्खमृदङ्गांश्च सर्वप्राणैरवादयन् ।
निजघ्नुश्चास्य गात्राणि महाकाष्ठकटङ्करैः ॥ ४६ ॥

फिर वे सब एकत्र हो भेरियों, शङ्खों और मृदङ्गों को अपना समस्त बल लगा बजाने लगे। साथ ही वे कुम्भकर्ण के शरीर पर, बड़े भारी लट्ठ, जिनमें लोहे की काँटेदार कीलें जड़ी थीं, मारने लगे ॥ ४६ ॥

मुद्गरैर्मुसलैश्चैव सर्वप्राणसमुद्यतैः ।
तेन शब्देन महता लङ्का समभिपूरिता ॥ ४७ ॥

सपर्वतवना सर्वा सोऽपि नैव प्रबुध्यते ।
ततः सहस्रं भेरीणां युगपत्समहन्यत ॥ ४८ ॥

अकेले लट्ठ ही नहीं—बल्कि मुगदरों और मूसलों से भी अपना सारा बल लगा वे उसके शरीर को पीटने लगे । बाजों के बजने, राक्षसों के चिल्लाने और लट्ठ, मूसल आदि के प्रहार से उत्पन्न हुए शब्द से, पर्वतों तथा समस्त वनों सहित लङ्का गूँज उठी, किन्तु कुम्भकर्ण की नींद तो भी न टूटी । तब एक साथ एक हज़ार नगाड़े ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

मृष्टकाञ्चनकोणानामसक्तानां समन्ततः ।
एवमप्यतिनिद्रस्तु यदा नैव प्रबुध्यते ॥ ४९ ॥
शापस्य वशमापन्नस्ततः क्रुद्धा निशाचराः ।
महाक्रोधसमाविष्टाः सर्वे भीमपराक्रमाः ॥ ५० ॥

सोने की चोबों से उसके चारों ओर बजाये गये । जब कि, कुम्भकर्ण शापग्रस्त होने के कारण इन सब उपायों के कर चुकने पर भी न जागा, तब वे सब राक्षस क्रुद्ध हुए । तदनन्तर अत्यन्त क्रोध में भर वे समस्त भयङ्कर पराक्रमी राक्षस ॥ ४९ ॥ ५० ॥

तद्रक्षो बोधयिष्यन्तश्चक्रुरन्ये पराक्रमम् ।
अन्ये भेरीः समाजघ्नुरन्ये चक्रुर्महास्वनम् ॥ ५१ ॥

कुम्भकर्ण को जगाने के लिये अपना अपना पराक्रम दिखलाने लगे । कोई कोई तो नगाड़े बजाने लगे और कोई कोई बड़े ज़ोर से चिल्लाने लगे ॥ ५१ ॥

केशानन्ये प्रलुलुपुः कर्णावन्ये दशन्ति च ।
उदकुम्भशतान्यन्ये समसिञ्चन्त कर्णयोः ॥ ५२ ॥

किसी किसी ने कुम्भकर्ण के सिर के बाल पकड़ कर खींचे, किसी किसी ने दांतों से उसके कान काटे। किसी किसी ने सैकड़ों पानी से भरे घड़े उसके कानों में उड़ेल दिये ॥ ५२ ॥

न कुम्भकर्णः पस्पन्दे महानिद्रावशं गतः।
अन्ये च बलिनस्तस्य कूटमुद्गरपाणयः ॥ ५३ ॥

तिस पर भी नींद में मस्त कुम्भकर्ण टस से मस न हुआ। अन्य बलवान राक्षसों ने हाथों में कांटे जड़े मुगदर उठा लिये ॥५३॥

मूर्ध्नि वक्षसि गात्रेषु पातयन्कूटमुद्गरान्।
रज्जुबन्धनबद्धाभिः शतघ्नीभिश्च सर्वतः ॥ ५४ ॥

और उन कांटेदार मुगदरों से वे कुम्भकर्ण के सिर, छाती तथा उसके शरीर के अन्य अवयवों पर प्रहार करने लगे। रस्सों से बांध कर शतघ्नियों से उसके समस्त ॥ ५४ ॥

वध्यमानो महाकायो न प्राबुध्यत राक्षसः।
वारणानां सहस्रं तु शरीरेऽस्य प्रधावितम्।
कुम्भकर्णस्ततो बुद्धः स्पर्शं परमबुध्यत ॥ ५५ ॥

शरीर को पीटने पर भी, वह महाकाय राक्षस न जागा। अन्त में जब राक्षसों ने उसके ऊपर हज़ारों हाथियों को दौड़ाया, तब उसको इतना ज्ञान पड़ा कि, उसके शरीर को कोई कीट पतंग छू रहा है। (अस्तु राम राम कर के किसी प्रकार कुम्भकर्ण जागा) ॥ ५५ ॥

स पात्यमानैर्गिरिशृङ्गवृक्षै-
रचिन्तयन्स्तान्विपुलान्प्रहारान्।

निद्राक्षयात्क्षुद्भयपीडितश्च
विजृम्भमाणः सहसोत्पपात ॥ ५६ ॥

उसने उन पर्वतशृङ्गों और वृक्षों के विपुल प्रहार की कुछ भी परवाह न की। किन्तु नींद टूटने पर भूख के डर से दुःखी हो वह जँभाई लेता हुआ सहसा उठ बैठा ॥ ५६ ॥

स नागभोगाचलशृङ्गकल्पौ
विक्षिप्य बाहू गिरिशृङ्गसारौ।
विवृत्य वक्त्रं बडवामुखाभं
निशाचरोऽसौ विकृतं जजृम्भे ॥ ५७ ॥

कुम्भकर्ण नागभोग (फन फैलाये हुए सर्प) की तरह लंबी और पर्वतशिखर की तरह कठोर और बलिष्ठ भुजाओं को फैला कर, बड़वानल की तरह भयङ्कर मुख को फैला कर जँभाई लेने लगा ॥ ५७ ॥

तस्य जाजृम्भमाणस्य वक्त्रं पातालसन्निभम्।
ददृशे मेरुशृङ्गाग्रे दिवाकर इवोदितः ॥ ५८ ॥

जँभाई लेने के समय उसका मुख पाताल की तरह गहरा और मुखमण्डल, सुमेरुपर्वत पर उदय हुए सूर्य की तरह प्रकाशमान देख पड़ा ॥ ५८ ॥

स जृम्भमाणोऽतिबलः प्रतिबुद्धो निशाचरः।
निःश्वासश्चास्य सञ्जज्ञे पर्वतादिव मारुतः ॥ ५९ ॥

वह अति बलवान निशाचर जब जँभाई लेता हुआ जागा, तब उसके मुख से वैसे ही हवा निकली; जैसे पर्वत से निकल कर आँधी चलती है ॥ ५९ ॥

रूपमुत्तिष्ठतस्तस्य कुम्भकर्णस्य तद्बभौ ।
युगान्ते सर्वभूतानि कालस्येव दिधक्षतः ॥ ६० ॥

जब कुम्भकर्ण जाग कर उठा, तब उसका रूप संसार को भक्षण करने वाले प्रलयकालीन काल की तरह, जान पड़ने लगा ॥ ६० ॥

तस्य दीप्ताग्निसदृशे विद्युत्सदृशवर्चसी ।
ददृशाते महानेत्रे दीप्ताविव महाग्रहौ ॥ ६१ ॥

दहकती हुई आग की तरह, अथवा बिजुली की तरह चमकीले उसके दोनों नेत्र ऐसे जान पड़े, मानों देदीप्यमान दो नक्षत्र हों ॥६१॥

ततस्त्वदर्शयन्सर्वान्भक्ष्यांश्च विविधान्बहून् ।
वराहान्महिषांश्चैव स बभक्ष महाबलः ॥ ६२ ॥

उन राक्षसों ने उसे सब सुअर भैंसे आदि अनेक प्रकार के बहुत से खाद्य पदार्थ दिखलाये । तब वह महाबली उन सब को खाने लगा ॥ ६२ ॥

अदन्बुभुक्षितो मांसं शोणितं तृषितः पिबन् ।
मेदः कुम्भांश्च मद्यं च पपौ शक्ररिपुस्तदा ॥ ६३ ॥

भूख मिटाने को उसने माँस खाया और प्यास बुझाने के लिये उसने रक्त पिया । तदनन्तर इन्द्र के शत्रु कुम्भकर्ण ने चर्बी और मद्य से भरे घड़े उठा उठा कर पिये ॥ ६३ ॥

ततस्तृप्त इति ज्ञात्वा समुत्पेतुर्निशाचराः ।
शिरोभिश्च प्रणम्यैनं सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ६४ ॥

कुम्भकर्ण के डर के मारे जो राक्षस अभी तक छिपे हुए थे उन्होंने जब जाना कि, उसका पेट भर गया तब वे निकल कर उसके सामने आये। फिर उसको सीस झुका प्रणाम कर उसे घेर कर खड़े हो गये॥ ६४॥

निद्राविशदनेत्रस्तु कलुषीकृतलोचनः।
चारयन्सर्वतो दृष्टिं तान्ददर्श निशाचरान्॥ ६५॥

निद्रावश होने के कारण उसकी आँखें कुछ कुछ खुली थीं और लाल हो रही थीं, उसने चारों ओर दृष्टि फैला कर उन राक्षसों को देखा॥ ६५॥

स सर्वान्सान्त्वयामास नैर्ऋतान्नैर्ऋतर्षभः।
बोधनाद्विस्मितश्चापि राक्षसानिदमब्रवीत्॥ ६६॥

राक्षसश्रेष्ठ कुम्भकर्ण ने उन सब राक्षसों को धीरज बँधाया। उसे असमय अपने जगाये जाने का आश्चर्य हुआ, अतः उसने उन राक्षसों से कहा॥ ६६॥

किमर्थमहमादृत्य भवद्भिः प्रतिबोधितः।
कच्चित्सुकुशलं राज्ञो भयवानेष वा न किम्॥ ६७॥

हे राक्षसों! तुम लोगों ने मुझे बड़े आदर के साथ क्यों जगाया है। राक्षसराज रावण तो प्रसन्न है? कहीं कोई भय तो आकर उपस्थित नहीं हुआ?॥ ६७॥

अथवा ध्रुवमन्येभ्यो भयं परमुपस्थितम्।
यदर्थमेवं त्वरितैर्भवद्भिः प्रतिबोधितः॥ ६८॥

अथवा इस प्रश्न की आवश्यकता ही नहीं, क्योंकि जब आप लोगों ने मुझको इतनी जल्दी जगा दिया है, तब अवश्य ही कोई भय की बात हुई है॥ ६८॥

अद्य राक्षसराजस्य भयमुत्पाटयाम्यहम् ।
पातयिष्ये महेन्द्रं वा शातयिष्ये तथाऽनलम् ॥ ६९ ॥

मैं आज ही राक्षसराज के भय को उखाड़ कर फेंक दूँगा। यदि इन्द्र होगा तो उसे नष्ट कर डालूँगा और अग्नि होगा तो उसे ठंडा कर दूँगा। अथवा महेन्द्राचल भी होगा तो उसे धूल में मिला दूँगा और अग्नि होगा तो उसे बुझा दूँगा ॥ ६९ ॥

न ह्यल्पकारणे सुप्तं बोधयिष्यति मां गुरुः ।
तदाख्यातार्थतत्त्वेन मत्प्रबोधनकारणम् ॥ ७० ॥

मेरा बड़ा पूज्य भाई मामूली बात के लिये मुझे कभी नहीं जगाता। सो तुम मुझ जैसे वीर के जगाने का कारण ठीक ठीक बतलाओ ॥ ७० ॥

एवं ब्रुवाणं संरब्धं कुम्भकर्णं महाबलम् ।
यूपाक्षः सचिवो राज्ञः कृताञ्जलिरुवाच ह ॥ ७१ ॥

महाबली कुम्भकर्ण ने जब इस प्रकार क्रोध में भर कर कहा, तब रावण के दीवान यूपाक्ष ने हाथ जोड़ कर कहा—॥ ७१ ॥

न नो दैवकृतं किञ्चिद्भयमस्ति कदाचन ।
मानुषान्नो भयं राजंस्तुमुलं सम्प्रबाधते ॥ ७२ ॥

हे राजन् ! हम लोगों को देवताओं का तो कभी रत्ती भर भी भय नहीं है। किन्तु इस समय मनुष्यों का बड़ा भारी भय उपस्थित हुआ है ॥ ७२ ॥

न दैत्यदानवेभ्यो वा भयमस्ति हि तादृशम् ।
यादृशं मानुषं राजन्भयमस्मानुपस्थितम् ॥ ७३ ॥

हे राजन्! हम लोगों को इस समय जैसा भय मनुष्यों से उत्पन्न हुआ है, वैसा तो देवता और दानवों से भी कभी नहीं हुआ था ॥ ७३ ॥

वानरैः पर्वताकारैर्लङ्केयं परिवारिता।
सीताहरणसन्तप्ताद्रामान्नस्तुमुलं भयम् ॥ ७४ ॥

सीता के हरण से सन्तप्त राम, हम लोगों के इस बड़े भारी भय के मुख्य कारण हैं। उन्हींकी सेना के पर्वताकार वानरों ने लङ्कापुरी को घेर लिया है ॥ ७४ ॥

एकेन वानरेणेयं पूर्वं दग्धा महापुरी।
कुमारो निहतश्चाक्षः सानुयात्रः सकुञ्जरः ॥ ७५ ॥

पहिले एक ही वानर ने आकर लङ्का जलाई थी और अपने साथियों तथा हाथियों की सैन्य सहित राजकुमार अक्ष उसके हाथ से मारा गया था। (अब तो उस जैसे असंख्य वानर लङ्का को घेरे हुए हैं) ॥ ७५ ॥

स्वयं रक्षोधिपश्चापि पौलस्त्यो देवकण्टकः।
[1]मृतेति संयुगे मुक्तो रामेणादित्यतेजसा ॥ ७६ ॥

औरों की बात क्या कहूँ—देवताओं के शत्रु, स्वयं पुलस्त्यनन्दन राक्षसराज रावण भी सूर्य के समान तेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी के सामने से मरते मरते बच कर भाग आये हैं, सो भी उस समय जब राम ने दया कर उनसे कहा—"अरे मुर्दे! भाग जा। इस समय मैं तुझे छोड़े देता हूँ" ॥ ७६ ॥

---

१ मृतेति—हे मृतेत्युक्त्वा। (गो०)

यन्न देवैः कृतो राजा नापि दैत्यैर्न दानवैः ।
कृतः स इह रामेण विमुक्तः प्राणसंशयात् ॥ ७७ ॥

जैसा राक्षसराज का अपमान आज तक किसी देवता, दैत्य अथवा दानव के द्वारा नहीं हुआ था वैसा अपमान इस राम ने उनका किया। अर्थात् रावण को मारते मारते छोड़ दिया ॥ ७७ ॥

स यूपाक्षवचः श्रुत्वा भ्रातुर्युधि पराजयम् ।
कुम्भकर्णो विवृत्ताक्षो यूपाक्षमिदमब्रवीत् ॥ ७८ ॥

अपने भाई रावण की हार का इस प्रकार का वृत्तान्त यूपाक्ष के मुख से सुन, कुम्भकर्ण ने त्योरी बदल कर, यूपाक्ष से यह कहा—॥ ७८ ॥

सर्वमद्यैव यूपाक्ष हरिसैन्यं सलक्ष्मणम् ।
राघवं च रणे हत्वा पश्चाद्द्रक्ष्यामि रावणम् ॥ ७९ ॥

हे यूपाक्ष! मैं आज युद्धक्षेत्र में, श्रीरामचन्द्र को तथा लक्ष्मण सहित समस्त वानरी सेना को पहिले मार कर, पीछे रावण से भेंट करूँगा ॥ ७९ ॥

राक्षसांस्तर्पयिष्यामि हरीणां मांसशोणितैः ।
रामलक्ष्मणयोश्चापि स्वयं पास्यामि शोणितम् ॥ ८० ॥

मैं वानरों के मांस और रुधिर से राक्षसों को अघा दूँगा और श्रीरामचन्द्र एवं लक्ष्मण का रुधिर मैं स्वयं पीऊँगा ॥ ८० ॥

तत्तस्य वाक्यं ब्रुवतो निशम्य
सगर्वितं रोषविवृद्धदोषम् ।
महोदरो नैऋतयोधमुख्यः
कृताञ्जलिर्वाक्यमिदं बभाषे ॥ ८१ ॥

कुम्भकर्ण के इस प्रकार गर्वयुक्त और क्रोधपूर्ण वचन सुन कर, राक्षस योद्धाओं में प्रधान योद्धा महोदर हाथ जोड़ कर यह बोला ॥ ८१ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा गुणदोषौ विमृश्य च ।
पश्चादपि महाबाहो शत्रून्युधि विजेष्यसि ॥ ८२ ॥

हे महाबाहो ! पहिले आप रावण की बातें सुन लें और उनके कथन में जो गुण अथवा दोष हों उन पर भलीभाँति विचार कर लें, तदनन्तर शत्रु से लड़ कर उसे पराजित करें ॥ ८२ ॥

महोदरवचः श्रुत्वा राक्षसैः परिवारितः ।
कुम्भकर्णो महातेजाः [1]सम्प्रतस्थे महाबलः ॥ ८३ ॥

महोदर के इन वचनों को सुन महातेजस्वी एवं महाबली कुम्भकर्ण, उन राक्षसों को साथ लिये हुए वहाँ से चलने को तैयार हुआ ॥ ८३ ॥

सुप्तमुत्थाप्य भीमाक्षं भीमरूपपराक्रमम् ।
राक्षसास्त्वरिता जग्मुर्दशग्रीवनिवेशनम् ॥ ८४ ॥

उस भयङ्कर नेत्रों वाले एवं भयङ्कर रूप वाले तथा भीम पराक्रम वाले कुम्भकर्ण को सोते से जगा, उनमें से कुछ राक्षस तुरन्त रावण के भवन में गये ॥ ८४ ॥

ततो गत्वा दशग्रीवमासीनं परमासने ।
ऊचुर्बद्धाञ्जलिपुटाः सर्व एव निशाचराः ॥ ८५ ॥

वहाँ पहुँच कर बढ़िया सिंहासन पर बैठे हुए रावण से वे सब राक्षस हाथ जोड़ कर कहने लगे ॥ ८५ ॥

---

१ सम्प्रतस्थे—प्रस्थातुमुपचक्रमे । (गो०)

प्रबुद्धः कुम्भकर्णोऽयं भ्राता ते राक्षसर्षभ ।
कथं तत्रैव निर्यातु द्रक्ष्यस्येनमिहागतम् ॥ ८६ ॥

हे राक्षसश्रेष्ठ ! आपके भाई कुम्भकर्ण जाग गये। क्या वे सीधे उधर के उधर ही समरभूमि में जाँय अथवा आप पहिले उनसे यहाँ मिलना चाहते हैं ॥ ८६ ॥

रावणस्त्वब्रवीद्धृष्टो राक्षसांस्तानुपस्थितान् ।
द्रष्टुमेनमिहेच्छामि यथान्यायं च पूज्यताम् ॥ ८७ ॥

रावण ने उन आये हुए राक्षसों से प्रसन्न होकर कहा। मैं कुम्भकर्ण से यहीं मिलना चाहता हूँ—सो तुम लोग बड़े आदर के साथ उन्हें मेरे पास यहाँ लिवा लाओ ॥ ८७ ॥

तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे पुनरागम्य राक्षसाः ।
कुम्भकर्णमिदं वाक्यमूचू रावणचोदिताः ॥ ८८ ॥

रावण से "बहुत अच्छा" कह और उसके आज्ञानुसार वे सब राक्षस कुम्भकर्ण के पास लौट गये और कुम्भकर्ण से यह बोले ॥ ८८ ॥

द्रष्टुं त्वां काङ्क्षते राजा सर्वराक्षसपुङ्गवः ।
गमने क्रियतां बुद्धिर्भ्रातरं सम्प्रहर्षय ॥ ८९ ॥

हे समस्त राक्षसों में श्रेष्ठ ! आपसे राक्षसराज रावण मिलना चाहते हैं सो आप अब वहाँ चल कर अपने बड़े भाई को हर्षित करें ॥ ८९ ॥

कुम्भकर्णस्तु दुर्धर्षो भ्रातुराज्ञाय शासनम् ।
तथेत्युक्त्वा महाबाहुः शयनादुत्पपात ह ॥ ९० ॥

महाबली एवं दुर्धर्ष कुम्भकर्ण, भाई की आज्ञा सुन और "बहुत अच्छा" कह बिस्तर से उठ बैठा ॥ ९० ॥

प्रक्षाल्य वदनं हृष्टः स्नातः परमभूषितः ।
पिपासुस्त्वरयामास पानं [1]बलसमीरणम् ॥ ९१ ॥

उसने मुँह धोकर, फिर स्नान किये। तदनन्तर वस्त्राभूषण से भूषित हो, वह परम प्रसन्न हुआ और उसने उन राक्षसों से बलवर्धक मदिरा तुरन्त देने के लिये कहा ॥ ९१ ॥

ततस्ते त्वरितास्तस्य राक्षसा रावणाज्ञया ।
मद्यकुम्भांश्च विविधान्क्षिप्रमेवोपहारयन् ॥ ९२ ॥

तुरन्त लाने के लिये कहे जाने पर, उन राक्षसों ने रावण की आज्ञा से तुरन्त विविध प्रकार की मदिराओं के घड़े लाकर कुम्भकर्ण के सामने रख दिये ॥ ९२ ॥

पीत्वा घटसहस्रे द्वे गमनायोपचक्रमे ।
ईषत्समुत्कटो मत्तस्तेजोबलसमन्वितः ॥ ९३ ॥

कुम्भकर्ण दो हज़ार शराब से भरे घड़ों को पी कर, चलने को तैयार हुआ। अभी उसे उस मद्यपान से थोड़ा ही नशा हुआ था; किन्तु वह तो स्वभाव ही से मतवाला तथा तेजस्वी एवं बलवान था ॥९३॥

कुम्भकर्णो बभौ हृष्टः कालान्तकयमोपमः ।
भ्रातुः स भवनं गच्छन्रक्षोगणसमन्वितः ।
कुम्भकर्णः पदन्यासैरकम्पयत मेदिनीम् ॥ ९४ ॥

---

१ बलसमीरणं—बलवर्धनं । (गो०)

कुम्भकर्ण हर्षित हो कालान्तक यम की तरह देख पड़ने लगा। जब वह राक्षसों को साथ ले राज्यभवन को रवाना हुआ, तब उसके पैर की धमक से पृथिवी काँप सी रही थी ॥ ६४ ॥

स राजमार्गं [1]वपुषा प्रकाशयन्
सहस्ररश्मिर्धरणीमिवांशुभिः ।
जगाम तत्राञ्जलिमालया वृतः
शतक्रतुर्गेहमिव स्वयंभुवः ॥ ९५ ॥

वह चलते चलते अपनी कान्ति से राजमार्ग को वैसे ही प्रकाशित कर रहा था, जैसे सूर्य अपनी किरणों से पृथिवी को प्रकाशमान करते हैं। हाथ जोड़े हुए नगरवासी उसको चारों ओर से घेरे हुए उसके साथ चले जाते थे। वह राजभवन की ओर वैसे ही जा रहा था, जैसे ब्रह्मा जी इन्द्रभवन की ओर जाते हैं ॥ ६५ ॥

तं राजमार्गस्थममित्रघातिनं
वनौकसस्ते सहसा बहिः स्थिताः ।
दृष्ट्वाप्रमेयं गिरिश्रृङ्गकल्पं
वितत्रसुस्ते हरियूथपालाः ॥ ९६ ॥

जब वह पर्वतशृङ्ग के समान लंबा, तगड़ा, शत्रुहन्ता, अतुलित वीर कुम्भकर्ण राजमार्ग पर चला जाता था, तब लङ्का के बाहिर ठहरे हुए वानर अपने नाना यूथपतियों सहित उसको देखते ही भयभीत हो गये ॥ ६६ ॥

---

१ वपुषा—देहकान्त्या। (रा०)

केचिच्छरण्यं शरणं स्म रामं
व्रजन्ति केचिद्व्यथिताः पतन्ति ।
केचिद्दिशः स्म व्यथिताः प्रयान्ति
केचिद्भयार्ता भुवि शेरते स्म ॥ ९७ ॥

(कुम्भकर्ण को देखते ही वानरों की मारे डर के बड़ी बुरी दशा हो गयी) कोई तो सर्वलोकशरण्य श्रीरामचन्द्र जी की शरण में गये। कोई समरभूमि छोड़ भाग खड़े हुए, कोई व्यथित हो गिर पड़े, कोई व्यथित हो इधर उधर भाग गये और कोई भयभीत हो पृथिवी पर लेट गये ॥ ९७ ॥

तमद्रिशृङ्गप्रतिमं किरीटिनं
स्पृशन्तमादित्यमिवात्मतेजसा ।
वनौकसः प्रेक्ष्य विवृद्धमद्भुतं
भयार्दिता दुद्रुविरे ततस्ततः ॥ ९८ ॥

इति षष्टितमः सर्गः ॥

उस पर्वतशृङ्ग के समान लंबे, मुकुटधारी, शरीर की कान्ति से सूर्य की बराबरी करने वाले, उस विशाल वपुधारी अद्भुत रूप वाले कुम्भकर्ण को देख, वानरगण बहुत ही डरे और डर के मारे इधर उधर भाग निकले ॥ ९८ ॥

युद्धकाण्ड का साठवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

एकषष्टितमः सर्गः

—※—

ततो रामो महातेजा धनुरादाय वीर्यवान् ।
किरीटिनं महाकायं कुम्भकर्णं ददर्श ह ॥ १ ॥

तेजस्वी, बलवान श्रीरामचन्द्र जी ने मुकुटधारी और विशाल शरीरधारी कुम्भकर्ण को देखा और हाथ में धनुष ले लिया ॥ १ ॥

तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं पर्वताकारदर्शनम् ।
क्रममाणमिवाकाशं पुरा नारायणं प्रभुम् ॥ २ ॥

उस समय वह पर्वताकार राक्षसश्रेष्ठ कुम्भकर्ण ऐसा दिखलाई पड़ता था, जैसे आकाश को नापते समय पूर्वकाल में वामनावतार धारी भगवान् विष्णु देख पड़े थे ॥ २ ॥

सतोयाम्बुदसङ्काशं काञ्चनाङ्गदभूषणम् ।
दृष्ट्वा पुनः प्रदुद्राव वानराणां महाचमूः ॥ ३ ॥

सजल जलद की तरह विशाल शरीरधारी एवं सुवर्ण के बाजूबन्द पहिने हुए कुम्भकर्ण को पुनः देख, वानरों की बड़ी सेना भाग खड़ी हुई ॥ ३ ॥

विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा वर्धमानं च राक्षसम् ।
सविस्मयमिदं रामो विभीषणमुवाच ह ॥ ४ ॥

इच्छानुसार अपने शरीर को बढ़ाते हुए कुम्भकर्ण को देख और अपनी सेना को भागते देख, श्रीरामचन्द्र जी विस्मित हुए और विभीषण से बोले ॥ ४ ॥

कोऽसौ पर्वतसङ्काशः किरीटी [1]हरिलोचनः ।
लङ्कायां दृश्यते वीर सविद्युदिव तोयदः ॥ ५ ॥

लङ्का के भीतर पर्वत के समान लंबा, मुकुटधारी, पीले नेत्रों वाला और दामिनीयुक्त मेघ की तरह यह कौन वीर देख पड़ता है? ॥ ५ ॥

पृथिव्याः केतुभूतोऽसौ महानेकोऽत्र दृश्यते ।
यं दृष्ट्वा वानराः सर्वे विद्रवन्ति ततस्ततः ॥ ६ ॥

यह अकेला ही पृथिवी की पताका की तरह जान पड़ता है, क्योंकि इसको देख कर समस्त वानर डर कर चारों ओर भाग रहे हैं ॥ ६ ॥

आचक्ष्व मे महान्कोऽसौ रक्षो वा यदि वाऽसुरः ।
न मयैवंविधं भूतं दृष्टपूर्वं कदाचन ॥ ७ ॥

यह विशाल शरीरधारी कोई राक्षस है अथवा असुर, मैंने तो इस प्रकार का जीव इसके पूर्व कभी देखा ही नहीं ॥ ७ ॥

स पृष्टो राजपुत्रेण रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
विभीषणो महाप्राज्ञः काकुत्स्थमिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥

जब अक्लिष्टकर्मा राजपुत्र रघुनाथ जी ने विभीषण से इस प्रकार पूँछा, तब महाबुद्धिमान् विभीषण ने श्रीरामचन्द्र जी से कहा ॥८॥

येन वैवस्वतो युद्धे वासवश्च पराजितः ।
सैष विश्रवसः पुत्रः कुम्भकर्णः प्रतापवान् ।
अस्य [2]प्रमाणात्सदृशो राक्षसोऽन्यो न विद्यते ॥ ९ ॥

---

१ हरिलोचनः—कपिलेक्षणः । (गो०) २ प्रमाणं—स्थौल्यौन्नत्ये । (गो०)

जिसने युद्ध में यमराज और इन्द्र को भी परास्त कर दिया, वही विश्रवा मुनि का पुत्र यह प्रतापी कुम्भकर्ण है। इसके बराबर लंबा और मोटा दूसरा कोई राक्षस नहीं है ॥ ९ ॥

एतेन देवा युधि दानवाश्च
यक्षा भुजङ्गा पिशिताशनाश्च ।
गन्धर्वविद्याधरकिन्नराश्च
सहस्रशो राघव सम्प्रभग्नाः ॥ १० ॥

हे राघव! इसने युद्ध में कितनी ही बार हज़ारों देवताओं, मांसभक्षी दानवों, यक्षों, भुजङ्गों, गन्धर्वों, विद्याधरों और किन्नरों को पीस डाला है ॥ १० ॥

शूलपाणिं विरूपाक्षं कुम्भकर्णं महाबलम् ।
हन्तुं न शेकुस्त्रिदशाः कालोऽयमिति मोहिताः ॥ ११॥

जब यह महाबली कुम्भकर्ण हाथ में शूल ले आँखें बदलता है या टेढ़ी करता है, तब इसे देवता भी नहीं मार सकते, बल्कि इसको काल की तरह समझ वे सब मोहित अर्थात् मूर्च्छित हो जाते हैं ॥ ११ ॥

प्रकृत्या ह्येष तेजस्वी कुम्भकर्णो महाबलः ।
अन्येषां राक्षसेन्द्राणां वरदानकृतं बलम् ॥ १२ ॥

दूसरे राक्षसों को तो वरदान का बल है, किन्तु यह महाबली कुम्भकर्ण तो स्वभाव ही से तेजस्वी है ॥ १२ ॥

एतेन जातमात्रेण क्षुधार्तेन महात्मना ।
भक्षितानि सहस्राणि सत्त्वानां सुबहून्यपि ॥ १३ ॥

इस महाबलवान ने उत्पन्न होते ही भूख से विकल हो, बहुत से हज़ारों जीवों को खा डाला था ॥ १३ ॥

तेषु सम्भक्ष्यमाणेषु प्रजा भयनिपीडिताः ।
यान्तिस्म शरणं शक्रं तमप्यर्थं न्यवेदयन् ॥ १४ ॥

उसके इस प्रजाभक्षण कृत्य से प्रजा बहुत डरी और विकल हुई। फिर वह इन्द्र के पास गयी और सारा वृत्तान्त उनसे कहा ॥ १४ ॥

स कुम्भकर्णं कुपितो महेन्द्रो
जघान वज्रेण शितेन वज्री ।
स शक्रवज्राभिहतो महात्मा
चचाल कोपाच्च भृशं ननाद ॥ १५ ॥

तब वज्रधारी इन्द्र ने कुपित हो अपना पैना वज्र कुम्भकर्ण पर चलाया। यह बलवान वज्र लगने पर कुछ विचलित तो हुआ किन्तु क्रोध में भर बड़े ज़ोर से गर्जा ॥ १५ ॥

तस्य नानद्यमानस्य कुम्भकर्णस्य धीमतः ।
श्रुत्वाऽतिनादं वित्रस्ता भूयो भूमिर्वितत्रसे ॥ १६ ॥

तब बुद्धिमान कुम्भकर्ण के गर्जने से और उसे सुन, प्रजा और भी अधिक भयभीत हुई ॥ १६ ॥

तत्र कोपान्महेन्द्रस्य कुम्भकर्णो महाबलः ।
विकृष्यैरावताद्दन्तं जघानोरसि वासवम् ॥ १७ ॥

उधर महाबली कुम्भकर्ण ने कुपित हो इन्द्र के ऐरावत हाथी का दांत उखाड़, इन्द्र ही की छाती में मारा ॥ १७ ॥

कुम्भकर्णप्रहारार्तो [1]विजज्वाल स वासवः ।
ततो विषेदुः सहसा देवब्रह्मर्षिदानवाः ॥ १८ ॥

कुम्भकर्ण के प्रहार से पीड़ित हो इन्द्र अत्यन्त कुपित हुए। इन्द्र को घायल देख अन्य देवता, ब्रह्मर्षि और दानव सब बहुत दुःखी हुए ॥ १८ ॥

प्रजाभिः सह शक्रश्च ययौ स्थानं स्वयंभुवः ।
कुम्भकर्णस्य दौरात्म्यं शशंसुस्ते प्रजापतेः ॥ १९ ॥

और इन्द्र सहित समस्त प्रजा को साथ ले, वे ब्रह्मलोक में गये और वहाँ जा कुम्भकर्ण की सारी दुष्टता ब्रह्मा जी को सुनाई ॥१९॥

प्रजानां भक्षणं चापि देवानां चापि धर्षणम् ।
आश्रमध्वंसनं चापि परस्त्रीहरणं भृशम् ॥ २० ॥

कुम्भकर्ण द्वारा प्रजाओं का भक्षण किया जाना, देवताओं का सताया जाना, तपस्वियों के आश्रमों का उजाड़ा जाना और परस्त्री-हरण आदि कुम्भकर्ण की समस्त दुष्टताएँ कहीं ॥ २० ॥

एवं प्रजा यदि त्वेष भक्षयिष्यति नित्यशः ।
अचिरेणैव कालेन शून्यो लोको भविष्यति ॥ २१ ॥

और अन्त में यह भी कहा कि, यदि वह इसी तरह नित्य प्रजाओं का भक्षण करता रहा तो थोड़े ही दिनों में संसार सूना हो जायगा ॥ २१ ॥

वासवस्य वचः श्रुत्वा सर्वलोकपितामहः ।
रक्षांस्यावाहयामास कुम्भकर्णं ददर्श ह ॥ २२ ॥

---

[1] विजज्वाल—चुकोपेति यावत् । (गो०)

समस्त लोकों के पितामह ब्रह्मा जी ने, इन्द्र के ये वचन सुन, राक्षसों को बुलवा कर, कुम्भकर्ण को देखा ॥ २२ ॥

कुम्भकर्णं समीक्ष्यैव वितत्रास प्रजापतिः ।
दृष्ट्वा [1]विश्वास्य चैवेदं स्वयंभूरिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥

कुम्भकर्ण को देख ब्रह्मा बाबा भी डर गये। फिर कुम्भकर्ण को देख और उसे लुभा कर ब्रह्मा जी ने उससे यह कहा ॥ २३ ॥

ध्रुवं लोकविनाशाय पौलस्त्येनासि निर्मितः ।
तस्मात्त्वमद्यप्रभृति मृतकल्पः शयिष्यसे ॥ २४ ॥

हे कुम्भकर्ण ! निश्चय ही संसार का नाश करने के लिये ही विश्रवा मुनि ने तुझे उत्पन्न किया है। अतएव आज से मुर्दे की तरह पड़ा सोया करेगा ॥ २४ ॥

ब्रह्मशापाभिभूतोऽथ निपपाताग्रतः प्रभोः ।
ततः परमसम्भ्रान्तो रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ २५ ॥

इस प्रकार ब्रह्मा का शाप होते ही वह उन्हींके सामने गिर पड़ा। यह देख रावण ने घबड़ा कर कहा ॥ २५ ॥

विवृद्ध [2]काञ्चनो वृक्षः [3]फलकाले निकृत्यते ।
न नप्तारं स्वकं न्याय्यं शप्तुमेवं प्रजापते ॥ २६ ॥

हे प्रजापते ! यह चम्पा का वृक्ष बढ़ कर जब फूलने योग्य हुआ, तब आपने इसे काट डाला। महाराज यह तो आप ही का पौत्र है। इसको इस प्रकार शाप देना उचित नहीं ॥ २६ ॥

---

१ विश्वास्य—प्रलोभ्य। (गो०) २ काञ्चनः—चम्पकवृक्षः। (गो०)
३ फलकाले—पुष्पकाले। (गो०)

न मिथ्यावचनश्च त्वं स्वप्स्यत्येष न संशयः ।
कालस्तु क्रियतामस्य शयने जागरे तथा ॥ २७ ॥

आपका वचन तो कभी मिथ्या हो नहीं सकता और निःसंशय यह उसी प्रकार सोवेगा भी । किन्तु आप इसके सोने और जागने का समय नियत कर दें ॥ २७ ॥

रावणस्य वचः श्रुत्वा स्वयम्भूरिदमब्रवीत् ।
शयिता ह्येष षण्मासानेकाहं जागरिष्यति ॥ २८ ॥

रावण के इन वचनों को सुन, ब्रह्मा जी बोले—यह छः मास सोवेगा और एक दिन जागेगा ॥ २८ ॥

एकेनाह्ना त्वसौ वीरश्चरन्भूमिं बुभुक्षितः ।
व्यात्तास्यो भक्षयेल्लोकान्संक्रुद्ध इव पावकः ॥ २९ ॥

उसी एक दिन में यह वीर भूख के मारे विकल हो, पृथिवी पर घूमेगा और प्रदीप्त अग्नि की तरह मुख फैला कर अनेक लोगों को खाया करेगा ॥ २९ ॥

सोऽसौ व्यसनमापन्नः कुम्भकर्णमबोधयत् ।
त्वत्पराक्रमभीतश्च राजा सम्प्रति रावणः ॥ ३० ॥

हे श्रीरामचन्द्र ! तुम्हारे पराक्रम से भीत हो और विपत्ति में पड़, राक्षसराज रावण ने इस समय इस कुम्भकर्ण को जगवाया है ॥३०॥

स एष निर्गतो वीरः [1]शिबिराद्भीमविक्रमः ।
वानरान्भृशसंक्रुद्धो [2]भक्षयन्परिधावति ॥ ३१ ॥

---

१ भक्षयन्परिधावति—भक्षणहेतोः परिधाविष्यति । (गो०) २ शिबिरात्—स्वनिलयात् । (गो०)

सो यह भीम पराक्रमी वीर अपने घर से निकल और अत्यन्त क्रुद्ध हो वानरों को खाने के लिये दौड़ेगा ॥ ३१ ॥

कुम्भकर्णं समीक्ष्यैव हरयोऽद्य प्रविद्रुताः ।
कथमेनं रणे क्रुद्धं वारयिष्यन्ति वानराः ॥ ३२ ॥

जब ये वानर कुम्भकर्ण को देखते ही भाग रहे हैं, तब जब यह क्रुद्ध हो समरक्षेत्र में आ कर खड़ा होगा, तब वानर इसको कैसे रोकेंगे ॥ ३२ ॥

उच्यन्तां वानराः सर्वे [1]यन्त्रमेतत्समुच्छ्रितम् ।
इति विज्ञाय हरयो भविष्यन्तीह निर्भयाः ॥ ३३ ॥

मेरी समझ में वानरों को रोकने के लिये उनसे यह कह देना ठीक होगा कि, यह एक बड़ा ऊँचा वानरों के डराने के लिये हौआ है। इसको यंत्र जान सब वानर निर्भय हो जाँयगे ॥ ३३ ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा हेतुमत्सुमुखेरितम्[2] ।
उवाच राघवो वाक्यं नीलं सेनापतिं तदा ॥ ३४ ॥

विभीषण के ये प्रसन्न करने वाले और युक्तियुक्त वचनों को सुन, श्रीरामचन्द्र जी सेनापति नील से बोले ॥ ३४ ॥

गच्छ सैन्यानि सर्वाणि व्यूह्य तिष्ठस्व पावके ।
द्वाराण्यादाय लङ्कायाश्चर्याश्चाप्यथ संक्रमान् ॥ ३५ ॥

हे नील ! तुम जाओ और समस्त सेना का व्यूह बना कर तैयार रहो और लङ्का के पुरद्वार, राजमार्ग तथा अन्य मोर्चे घेर लो ॥ ३५ ॥

---

१ यंत्रं—विभीषिका। (गो०) २ सुमुखेरितं—सुमुखं यथा भवति तथा उक्तं। (गो०)

शैलशृङ्गाणि वृक्षांश्च शिलाश्चाप्युपसंहर ।
तिष्ठन्तु वानराः सर्वे सायुधाः शैलपाणयः ॥ ३६ ॥

सब वानर शैलशृङ्गों, वृक्षों, शिलाओं को एकत्र कर लें और हाथों में शिलाएँ आयुधों को ले तैयार खड़े हो जाँय ॥ ३६ ॥

राघवेण समादिष्टो नीलो हरिचमूपतिः ।
शशास वानरानीकं यथावत्कपिकुञ्जरः ॥ ३७ ॥

जब श्रीरामचन्द्र जी ने इस प्रकार वाहिनीपति नील को आज्ञा दी ; तब नील ने वानरी सेना की तदनुसार व्यवस्था कर दी ॥ ३७ ॥

ततो गवाक्षः शरभो हनुमानङ्गदस्तदा ।
शैलशृङ्गाणि शैलाभा गृहीत्वा द्वारमभ्ययुः ॥ ३८ ॥

तब पर्वताकार गवाक्ष, शरभ, हनुमान और अङ्गद शिलाएँ ले ले कर लङ्का के फाटकों पर जा पहुँचे ॥ ३८ ॥

रामवाक्यमुपश्रुत्य हरयो जितकाशिनः ।
पादपैरर्दयन्वीरा वानराः [1]परवाहिनीम् ॥ ३९ ॥

इस प्रकार विजयी वानरगण, श्रीरामचन्द्र जी के मुख से यह बात निकलते ही वृक्षों से, शत्रु की उस सेना को, जो नगर की रक्षा के लिये नगर के बाहिर नियुक्त थी, मारने लगे ॥ ३९ ॥

ततो हरीणां तदनीकमुग्रं
रराज शैलोद्यतदीप्तहस्तम् ।

---

[1] परवाहिनीम्—नगररक्षार्थं बहिश्चरन्तीं वाहिनीं । (गो०)

गिरेः समीपानुगतं यथैव
महन्महाम्भोधरजालमुग्रम् ॥ ४० ॥

इति एकषष्टितमः सर्गः ॥

शिलाएँ और पेड़ों को लिये हुए प्रचण्ड वानरी सेना लङ्का के द्वारों पर खड़ी हुई उस समय ऐसी शोभित होती थी जैसे पर्वतों के निकट मेघमाला शोभित होती है ॥ ४० ॥

युद्धकाण्ड का एकसठवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—※—

द्विषष्टितमः सर्गः

—※—

स तु राक्षसशार्दूलो निद्रामदसमाकुलः ।
राजमार्गं श्रिया जुष्टं ययौ विपुलविक्रमः ॥ १ ॥

कच्ची नींद से जगाया हुआ और नशे में चूर बड़ा विक्रमी वह राक्षसश्रेष्ठ कुम्भकर्ण, शोभायमान राजमार्ग से चला जाता था ॥ १ ॥

राक्षसानां सहस्रैश्च वृतः परमदुर्जयः ।
गृहेभ्यः पुष्पवर्षेण कीर्यमाणस्तदा ययौ ॥ २ ॥

और हज़ारों राक्षस उस परम दुर्जय कुम्भकर्ण को घेरे हुए चले जाते थे । राजमार्ग के दोनों तरफ़ खड़े हुए मकानों के ऊपर चढ़े पुरवासी रास्ते भर उसके ऊपर फूलों की वर्षा कर रहे थे ॥ २ ॥

स हेमजालविततं भानुभास्वरदर्शनम् ।
ददर्श विपुलं रम्यं राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ॥ ३ ॥

आगे चल कुम्भकर्ण ने रम्य, विशाल एवं सुवर्ण समूह से सूर्यवत् प्रकाशित, राक्षसेन्द्र रावण का भवन देखा ॥ ३ ॥

स तत्तदा सूर्य इवाभ्रजालं
प्रविश्य रक्षोऽधिपतेर्निवेशम् ।
ददर्श दूरेऽग्रजमासनस्थं
स्वयंभुवं शक्र इवासनस्थम् ॥ ४ ॥

जिस प्रकार सूर्य भगवान् मेघों के भीतर प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार उस वीर ने राक्षसराज के भवन में प्रवेश किया और दूर ही से उसने अपने बड़े भाई को सिंहासन पर वैसे ही बैठे हुए देखा, जैसे सिंहासनासीन ब्रह्मा जी को इन्द्र देखते हैं ॥ ४ ॥

भ्रातुः स भवनं गच्छन्रक्षोगणसमन्वितम् ।
कुम्भकर्णः पदन्यासैरकम्पयत मेदिनीम् ॥ ५ ॥

राक्षसों के साथ कुम्भकर्ण जिस समय अपने भाई के भवन में जा रहा था, उस समय उसके पैर की धमक से धरती काँप रही थी ॥ ५ ॥

सोऽभिगम्य गृहं भ्रातुः कक्ष्यामभिविगाह्य च ।
ददर्शोद्विग्नमासीनं विमाने पुष्पके[1] गुरुम् ॥ ६ ॥

---

१ पुष्पके—उन्नत पुष्पकवत् । (गो०)

उसने भाई के भवन में प्रवेश कर और राजभवन की ड्योढ़ी नांघ कर देखा कि, उसका बड़ा भाई उद्विग्न हो पुष्पक विमानवत् ऊँची एक सेज पर बैठा हुआ है ॥ ६ ॥

अथ दृष्ट्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णमुपस्थितम् ।
तूर्णमुत्थाय संहृष्टः सन्निकर्षमुपानयत् ॥ ७ ॥

जब रावण ने देखा कि, कुम्भकर्ण आ गया है; तब वह तुरन्त प्रसन्न हो कर उठा और कुम्भकर्ण को अपने समीप लिवा लाया ॥७॥

अथासीनस्य पर्यङ्के कुम्भकर्णो महाबलः ।
भ्रातुर्ववन्दे चरणौ किं कृत्यमिति चाब्रवीत् ॥ ८ ॥

कुम्भकर्ण ने सेज पर बैठे हुए भाई के चरणों में सीस नवाया और बोला, कहिये मुझे क्या आज्ञा है ॥ ८ ॥

उत्पत्य चैनं मुदितो रावणः परिषस्वजे ।
स भ्रात्रा सम्परिष्वक्तो यथावच्चाभिनन्दितः ॥ ९ ॥

यह सुन प्रसन्न हो रावण उठा और भाई को गले लगाया। भाई द्वारा गले लगाये जाने पर तथा यथाविधि अभिनन्दित होने पर ॥ ९ ॥

कुम्भकर्णः शुभं दिव्यं प्रतिपेदे वरासनम् ।
स तदासनमाश्रित्य कुम्भकर्णो महाबलः ॥ १० ॥

कुम्भकर्ण को बैठने के लिये एक शुभ और दिव्य एवं उत्तम आसन मिला। महाबली कुम्भकर्ण उस आसन पर बैठ ॥ १० ॥

संरक्तनयनः कोपाद्रावणं वाक्यमब्रवीत् ।
किमर्थमहमादृत्य त्वया राजन्विबोधितः ॥ ११ ॥

और क्रोध में भरने के कारण लाल लाल नेत्र कर रावण से बोला। हे राजन्! तुमने आदर पूर्वक मुझे क्यों जगवाया है? ॥ ११ ॥

शंस कस्माद्भयं तेऽस्ति कोऽद्य प्रेतो भविष्यति।
भ्रातरं रावणः क्रुद्धं कुम्भकर्णमवस्थितम् ॥ १२ ॥

बतलाओ तो तुमको किसके भय का सन्देह उपस्थित हुआ है, आज किस के सिर पर मौत आ कर सवार होगी? कुपित बैठे हुए कुम्भकर्ण से रावण ॥ १२ ॥

ईषत्तु परिवृत्ताभ्यां नेत्राभ्यां वाक्यमब्रवीत्।
अद्य ते सुमहान्कालः शयानस्य महाबल ॥ १३ ॥
सुखितस्त्वं न जानीषे मम रामकृतं भयम्।
एष दाशरथी रामः सुग्रीवसहितो बली ॥ १४ ॥

कुछ कुछ कुपित हो और आँखें तरेर कर बोला। हे महाबलवान्! आज तुमको सुख से सोते सोते बहुत दिन हो गये। इसीसे तुमको यह नहीं मालूम कि, मुझे रामचन्द्र से भय उत्पन्न हुआ है। यह दशरथ का पुत्र बलवान राम, सुग्रीव को साथ ले ॥ १३ ॥ १४ ॥

समुद्रं सबलस्तीर्त्वा मूलं नः परिकृन्तति।
हन्त पश्यस्व लङ्कायां वनान्युपवनानि च ॥ १५ ॥
सेतुना सुखमागम्य वानरैकार्णवीकृतम्।
ये रक्षसां मुख्यतमा हतास्ते वानरैर्युधि ॥ १६ ॥

वानरी सेना सहित समुद्र को पार कर, लङ्का में आ पहुँचा है और हमारे कुल का नाश कर रहा है। समुद्र के उस पार से पुल

बाँध कर मजे में वे सब लङ्का में पहुँच गये हैं और देखो, यहाँ के वन और उपवनों को उजाड़ डाला है और उन उजाड़े हुए स्थानों में अपनी छावनी डाल कर वे ऐसे पड़े हुए हैं, मानों वानरों का समुद्र लहरा रहा हो। जो बड़े बड़े वीर राक्षस थे उनको वानरों ने युद्ध में मार डाला है ॥ १५ ॥ १६ ॥

वानराणां क्षयं युद्धे न पश्यामि कदाचन।
न चापि वानरा युद्धे जितपूर्वाः कदाचन ॥ १७ ॥

किन्तु लड़ाई में वानरों का नाश होता हुआ मुझे किसी प्रकार भी नहीं देख पड़ता और न अब तक के युद्धों में कभी राक्षसों ने वानरों को जीता ही है ॥ १७ ॥

तदेतद्भयमुत्पन्नं त्रायस्वेमां महाबल।
नाशय त्वमिमानद्य तदर्थं बोधितो भवान् ॥ १८ ॥

यही भय उपस्थित हुआ है। हे महाबली! तुम अब इस भय से मुझे बचाओ और इन वानरों का नाश करो। इसीके लिये आप जगवाये गये हैं ॥ १८ ॥

सर्वक्षपितकोशं च स त्वमभ्यवपद्य माम्।
त्रायस्वेमां पुरीं लङ्कां बालवृद्धावशेषिताम् ॥ १९ ॥

मेरा समस्त ऐश्वर्य नष्ट हो चुका है, सो तुम अनुग्रह पूर्वक मेरी रक्षा करो। साथ ही इस लङ्कापुरी को भी, जिसमें अब केवल बूढ़े और बारे ही बच रहे हैं, नाश होने से बचाओ ॥ १६ ॥

भ्रातुरर्थे महाबाहो कुरु कर्म सुदुष्करम्।
मयैवं नोक्तपुर्वो हि कश्चिद्भ्रातः परन्तप ॥ २० ॥

हे महाबाहो! अपने भाई के लिये तुम इस अत्यन्त कठिन काम को करो। हे परन्तप! मैं आज तक इस प्रकार कभी किसी भाई के सामने नहीं गिड़गिड़ाया ॥ २० ॥

त्वय्यस्ति तु मम स्नेहः परा [1]सम्भावना च मे ।
दैवासुरेषु युद्धेषु बहुशो राक्षसर्षभ ।
त्वया देवाः [2]प्रतिव्यूह्य निर्जिताश्चासुरा युधि ॥ २१ ॥

किन्तु तुम्हारे ऊपर मेरा स्नेह है और मेरी दृष्टि में तुम्हारा बड़ा आदर भी है। हे राक्षसश्रेष्ठ! देवासुर संग्राम में बहुत बार देवता और असुरों को विभाजित कर, तुमने असुरों तक को जीता है ॥ २१ ॥

तदेतत्सर्वमातिष्ठ वीर्यं भीमपराक्रम ।
न हि ते सर्वभूतेषु दृश्यते सदृशो बली ॥ २२ ॥

हे भीमपराक्रमी! अतः तुम पुनः उसी बल का आश्रय ग्रहण करो। क्योंकि मुझे तो समस्त जीवधारियों में तुम्हारे समान बलवान कोई दूसरा देख नहीं पड़ता ॥ २२ ॥

कुरुष्व मे प्रियहितमेतदुत्तमं
यथाप्रियं प्रियरण बान्धवप्रिय ।
स्वतेजसा विधम सपत्नवाहिनीं
शरद्घनं पवन इवोद्यतो महान् ॥ २३ ॥

इति द्विषष्टितमः सर्गः ॥

---

१ सम्भावना—आदरः। (गो०) २ प्रतिव्यूह्य—विभज्य। (गो०)

प्रचण्ड वायु जिस प्रकार शरद्कालीन मेघमाला को उड़ा देता है; उसी प्रकार तुम अपने तेज से शत्रुसैन्य को नष्ट कर भगा दो। हे रणप्रिय बान्धव! अपनी उत्तम प्रीति का परिचय देते हुए तुम मेरे हितार्थ यह उत्तम काम पूरा कर डालो॥ २३॥

युद्धकाण्ड का बासठवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

त्रिषष्टितमः सर्गः

—*—

तस्य राक्षसराजस्य निशम्य परिदेवितम्।
कुम्भकर्णो बभाषेऽथ वचनं प्रजहास च॥ १॥

उस राक्षसराज रावण के इस विलाप को सुन, कुम्भकर्ण अट्टहास करता हुआ बोला॥ १॥

दृष्टो दोषो हि योऽस्माभिः पुरा मन्त्रविनिर्णये।
हितेष्वनभिरक्तेन सोऽयमासादितस्त्वया॥ २॥

हे राजन्! प्रथम बार परामर्श करते समय हम लोगों को जो दोष दीख पड़े थे, वे ही अब तुम्हारे सामने आ उपस्थित हुए हैं। क्योंकि उस समय तुमने अपने हितैषियों की उन बातों को पसन्द नहीं किया था॥ २॥

शीघ्रं खल्वभ्युपेतं त्वां फलं पापस्य कर्मणः।
निरयेष्वेव पतनं यथा दुष्कृतकर्मणः॥ ३॥

जिस प्रकार महापातकियों को शीघ्र नरक में गिरना पड़ता है; उसी प्रकार सीताहरणरूपी पापकर्म का फल तुम्हें शीघ्र मिल गया॥ ३॥

प्रथमं वै महाराजा कृत्यमेतदचिन्तितम् ।
केवलं वीर्यदर्पेण नानुबन्धो विचारितः ॥ ४ ॥

महाराज ! इस पापकर्म को करने के पूर्व तुमने भली भाँति विचार नहीं किया । केवल अपने बल के अहङ्कार से तुमने इस कुकर्म के दुष्परिणाम की ओर ध्यान ही न दिया ॥ ४ ॥

यः पश्चात्पूर्वकार्याणि कुर्यादैश्वर्यमास्थितः ।
पूर्वं चोत्तरकार्याणि न स वेद नयानयौ ॥ ५ ॥

जो ऐश्वर्यवान् राजा प्रथम करने योग्य कार्य को पीछे और पीछे करने योग्य कार्य को प्रथम करता है, वह नीति अनीति जानने वाला नहीं कहलाता ॥ ५ ॥

देशकालविहीनानि कर्माणि विपरीतवत् ।
क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्यप्रयतेष्विव ॥ ६ ॥

देश और काल का विचार कर जो काम किये जाते हैं, वे समस्त कार्य दूषित होने के कारण विपरीत फल देने वाले होते हैं । अर्थात् वे कार्य उसी प्रकार इष्टफलदायी नहीं होते, जिस प्रकार मंत्र से संस्कारित न किये हुए अग्नि में डाली हुई आहुतियाँ इष्टफलदात्री नहीं होतीं ॥ ६ ॥

[1]त्रयाणां [2]पञ्चधा योगं कर्मणां यः प्रपश्यति ।
सचिवैः [3]समयं कृत्वा स [4]सभ्ये वर्तते पथि ॥ ७ ॥

---

१ त्रयाणां—उत्तममध्यमाधमकर्मणां । (गो०) २ पञ्चधा—(क) कर्मणामारम्भोपायः । (ख) पुरुषद्रव्यसंपत् । (ग) देशकालविभाग । (घ) विनिपातप्रतीकारः । (ङ) कार्यसिद्धिः । (गो०) ३ समयं—निश्चयरूपं सिद्धान्तं कृत्वा । (गो०) ४ सभ्ये—समाजिके । (गो०)

जो राजा (उत्तम, मध्यम और अधम) कार्यों को करने के पूर्व कार्य आरम्भ करने के उपाय, अपने जनबल और धनबल, देश और काल, आपत्ति की रोक और कार्य की सफलता के विषय में मंत्रियों से सलाह कर, सिद्धान्त निश्चित कर लेता है, वही समाज में श्रेष्ठ और नीतिमार्ग पर चलने वाला माना जाता है ॥ ७ ॥

यथागमं च यो राजा समयं विचिकीर्षति ।
बुध्यते सचिवान्बुद्ध्य सुहृदश्चानुपश्यति ॥ ८ ॥

जो राजा नीतिशास्त्र का उल्लङ्घन न कर और मंत्रियों के साथ सलाह कर तथा अपने हितैषी मित्रों के साथ विचार कर, किसी कार्य के करने न करने का निश्चय करता है, वही राजा नीतिवान कहलाता है ॥ ८ ॥

धर्ममर्थं च कामं च सर्वान्वा रक्षसां पते ।
भजेत पुरुषः काले त्रीणि द्वन्द्वानि वा पुनः ॥ ९ ॥

हे राक्षसराज ! या तो धर्म, अर्थ और काम को पृथक पृथक अथवा इन तीनों में से दो दो को (धर्मार्थ अर्थधर्म कामार्थ) अथवा सब को यथा समय करता है अर्थात् जो काम प्रातःकाल करने का है उसे प्रातःकाल, मध्यान्ह में करने योग्य कार्य को मध्यान्हकाल में, इसी प्रकार सायङ्काल में करने योग्य कार्य को सायङ्काल में करता है, वही राजा नीतिवान् कहा जाता है ॥ ९ ॥

त्रिषु चैतेषु यच्छ्रेष्ठं श्रुत्वा तन्नावबुध्यते ।
राजा वा राजमात्रो वा व्यर्थं तस्य बहुश्रुतम् ॥ १० ॥

धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों में जो श्रेष्ठ है (अर्थात् धर्म को) उसको जान कर भी जो धर्मानुसार आचरण नहीं करता—

वह चाहे राजा हो अथवा राजा के सदृश कोई बड़ा आदमी हो—उसका बहुत सा शास्त्र सुनना व्यर्थ है ॥ १० ॥

[नोट—धर्म, अर्थ और काम में धर्म श्रेष्ठ माना गया है ।]

[1]उपप्रदानं [2]सान्त्वं वा [3]भेदं काले च [4]विक्रमम् ।
योगं च रक्षसांश्रेष्ठ तावुभौ च नयानयौ ॥ ११ ॥

समय के अनुसार वैरी को जा कर द्रव्य देना, वैरी के साथ समीचीन भाषण करना, वैरी मित्रों में फूट डाल देना और वैरी को दण्ड देना ; पहिले कहे हुए पांच योग और दोनों नीति अनीति ॥ ११ ॥

काले धर्मार्थकामान्यः सम्मन्त्र्य सचिवैः सह ।
निषेवेतात्मवाँल्लोके न स व्यसनमाप्नुयात् ॥ १२ ॥

और धर्म, अर्थ, काम सम्बन्धी कार्यों की मंत्रणा मंत्रियों के साथ उचित समय पर जो जितेन्द्रिय राजा किया करते हैं, उनको संसार में कभी दुःख प्राप्त नहीं होता ॥ १२ ॥

हितानुबन्धमालोच्य कार्याकार्यमिहात्मनः ।
राजा सहार्थतत्त्वज्ञैः सचिवैः स हि जीवति ॥ १३ ॥

राजा को उचित है कि, अर्थतत्वज्ञ (सब बातों का ऊँच नीच समझने वाले) मंत्रियों से अपने हित के कार्यों के सम्बन्ध में कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार कर निश्चय करे । जो राजा ऐसा करता है, वही इस संसार में टिक सकता है ॥ १३ ॥

---

१ उपप्रदानं—प्रतिपक्षिणः समीपं गत्वा द्रविणप्रदानं । (गो०)
२ सान्त्वं—समीचीनभाषणं । (गो०) ३ भेदं—मित्रादिवर्गस्य द्वैधीकरणं । (गो०) ४ विक्रमं—दण्डं । (गो०)

अनभिज्ञाय शास्त्रार्थान्पुरुषाः पशुबुद्धयः ।
प्रागल्भ्याद्वक्तुमिच्छन्ति मन्त्रेष्वभ्यन्तरीकृताः ॥ १४ ॥

जो मंत्री कहला कर, गुरुमुख से नीतिशास्त्रों का अध्ययन किये बिना, केवल ढिठाई से और का और बक दिया करते हैं, वे देखने भर के मनुष्य हैं, किन्तु वास्तव में आहार निद्रादि में रत पशु के समान हैं ॥ १४ ॥

अशास्त्रविदुषां तेषां न कार्यमहितं वचः ।
अर्थशास्त्रानभिज्ञानां विपुलां श्रियमिच्छताम् ॥ १५ ॥

जिस राजा को विपुल राजैश्वर्य प्राप्त करने की इच्छा हो, उसे ऐसे नीतिशास्त्रानभिज्ञ मूर्ख और अभिप्राय न समझने वाले मंत्रियों की काम को बिगाड़ने वाली बातों पर कभी ध्यान न देना चाहिये ॥ १५ ॥

अहितं च हिताकारं धाष्टर्याज्जल्पन्ति ये नराः ।
अवेक्ष्य मन्त्रबाह्यास्ते कर्तव्याः कृत्यदूषणाः ॥ १६ ॥

जो मंत्री केवल ढिठाई से अहित को हित बना कर कहते हैं, वे काम के बिगाड़ने वाले होते हैं, उनको विचारसभा से निकाल देना चाहिये ॥ १६ ॥

विनाशयन्तो भर्तारं सहिता शत्रुभिर्बुधैः ।
विपरीतानि कृत्यानि कारयन्तीह मन्त्रिणः ॥ १७ ॥

बुरे मंत्री उपायज्ञ शत्रु से मिल जाते हैं और शत्रु की प्रेरणा से उल्टे पुल्टे काम कर के अपने मालिक का काम चौपट कर डालते हैं ॥ १७ ॥

तान्भर्ता मित्रसङ्काशानमित्रान्मन्त्रनिर्णये ।
व्यवहारेण जानीयात्सचिवानुपसंहितान् ॥ १८ ॥

जो मंत्री मित्र बन कर मंत्रणा के समय शत्रु जैसी सम्मति देते हों, राजा को उचित है कि, व्यवहार द्वारा ऐसे घूँसखोर मंत्रियों का असली रूप जान कर उनको निकाल दे ॥ १८ ॥

चपलस्येह कृत्यानि सहसाऽनुप्रधावतः ।
छिद्रमन्ये प्रपद्यन्ते क्रौञ्चस्य खमिव द्विजाः ॥ १९ ॥

जिस प्रकार पक्षीगण स्वामिकार्तिक द्वारा विदारित क्रौंच पर्वत के छिद्रों में घुस जाते हैं, उसी प्रकार शत्रु भी झटपट काम में हाथ डालने वाले और बुरे मंत्रियों की सलाह में चलने वाले राजा के ऊपर आक्रमण कर बैठते हैं ॥ १९ ॥

यो हि शत्रुमभिज्ञाय नात्मानमभिरक्षति ।
अवाप्नोति हि सोऽनर्थान्स्थानाच्च व्यवरोप्यते ॥ २० ॥

जो राजा शत्रु को तुच्छ समझ कर अपनी रक्षा नहीं करता, वह बड़े भारी अनर्थ को प्राप्त कर, स्थानभ्रष्ट भी हो जाता है ॥ २० ॥

यदुक्तमिह ते पूर्वं प्रियया मेऽनुजेन च ।
तदेव नो हितं कार्यं यदिच्छसि च तत्कुरु ॥ २१ ॥

हे रावण ! तुम्हारी स्त्री मंदोदरी ने और मेरे छोटे भाई विभीषण ने पहिले जो सलाह दी थी, वही हम लोगों के लिये श्रेयस्कर थी । जब उसको तुमने नहीं माना ; तब अब तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो ॥ २१ ॥

तत्तु श्रुत्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णस्य भाषितम् ।
भ्रुकुटिं चैव सञ्चक्रे क्रुद्धश्चैनमभाषत ॥ २२ ॥

कुम्भकर्ण के इस भाषण को सुन, रावण ने भौंहे टेढ़ी कीं और क्रोध में भर बोला ॥ २२ ॥

मान्यो गुरुरिवाचार्यः किं मां त्वमनुशाससि ।
किमेवं वाक्छ्रमं कृत्वा काले युक्तं विधीयताम् ॥ २३ ॥

हे कुम्भकर्ण ! देख मैं तेरा ज्येष्ठ भ्राता आचार्य के तुल्य मान्य हूँ। तू मुझे क्या सिखलाता है ? क्यों तू बोलने का इतना श्रम उठाता है । इस समय तो समयानुरूप कार्य करना चाहिये ॥ २३ ॥

विभ्रमाच्चित्तमोहाद्वा बलवीर्याश्रयेण वा ।
नाभिपन्नमिदानीं यद्व्यर्थास्तस्य पुनः कथाः ॥ २४ ॥

मैंने चित्तविभ्रम से, अज्ञानवश अथवा अपने बलवीर्य के अहङ्कार से जो कार्य नहीं किया उसको अब बारंबार कहना व्यर्थ है ॥ २४ ॥

अस्मिन्काले तु यद्युक्तं तदिदानीं विधीयताम् ।
गतं तु नानुशोचन्ति गतं तु गतमेव हि ॥ २५ ॥

अब तो इस समय जो करना उचित है, उसे करो। जो बात बीत गयी वह तो बीत ही गयी उसके लिये पछताना व्यर्थ है ॥२५॥

ममापनयजं दोषं विक्रमेण समीकुरु ।
यदि खल्वस्ति मे स्नेहो विक्रमं वावगच्छसि ॥ २६ ॥
यदि वा कार्यमेतत्ते हृदि कार्यमतं मतम् ।
स सुहृद्यो विपन्नार्थं दीनमभ्युपपद्यते ॥ २७ ॥

स बन्धुर्योपनीतेषु साहाय्यायोपकल्पते ।
तमथैवं ब्रुवाणं तु वचनं धीरदारुणम् ॥ २८ ॥

हे कुम्भकर्ण ! यदि मेरे ऊपर तुम्हारा प्रेम है और तुम्हें अपने पराक्रम का भरोसा है और यदि मेरा यह कार्य तुम्हें आवश्यक जान पड़े तो मुझसे जो भूल बन पड़ी हैं, उसे तुम सम्हाल लो। देखो हितैषी मित्र वही है जो दुखिया पर दया करे और भाई वही है जो कुमार्गगामी बन्धु की भी सहायता करे। रावण के इन धीर और निष्ठुर वचनों को सुन ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

रुष्टोऽयमिति विज्ञाय शनैः श्लक्ष्णमुवाच ह ।
अतीव हि समालक्ष्य भ्रातरं क्षुभितेन्द्रियम् ॥ २९ ॥

कुम्भकर्ण ने समझा कि, रावण रूठ गया है, तब कुम्भकर्ण ने धीरे धीरे ये मधुर वचन कहे। कुम्भकर्ण ने जब देखा कि, रावण पुरानी भूल की याद दिलाने से क्षुब्ध हो गया है ॥ २६ ॥

कुम्भकर्णः शनैर्वाक्यं बभाषे परिसान्त्वयन् ।
अलं राक्षसराजेन्द्र सन्तापमुपपद्यते ॥ ३० ॥

तब कुम्भकर्ण ने रावण को धीरज बँधाते हुए धीरे से कहा—हे राक्षसराज ! इस समय अब इस प्रकार सन्तप्त होने की आवश्यकता नहीं है ॥ ३० ॥

रोषं च सम्परित्यज्य स्वस्थो भवितुमर्हसि ।
नैतन्मनसि कर्तव्यं मयि जीवति पार्थिव ॥ ३१ ॥

अब तुम क्रोध को शान्त कर स्वस्थ हो जाओ । हे राजन् ! मेरे जीते तुमको अपने मन में कभी ऐसा विचार न लाना चाहिये ॥ ३१ ॥

तमहं नाशयिष्यामि यत्कृते परितप्यसे ।
अवश्यं तु हितं वाच्यं सर्वावस्थं मया तव ॥ ३२ ॥

जिसके लिये तुम इतना सन्तप्त हो रहे हो उसे मैं मार डालूँगा। मुझे तो सदैव ही तुम्हारी हित की बात कहनी चाहिये ॥ ३२ ॥

बन्धुभावादभिहितं भ्रातृस्नेहाच्च पार्थिव ।
सदृशं यत्तु कालेऽस्मिन्कर्तुं स्निग्धेन बन्धुना ॥३३॥

हे राजन् ! इसीसे मैंने बन्धुभाव और भ्रातृस्नेह से प्रेरित हो वे सब बातें तुमसे कहीं। इस समय एक हितैषी भाई का जो कर्त्तव्य है वह मैं करूँगा ॥ ३३ ॥

शत्रूणां कदनं पश्य क्रियमाणं मया रणे ।
अद्य पश्य महाबाहो मया समरमूर्धनि ॥ ३४ ॥
हते रामे सह भ्रात्रा द्रवन्तीं हरिवाहिनीम् ।
अद्य रामस्य तद्दृष्ट्वा मयाऽऽनीतं रणाच्छिरः ॥ ३५ ॥

तुम देखना कि, आज मैं रणक्षेत्र में तुम्हारे शत्रुओं का कैसा नाश करता हूँ। हे महाबाहो! आज जब मैं युद्धभूमि में लक्ष्मण सहित राम को मार डालूँगा, तब तुम देखना वानरी सेना कैसी भागती है। आज तुम मेरा लाया हुआ राम का कटा सिर देख कर ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

सुखी भव महाबाहो सीता भवतु दुःखिता ।
अद्य रामस्य पश्यन्तु निधनं सुमहत्प्रियम् ॥ ३६ ॥
लङ्कायां राक्षसाः सर्वे ये ते निहतबान्धवाः ।
अद्य शोकपरीतानां स्वबन्धुवधकारणात् ॥ ३७ ॥

शत्रोर्युधि विनाशेन करोम्यास्त्रप्रमार्जनम् ।
अद्य पर्वतसङ्काशं ससूर्यमिव तोयदम् ॥ ३८ ॥

हे महाबाहो ! तुम हर्षित होना और सीता दुःखी हो। राक्षसों को राम का नाश बड़ा प्रिय है, वे आज उसको देखें। लङ्कावासी जो समस्त राक्षस अपने बन्धु बान्धवों के मारे जाने से दुःखी हो रहे हैं, आज मैं उनके दुःख के आँसू शत्रु का युद्ध में विनाश कर पोंछूँगा। आज पर्वताकार और सूर्ययुक्त मेघ के समान॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

विकीर्णं पश्य समरे सुग्रीवं प्लवगोत्तमम् ।
कथं त्वं राक्षसैरेभिर्मया च परिसान्त्वतः ॥३९ ॥
जिघांसुभिर्दाशरथिं व्यथसे त्वं सदा नघ ।
अथ पूर्वं हते तेन मयि त्वां हन्ति राघवः ॥ ४० ॥

वानरश्रेष्ठ सुग्रीव को समर में गिरा हुआ देखना। हे अनघ! श्रीरामचन्द्र को नाश करने की अभिलाषा रखते हुए ये समस्त राक्षसगण तथा मैं आपको धीरज बँधा रहे हैं, तो भी आप क्यों ऐसे व्यथित हो रहे हैं। देखो, जब राम पहिले मुझे मार लेंगे तभी तो तुमको मारेंगे ॥ ३९ ॥ ४० ॥

नाहमात्मनि सन्तापं गच्छेयं राक्षसाधिप ।
कामं त्विदानीमपि मां व्यादिश त्वं परन्तप ॥ ४१ ॥

हे राक्षसराज! सो मैं तो अपने मन में ज़रा भी सन्तप्त नहीं होता, तब तुम क्यों दुखी होते हो। हे परन्तप! इस समय तुम जो चाहते हो सो बतलाओ या तदनुसार आज्ञा दो ॥ ४१ ॥

न परः प्रेषणीयस्ते युद्धायातुलविक्रम ।
अहमुत्सादयिष्यामि शत्रूंस्तव महाबल ॥ ४२ ॥

हे अतुल विक्रमी ! समरभूमि में अन्य किसी को भेजने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि मैं अकेला ही तुम्हारे बलवान शत्रु को मार डालूँगा ॥ ४२ ॥

यदि शक्रो यदि यमो यदि पावकमारुतौ ।
तानहं योधयिष्यामि कुबेरवरुणावपि ॥ ४३ ॥

मेरे सामने यदि इन्द्र, यम, अग्नि, पवन, कुबेर अथवा वरुण ही क्यों न आवें, तो मैं उनके साथ भी युद्ध करूँगा ॥ ४३ ॥

गिरिमात्रशरीरस्य शितशूलधरस्य मे ।
नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्य बिभीयाच्च पुरन्दरः ॥ ४४ ॥

जब मैं पैना त्रिशूल हाथ में ले, अपने पर्वताकार शरीर से, पैने पैने दाँत दिखलाता हुआ गर्जूँगा, तब इन मनुष्यों की तो बिसात ही क्या; इन्द्र भी भयभीत हो जाँयगे ॥ ४४ ॥

अथवा त्यक्तशस्त्रस्य मृद्गतस्तरसा रिपून् ।
न मे प्रतिमुखे स्थातुं कश्चिच्छक्तो जिजीविषुः ॥ ४५ ॥

अथवा मैं अस्त्रत्याग खाली हाथ भी शत्रुओं को कुचलने लगूँ तो जिसे जीने की साध होगी, वह कभी मेरे सामने न आवेगा ॥ ४५ ॥

नैव शक्त्या न गदया नासिना निशितैः शरैः ।
हस्ताभ्यामेव संरब्धो हनिष्यामपि वज्रिणम् ॥ ४६ ॥

हे राक्षसराज ! मुझे न तो शक्ति की, न गदा की, न पैनी तलवार की और पैने तीरों ही की आवश्यकता है। मैं तो अपने दोनों हाथों ही से क्रुद्ध होने पर, यदि इन्द्र भी हो तो उसको भी मार डालूँगा ॥ ४६ ॥

यदि मे मुष्टिवेगं स राघवोऽद्य सहिष्यते ।
ततः पास्यन्ति बाणौघा रुधिरं राघवस्य तु ॥ ४७ ॥

यदि श्रीरामचन्द्र ने मेरे घूँसे का प्रहार सह लिया तो मेरे बाण उसका खून पियेंगे ॥ ४७ ॥

चिन्तया बाध्यसे राजन्किमर्थं मयि तिष्ठति ।
सोऽहं शत्रुविनाशाय तव निर्यातुमुद्यतः ॥ ४८ ॥

हे राजन् ! मेरे रहते तुम क्यों चिन्तित होते हो ! मैं तुम्हारे शत्रु का नाश करने के लिये समरभूमि में जाने को तैयार हूँ ॥ ४८ ॥

मुञ्च रामाद्भयं राजन्हनिष्यामीह संयुगे ।
राघवं लक्ष्मणं चैव सुग्रीवं च महाबलं ॥ ४९ ॥

हे राजन् ! तुम राम के भय को त्याग दो। मैं समर में राम, लक्ष्मण और महाबली सुग्रीव को मार डालूँगा ॥ ४९ ॥

हनुमन्तं च रक्षोघ्नं लङ्का येन प्रदीपिता ।
हरींश्चापि हनिष्यामि संयुगे समवस्थितान् ॥ ५० ॥

राक्षसों का वध करने वाले हनुमान को जिसने लङ्का जलायी थी तथा अन्य समस्त वानरों को भी जो लड़ने आये हैं— मैं मार डालूँगा ॥ ५० ॥

असाधारणमिच्छामि तव दातुं महद्यशः ।
यदि चेन्द्राद्भयं राजन्यदि वाऽपि स्वयंभुवः ॥ ५१ ॥

मैं तुम्हारे लिये असाधारण बड़ा यश सम्पादन करूँगा। यदि तुमको इनसे या ब्रह्मा से भी भय हुआ, तो मैं उनको भी मार डालूँगा ॥ ५१ ॥

अपि देवाः शयिष्यन्ते क्रुद्धे मयि महीतले ।
यमं च शमयिष्यामि भक्षयिष्यामि पावकम् ॥ ५२ ॥

मैं जब क्रुद्ध हो जाऊँगा, तब देवता भूमि पर लोटते हुए देख पड़ेंगे। मैं यम को शान्त कर दूँगा और अग्नि को खा डालूँगा ॥५२॥

आदित्यं पातयिष्यामि सनक्षत्रं महीतले ।
शतक्रतुं वधिष्यामि पास्यामि वरुणालयम् ॥ ५३ ॥

मैं समस्त नक्षत्रों सहित सूर्य को धरती पर गिरा दूँगा। इन्द्र को मार डालूँगा और समुद्र को पी डालूँगा ॥ ५३ ॥

पर्वतांश्चूर्णयिष्यामि दारयिष्यामि मेदिनीम् ।
दीर्घकालं प्रसुप्तस्य कुम्भकर्णस्य विक्रमम् ॥ ५४ ॥

पहाड़ों के टुकड़े टुकड़े कर डालूँगा पृथिवी को विदीर्ण कर डालूँगा। बहुत दिनों से सोते हुए कुम्भकर्ण का पराक्रम ॥ ५४ ॥

अद्य पश्यन्तु भूतानि भक्ष्यमाणानि सर्वशः ।
नन्विदं त्रिदिवं सर्वमाहारस्य न पूर्यते ॥ ५५ ॥

आज वे समस्त जीव देखें, जिनको मैं खाऊँगा। ये त्रिलोकी भी मेरा पेट भरने के लिये पर्याप्त न होगी ॥ ५५ ॥

वधेन ते दाशरथेः सुखार्ह
सुखं समाहर्तुमहं व्रजामि ।
निकृत्य रामं सह लक्ष्मणेन
खादामि सर्वान्हरियूथमुख्यान् ॥ ५६ ॥

हे राक्षसराज ! दशरथनन्दन राम को मारने के लिये और उनके मारे जाने से तुमको सुखी करने के लिये, मैं जाता हूँ। मैं लक्ष्मण सहित राम को मार कर समस्त वानरयूथपतियों को खा डालूँगा ॥ ५६ ॥

रमस्व कामं पिब चाग्र्यवारुणीं
कुरुष्व कृत्यानि विनीयतां ज्वरः ।
मयाद्य रामे गमितेयमक्षयं
चिराय सीता वशगा भविष्यति ॥ ५७ ॥

इति त्रिषष्टितमः सर्गः ॥

अब हे राजन् ! तुम खूब मदिरा पान कर स्त्रियों के साथ विहार करो और चिन्ता त्याग कर आवश्यक कृत्य करो। आज मेरे हाथ से राम के यमालय जाने पर सीता सदैव के लिये तुम्हारी हो जायगी ॥ ५७ ॥

युद्धकाण्ड का तिरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

चतुःषष्टितमः सर्गः

—※—

तदुक्तमतिकायस्य बलिनो [1]बाहुशालिनः ।
कुम्भकर्णस्य वचनं श्रुत्वोवाच महोदरः ॥ १ ॥

चलायमान भुजाओं वाले, विशाल शरीरधारी एवं बलवान कुम्भकर्ण के ऐसे वचन सुन, राक्षस महोदर कहने लगा ॥ १ ॥

कुम्भकर्ण कुले जातो धृष्टः प्राकृतदर्शनः ।
अवलिप्तो न शक्नोषि कृत्यं सर्वत्र वेदितुम् ॥ २ ॥

हे कुम्भकर्ण ! तुम प्रशस्त कुल में उत्पन्न हुए हो, इसीसे तुमको बड़ा अभिमान होने के कारण तुममें इतनी ढिठाई है और इसीसे तुम्हारी गँवारों जैसी शक्ल है। तुम सब बातों को जान नहीं सकते ॥ २ ॥

न हि राजा न जानीते कुम्भकर्ण नयानयौ ।
त्वं तु कैशोरकाद्धृष्टः केवलं वक्तुमिच्छसि ॥ ३ ॥

हे कुम्भकर्ण ! वाह हमारे राजा नीति अनीति नहीं जानते ! तुम लड़कपन ही से ढीठ हो रहे हो, इसीसे तुम ऐसी बातें कह दिया करते हो ॥ ३ ॥

स्थानं वृद्धिं च हानिं च देशकालविभागवित् ।
आत्मनश्च परेषां च बुध्यते [2]राक्षसर्षभः ॥ ४ ॥

---

१ बाहुशालिनः—चलायमानबाहोः । (शि०) २ राक्षसर्षभः—रावणः गो०)

रावण देशकालोचित कर्त्तव्यों को जानते हैं, वे अपनी और शत्रु की स्थिति को भलीभाँति परख सकते हैं, उनको यह भी मालूम है कि, किस काम के करने में उनका लाभ है और किसमें हानि है ॥ ४ ॥

यत्त्वशक्यं बलवता कर्तुं प्राकृतबुद्धिना ।
अनुपासितवृद्धेन कः कुर्यात्तादृशं बुधः ॥ ५ ॥

जिसने कभी बड़े बूढ़ों को सोहबत नहीं उठाई, ऐसे गँवार, जो काम अपने बल के गर्व में भर, कर डाला करते हैं, क्या बुद्धिमान जन वैसे कार्य को कभी कर सकते हैं ? ॥ ५ ॥

यांस्तु धर्मार्थकामांस्त्वं ब्रवीषि पृथगाश्रयान् ।
अनुबोद्धुं [1]स्वभावे तान्नहि [2]लक्षणमस्ति ते ॥ ६ ॥

जिन अर्थ, धर्म और काम को, तुमने परस्पर विरोधी होने के कारण एकजन द्वारा अनुष्ठान करने के अयोग्य बतलाया है, उन अर्थ, धर्म और काम सम्बन्धी कर्त्तव्यों को, तत्वतः समझने की तुममें स्वयं सामर्थ्य ही नहीं है ॥ ६ ॥

कर्म चैव हि सर्वेषां कारणानां प्रयोजकम् ।
श्रेयः पापीयसां चात्र फलं भवति कर्मणाम् ॥ ७ ॥

सुख के जो साधन हैं—अर्थात् धर्म, अर्थ और काम, इन सब का प्रयोजक अर्थात् उत्पादक कर्म है अर्थात् कर्म ही से इनकी उत्पत्ति होती है। एक ही कर्त्ता को पुण्य और पाप दोनों ही के शुभाशुभ फल भोगने पड़ते हैं ॥ ७ ॥

निःश्रेयसफलावेव धर्मार्थावितरावपि ।
अधर्मानर्थयोः प्राप्तिः फलं च प्रत्यवायिकम् ॥ ८ ॥

---

१ स्वभावेन—तत्वतो । (शि०) २ लक्षणं—सामर्थ्यं । (शि०)

धर्म और अर्थ चित्त की शुद्धि करने वाले होने के कारण मोक्ष के साधन माने जाते हैं। अर्थात् धर्म और अर्थ से मोक्ष की प्राप्ति होती है, इन्हींकी साधना से स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति होती है। किन्तु कभी कभी इनके करने से जो अधर्म एवं अनर्थ हुआ करता है, सो शास्त्रविहित कर्मानुष्ठान यथाविधि न करने के कारण हुआ करता है ॥ ८ ॥

ऐहलौकिकपारत्रं कर्म पुंभिर्निषेव्यते ।
कर्माण्यपि तु कल्यानि लभते काममास्थितः ॥ ९ ॥

लोग इस लोक और परलोक के लिये कार्य करते हैं और उनको उसका फल भी मिलता है। इसी प्रकार यथेच्छाचारी कर्मों से भी शुभ फल प्राप्त होता है। अतएव केवल शास्त्रविहित कर्म ही शुभफलप्रद हैं, शास्त्रनिषिद्ध कर्म नहीं. इसका कोई नियम नहीं है ॥ ९ ॥

तत्र क्लृप्तमिदं राज्ञा हृदि कार्यं मतं च नः ।
शत्रौ हि साहसं यत्स्यात्किमिवात्रापनीयताम् ॥ १० ॥

राक्षसराज ने जो कुछ किया है वह भलीभाँति सोच विचार कर और हम लोगों की सम्मति से किया है। फिर शत्रुओं के प्रति बल प्रकट करना अथवा उनसे युद्ध करना नीतिविरुद्ध कार्य नहीं अतः इसके लिये रोकना भी उचित नहीं ॥ १० ॥

एकस्यैवाभियाने तु हेतुर्यः कथितस्त्वया ।
तत्राप्यनुपपन्नं ते वक्ष्यामि यदसाधु च ॥ ११ ॥

तुम्हारे अहङ्कार पूर्वक इस कथन में कि, मैं अकेला ही शत्रुओं को जीत लूँगा, जो अनौचित्य और असाधुपन है, सो भी मैं बतलाये देता हूँ ॥ ११ ॥

येन पूर्वं जनस्थाने बहवोऽतिबला हताः ।
राक्षसा राघवं तं त्वं कथमेको जयिष्यसि ॥ १२ ॥

जिन राम ने अकेले ही जनस्थान में बहुत से अति बलवान राक्षसों को मार डाला, उन श्रीरामचन्द्र को तुम अकेले क्यों कर जीत लोगे ? ॥ १२ ॥

ये पुरा निर्जितास्तेन जनस्थाने महौजसः ।
राक्षसांस्तान्पुरे सर्वान्भीतानद्यापि पश्यसि ॥ १३ ॥

जो पराक्रमी राक्षस जनस्थान में श्रीरामचन्द्र जी द्वारा हराये गये थे, उन सब भयभीत राक्षसों को तुम अब भी देख सकते हो ॥ १३ ॥

तं सिंहमेवं संक्रुद्धं रामं दशरथात्मजम् ।
सर्पं सुप्तमिवाबुध्य प्रबोधयितुमिच्छसि ॥ १४ ॥
ज्वलन्तं तेजसा नित्यं क्रोधेन च दुरासदम् ।
कस्तं मृत्युमिवासह्यमासादयितुमर्हति ॥ १५ ॥

आश्चर्य है ! तुम जानबूझ कर सोये हुए क्रुद्ध सिंह अथवा सर्प की तरह राम को जगाना चाहते हो। जो राम अपने तेज से प्रदीप्त है और क्रुद्ध होने पर दुर्धर्ष है तथा मृत्यु की तरह असह्य है उसे कौन भयभीत कर सकता है । अथवा उसका सामना कौन कर सकता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

संशयस्थमिदं सर्वं शत्रोः प्रतिसमासने ।
एकस्य गमनं तत्र न हि मे रोचते भृशम् ॥ १६ ॥

ये समस्त राक्षस एकत्र होकर यदि राम का सामना करें तो जब इनके जीवित रहने में शङ्का है, तब तुम्हारा अकेले उनसे लड़ने के लिये जाना मुझे तो उचित नहीं जान पड़ता ॥ १६ ॥

हीनार्थः सुसमृद्धार्थं को रिपुं प्राकृतं यथा ।
निश्चित्य जीवितत्यागे वशमानेतुमिच्छति ॥ १७ ॥

क्योंकि ऐसा कौन मनुष्य होगा जो स्वयं साहाय्यरहित होकर साहाय्ययुक्त शत्रु को, तुच्छ समझ पराजित करना चाहेगा। हाँ, जिसे अपनी जान भार होगो, वह तो ऐसा अवश्य कर सकता है ॥ १७ ॥

यस्य नास्ति मनुष्येषु सदृशो राक्षसोत्तम ।
कथमाशंससे योद्धुं तुल्येनेन्द्रविवस्वतोः ॥ १८ ॥

हे राक्षसश्रेष्ठ ! जिसके समान कोई भी मनुष्य नहीं है और जो इन्द्र और यम की तरह पराक्रमी है, उसके साथ तुम अकेले किस तरह युद्ध करना चाहते हो ? ॥ १८ ॥

एवमुक्त्वा तु संरब्धं कुम्भकर्णं महोदरः ।
उवाच रक्षसां मध्ये रावणं लोकरावणम् ॥ १९ ॥

क्रुद्ध हो इस प्रकार महोदर ने कुम्भकर्ण को फटकार कर, राक्षसों के बीच बैठे हुए और लोकों को रुलाने वाले रावण से कहा ॥ १६ ॥

लब्ध्वा पुनस्त्वं वैदेहीं किमर्थं सम्प्रजल्पसि ।
यदीच्छसि तदा सीता वशगा ते भविष्यति ॥ २० ॥

जब सीता को तुम हथिया चुके हो तब कहा सुनी की आवश्यकता ही क्या है ? तुम जब चाहोगे तभी वह तुम्हारे वश में हो जायगी ॥ २० ॥

दृष्टः कश्चिदुपायो मे सीतोपस्थानकारकः।
रुचिरश्चेत्त्वया बुद्ध्या राक्षसेश्वर तं शृणु ॥ २१ ॥

हे राक्षसेश्वर! मैंने सीता को वश में करने का एक उपाय सोचा है, उसे सुनिये। सम्भव है आप भी उसे पसन्द कर लें ॥ २१ ॥

अहं द्विजिह्वः संह्लादी कुम्भकर्णो वितर्दनः।
पञ्च रामवधायैते निर्यान्त्वित्यवघोषय ॥ २२ ॥

वह यह है कि मैं, द्विजिह्व, संह्लादी, कुम्भकर्ण, वितर्दन, ये पाँच जन श्रीरामचन्द्र जी का वध करने को जा रहे हैं। नगर भर में आप इस बात की घोषणा करवा दें ॥ २२ ॥

ततो गत्वा वयं युद्धं दास्यामस्तस्य यत्नतः।
जेष्यामो यदि ते शत्रून्नोपायैः कृत्यमस्ति नः ॥ २३ ॥

फिर हम पाँचों जन जा कर सावधानता पूर्वक युद्ध करें। यदि हम जीत गये तब तो किसी दूसरे उपाय की आवश्यकता है ही नहीं ॥ २३ ॥

अथ जीवति नः शत्रुर्वयं च कृतसंयुगाः।
ततस्तदभिपत्स्यामो मनसा यत्समीक्षितम् ॥ २४ ॥

और यदि हम लोगों के घोर युद्ध करने पर भी आपका शत्रु जीता बच जाय तो हमने जो उपाय सोचा है वही काम में लाया जाय ॥ २४ ॥

वयं युद्धादिदेष्यामो रुधिरेण समुक्षिताः।
विदार्य स्वतनुं बाणै रामनामाङ्कितैः शितैः ॥ २५ ॥

वह यह कि, हम लोग रामनामाङ्कित तीक्ष्ण बाणों से अपनी देहों को क्षतविक्षत करा, और अङ्गों से रुधिर बहाते हुए, यहाँ आवेंगे ॥ २५ ॥

भक्षितो राघवोऽस्माभिर्लक्ष्मणश्चेति वादिनः ।
तव पादौ ग्रहीष्यामस्त्वं नः कामं प्रपूरय ॥ २६ ॥

और यह कहते हुए कि, हम लोगों ने राम लक्ष्मण को खा डाला, तुम्हारे दोनों चरण पकड़ लेंगे। तब तुम अपनी प्रसन्नता प्रकट करने को हम लोगों को पुरस्कारादि से पुरस्कृत करना ॥२६॥

ततोऽवघोषय पुरे गजस्कन्धेन पार्थिव ।
हतो रामः सह भ्राता ससैन्य इति सर्वतः ॥ २७ ॥

हे राजन् ! तदनन्तर तुम हाथी की पीठ पर चढ़ सारे नगर में यह घोषणा करना कि, समस्त वानरी सेना सहित राम और लक्ष्मण मारे गये ॥ २७ ॥

प्रीतो नाम ततो भूत्वा भृत्यानां त्वमरिन्दम ।
भोगांश्च परिवारांश्च कामांश्च वसु दापय ॥ २८ ॥

हे अरिन्दम ! तदनन्तर आप अपनी प्रसन्नता प्रकट करने को नौकर चाकरों को मुँहमाँगे (इनाम इकराम) पदार्थ सोना आदि दिलवा देना ॥ २८ ॥

ततो माल्यानि वासांसि वीराणामनुलेपनम् ।
पेयं च बहु योधेभ्यः स्वयं च मुदितः पिब ॥ २९ ॥

सैनिकों को मालाएँ, वस्त्र, भूषण, अङ्गों में लगाने के सुगन्धित पदार्थ और पीने के लिये मदिरा दिलवाना और स्वयं भी प्रसन्न हो पीना ॥ २९ ॥

ततोऽस्मिन्बहुलीभूते [1]कौलीने सर्वतो गते ।
भक्षितः ससुहृद्रामो राक्षसैरिति विश्रुते ॥ ३० ॥
प्रविश्याश्वास्य चापि त्वं सीतां रहसि सान्त्वय ।
धनधान्यैश्च कामैश्च रत्नैश्चैनां प्रलोभय ॥ ३१ ॥

जब यह बात सारे नगर में घर घर में प्रचारित हो जाय। और जब सीता भी यह सुन ले कि, राम को उसके सहायकों सहित राक्षसों ने खा डाला—तब तुम अशोकवाटिका में जा एकान्त में सीता को धीरज बँधा कर समझाना और उसे धनधान्य रत्न तथा अन्य अभीष्ट वस्तुएँ देने का प्रलोभन देना ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अनयोपधया राजन्भयशोकानुबन्धया ।
अकामा त्वद्वशं सीता नष्टनाथा गमिष्यति ॥ ३२ ॥

हे राजन् ! यद्यपि अपने पति के मारे जाने का संवाद सुन वह सीता भयभीत और शोकान्वित होगी, तथापि अनाथा सीता इच्छा न रहते भी इस कपटचाल से वश में हो जायगी ॥३२॥

रञ्जनीयं हि भर्तारं विनष्टमवगम्य सा ।
नैराश्यात्स्त्रीलघुत्वाच्च[2] त्वद्वशं प्रतिपत्स्यते ॥ ३३ ॥

सीता अपने प्यारे पति को नष्ट हुआ देख, सब प्रकार से निराश हो स्त्रीस्वभावसुलभ चपलतावश तुम्हारे वश में हो जायगी ॥३३॥

सा पुरा सुखसंवृद्धा सुखार्हा दुःखकर्शिता ।
त्वय्यधीनं सुखं ज्ञात्वा सर्वथोपगमिष्यति ॥ ३४ ॥

सीता पहिले सुख ही में पल कर बड़ी हुई है। वह सदा सुख पाने योग्य सीता अब दुःख से विकल है। सो जब उसे यह बात

---

१ कौलीने—लोकवादे। (गो०) २ स्त्रीलघुत्वाच—स्त्रीचापलात्। (गो०)

मालूम होगी कि, तुम्हारे अधीन होने से उसे सुख मिलेगा, तो सब प्रकार से तुम्हारे वश में हो जायगा ॥ ३४ ॥

एतत्सुनीतं मम दर्शनेन
रामं हि दृष्ट्वैव भवेदनर्थः ।
इहैव ते सेत्स्यति मोत्सुकोभूः
महानयुद्धेन सुखस्य लाभः ॥ ३५ ॥

हे राजन्! मैंने अच्छी तरह विचार लिया है कि, यदि तुम श्रीरामचन्द्र के सामने गये तो अनर्थ हो जायगा। तुम्हारा मनोरथ तो मेरे बतलाये हुए उपाय से घर बैठे पूरा होगा। युद्ध के लिये उत्कण्ठित मत हो। क्योंकि युद्ध करने से सुख न मिलकर दुःख ही मिलेगा ॥ ३५ ॥

अनष्टसैन्यो ह्यनवाप्तसंशयो
रिपूनयुद्धेन जयन्नराधिपः ।
यशश्च पुण्यं च महन्महीपते
श्रियं च कीर्त्तिं च चिरं समश्नुते ॥ ३६ ॥

इति चतुःषष्टितमः सर्गः ॥

हे राजन्! जो राजा अपने आप संशय में न पड़ कर और सेना को नष्ट न करा कर, बिना लड़े ही, शत्रु को जीत लेता है, वह विपुल यश, सुख, सम्पत्ति और चिरस्थायिनी कीर्ति सम्पादन करता है ॥३६॥

युद्धकाण्ड का चौसठवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—※—

पञ्चषष्टितमः सर्गः

—※—

स तथोक्तस्तु निर्भर्त्स्य कुम्भकर्णो महोदरम् ।
अब्रवीद्राक्षसश्रेष्ठं भ्रातरं रावणं ततः ॥ १ ॥

जब महोदर ने यह कहा, तब महाबलवान कुम्भकर्ण ने उसको डपट कर, राक्षसश्रेष्ठ अपने भाई रावण से कहा ॥ १ ॥

सोऽहं तव भयं घोरं वधात्तस्य दुरात्मनः ।
रामस्याद्य प्रमार्जामि निर्वैरो हि सुखी भव ॥ २ ॥

उस दुरात्मा राम को आज मैं मार कर तुम्हारा घोर भय दूर कर दूँगा । जब तुम्हारा बैरी न रहैगा तब तुम सुखी होना ॥ २ ॥

गर्जन्ति न वृथा शूरा निर्जला इव तोयदाः ।
पश्य सम्पाद्यमानं तु गर्जितं युधि कर्मणा ॥ ३ ॥

जो वीर होते हैं वे जलशून्य बादलों की तरह वृथा नहीं गरजते । मैंने जो गर्जन किया है, सो आप समर में मुझको अपनी गर्जना के अनुसार कार्य करते हुए देखना ॥ ३ ॥

न मर्षयति चात्मानं सम्भावयति नात्मना ।
अदर्शयित्वा शूरास्तु कर्म कुर्वन्ति दुष्करम् ॥ ४ ॥

जो शूर होते हैं वे दूसरे की अपमानजनक बातों का सुनना कभी सहन नहीं कर सकते और न वे अपनी प्रतिष्ठा ही के भूखे होते हैं । किन्तु शूर लोग कोई भी दुष्कर कर्म करने के पूर्व प्रकट न कर उसको कर के दिखला देते हैं ॥ ४ ॥

विक्लवानामबुद्धीनां राज्ञा पण्डितमानिनाम् ।
शृण्वता सादितमिदं त्वद्विधानां महोदर ॥ ५ ॥

हे महोदर ! कादर और अपने को पण्डित मानने वाले, किन्तु वास्तव में निर्बुद्धि राजा ही, तुम्हारी कही हुई जैसी बातें सुनना पसन्द करते हैं। अथवा तुम्हारा यह परामर्श उन्हें अच्छा लगता है ॥ ५ ॥

युद्धे कापुरुषैर्नित्यं भवद्भिः प्रियवादिभिः ।
राजानमनुगच्छद्भिः कृत्यमेतद्धि सादितम् ॥ ६ ॥

आप जैसे चापलूस और रणभीरु राजा को हाँ में हाँ मिलाने वाले लोगों ही ने तो यह सारा काम चौपट किया है ॥ ६ ॥

राजशेषा कृता लङ्का क्षीणः कोशो बलं हतम् ।
राजानमिममासाद्य सुहृच्चिह्नममित्रकम् ॥ ७ ॥

तुम्हारे समान बनावटी मित्रों ने इन (निर्बुद्धि) राजा को पा कर, सारा राजकोश बरबाद कर डाला, समस्त सेना मरवा डाली और लङ्का को निर्बल कर डाला। अब तो अकेले राजा ही शेष रह गये हैं ॥ ७ ॥

एष निर्याम्यहं युद्धमुद्यतः शत्रुनिर्जये ।
दुर्नयं भवतामद्य समीकर्तुमिहाहवे ॥ ८ ॥

तुम्हारी इस दुर्नीति को शान्त करने तथा शत्रु को युद्ध में परास्त करने के लिये मैं लड़ने को तैयार हूँ और अब मैं समरभूमि में जाता हूँ ॥ ८ ॥

एवमुक्तवतो वाक्यं कुम्भकर्णस्य धीमतः ।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं प्रहसन्राक्षसाधिपः ॥ ९ ॥

बुद्धिमान कुम्भकर्ण के इस प्रकार कहने पर रावण अट्टहास करता हुआ बोला ॥ ९ ॥

महोदरोऽयं रामात्तु परित्रस्तो न संशयः ।
न हि रोचयते तात युद्धं युद्धविशारद ॥ १० ॥

हे कुम्भकर्ण ! निश्चय ही यह महोदर राम से डरा हुआ है। हे तात ! हे युद्धविशारद ! इसीसे इसको राम के साथ लड़ना पसन्द नहीं है ॥ १० ॥

कश्चिन्मे त्वत्समो नास्ति सौहृदेन बलेन च ।
गच्छ शत्रुवधाय त्वं कुम्भकर्ण जयाय च ॥ ११ ॥

हे कुम्भकर्ण ! मेरे हितसाधन में और बल विक्रम में तुम्हारे समान मेरा शुभचिन्तक दूसरा कोई नहीं है। सो तुम अब शत्रु को मारने और विजयश्री प्राप्त करने के लिये यात्रा करो ॥ ११ ॥

तस्मात्तु भयनाशार्थं भवान्सम्बोधितो मया ।
अयं हि कालः सुहृदां राक्षसानामरिन्दम ॥ १२ ॥

इस भय को मिटाने के लिये ही मैंने आपको जगवाया है। हे अरिन्दम ! मेरे हितैषी मित्र राक्षसों के लिये शत्रु से लड़ने का यही तो समय है ॥ १२ ॥

तद्गच्छ शूलमादाय पाशहस्त इवान्तकः ।
वानरान्राजपुत्रौ च भक्षयादित्यतेजसौ ॥ १३ ॥

सो तुम अब हाथ में त्रिशूल ले, पाशधारी यम की तरह यात्रा करो और समरभूमि में जा उन समस्त वानरों और सूर्य के समान तेजस्वी उन दोनों राजपुत्रों को खा डालो ॥ १३ ॥

समालोक्य तु ते रूपं विद्रविष्यन्ति वानराः ।
रामलक्ष्मणयोश्चापि हृदये प्रस्फुटिष्यतः ॥ १४ ॥

तुम्हारी शक्ल देखते ही वानर भाग खड़े होंगे और राम लक्ष्मण का कलेजा भी दहल जायगा अर्थात् फट जायगा ॥ १४ ॥

एवमुक्त्वा महाराजः कुम्भकर्णं महाबलम् ।
पुनर्जातमिवात्मानं मेने राक्षसपुङ्गवः ॥ १५ ॥

इस प्रकार राक्षसश्रेष्ठ रावण ने कुम्भकर्ण से कह कर, अपना पुनर्जन्म हुआ सा माना ; अर्थात् उसको अपने विजय का अब पूर्ण विश्वास हो गया ॥ १५ ॥

कुम्भकर्णबलाभिज्ञो जानंस्तस्य पराक्रमम् ।
बभूव मुदितो राजा शशाङ्क इव निर्मलः ॥ १६ ॥

क्योंकि रावण, कुम्भकर्ण के बल पराक्रम को भली भाँति जानता था । सो वह मारे हर्ष के इस प्रकार खिल उठा जिस प्रकार निर्मल चन्द्रमा खिल उठता है ॥ १६ ॥

इत्येवमुक्तः संहृष्टो निर्जगाम महाबलः ।
राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा कुम्भकर्णः समुद्यतः ॥ १७ ॥

महाबली कुम्भकर्ण राजा के ऐसे वचन सुन, हर्षित हो राजाज्ञा से युद्धयात्रा करने को तैयार हो गया ॥ १७ ॥

आददे निशितं शूलं वेगाच्छत्रुनिवर्हणम् ।
सर्वकालायसं दीप्तं तप्तकाञ्चनभूषणम् ॥ १८ ॥

उसने शत्रुसंहारकारी पैना और चमचमाता हुआ शूल उठाया, जो काले लोहे का बना हुआ था और जो विशुद्ध सुवर्ण के बंदों से विभूषित था ॥ १८ ॥

इन्द्राशनिसमं भीमं वज्रप्रतिमगौरवम् ।
देवदानवगन्धर्वयक्षकिन्नरसूदनम् ॥ १९ ॥

वह शूल इन्द्र के वज्र के समान भयङ्कर और भारी था तथा देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों और किन्नरों का नाश करने वाला था ॥१९॥

रक्तमाल्यं महाधाम[1] स्वतश्चोद्गतपावकम् ।
आदाय निशितं शूलं शत्रुशोणितरञ्जितम् ॥ २० ॥

उसके ऊपर लाल फूलों की मालाएँ पड़ी हुई थीं और वह बड़ा तेजयुक्त (चमचमाता हुआ) था । क्योंकि उसमें से आप ही आप आग की चिनगारियाँ निकल रही थीं । शत्रु के रक्त से सना हुआ होने के कारण वह रक्त ही जैसे रंग का हो रहा था । उस पैने शूल को ले ॥ २० ॥

कुम्भकर्णो महातेजा रावणं वाक्यमब्रवीत् ।
गमिष्याम्यहमेकाकी तिष्ठत्विह बलं महत् ॥ २१ ॥

महातेजस्वी कुम्भकर्ण रावण से बोला—मैं अकेला ही जाऊँगा । तुम अपनी बड़ी सेना को यहीं रहने दो ॥ २१ ॥

अद्य तान्क्षुभितान्क्रुद्धो भक्षयिष्यामि वानरान् ।
कुम्भकर्णवचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥

मैं आज उन चंचल वानरों को क्रोध में भर खा डालूँगा । कुम्भकर्ण के ये वचन सुन, रावण ने उससे कहा— ॥ २२ ॥

सैन्यैः परिवृतो गच्छ शूलमुद्गरपाणिभिः ।
वानरा हि [2]महात्मानः शीघ्राः [3]सुव्यवसायिनः ॥२३॥

---

१ महाधाम—महातेजः । (गो०) २ महात्मानः—महाबुद्धयः । (गो०)
३ सुव्यवसायिनः—दृढनिश्चयाः । (गो०)

देखो, कहा मानो, अपने साथ सेना को और हाथ में शूल ले कर जाओ। क्योंकि वानर बड़े बुद्धिमान, वेगवान और दृढ़निश्चय वाले हैं अर्थात् वे जो विचार लेते हैं, उसे पूरा किये बिना नहीं रहते ॥ २३ ॥

एकाकिनं प्रमत्तं वा नयेयुर्दशनैः क्षयम् ।
तस्मात्परमदुर्धर्षैः सैन्यैः परिवृतो व्रज ॥ २४ ॥

कहीं ऐसा न हो कि, तुमको अकेला पा और मदमस्त देख, वे तुमको दाँतों से काट काट कर नष्ट कर डालें। अतः तुम परम दुर्धर्ष सेना को साथ लेकर जाओ ॥ २४ ॥

रक्षसामहितं सर्वं शत्रुपक्षं निषूदय ।
अथासनात्समुत्पत्य स्रजं मणिकृतान्तराम् ॥ २५ ॥
आबबन्ध महातेजाः कुम्भकर्णस्य रावणः ।
अङ्गदान्यङ्गुलीवेष्टान्वराण्याभरणानि च ॥ २६ ॥

और राक्षसों के अहितकारी समस्त शत्रुओं को मार डालो। यह कह महातेजस्वी रावण ने अपने आसन से उठ कर मणि की माला कुम्भकर्ण के गले में पहिना दी। फिर बाजू, अँगूठी आदि बढ़िया बढ़िया गहने ॥ २५ ॥ २६ ॥

हारं च शशिसङ्काशमाबबन्ध महात्मनः ।
दिव्यानि च सुगन्धीनि माल्यदामानि रावणः ॥ २७ ॥

तथा चन्द्रमा के समान उज्ज्वल मणिहार, कुम्भकर्ण को पहिनाये। फिर रावण ने दिव्य और सुगन्धित फूलों के गजरे पहिनाये ॥ २७ ॥

श्रोत्रे चासञ्जयामास श्रीमती चास्य कुण्डले ।
काञ्चनाङ्गदकेयूरनिष्काभरणभूषितः ।
कुम्भकर्णो बृहत्कर्णः सुहुतोऽग्निरिवाबभौ ॥ २८ ॥

कानों में उसके सुन्दर कुण्डल पहिनाये। सोने के बाजूबंदों और गले के आभूषणों से भूषित बड़े बड़े कानों वाला कुम्भकर्ण हवन की हुई अग्नि की तरह देख पड़ने लगा ॥ २८ ॥

श्रोणीसूत्रेण महता मेचकेन व्यराजत ।
अमृतोत्पादने नद्धो भुजङ्गेनेव मन्दरः ॥ २९ ॥

उसकी कमर में करधनी का काला डोरा ऐसा जान पड़ता था, मानों समुद्रमन्थन के लिये उद्यत वासुकी से लिपटा हुआ मन्दराचलपर्वत हो ॥ २६ ॥

स काञ्चनं भारसहं निवातं
विद्युत्प्रभं दीप्तमिवात्मभासा[1] ।
आबध्यमानः कवचं रराज
सन्ध्याभ्रसंवीत इवाद्रिराजः ॥ ३० ॥

बड़े बड़े आयुधों के प्रहार से भी कभी न टूटने वाला तथा जिसमें हवा तक न जा सके—ऐसे कवच को कुम्भकर्ण ने धारण किया। वह कवच अपनी कान्ति से बिजली की तरह चमकता था। उस कवच को पहिन कुम्भकर्ण ऐसा जान पड़ता था, मानों सन्ध्यासमय के बादलों के रंग से रंगा हिमालय पर्वत हो ॥ ३० ॥

---

[1] आत्मभासा—कवचकान्त्या। (गो०)

सर्वाभरणनद्धाङ्गः शूलपाणिः स राक्षसः ।
त्रिविक्रमकृतोत्साहो नारायण इवाबभौ ॥ ३१ ॥

समस्त अंगों में आभूषण धारण किये हुए तथा हाथ में शूल लिये हुए वह राक्षस वैसा ही देख पड़ता था जैसे कि, तीन पग पृथिवी नापने के समय नारायण देख पड़े थे ॥ ३१ ॥

भ्रातरं सम्परिष्वज्य कृत्वा चाभिप्रदक्षिणम् ।
प्रणम्य शिरसा तस्मै सम्प्रतस्थे महाबलः ॥ ३२ ॥

महाबली कुम्भकर्ण भाई को गले लगा और उसकी प्रदक्षिणा कर तथा सिर झुका प्रणाम कर वहाँ से चला ॥ ३२ ॥

निष्पतन्तं महाकायं महानादं महाबलम् ।
तमाशीर्भिः प्रशस्ताभिः प्रेषयामास रावणः ॥ ३३ ॥

उस विशाल शरीरधारी, महाबलवान एवं महानाद करने वाले कुम्भकर्ण को रावण ने अनेक मङ्गलसूचक आशीर्वाद दे बिदा किया ॥ ३३ ॥

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैः सैन्यैश्चापि वरायुधैः ।
तं गजैश्च तुरङ्गैश्च स्यन्दनैश्चाम्बुदस्वनैः ।
अनुजग्मुर्महात्मानं रथिनो रथिनां वरम् ॥ ३४ ॥

रथियों में श्रेष्ठ रथी कुम्भकर्ण के पीछे पीछे शङ्ख, दुन्दभी बजाती हुई तथा श्रेष्ठ आयुधों को लिये हुए सेना गयी। बड़े बड़े राक्षस हाथियों, घोड़ों और मेघ की तरह गड़गड़ाहट कर के चलने वाले रथों में बैठ कर, उसके पीछे हो लिये ॥ ३४ ॥

सर्पैरुष्ट्रैः खरैरश्वैः सिंहद्विपमृगद्विजैः ।
अनुजग्मुश्च तं घोरं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ ३५ ॥

बहुत से राक्षस सर्पों, ऊँटों, खच्चरों, घोड़ों, सिंहों, हाथियों, मृगों, हंसादि पक्षियों पर सवार हो, उस भयङ्कर एवं महाबली कुम्भकर्ण के पीछे हो लिये ॥ ३५ ॥

स पुष्पवर्षैरवकीर्यमाणो
धृतातपत्रः शितशूलपाणिः ।
मदोत्कटः शोणितगन्धमत्तो
विनिर्ययौ दानवदेवशत्रुः ॥ ३६ ॥

उस समय उसके ऊपर फूल बरसाये गये। सिर पर छत्र ताना गया। हाथ में बड़ा पैना शूल लिये स्वाभाविक मद से मत्त तथा महाविकट रुधिर की गन्ध से मस्त, देव और दानवों का बैरी कुम्भकर्ण चला ॥ ३६ ॥

पदातयश्च बहवो महानादा महाबलाः ।
अन्वयू राक्षसा भीमा भीमाक्षाः शस्त्रपाणयः ॥ ३७ ॥

उसके साथ बहुत से पैदल सैनिक भी हो लिये थे। वे बड़ी ज़ोर से गरजने वाले महाबलवान भयङ्कर एवं भयङ्कर नेत्र वाले राक्षस हाथों में शस्त्र लिये हुए थे ॥ ३७ ॥

रक्ताक्षाः सुमहाकाया नीलाञ्जनचयोपमाः ।
शूलानुद्यम्य खड्गांश्च निशितांश्च परश्वधान् ॥ ३८ ॥

उन बड़े डीलडौल के राक्षसों के नेत्र लाल लाल थे और वे सब काजल के ढेर के समान जान पड़ते थे। वे शूल, तलवार, परश्वध, उठाये हुए जा रहे थे ॥ ३८ ॥

भिन्दिपालांश्च परिघान्गदाश्च मुसलानि च ।
तालस्कन्धांश्च विपुलान्क्षेपनीयान्दुरासदान् ॥ ३९ ॥

भिन्दिपाल, परिघ, गदा, मूसल, तालस्कन्ध (ताल वृक्ष की डालियाँ) तथा बड़े बड़े अस्त्र फैंकने के दुर्धर्ष आयुधविशेषों को वे लिये हुए थे ॥ ३६ ॥

अथान्यद्वपुरादाय दारुणं रोमहर्षणम् ।
निष्पपात महातेजाः कुम्भकर्णो महाबलः ॥ ४० ॥

महातेजस्वी एवं महाबलवान कुम्भकर्ण इस समस्त सेना को साथ ले तथा बड़ा भयङ्कर रोमाञ्चकारी रूप बना कर चला ॥ ४० ॥

धनुःशतपरीणाहः स षट्शतसमुच्छ्रितः ।
रौद्रः शकटचक्राक्षो महापर्वतसन्निभः ॥ ४१ ॥

उस समय उसके शरीर की चौड़ाई सौ धनुष, ऊँचाई छः सौ धनुष थी। उसकी भयङ्कर आँखें छकड़े के पहिये के समान थीं। वह एक बड़े ऊँचे पर्वत के समान जान पड़ता था ॥ ४१ ॥

[1]सन्निपत्य च रक्षांसि दग्धशैलोपमो महान् ।
कुम्भकर्णो महावक्त्रः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४२ ॥

साथ चलने वाले सैनिकों के पास जा; जले हुए पर्वत की तरह और विशाल मुख वाला कुम्भकर्ण, हँस कर कहने लगा ॥ ४२ ॥

अद्य वानरमुख्यानां तानि यूथानि भागशः ।
निर्दहिष्यामि संक्रुद्धः शलभानिव पावकः ॥ ४३ ॥

---

१ सन्निपत्य—स्वानुगमनायोद्युक्तानां राक्षसानां समीपं गत्वा। (गो०)

आज मैं कुपित हो वानरी सेनाओं और उनके यूथपतियों को वैसे ही भस्म कर डालूँगा, जैसे आग पतंगों को भस्म कर देती है ॥ ४३ ॥

नापराध्यन्ति मे कामं वानरा वनचारिणः ।
जातिरस्मद्विधानां सा पुरोद्यानविभूषणम् ॥ ४४ ॥

अथवा वे वनवासी वानर अपने मन से तो मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ते। बल्कि वे तो हम जैसे लोगों के नगरों और फुलवाड़ियों की एक प्रकार की शोभा हैं ॥ ४४ ॥

पुररोधस्य मूलं तु राघवः सहलक्ष्मणः ।
हते तस्मिन्हतं सर्वं तं वधिष्यामि संयुगे ॥ ४५ ॥

हमारी पुरी को घेरने वाले तो असल में राम और लक्ष्मण हैं। उनके मारे जाने से अन्य सब मरे समान ही हैं—अतः मैं युद्ध में उन्हीं दोनों को मारूँगा ॥ ४५ ॥

एवं तस्य ब्रुवाणस्य कुम्भकर्णस्य राक्षसाः ।
नादं चक्रुर्महाघोरं कम्पयन्त इवार्णवम् ॥ ४६ ॥

जब कुम्भकर्ण ने उन राक्षसों से इस प्रकार कहा, तब वे राक्षस मानों समुद्र को क्षुब्ध करते हुए, बड़े ज़ोर से नाद करने लगे ॥ ४६ ॥

तस्य निष्पततस्तूर्णं कुम्भकर्णस्य धीमतः ।
बभूवुर्घोररूपाणि निमित्तानि समन्ततः ॥ ४७ ॥

बुद्धिमान कुम्भकर्ण के चलने के समय चारों ओर बड़े भयङ्कर अशकुन हुए ॥ ४७ ॥

उल्काशनियुता मेघा बभूवुर्गर्दभारुणाः[1] ।
ससागरवना चैव वसुधा समकम्पत ॥ ४८ ॥

गधे के रंग की तरह धुमैले रंग के बादलों से उल्कापात और वज्रपात हुआ । सागर और वनों सहित धरती काँप उठी ॥ ४८ ॥

घोररूपाः शिवा नेदुः सज्वालकवलैर्मुखैः ।
मण्डलान्यपसव्यानि बबन्धुश्च विहङ्गमाः ॥ ४९ ॥

मुख में अंगार रखे हुए भयङ्कर रूप वाली गीदड़ियाँ चिल्लाने लगीं । पक्षी दहिनी ओर चक्कर काटने लगे ॥ ४९ ॥

निष्पपात च गृध्रोऽस्य शूले वै पथि गच्छतः ।
प्रास्फुरन्नयनं चास्य सव्यो बाहुश्च कम्पते ॥ ५० ॥

मार्ग में जाते हुए कुम्भकर्ण के शूल पर एक गीध आ गिरा । कुम्भकर्ण का वाम नेत्र और वाम भुजा फड़कने लगी ॥ ५० ॥

निपपात तदा चोल्का ज्वलन्ती भीमनिःस्वना ।
आदित्यो निष्प्रभश्चासीन्न प्रवाति सुखोऽनिलः ॥५१॥

भयङ्कर शब्द के साथ दहकती हुई उल्का आकाश से कुम्भकर्ण के सामने आ गिरी । उस समय सूर्य की चमक लुप्त हो गयी और सुखदायी पवन का चलना भी बंद हो गया ॥ ५१ ॥

अचिन्तयन्महोत्पातानुत्थितान्रोमहर्षणान् ।
निर्ययौ कुम्भकर्णस्तु कृतान्तबलचोदितः ॥ ५२ ॥

इन रोमाञ्चकारी अशकुनों के होने की तिल बराबर भी परवाह न कर, कुम्भकर्ण मृत्यु की प्रेरणा से चला ही गया ॥ ५२ ॥

---

[1] गर्दभारुणाः—गर्धभवदव्यक्तरागाः । (गो०) गर्दभधूम्राः । (रा०)

स लङ्घयित्वा प्राकारं पद्भ्यां पर्वतसन्निभः ।
ददर्शाभ्रघनप्रख्यं वानरानीकमद्भुतम् ॥ ५३ ॥

पैदल जाते हुए पर्वताकार कुम्भकर्ण ने, पुरी के परकोटे की दीवार नांघी (अर्थात् फाटक से नहीं निकला) और लङ्का के बाहिर जा उसने मेघमण्डल के समान वानरों की अद्भुत सेना देखी ॥ ५३ ॥

ते दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं वानराः पर्वतोपमम् ।
वायुनुन्ना इव घना ययुः सर्वा दिशस्तदा ॥ ५४ ॥

पर्वत के समान लंबे कुम्भकर्ण को देख, वे वानर चारों ओर वैसे ही भागे जैसे हवा से उड़ाये बादल भागते हैं ॥ ५४ ॥

तद्वानरानीकमतिप्रचण्डं
दिशो द्रवद्भिन्नमिवाभ्रजालम् ।
स कुम्भकर्णः समवेक्ष्य हर्षान्
ननाद भूयो घनवद्घनाभः ॥ ५५ ॥

उस प्रचण्ड वानरी सेना को चारों ओर फटे बादलों की तरह तितर बितर होते देख, कुम्भकर्ण हर्ष के मारे मेघ की तरह गंभीर शब्द से गर्जा ॥ ५५ ॥

ते तस्य घोरं निनदं निशम्य
यथा निनादं दिवि वारिदस्य ।
पेतुर्धरण्यां बहवः प्लवङ्गा
निकृत्तमूला इव सालवृक्षाः ॥ ५६ ॥

आकाश में गर्जते हुए, मेघों की गर्जना के समान कुम्भकर्ण की भयङ्कर गर्जना सुन, बहुत से वानर भूमि पर वैसे ही गिर पड़े जैसे जड़ से कटा हुआ साल का पेड़ गिर पड़ता है ॥ ५६ ॥

विपुलपरिघवान्स कुम्भकर्णो
रिपुनिधनाय विनिःसृतो महात्मा ।
कपिगणभयमाददत्सुभीमं
[1]प्रभुरिव किङ्करदण्डवान्युगान्ते ॥ ५७ ॥

इति पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥

शत्रु का विनाश करने के लिये हाथ में विशाल शूल लिये महाबलवान कुम्भकर्ण को आते देख, वानरगण उसी प्रकार महात्रस्त हुए, जिस प्रकार प्रलयकाल में दूतों सहित आये हुए दण्डधारी यम को देख प्रजाजन त्रस्त होते हैं ॥ ५७ ॥

युद्धकाण्ड का पैंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—*—

षट्षष्टितमः सर्गः

—*—

स लङ्घयित्वा प्राकारं गिरिकूटोपमो महान् ।
निर्ययौ नगरात्तूर्णं कुम्भकर्णो महाबलः ॥ १ ॥

पर्वताकार महावीर कुम्भकर्ण लङ्का के परकोटे की दीवाल को लाँघ, बड़ी शीघ्रता से लङ्का के बाहिर निकला ॥ १ ॥

---

१ प्रभुः—अन्तकः । (गो०) कालाग्निरुद्र इव । (रा०)

स ननाद महानादं समुद्रमभिनादयन् ।
जनयन्निव [1]निर्घातान्विधमन्निव पर्वतान् ॥ २ ॥

कुम्भकर्ण वज्रपात के शब्द की तरह बड़े ज़ोर से गर्ज कर, समुद्र को खलबलाने और पहाड़ों को ढहाने लगा ॥ २ ॥

तमवध्यं मघवता यमेन वरुणेन वा ।
प्रेक्ष्य भीमाक्षमायान्तं वानरा विप्रदुद्रुवुः ॥ ३ ॥

इन्द्र, यम, और वरुण से अवध्य भयङ्कर नेत्रों वाले कुम्भकर्ण को आते देख, वानर लोग भागने लगे ॥ ३ ॥

तांस्तु विप्रद्रुतान्दृष्ट्वा वालिपुत्रोऽङ्गदोऽब्रवीत् ।
नलं नीलं गवाक्षं च कुमुदं च महाबलम् ॥ ४ ॥

वानरों को भागते देख, वालिपुत्र अङ्गद ने नल, नील, गवाक्ष और महाबलवान कुमुद से कहा ॥ ४ ॥

आत्मानमत्र विस्मृत्य वीर्याण्यभिजनानि च ।
क्व गच्छत भयत्रस्ताः प्राकृता हरयो यथा ॥ ५ ॥

हे वानरो ! तुम लोग अपने पराक्रम को और अपने उच्च कुलों को भूल कर और भयभीत हो, साधारण वानर की तरह कहाँ भागे जाते हो ! ॥ ५ ॥

साधु सौम्या निवर्तध्वं किं प्राणान्परिरक्षथ ।
नालं युद्धाय वै रक्षो महतीयं विभीषिका ॥ ६ ॥

---

१ निर्घातान्—अशनिघोषान् । (रा०) २. विभीषिका—भयजनकः कृत्रिमपुरुषवेषः । (गो०)

हे सौम्य-स्वभाव-वालो ! वाह ! वाह !! लौटो ! लौटो !! क्या अपने प्राण बचाना चाहते हो ? यह कोई लड़ने वाला राक्षस नहीं है, बल्कि तुम लोगों को डराने के लिये यह एक बड़ा भारी बनावटी पुरुष खड़ा किया गया है ॥ ६ ॥

महतीमुत्थितामेनां राक्षसानां विभीषिकाम् ।
विक्रमाद्विधमिष्यामो निवर्तध्वं प्लवङ्गमाः ॥ ७ ॥

राक्षसों के इस खड़े हुए बड़े भारी बनावटी पुरुष को हम लोग अपने पराक्रम से अभी नष्ट किये डालते हैं। तुम सब वानर लौट आओ ॥ ७ ॥

कृच्छ्रेण तु समाश्वस्य संगम्य च ततस्ततः ।
वृक्षाद्रिहस्ता हरयः सम्प्रतस्थू रणाजिरम् ॥ ८ ॥

इस प्रकार बड़ी कठिनाई से जब अङ्गद ने उनके पास जा उनको धीरज बँधाया ; तब वे वानर इधर उधर से पेड़ों और शिलाओं को हाथों में ले लड़ने के लिये समरभूमि में गये ॥ ८ ॥

ते निवृत्य तु संक्रुद्धाः कुम्भकर्णं वनौकसः ।
निजघ्नुः परमक्रुद्धाः समदा इव कुञ्जराः ॥ ९ ॥

वे वानर कुम्भकर्ण के ऊपर वैसे ही प्रहार करने लगे जैसे अत्यन्त क्रुद्ध हो पागल हाथी चोट करता है ॥ ९ ॥

प्रांशुभिर्गिरिशृङ्गैश्च शिलाभिश्च महाबलः ।
पादपैः पुष्पिताग्रैश्च हन्यमानो न कम्पते ॥ १० ॥

उस समय वानर महाबली कुम्भकर्ण को बड़े पर्वत शिखरों, शिलाओं और फूले हुए वृक्षों से मार रहे थे, किन्तु वह तिल भर भी विचलित नहीं होता था ॥ १० ॥

तस्य गात्रेषु पतिता भिद्यन्ते शतशः शिलाः ।
पादपाः पुष्पिताग्राश्च भग्नाः पेतुर्महीतले ॥ ११ ॥

प्रत्युत उसके शरीर में टकरा कर सैकड़ों शिलाएँ चूर चूर हो जाती थीं और फूले हुए वृक्ष टूट कर पृथिवी पर गिर पड़ते थे ॥ ११ ॥

सोऽपि सैन्यानि संक्रुद्धो वानराणां महौजसाम् ।
ममन्थ परमायत्तो वनान्यग्निरिवोत्थितः ॥ १२ ॥

कुम्भकर्ण भी अत्यन्त क्रुद्ध हो बड़े बड़े बलवान वानरों की सेना को वैसे ही नष्ट कर रहा था, जैसे वन में लगी हुई आग वन को नष्ट करती है ॥ १२ ॥

लोहिताद्रास्तु बहवः शेरते वानरर्षभाः ।
निरस्ताः पतिता भूमौ ताम्रपुष्पा इव द्रुमाः ॥ १३ ॥

बहुत से वानरश्रेष्ठ रक्त में भींग कर समरभूमि में पड़े ऐसे जान पड़ते थे, मानों लाल फूलों से लदे और कटे हुए वृक्ष पड़े हों ॥ १३ ॥

लङ्घयन्तः प्रधावन्तो वानरा नावलोकयन् ।
केचित्समुद्रे पतिताः केचिद्गगनमाश्रिताः ॥ १४ ॥

उसकी मार को न सह कर वानर इधर उधर न देख भाग रहे थे। उनमें से बहुत से तो समुद्र में गिर पड़े, बहुत से उड़ कर आकाश में चले गये ॥ १४ ॥

वध्यमानास्तु ते वीरा राक्षसेन बलीयसा ।
सागरं येन ते तीर्णाः पथा तेन प्रदुद्रुवुः ॥ १५ ॥

उस बलवान कुम्भकर्ण द्वारा मारे गये वीर वानर उसी पुल पर से भागे जाते थे, जिस पर से उन लोगों ने समुद्र पार किया था ॥ १५ ॥

ते स्थलानि तथा निम्नं विषण्णवदनाभयात् ।
ऋक्षा वृक्षान्समारूढाः केचित्पर्वतमाश्रिताः ॥ १६ ॥

वे उदास मुख और भयीत वानर गढ़ों में तथा जहाँ जा सके वहाँ भाग कर चले गये। रीछों में से बहुत से पेड़ों पर चढ़ गये और कोई कोई पहाड़ों पर भाग गये ॥ १६ ॥

ममज्जुरर्णवे केचिद्गुहाः केचित्समाश्रिताः ।
*निपेतुः प्लवगाः केचित्केचिन्नैवावतस्थिरे ॥ १७ ॥

कोई कोई समुद्र में डूब गये, कोई कोई पहाड़ की गुफाओं में जा छिपे। कोई कोई वानर गिर पड़े और कोई कोई तो वहाँ खड़े भी न रह सके ॥ १७ ॥

[केचिद्भूमौ निपतिताः केचित्सुप्ता मृता इव ।]
तान्समीक्ष्याङ्गदो भग्नान्वानरानिदमब्रवीत् ॥ १८ ॥

कोई कोई भूमि पर गिर पड़े और कोई मुर्दे की तरह लेट रहे। तब उन भागते हुए वानरों से अङ्गद यह बोले ॥ १८ ॥

अवतिष्ठत युध्यामो निवर्तध्वं प्लवङ्गमाः ।
भग्नानां वो न पश्यामि परिगम्य महीमिमाम् ॥ १९ ॥

हे वानरों! अच्छा अब तुम ठहरो, हम लड़ेंगे। तुम लोग लौट आओ। तुम लोग भाग कर जा ही कहाँ सकते हो? सारी पृथिवी की परिक्रमा लगाने पर भी तुम्हें रक्षित स्थान मिलना कठिन है ॥ १९ ॥

---

* पाठान्तरे—" निषेदुः । "

स्थानं सर्वे निवर्तध्वं किं प्राणान्परिरक्षथ ।
निरायुधानां द्रवतामसङ्गगतिपौरुषाः ॥ २० ॥

अपनी अपनी जगहों पर लौट आओ। इस प्रकार प्राण बचाने से क्या होगा? हे अप्रतिम-गतवान-पुरुषार्थ-युक्त वानरो! तुम यदि अपने आयुधों को पटक कर, इस तरह भाग अपने प्राण बचाओगे ॥ २० ॥

दारा ह्यपहसिष्यन्ति स वै घातस्तु जीविनाम् ।
कुलेषु जाताः सर्वे स्म विस्तीर्णेषु महत्सु च ॥ २१ ॥

तो तुम्हारी स्त्रियाँ तुम्हारी इस कायरता पर हँसेंगी और उनका वह हँसना ही तुम्हारे लिये मरने के समान होगा। फिर तुम लोग तो ऐसे कुल में उत्पन्न हुए हो, जो बहुत बड़ा और विस्तृत कहलाता है ॥ २१ ॥

क्व गच्छथ भयत्रस्ता हरयः प्राकृता यथा ।
अनार्याः खलु यद्भीतास्त्यक्त्वा वीर्यं प्रधावत ॥ २२ ॥

हे वानरों! तुम भयभीत हो साधारण वानरों की तरह कहाँ भागे जाते हो? तुम लोग अपना विपुल पराक्रम भूल कर त्रस्त हो गये हो। अतः तुम निश्चय ही बड़े नीच हो ॥ २२ ॥

विकत्थनानि वो यानि तदा वै जनसंसदि ।
तानि वः क्व नु यातानि सोदग्राणि महान्ति च ॥२३॥

लोगों के सामने उस समय तुमने अपनी उग्रता दिखलाते हुए जो बड़ी डींगे हाँकी थीं, वे सब इस समय कहाँ चली गयीं? ॥२३॥

भीरुप्रवादाः श्रूयन्ते यस्तु जीवति धिक्कृतः ।
मार्गः सत्पुरुषैर्जुष्टः सेव्यतां त्यज्यतां भयम् ॥ २४ ॥

लड़ाई में डरपोंक योद्धा की बड़ी निन्दा सुनी जाती है। युद्धक्षेत्र से जो वीर भाग कर अपने प्राण बचाता है, उसके जीने को धिक्कार है। अतएव तुम भी भय त्याग कर, उस मार्ग का अनुसरण करो, जिसका शूर लोग अनुसरण करते हैं ॥ २४ ॥

शयामहेऽथ निहताः पृथिव्यामल्पजीविताः ।
दुष्प्रापं ब्रह्मलोकं वा प्राप्नुमो युधि सूदिताः ॥ २५ ॥

हम लोग भाग कर प्राण बचावें तो कितने दिनों को, जीवन तो थोड़े ही दिनों का है। सो यदि हम लड़ाई में मारे ही गये तो हमारा शरीर तो भूमि पर पड़ा पड़ा सोया करेगा और हमारा आत्मा उस ब्रह्मलोक में जायगा, जो हरेक को मिलना दुर्लभ है ॥२५॥

सम्प्राप्नुयामः कीर्तिं वा निहत्वा शत्रुमाहवे ।
जीवितं वीरलोकस्य* भोक्ष्यामो वसु वानराः ॥ २६ ॥

हे वानरो! यदि हम शत्रु को मारेंगे, तो संसार में हम लोगों का नाम होगा और यदि स्वयं मारे गये तो वीरों को प्राप्त होने योग्य ब्रह्मलोक के ऐश्वर्य को भोगेंगे ॥ २६ ॥

न कुम्भकर्णः काकुत्स्थं दृष्ट्वा जीवन्गमिष्यति ।
दीप्यमानमिवासाद्य पतङ्गो ज्वलनं यथा ॥ २७ ॥

श्रीरामचन्द्र जी की दृष्टि के सामने पड़, यह कुम्भकर्ण जीता जागता न लौट पावेगा। यह श्रीरामचन्द्र जी के सामने, पड़ उसी प्रकार नष्ट होगा, जिस प्रकार जलती हुई आग को पाकर पतङ्ग नष्ट हो जाता है ॥ २७ ॥

पलायनेन चोद्दिष्टाः प्राणान्रक्षामहे वयम् ।
एकेन बहवो भग्ना यशो नाशं गमिष्यति ॥२८॥

---

* पाठान्तरे—"मोक्ष्यामो।"

यदि हम लोग भाग कर प्राण बचावें, तो लोग कहेंगे कि, अकेले कुम्भकर्ण ने ऐसे ऐसे बहुत से बलवानों को भगा दिया। इससे हमारी नामवरी पर धब्बा लग जायगा ॥ २८ ॥

एवं ब्रुवाणं तं शूरमङ्गदं कनकाङ्गदम् ।
द्रवमाणास्ततो वाक्यमूचुः शूरविगर्हितम् ॥ २९ ॥

सोने के बाज़ू धारण किये हुए शूरश्रेष्ठ अङ्गद के इन वचनों को सुन, भागते हुए वानरों ने ऐसे वचन कहे, जिनकी शूर लोग निन्दा करते हैं या शूर लोग जिनका कहना बुरा समझते हैं ॥२९॥

कृतं नः कदनं घोरं कुम्भकर्णेन रक्षसा ।
न स्थानकालो गच्छामो दयितं जीवितं हि नः ॥३०॥

राक्षस कुम्भकर्ण युद्ध कर रहा है, इस समय हम लोग उसके सामने किसी प्रकार नहीं ठहर सकते। हम तो जाँयगे। क्योंकि हमको अपने प्राण प्यारे हैं ॥ ३० ॥

एतावदुक्त्वा वचनं सर्वे ते भेजिरे दिशः ।
भीमं भीमाक्षमायान्तं दृष्ट्वा वानरयूथपाः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार के वचन कह और भयङ्कर रूप और भयङ्कर आँखों वाले कुम्भकर्ण को अपना पीछा करते देख, वे सब वानरयूथपति चारों ओर भागे ॥३१॥

द्रवमाणास्तु ते वीरा अङ्गदेन वलीमुखाः ।
सान्त्वैश्चैवानुमानैश्च[1] ततः सर्वे निवर्तिताः ॥ ३२ ॥

---

१ अनुमानैर्नागपाशमुक्तिप्रहृतालभेदरूपैर्जयानुतापकैः। (शि०)

किन्तु अङ्गद ने तिस पर भी श्रीरामचन्द्र जी के पराक्रम औ
शक्ति का बखान कर (नागपाश से मुक्त होना, सात ताल वृक्षों के
वेधना) समस्त वानरों को समझा बुझा कर लौटाया ॥ ३२ ॥

प्रहर्षमुपनीताश्च वालिपुत्रेण धीमता ।
आज्ञाप्रतीक्षास्तस्थुश्च सर्वे वानरयूथपाः ॥ ३३ ॥

बुद्धिमान अङ्गद ने उन सब को उत्साहित किया, जिससे वे स
वानरयूथपति वालिपुत्र की आज्ञा की प्रतीक्षा करते हुए ठह
रहे ॥३३॥

ऋषभशरभमैन्दधूम्रनीलाः
कुमुदसुषेणगवाक्षरम्भताराः ।
द्विविदपनसवायुपुत्रमुख्याः
त्वरिततराभिमुखं रणं प्रयाताः ॥ ३४ ॥

इति षट्षष्टितमः सर्गः ॥

तदनन्तर ऋषभ, शरभ, मैन्द, धूम्र, नील, कुमुद, सुषेण
गवाक्ष, रम्भ, तार, द्विविद, पनस, हनुमानादि प्रमुख वानरयूथपत
पति शीघ्रता से रणक्षेत्र की ओर चले ॥ ३४ ॥

युद्धकाण्ड का छाछठवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—*—

सप्तषष्टितमः सर्गः

—*—

ते निवृत्ता महाकायाः श्रुत्वाङ्गदवचस्तदा ।
[1]नैष्ठिकीं बुद्धिमासाद्य सर्वे संग्रामकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥

वे विशाल शरीरधारी वानर, अङ्गद की बातें सुन लौट आये और " कार्यं वा साधयेयं शरीरं वा पातयेयं " का दृढ़ निश्चय कर, लड़ने की अभिलाषा करने लगे ॥ १ ॥

समुदीरितवीर्यांश्च समारोपितविक्रमाः ।
पर्यवस्थापिता वाक्यैरङ्गदेन वलीमुखाः ॥ २ ॥

तदनन्तर अङ्गद के कहने से वे वानर लड़ने के लिये तैयार हो गये और पुनः पराक्रम का आश्रय ले, अपने अपने बल और पराक्रम का बखान करने लगे ॥ २ ॥

प्रयाताश्च गता हर्षं मरणे कृतनिश्चयाः ।
चक्रुः सुतुमुलं युद्धं वानरास्त्यक्तजीविताः ॥ ३ ॥

वे सब वानर हथेली पर अपनी जानों को रख, प्रसन्न होते हुए आगे बढ़े। वे अपने बचने की आशा त्याग घोर युद्ध करने लगे ॥ ३ ॥

अथ वृक्षान्महाकायाः सानूनि सुमहान्ति च ।
वानरास्तूर्णमुद्यम्य कुम्भकर्णमभिद्रुताः ॥ ४ ॥

---

१ नैष्ठिकीं—मरणव्यवसायिनीमित्यर्थः । । (गो०)

बड़े बड़े वृक्ष और पर्वतशिखरों को बड़ी तेज़ी से उखाड़ तथा ले ले कर, वे कुम्भकर्ण की ओर दौड़े ॥ ४ ॥

स कुम्भकर्णः संक्रुद्धो गदामुद्यम्य वीर्यवान् ।
अर्दयन्सुमहाकायः समन्ताद्व्याक्षिपद्रिपून् ॥ ५ ॥

उधर बलवान विशालकाय कुम्भकर्ण भी अत्यन्त क्रुद्ध हो और हाथ में गदा उठा कर, शत्रुओं को मार कर चारों ओर छितराने लगा ॥ ५ ॥

शतानि सप्त चाष्टौ च सहस्राणि च वानराः ।
[1]प्रकीर्णाः शेरते भूमौ कुम्भकर्णेन [2]पोथिताः ॥ ६ ॥

कुम्भकर्ण की मार से एक एक बार में सात सात, आठ आठ, सौ सौ और हज़ार हज़ार वानरों के दल बेकाम हो धराशायी होने लगे ॥ ६ ॥

षोडशाष्टौ च दश च विंशत्त्रिंशत्तथैव च ।
परिक्षिप्य च बाहुभ्यां खादन्विपरिधावति ॥ ७ ॥

फिर वह आठ आठ, दस दस, सोलह सोलह, बीस बीस और तीस तीस वानरों को हाथों से पकड़ पकड़ कर और दौड़ दौड़ कर खाने लगा ॥ ७ ॥

भक्षयन्भृशसंक्रुद्धो गरुडः पन्नगानिव ।
कृच्छ्रेण च समाश्वस्ताः सङ्गम्य च ततस्ततः ॥ ८ ॥

वह अत्यन्त क्रुद्ध हो वानरों को वैसे ही खा रहा था, जैसे गरुड़ साँपों को खाते हैं । अब तो वानर बड़ी कठिनता से धैर्य धारण कर एकत्र हुए ॥ ८ ॥

---

१ प्रकीर्णाः—शिथिलावयवाः । (गो०) २ पोथिता—हिंसिता । (गो०)

वृक्षाद्रिहस्ता हरयस्तस्थुः संग्राममूर्धनि ।
ततः पर्वतमुत्पाट्य द्विविदः प्लवगर्षभः ॥ ९ ॥
दुद्राव गिरिशृङ्गाभं विलम्ब इव तोयदः ।
तं समुत्पत्य चिक्षेप कुम्भकर्णस्य वानरः ॥ १० ॥

और हाथों में पेड़ों और पहाड़ों का ले ले कर, समरभूमि में आ डटे। तदनन्तर लटकते हुए बादल की तरह वानरश्रेष्ठ द्विविद एक पहाड़ उखाड़ और उसे लिये हुए दौड़े और बड़े ज़ोर से उसे कुम्भकर्ण पर दे पटका ॥ ९ ॥ १० ॥

तमप्राप्तो महाकायं तस्य सैन्येऽपतत्तदा ।
ममर्दाश्वागजांश्चापि रथांश्चैव नगोत्तमः ॥ ११ ॥

वह पर्वत उस महाकाय कुम्भकर्ण तक न पहुँच कर बीच ही में राक्षसी सेना के ऊपर गिरा। उसके गिरने से कितने ही घोड़े, हाथी, रथ और बड़े बड़े वृक्ष चकनाचूर हो गये ॥ ११ ॥

तानि चान्यानि रक्षांसि पुनश्चान्यद्गिरेः शिरः ।
तच्छैलशृङ्गाभिहतं हताश्वं हतसारथि ॥ १२ ॥

तदनन्तर द्विविद ने एक दूसरा पर्वतशिखर राक्षसी सेना पर फेंका। उस शैलशृङ्ग की चोट से राक्षसी सेना के कितने ही रथ, सारथियों सहित नष्ट हो गये ॥ १२ ॥

रक्षसां रुधिरक्लिन्नं बभूवायोधनं महत् ।
रथिनो वानरेन्द्राणां शरैः कालान्तकोपमैः ॥ १३ ॥

रणभूमि मरे हुए राक्षसों और जानवरों के रक्त से तर हो गयी। रथ में सवार राक्षस योद्धा काल के समान बाणों से ॥ १३ ॥

शिरांसि नदतां जहुः सहसा भीमनिःस्वनाः ।
वानराश्च महात्मनः समुत्पाट्य महाद्रुमान् ॥ १४ ॥

वानरों का नाश करके, भयङ्कर सिंहनाद करते थे । महाबलवान वानर भी बड़े बड़े वृक्ष उखाड़ उखाड़ कर, ॥ १४ ॥

रथानश्वान्गजानुष्ट्रान्राक्षसानभ्यसूदयन् ।
हनुमाञ्शैलशृङ्गाणि वृक्षांश्च विविधान्बहून् ।
ववर्ष कुम्भकर्णस्य शिरस्यम्बरमास्थितः ॥ १५ ॥

उनसे रथों, घोड़ों, हाथियों, ऊँटों और राक्षसों का नाश करते थे । उधर हनुमान जी भी आकाश में स्थित हो कुम्भकर्ण के सिर के ऊपर बहुत से और विविध प्रकार के वृक्ष तथा पर्वतशिखर बरसा रहे थे ॥ १५ ॥

तानि पर्वतशृङ्गाणि शूलेन स बिभेद ह ।
बभञ्ज वृक्षवर्षं च कुम्भकर्णो महाबलः ॥ १६ ॥

कुम्भकर्ण, हनुमान जी के फेंके हुए पर्वतशिखरों और वृक्षों को अपने शूल से चूर चूर कर डालता ॥ १६ ॥

ततो हरीणां तदनीकमुग्रं
दुद्राव शूलं निशितं प्रगृह्य ।
तस्थौ ततोऽस्यापततः पुरस्तान्
महीधराग्रं हनुमान्प्रगृह्य ॥ १७ ॥

तदनन्तर कुम्भकर्ण अपना प्रचण्ड और पैना शूल उठा कर वानरी सेना पर झपटा । यह देख, हनुमान जी ने एक बड़ा भारी पर्वत ले उसका सामना किया ॥ १७ ॥

स कुम्भकर्णं कुपितो जघान
वेगेन शैलोत्तमभीमकायम् ।
स चुक्षुभे तेन तदाऽभिभूतो
मेदार्द्रगात्रो रुधिरावसिक्तः ॥ १८ ॥

और क्रुद्ध हो वह पर्वतशृङ्ग खींच कर भीमकाय कुम्भकर्ण के मारा। उसकी चोट से वह घबड़ा गया और ख़ून और चर्बी से नहा उठा ॥ १८ ॥

स शूलमाविध्य तडित्प्रकाशं
गिरिं यथा प्रज्वलिताग्रशृङ्गम् ।
बाह्वन्तरे मारुतिमाजघान
गुहोऽचलं क्रौञ्चमिवोग्रशक्त्या ॥ १९ ॥

इस पर कुम्भकर्ण ने आग से जलते हुए पर्वत की तरह अथवा बिजली की तरह चमचमाता शूल घुमा कर, हनुमान जी की छाती में वैसे ही मारा; जैसे स्वामिकार्तिक ने अपनी शक्ति घुमा कर, क्रौंच पर्वत के मारी थी ॥ १९ ॥

स शूलनिर्भिन्नमहाभुजान्तरः
प्रविह्वलः शोणित मुद्वमन्मुखात् ।
ननाद भीमं हनुमान्महाहवे
युगान्तमेघस्तनितस्वनोपमम् ॥ २० ॥

विशाल छाती में उस शूल के लगने से हनुमान जी बहुत विह्वल हो गये। मुख से लोहू निकल पड़ा; किन्तु तिस पर भी वे उस महासमर में प्रलयकालीन मेघ की गर्जन की तरह भयङ्कर गर्जना करने लगे ॥ २० ॥

ततो विनेदुः सहसा प्रहृष्टा
रक्षोगणास्तं व्यथितं समीक्ष्य ।
प्लवङ्गमास्तु व्यथिता भयार्ताः
प्रदुद्रुवुः संयति कुम्भकर्णात् ॥ २१ ॥

हनुमान जी को अचानक व्यथित देख, राक्षस हर्षित हो हर्षनाद करने लगे और वानर भय से दुःखी हो, समरभूमि में कुम्भकर्ण के पास से भागने लगे ॥ २१ ॥

ततस्तु नीलो बलवान्पर्यवस्थापयन्बलम् ।
प्रविचिक्षेप शैलाग्रं कुम्भकर्णाय धीमते ॥ २२ ॥

तब बलवान नील ने वानरी सेना को थामा और बुद्धिमान कुम्भकर्ण के ऊपर एक पर्वतशिखर फैंका ॥ २२ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य मुष्टिनाभिजघान ह ।
मुष्टिप्रहाराभिहतं तच्छैलाग्रं व्यशीर्यत ॥ २३ ॥

उस पर्वतशिखर को अपने ऊपर आते देख, कुम्भकर्ण ने उसमें मूँका मारा । वह पर्वतशिखर घूँसे के प्रहार से चूर चूर हो गया ॥ २३ ॥

सविस्फुलिङ्गं सज्वालं निपपात महीतले ।
ऋषभः शरभो नीलो गवाक्षो गन्धमादनः ॥ २४ ॥
पञ्च वानरशार्दूलाः कुम्भकर्णमुपाद्रवन् ।
शैलैर्वृक्षैस्तलैः पादैर्मुष्टिभिश्च महाबलाः ॥ २५ ॥

उसमें से चिनगारियाँ और ज्वाला निकली और वह भूमि पर गिर गया । तदनन्तर ऋषभ, शरभ, नील, गवाक्ष, गन्धमादन ने ॥ २४ ॥ २५ ॥

कुम्भकर्णं महाकायं सर्वतोऽभिप्रदुद्रुवुः ।
[1]स्पर्शानिव प्रहारांस्तान्वेदयानो न विव्यथे ॥ २६ ॥

महाकाय कुम्भकर्ण पर चारों ओर से आक्रमण किया ; किन्तु इन पाँचों के प्रहारों से उसे वैसा ही सुख हुआ जैसा कि, बदन दबाने से होता है । उसे उनके प्रहारों से तिल भर भी पीड़ा न हुई ॥ २६ ॥

ऋषभं तु महावेगं बाहुभ्यां परिषस्वजे ।
कुम्भकर्णभुजाभ्यां तु पीडितो वानरर्षभः ॥ २७ ॥

कुम्भकर्ण ने ऋषभ को अपनी दोनों भुजाओं में पकड़ कर दबाया । कुम्भकर्ण द्वारा भुजाओं में दबाये जाने पर ऋषभ पीड़ित हुआ ॥ २७ ॥

निपपातर्षभो भीमः प्रमुखाद्वान्तशोणितः ।
मुष्टिना शरभं हत्वा जानुना नीलमाहवे ॥ २८ ॥

और उसी समय ऋषभ भूमि पर गिर पड़ा और उसके मुख से रुधिर की धार बहने लगी । इस युद्ध में मूँके से शरभ को और घुटने से नील को मार, ॥ २८ ॥

आजघान गवाक्षं तु तलेनेन्द्ररिपुस्तदा ।
पादेनाभ्यहनत्क्रुद्धस्तरसा गन्धमादनम् ॥ २९ ॥

इन्द्रशत्रु कुम्भकर्ण ने थप्पड़ से गवाक्ष को मारा । फिर उसने बड़े ज़ोर से लातों से गन्धमादन को मारा ॥ २९ ॥

---

१ स्पर्शानिव—सुखस्पर्शानिव । (गो०)

दत्तप्रहारव्यथिता मुमुहुः शोणितोक्षिताः ।
निपेतुस्ते तु मेदिन्यां निकृत्ता इव किंशुकाः ॥ ३० ॥

इन चोटों को खा कर वे पाँचों के पाँचों मूर्च्छित हो गये और उनके शरीरों से रक्त बहने लगा। वे पृथिवी पर वैसे ही पड़े हुए थे जैसे कटे हुए टेसू के (पुष्पित) वृक्ष पड़े हों ॥ ३० ॥

तेषु वानरमुख्येषु पतितेषु महात्मसु ।
वानराणां सहस्राणि कुम्भकर्णं प्रदुद्रुवुः ॥ ३१ ॥

इन महाबलवान वानरयूथपतियों के गिरने पर, हज़ारों वानर कुम्भकर्ण पर टूट पड़े ॥ ३१ ॥

तं शैलमिव शैलाभाः सर्वे ते प्लवगर्षभाः ।
समारुह्य समुत्पत्य ददंशुश्च महाबलाः ॥ ३२ ॥

पर्वताकार वानरश्रेष्ठ उछल उछल कर पर्वताकार शरीर वाले कुम्भकर्ण के शरीर पर चढ़, दाँतों से उसको काटने लगे ॥ ३२ ॥

तं नखैर्दशनैश्चापि मुष्टिभिर्जानुभिस्तथा ।
कुम्भकर्णं महाकायं ते जघ्नुः प्लवगर्षभाः ॥ ३३ ॥

वे वानरश्रेष्ठ विशाल शरीरधारी कुम्भकर्ण को नखों से नोंचते थे, दाँतों से काटते थे तथा घूँसों और घुटनों से मारते थे ॥३३॥

स वानरसहस्रैस्तैराचितः[1] पर्वतोपमः ।
रराज राक्षसव्याघ्रो गिरिरात्मरुहैरिव[2] ॥ ३४ ॥

उस समय पर्वताकार राक्षसश्रेष्ठ कुम्भकर्ण असंख्य वानरों के लिपट जाने से उसी प्रकार शोभायमान होने लगा, जिस प्रकार वृक्षों से पर्वत शोभायमान होता है ॥ ३४ ॥

---

१ आचितः—व्याप्तः। (गो०) २ आत्मरुहैः—वृक्षैः। (गो०)

बाहुभ्यां वानरान्सर्वान्प्रगृह्य सुमहाबलः ।
भक्षयामास संक्रुद्धो गरुडः पन्नगानिव ॥ ३५ ॥

अत्यन्त बलवान कुम्भकर्ण उन सब वानरों को भुजाओं से पकड़ पकड़ कर, उसी प्रकार खाने लगा, जिस प्रकार क्रुद्ध हुए गरुड़ जी साँपों को खाते हैं ॥ ३५ ॥

प्रक्षिप्ताः कुम्भकर्णेन वक्त्रे पातालसन्निभे ।
नासापुटाभ्यां निर्जग्मुः कर्णाभ्यां चैव वानराः ॥३६॥

पाताल की तरह कुम्भकर्ण के मुख में फेंके जाने पर वे वानर कुम्भकर्ण के नथनों और कानों में हो कर निकल आते थे ॥ ३६ ॥

भक्षयन्भृशसंक्रुद्धो हरीन्पर्वतसन्निभः ।
बभञ्ज वानरान्सर्वान्संक्रुद्धो राक्षसोत्तमः ॥ ३७ ॥

वह पर्वताकार राक्षसश्रेष्ठ अत्यन्त क्रुद्ध हो वानरों को भक्षण करता हुआ, समस्त वानरी सेना को नष्ट करने लगा ॥ ३७ ॥

मांसशोणितसंक्लेदां भूमिं कुर्वन्स राक्षसः ।
चचार हरिसैन्येषु कालाग्निरिव मूर्छितः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार राक्षस कुम्भकर्ण रणभूमि में माँस और रक्त की कीचड़ करता हुआ ; प्रज्वलित कालाग्नि की तरह वानरी सेना में घूमने लगा ॥ ३८ ॥

वज्रहस्तो यथा शक्रः पाशहस्त इवान्तकः ।
शूलहस्तो बभौ संख्ये कुम्भकर्णो महाबलः ॥ ३९ ॥

जैसे हाथ में वज्र लिये इन्द्र और हाथ में फाँसी लिये यमराज देख पड़ें ; वैसे ही समरभूमि में हाथ में शूल लिये हुए महाबली कुम्भकर्ण जान पड़ता था ॥ ३९ ॥

यथा शुष्कान्यरण्यानि ग्रीष्मे दहति पावकः ।
तथा वानरसैन्यानि कुम्भकर्णो विनिर्दहत् ॥ ४० ॥
ततस्ते वध्यमानास्तु हतयूथा [1]विनायकाः ।
वानरा भयसंविग्ना विनेदुर्विस्वरं भृशम् ॥ ४१ ॥

जब कुम्भकर्ण ने वानरों के अनेक यूथपतियों को मार डाला। तब बिना नायक के कुम्भकर्ण द्वारा मारे जाते हुए, वे सब वानर भयभीत हो बड़ी ज़ोर से चिल्लाने लगे ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अनेकशो वध्यमानाः कुम्भकर्णेन वानराः ।
राघवं शरणं जग्मुर्व्यथिताः खिन्नचेतसः ॥ ४२ ॥

कुम्भकर्ण ने जब बहुत से वानर मार डाले, तब बचे हुए वानर व्यथित और खिन्नमन हो श्रीरामचन्द्र जी के पास जा उनकी दुहाई देने लगे ॥ ४२ ॥

प्रभग्नान्वानरान्दृष्ट्वा वज्रहस्तसुतात्मजः ।
अभ्यधावत वेगेन कुम्भकर्णं महाहवे ॥ ४३ ॥

वानरों को भागते देख वालिपुत्र अङ्गद, उस महासमर में कुम्भकर्ण पर, बड़ी ज़ोर से दौड़े ॥४३॥

शैलशृङ्गं महद्गृह्य विनदंश्च मुहुर्मुहुः ।
त्रासयन्राक्षसान्सर्वान्कुम्भकर्णपदानुगान् ॥ ४४ ॥

---

१ विनायकाः—विगतनायकाः । (गो०)

उनके हाथ में एक पर्वतशिखर था और वे बार बार सिंहनाद कर, कुम्भकर्ण के साथ आयी हुई राक्षसों की समस्त पैदल सेना को त्रस्त कर रहे थे ॥ ४४ ॥

चिक्षेप शैलशिखरं कुम्भकर्णस्य मूर्धनि।
स तेनाभिहतोऽत्यर्थं गिरिशृङ्गेण मूर्धनि ॥ ४५ ॥

अङ्गद ने वह पर्वतशिखर खींच कर कुम्भकर्ण के सिर में मारा। उस पर्वतशिखर के सिर में लगने से कुम्भकर्ण के सिर में बड़ी चोट लगी और ॥ ४५ ॥

कुम्भकर्णः प्रजज्वाल कोपेन महता तदा।
सोऽभ्यधावत वेगेन वालिपुत्रममर्षणः ॥ ४६ ॥

तब कुम्भकर्ण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उस चोट को न सह, वह बड़े वेग से अङ्गद पर लपका ॥ ४६ ॥

कुम्भकर्णो महानादस्त्रासयन्सर्ववानरान्।
शूलं ससर्ज वै रोषादङ्गदे स महाबलः ॥ ४७ ॥

महाबली कुम्भकर्ण ने बड़े ज़ोर से चिल्ला कर, समस्त वानरों को भयभीत कर दिया और रोष में भर अपने हाथ का शूल अङ्गद पर चलाया ॥ ४७ ॥

तमापतन्तं बुद्ध्वा तु युद्धमार्गविशारदः।
लाघवान्मोचयामास बलवान्वानरर्षभः ॥ ४८ ॥

युद्धविद्या में निपुण, बलवान वानरश्रेष्ठ अङ्गद, उस शूल को अपने ऊपर आते देख, फुर्ती के साथ वहाँ से हट शूल का निशाना बचा गये ॥ ४८ ॥

उत्पत्य चैनं सहसा तलेनोरस्यताडयत् ।
स तेनाभिहतः कोपात्प्रमुमोहाचलोपमः ॥ ४९ ॥

और उछल कर एक लात कुम्भकर्ण की छाती में जमायी। उस लात के आघात से वह पर्वताकार शरीर वाला कुम्भकर्ण मूर्छित हो गया ॥ ४९ ॥

स लब्धसंज्ञो बलवान्मुष्टिमावर्त्य राक्षसः ।
*अपहस्तेन चिक्षेप विसंज्ञः स पपात ह ॥ ५० ॥

फिर कुछ देर बाद जब वह बलवान राक्षस सचेत हुआ, तब उसने बायें हाथ को मुट्ठी बाँध, एक घूँसा अङ्गद के ऐसा मारा कि, वे मूर्छित हो गिर पड़े ॥ ५० ॥

तस्मिन्प्लवगशार्दूले विसंज्ञे पतिते भुवि ।
तच्छूलं समुपादाय सुग्रीवमभिदुद्रुवे ॥ ५१ ॥

अङ्गद के मूर्छित हो कर पृथिवी पर गिर जाने पर कुम्भकर्ण अपने शूल को उठा सुग्रीव के ऊपर लपका ॥ ५१ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य कुम्भकर्णं महाबलम् ।
उत्पपात तदा वीरः सुग्रीवो वानराधिपः ॥ ५२ ॥

महाबली कुम्भकर्ण को अपने ऊपर लपकते देख, वीर वानरराज सुग्रीव उछले ॥ ५२ ॥

पर्वताग्रं समुत्क्षिप्य समाविध्य महाकपिः ।
अभिदुद्राव वेगेन कुम्भकर्णं महाबलम् ॥ ५३ ॥

---

* पाठान्तरे—" अपहासेन । "

और एक पर्वतशिखर उखाड़, सुग्रीव बड़े वेग से महाबली कुम्भकर्ण की ओर दौड़े ॥ ५३ ॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य कुम्भकर्णः प्लवङ्गमम् ।
तस्थौ विवृतसर्वाङ्गो वानरेन्द्रसमुन्मुखः[१] ॥ ५४ ॥

कुम्भकर्ण ने जब सुग्रीव को अपने ऊपर आक्रमण करने के लिये आते देखा, तब वह अकड़ कर, सुग्रीव के सामने खड़ा हो गया ॥ ५४ ॥

कपिशोणितदिग्धाङ्गं भक्षयन्तं प्लवङ्गमान् ।
कुम्भकर्णं स्थितं दृष्ट्वा सुग्रीवो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५५ ॥

वानरों के लोहू से भींगे और वानरों को भक्षण करते हुए कुम्भकर्ण को अपने सामने खड़ा देख, सुग्रीव बोले ॥ ५५ ॥

पातिताश्च त्वया वीराः कृतं कर्म सुदुष्करम् ।
भक्षितानि च सैन्यानि प्राप्तं ते परमं यशः ॥ ५६ ॥

तूने मेरी सेना के बड़े बड़े वीरों को युद्ध में धराशायी कर वह काम किया है, जो दूसरा नहीं कर सकता और मेरी सेना के वानरों को खा कर, तूने बड़ी नामवरी पायी है ॥ ५६ ॥

त्यज तद्वानरानीकं प्राकृतैः किं करिष्यसि ।
सहस्वैकनिपातं मे पर्वतस्यास्य राक्षस ॥ ५७ ॥

सो अब तू युद्धविद्या में अनिपुण साधारण वानरों की सेना से युद्ध करना त्याग दे । क्योंकि उनके साथ लड़ कर तू क्या करेगा ? हे राक्षस ! अब तू मेरे इस पर्वत के प्रहार को सहने के लिये तैयार हो जा ॥ ५७ ॥

---

१ समुन्मुखः—अभिमुखः । (गो०)

तद्वाक्यं हरिराजस्य सत्त्वधैर्यसमन्वितम् ।
श्रुत्वा राक्षसशार्दूलः कुम्भकर्णोऽब्रवीद्वचः ॥ ५८ ॥

वानरराज सुग्रीव के इन वीरता एवं धैर्यतायुक्त वचनों को सुन, राक्षसश्रेष्ठ कुम्भकर्ण उत्तर देते हुए कहने लगा ॥ ५८ ॥

प्रजापतेस्तु पौत्रस्त्वं तथैवर्क्षरजःसुतः ।
श्रुतपौरुषसम्पन्नः तस्माद्गर्जसि वानर ॥ ५९ ॥

अरे वानर ! तू प्रजापति का पौत्र और ऋक्षराजा का पुत्र है। तू एक प्रसिद्ध पुरुषार्थी है, इसीसे तो तू गरज रहा है ॥ ५९ ॥

स कुम्भकर्णस्य वचो निशम्य
व्याविध्य शैलं सहसा मुमोच ।
तेनाजघानोरसि कुम्भकर्णं
शैलेन वज्राशनिसन्निभेन ॥ ६० ॥

कुम्भकर्ण के इन वचनों को सुन, सुग्रीव ने वह पर्वतशिखर घुमा कर अचानचक छोड़ दिया। वज्र के समान पर्वतशिखर कुम्भकर्ण की छाती में लगा ॥ ६० ॥

तच्छैलशृङ्गं सहसा *विकीर्णं
भुजान्तरे तस्य तदा विशाले ।
ततो विषेदुः सहसा प्लवङ्गा
रक्षोगणाश्चापि मुदा विनेदुः ॥ ६१ ॥

कुम्भकर्ण की विशाल छाती से टकरा, उस पर्वत शिखर के टुकड़े टुकड़े हो कर छितरा गये। यह देख वानरों को दुःख हुआ और राक्षस लोग प्रसन्न हो हर्षनाद करने लगे ॥ ६१ ॥

---

* पाठान्तरे—"विशीर्णम् ।"

स शैलशृङ्गाभिहतश्चुकोप
ननाद कोपाच्च विवृत्य वक्त्रम् ।
व्याविध्य शूलं च तडित्प्रकाशं
चिक्षेप हर्यृक्षपतेर्वधाय ॥ ६२ ॥

कुम्भकर्ण पर्वत के आघात से कुपित हुआ और कुपित हो वह मुँह बाये हुए गरजा। फिर उसने वानरराज सुग्रीव को मार डालने के लिये बिजली की तरह चमचमाता शूल घुमा कर उनके ऊपर छोड़ा ॥ ६२ ॥

तत्कुम्भकर्णस्य भुजप्रविद्धं
शूलं शितं *काञ्चनदामजुष्टम् ।
क्षिप्रं समुत्पत्य निगृह्य दोर्भ्यां
बभञ्ज वेगेन सुतोऽनिलस्य ॥ ६३ ॥

कुम्भकर्ण के हाथों से फैंके हुए उस पैने और सुवर्णभूषित शूल को हनुमान जी ने उछल कर बीच ही में पकड़ लिया और तोड़ डाला ॥ ६३ ॥

कृतं भारसहस्रस्य शूलं कालायसं महत् ।
बभञ्ज जान्वारोप्य प्रहृष्टः प्लवगर्षभः ॥ ६४ ॥

उस हज़ार मन भारी लोहे के बने हुए बड़े शूल को हनुमान जी ने अपने घुटने पर रख तोड़ डाला और उसे तोड़ वे परम प्रसन्न हुए ॥ ६४ ॥

शूलं भग्नं हनुमता दृष्ट्वा वानरवाहिनी ।
हृष्टा ननाद बहुशः सर्वतश्चापि दुद्रुवे ॥ ६५ ॥

---

* पाठान्तरे—" काञ्चनधामजुष्टम् ।"

हनुमान द्वारा उस शूल का तोड़ा जाना देख, वानरी सेना ने प्रसन्न हो, बड़ा हर्षनाद किया और वह चारों ओर से आगे बढ़ी ॥ ६५ ॥

[बभूवाथ परित्रस्तो राक्षसो विमुखोऽभवत् ।]
सिंहनादं च ते चक्रुः प्रहृष्टा वनगोचराः ।
मारुतिं पूजयाञ्चक्रुर्दृष्ट्वा शूलं तथागतम् ॥ ६६ ॥

और राक्षसों की सेना डर कर युद्ध छोड़ भागी। तब तो अत्यन्त प्रसन्न हो वानरों ने सिंहनाद किया और शूल को टूटा हुआ देख, उन सब ने पवननन्दन हनुमान जी की बड़ी प्रशंसा की ॥ ६६ ॥

स तत्तदा भग्नमवेक्ष्य शूलं
चुकोप रक्षोधिपतिर्महात्मा ।
उत्पाट्य लङ्कामलयात्स शृङ्गं
जघान सुग्रीवमुपेत्य तेन ॥ ६७ ॥

तदनन्तर महाबलवान राक्षसश्रेष्ठ वह कुम्भकर्ण अपने शूल को टूटा हुआ देख, बड़ा कुपित हुआ और लङ्का के समीप खड़े मलयाचल का एक शृङ्ग उखाड़ और सुग्रीव के समीप जा, वह शृङ्ग सुग्रीव के मारा ॥ ६७ ॥

स शैलशृङ्गाभिहतो विसंज्ञः
पपात भूमौ युधि वानरेन्द्रः ।
तं प्रेक्ष्य भूमौ पतितं विसंज्ञं
नेदुः प्रहृष्टास्त्वथ यातुधानाः ॥ ६८ ॥

उस लड़ाई में उस शैलशृङ्ग की चोट से मूर्छित हो वानरराज सुग्रीव पृथिवी पर गिर पड़े। उनको मूर्छित हो पृथिवी पर गिरा हुआ देख, राक्षस हर्षित हो हर्षनाद करने लगे ॥ ६८ ॥

तमभ्युपेत्याद्भुतघोरवीर्यं
स कुम्भकर्णो युधि वानरेन्द्रम् ।
जहार सुग्रीवमभिप्रगृह्य
यथानिलो मेघमतिप्रचण्डः ॥ ६९ ॥

इस प्रकार अद्भुत और भयङ्कर बल वाले वानरराज सुग्रीव को युद्ध में परास्त कर, उसने फिर उन्हें दोनों हाथों से उठा लिया। जब कुम्भकर्ण सुग्रीव को उठा कर चला, तब ऐसा जान पड़ा, मानों प्रचण्ड पवन बादलों को उड़ाये लिये जाता हो ॥ ६९ ॥

स तं महामेघनिकाशरूपम्
उत्पाट्य गच्छन्युधि कुम्भकर्णः ।
रराज मेरुप्रतिमानरूपो
मेरुर्यथाभ्युच्छ्रितघोरशृङ्गः ॥ ७० ॥

उस समय सुमेरु पर्वत के समान शरीर वाला कुम्भकर्ण, एक बड़े भारी मेघ के समान सुग्रीव को पकड़ कर, बड़े ऊँचे शिखरों से युक्त एवं चलते हुए मेरुपर्वत की तरह शोभायमान होने लगा ॥७०॥

ततस्तमुत्पाट्य जगाम वीरः
संस्तूयमानो युधि राक्षसेन्द्रैः ।
शृण्वन्निनादं त्रिदशालयानां
प्लवङ्गराजग्रहविस्मितानाम् ॥ ७१ ॥

वानरराज सुग्रीव को उठा कर, वीर कुम्भकर्ण समरभूमि में राक्षसों द्वारा प्रशंसित हो, तथा वानरराज के पकड़े जाने से विस्मित देवताओं का हाहाकार सुनता हुआ, लङ्का की ओर चला ॥ ७१ ॥

ततस्तमादाय तदा स मेने
हरीन्द्रमिन्द्रोपममिन्द्रवीर्यः ।
अस्मिन्हृते सर्वमिदं हृतं स्यात्
सराघवं सैन्यमितीन्द्रशत्रुः ॥ ७२ ॥

इन्द्रशत्रु कुम्भकर्ण, इन्द्र के समान पराक्रमी सुग्रीव को लिये हुए अपने मन में समझ रहा था कि, सुग्रीव के मारे जाने से श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण एवं साथी वानरों सहित मरे हुओं के समान हैं ॥ ७२ ॥

विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा वानराणां ततस्ततः ।
कुम्भकर्णेन सुग्रीवं गृहीतं चापि वानरम् ॥ ७३ ॥

वानरों की सेना को इधर उधर भागते हुए तथा वानरराज सुग्रीव को कुम्भकर्ण द्वारा पकड़ा हुआ देख, ॥ ७३ ॥

हनुमांश्चिन्तयामास मतिमान्मारुतात्मजः ।
एवं गृहीते सुग्रीवे किं कर्तव्यं मया भवेत् ॥ ७४ ॥

बुद्धिमान पवननन्दन हनुमान जी ने विचारा कि, इस प्रकार सुग्रीव के पकड़े जाने पर मुझे अब क्या करना चाहिये ॥ ७४ ॥

यद्वै न्याय्यं मया कर्तुं तत्करिष्यामि सर्वथा ।
भूत्वा पर्वतसङ्काशो नाशयिष्यामि राक्षसम् ॥ ७५ ॥

इस समय जो कुछ मुझे करना उचित है, उसे मैं निश्चय ही करूँगा। मैं पर्वताकार शरीर धारण कर, इस राक्षस कुम्भकर्ण का बध करूँगा ॥ ७५ ॥

मया हते संयति कुम्भकर्णे
महाबले मुष्टिविकीर्णदेहे ।
विमोचिते वानरपार्थिवे च
भवन्तु हृष्टाः प्लवगाः समस्ताः ॥ ७६ ॥

मैं जब युद्ध में कुम्भकर्ण को मूँके मार मार गिरा दूँगा, तब यह अपने आप ही वानरराज सुग्रीव को छोड़ देगा और सुग्रीव को छुटा हुआ देख, समस्त वानर अत्यन्त हर्षित हो जायँगे ॥ ७६ ॥

अथवा स्वयमप्येष मोक्षं प्राप्स्यति पार्थिवः ।
गृहीतोऽयं यदि भवेत्त्रिदशैः सासुरोरगैः ॥ ७७ ॥

अथवा मैं सुग्रीव को छुड़ाने के लिये प्रयत्न क्यों करूँ? वानरराज सुग्रीव स्वयं ही छूट कर चले आवेंगे। चाहे वे देवताओं, दैत्यों अथवा नागों ही से क्यों न पकड़े जाँय ॥ ७७ ॥

मन्ये न तावदात्मानं बुध्यते वानराधिपः ।
शैलप्रहाराभिहतः कुम्भकर्णेन संयुगे ॥ ७८ ॥

तो भी वे सचेत होने पर अपने को अपने आप छुड़ा लेंगे। ऐसा जान पड़ता है कि, युद्ध में कुम्भकर्ण के प्रहार से वे बहुत चोटिल हो कर, मूर्छित हो गये हैं ॥ ७८ ॥

अयं मुहूर्तात्सुग्रीवो लब्धसंज्ञो महाहवे ।
आत्मनो वानराणां च यत्पथ्यं तत्करिष्यति ॥ ७९ ॥

सो कुछ देर बाद जब वे सचेत हो जाँयगे, तब वे अपनी तथा वानरों की भलाई के लिये जो उचित समझेंगे वह स्वयं करेंगे ॥७९॥

मया तु मोक्षितस्यास्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
अप्रीतिश्च भवेत्कष्टा कीर्तिनाशश्च शाश्वतः ॥ ८० ॥

यदि मैं उन महाबलवान सुग्रीव को छुड़ा लूँगा, तो यह बात उनको केवल बुरी ही न लगेगी, किन्तु इससे उनको बड़ा कष्ट होगा और उनकी कीर्ति भी सदा के लिये नष्ट हो जायगी ॥ ८० ॥

तस्मान्मुहूर्तं काङ्क्षिष्ये विक्रमं पार्थिवस्य नः ।
भिन्नं च वानरानीकं तावदाश्वासयाम्यहम् ॥ ८१ ॥

अतएव हम लोगों को कुछ देर तक प्रतीक्षा कर, वानरराज के पराक्रम का चमत्कार देख लेना उचित है। इतने में मैं तितिर बितिर हुई वानरी सेना को धीरज बँधाऊँ ॥ ८१ ॥

इत्येवं चिन्तयित्वा तु हनुमान्मारुतात्मजः ।
भूयः संस्तम्भयामास वानराणां महाचमूम् ॥ ८२ ॥

यह विचार पवननन्दन हनुमान जी ने महती वानरी सेना को धैर्य बँधा, पुनः रोका ॥ ८२ ॥

स कुम्भकर्णोऽथ विवेश लङ्कां
स्फुरन्तमादाय महाकपिं तम् ।
विमानचर्यागृहगोपुरस्थैः
[1]पुष्पाग्र्यवर्षैरवकीर्यमाणः ॥ ८३ ॥

---

१ पुष्पाग्र्यवर्षैः—श्लाघ्यपुष्पवृष्टिभिः । (गो०)

उधर कुम्भकर्ण तड़फड़ाते सुग्रीव को पकड़े हुए लङ्का में पहुँचा। वहाँ अटारियों के राजमार्गों के दोनों ओर के मकानों में रहने वाले तथा फाटकों पर रहने वाले राक्षसों ने कुम्भकर्ण के ऊपर अच्छे अच्छे पुष्पों की वर्षा की ॥ ८३ ॥

लाजगन्धोदवर्षैस्तु सिच्यमानः शनैः शनैः ।
राजमार्गस्य शीतत्वात्संज्ञामाप महाबलः ॥ ८४ ॥

अक्षत चन्दन युक्त जल की मन्द मन्द फुहार से तथा जल से सींचे हुए राजमार्ग की तरावट पहुँचने पर, महाबली सुग्रीव की मूर्छा भङ्ग हुई ॥ ८४ ॥

ततः स संज्ञामुपलभ्य कृच्छ्राद्
बलीयसस्तस्य भुजान्तरस्थः ।
अवेक्षमाणः पुरराजमार्गं
विचिन्तयामास मुहुर्महात्मा ॥ ८५ ॥

इस प्रकार महाबलवान सुग्रीव, अत्यन्त कष्ट से सचेत हो और अपने को लङ्का के राजमार्ग पर महाबलवान कुम्भकर्ण की काँख में दबा हुआ पा कर, बार बार विचारने लगे ॥ ८५ ॥

एवं गृहीतेन कथं नु नाम
शक्यं मया सम्प्रतिकर्तुमद्य ।
तथा करिष्यामि यथा हरीणां
भविष्यतीष्टं च हितं च कार्यम् ॥ ८६ ॥

इसने मुझे पकड़ रखा है सो इस समय मुझे क्या उपाय करना चाहिये, जिसके करने से मेरा इष्ट साधन हो और वानरों की भलाई हो ॥ ८६ ॥

ततः कराग्रैः सहसा समेत्य
राजा हरीणाममरेन्द्रशत्रुम् ।
खरैश्च कर्णौ दशनैश्च नासां
ददंश पार्श्वेषु च कुम्भकर्णम् ॥ ८७ ॥

तदनन्तर वानरराज सुग्रीव ने देवताओं के शत्रु कुम्भकर्ण की काँख से निकल, झटपट अपने पैने नखों और दाँतों से कुम्भकर्ण की नाक और कान काट डाले और दाँतों से उसकी दोनों कोखें चीर डालीं ॥ ८७ ॥

स कुम्भकर्णो हृतकर्णनासो
विदारितस्तेन विमर्दितश्च ।
रोषाभिभूतः क्षतजार्द्रगात्रः
सुग्रीवमाविध्य पिपेष भूमौ ॥ ८८ ॥

उस समय नाक और कानों के कट जाने से, नखों तथा दाँतों से विदीर्ण होने के कारण पीड़ित होने से, तथा सारा अंग रक्त से तर हो जाने से, कुम्भकर्ण ने अत्यन्त क्रोध में भर, सुग्रीव को घुमा कर भूमि पर पटक दिया और उनको रगड़ा ॥ ८८ ॥

स भूतले भीमबलाभिपिष्टः
सुरारिभिस्तैरभिहन्यमानः ।
जगाम खं वेगवदभ्युपेत्य
पुनश्च रामेण समाजगाम ॥ ८९ ॥

भूमि के ऊपर कुम्भकर्ण द्वारा बड़े ज़ोर से रगड़े जाने पर और असुरशत्रु राक्षसों द्वारा मारे जाने पर भी, सुग्रीव बड़े वेग से उछल

कर ऊपर आकाश में जा पहुँचे और वहाँ से वे फिर श्रीरामचन्द्र जी के पास चले गये ॥ ८९ ॥

कर्णनासाविहीनस्तु कुम्भकर्णो महाबलः ।
रराज शोणितैः सिक्तो गिरिः प्रस्रवणैरिव ॥ ९० ॥

उस समय नकटे और बूचे कुम्भकर्ण के शरीर से वैसे ही ख़ून बह रहा था; जैसे पहाड़ से पानी का झरना बहता है ॥ ९० ॥

शोणितार्द्रो महाकायो राक्षसो भीमविक्रमः ।
युद्धायाभिमुखो भूयो मनश्चक्रे महाबलः ॥ ९१ ॥

वह महाबलवान भीमपराक्रमी और महाकाय कुम्भकर्ण रुधिर से तर होने पर भी, समरभूमि में जाने को फिर तैयार हुआ ॥९१॥

अमर्षाच्छोणितोद्गारी शुशुभे रावणानुजः ।
नीलाञ्जनचयप्रख्यः ससन्ध्य इव तोयदः ॥ ९२ ॥

डाही और रक्त उगलता हुआ रावण का छोटा भाई कुम्भकर्ण उस समय ऐसा शोभायमान हुआ जैसा काजल का ढेर अथवा सन्ध्याकालीन मेघ शोभित होता है ॥ ९२ ॥

गते तु तस्मिन्सुरराजशत्रुः
क्रोधात्प्रदुद्राव रणाय भूयः ।
अनायुधोऽस्मीति विचिन्त्य रौद्रो
घोरं तदा मुद्गरमाससाद ॥ ९३ ॥

वानरराज सुग्रीव के चले जाने पर इन्द्रशत्रु भयङ्कर मूर्ति वाला कुम्भकर्ण, क्रोध में भर पुनः समरभूमि की ओर दौड़ा और अपने हाथ में कोई शस्त्र न देख, उसने एक बड़ा भयङ्कर मुगदर ले लिये ॥९३॥

ततः स पुर्याः सहसा महौजा
निष्क्रम्य तद्वानरसैन्यमुग्रम्।
[तेनैव रूपेण बभञ्ज रुष्टः
प्रहारमुष्ट्या च पदेन सद्यः] ॥ ९४ ॥

वह महाबलवान कुम्भकर्ण सहसा लङ्कापुरी के बाहिर जा और क्रोध में भर तुरन्त वानरी सेना को पहिले की तरह घूँसों और लातों के प्रहार से नष्ट करने लगा ॥ ६४ ॥

बभक्ष रक्षो युधि कुम्भकर्णः
प्रजा युगान्ताग्निरिव प्रदीप्तः।
बुभुक्षितः शोणितमांसगृध्नुः
प्रविश्य तद्वानरसैन्यमुग्रम् ॥ ९५ ॥

जिस प्रकार प्रलय का प्रदीप्त अग्नि प्रजाजनों को जला कर भस्म कर डालता है, उसी प्रकार माँस रुधिर का भूखा राक्षस कुम्भकर्ण समरभूमि में जा और प्रचण्ड वानरी सेना में घुस वानरों का नाश करने लगा ॥ ६५ ॥

चखाद रक्षांसि हरिन्पिशाचान्
ऋक्षांश्च मोहाद्युधि कुम्भकर्णः।
यथैव मृत्युर्हरते युगान्ते
स भक्षयामास हरींश्च मुख्यान् ॥ ९६ ॥

उस समय कुम्भकर्ण क्रोध से ऐसा मतवाला हो रहा था कि, उसे अपना पराया नहीं सूझ पड़ता था। इसीसे उसने केवल वानरों ही को नहीं; प्रत्युत राक्षस, पिशाच, भालू, जो कोई समरभूमि

में उसके सामने पड़ता उसीको पकड़ कर खा जाता था। जिस प्रकार युग के अन्त में प्रलयकाल उपस्थित होने पर, मृत्युदेव प्रजा का नाश करते हैं, उसी प्रकार वह बड़े बड़े वानरों को खाने लगा ॥९६॥

एकं *द्वौ त्रीन्बहून्क्रुद्धो वानरान्सह राक्षसैः ।
समादायैकहस्तेन प्रचिक्षेप त्वरन्मुखे ॥ ९७ ॥

वह एक, दो, तीन अथवा बहुत से वानरों और राक्षसों को (जो सामने पड़ते) एक हाथ से पकड़, एक साथ जल्दी से मुँह में छोड़ लेता था ॥ ९७ ॥

[1]संप्रस्रवंस्तदा मेदः शोणितं च महाबलः ।
वध्यमानो नगेन्द्राग्रैर्भक्षयामास वानरान् ॥ ९८ ॥

खाये हुए वानरों और राक्षसों आदि की चर्बी और रुधिर को वह बीच बीच में उगलता जाता था। उधर वीर वानर बड़े बड़े शिखरों और पेड़ों से उसे मार रहे थे। तो भी वह खाता ही जाता था ॥ ९८ ॥

ते भक्ष्यमाणा हरयो रामं जग्मुस्तदा [2]गतिम् ।
कुम्भकर्णो भृशं क्रुद्धः कपीन्खादन्प्रधावति ॥ ९९ ॥

जब वह वानरों को इस प्रकार खाने लगा; तब वानर श्रीरामचन्द्र के शरण में गये और बोले—महाराज! कुम्भकर्ण अत्यन्त कुपित हो वानरों को खाता हुआ रणभूमि में दौड़ रहा है ॥ ९९ ॥

शतानि सप्त चाष्टौ च विंशत्त्रिंशत्तथैव च ।
सम्परिष्वज्य बाहुभ्यां खादन्विपरिधावति ॥ १०० ॥

---

१ संप्रस्रवन—तालुभ्यां उद्गमन। (गो०) २ गतिम्—शरणं। (गो०)
* पाठान्तरे—"द्वे।"

वह सात, आठ, बीस, तीस और कभी कभी सौ वानरों को हाथों से पकड़ पकड़ कर खा जाता है और समरभूमि में दौड़ता फिरता है ॥ १०० ॥

[मेदोवसाशोणितदिग्धगात्रः
कर्णावसक्तग्रथितान्त्रमालः ।
ववर्ष शूलानि सतीक्ष्णदंष्ट्रः
कालो युगान्ताग्निरिव प्रवृद्धः] ॥ १०१ ॥

वह चर्बी और रुधिर से नहा उठा है। उसके कानों पर अँतड़ियाँ लटक रही हैं। तो भी तीक्ष्ण दाँतों वाला कुम्भकर्ण वानरों को शूल की मार से उसी तरह नाश कर रहा है, जिस तरह युग के अन्त में प्रलय का समय उपस्थित होने पर, प्रज्वलित अथवा बढ़ा हुआ अग्नि प्रजा का नाश करता है ॥ १०१ ॥

तस्मिन्काले सुमित्रायाः पुत्रः परबलार्दनः ।
चकार लक्ष्मणः क्रुद्धो युद्धं परपुरञ्जयः ॥ १०२ ॥

तब तो गोह के चर्म के बने दस्ताने पहिन शत्रु की सेना को मर्दन तथा शत्रु के पुर को जीतने वाले सुमित्रानन्दन लक्ष्मण, कुपित हो युद्ध करने लगे ॥ १०२ ॥

स कुम्भकर्णस्य शराञ्शरीरे सप्त वीर्यवान् ।
निचखानाददे बाणान्विससर्ज च लक्ष्मणः ॥ १०३ ॥
[पीड्यमानस्तदस्त्रं तु विशेषं तत्स राक्षसः ।
ततश्चुकोप बलवान्सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ १०४ ॥

बलवान लक्ष्मण ने कुम्भकर्ण के सात बाण मार कर और भी बाण निकाल उसके ऊपर छोड़े उन शस्त्रों के प्रहार से कुम्भकर्ण

पीड़ित हुआ और उन बाणों को हाथों से खींच तथा तोड़ कर फेंक दिया। तब तो बलवान सुमित्रानन्दन अत्यन्त क्रुद्ध हुए ॥१०३॥१०४॥

अथास्य कवचं शुभ्रं जाम्बूनदमयं शुभम्।
प्रच्छादयामास शरैः सन्ध्याभ्रैरिव मारुतः ॥१०५॥

और उसके सोने के बने और चमचमाते कवच को बाणों से ऐसे ढक दिया; जैसे सन्ध्याकालीन मेघ को पवन घेर लेता है ॥१०५॥

नीलाञ्जनचयप्रख्यैः शरैः काञ्चनभूषणैः।
आपीड्यमानः शुशुभे मेघैः सूर्य इवांशुमान् ॥१०६॥

काजल के ढेर की तरह कुम्भकर्ण के काले शरीर में ऊपर से नीचे तक भिदे हुए सुवर्णभूषित तीर वैसे ही शोभित जान पड़ते थे, जैसे बादलों से ढके सूर्य ॥ १०६ ॥

ततः स राक्षसो भीमः सुमित्रानन्दवर्धनम्।
सावज्ञमेवं प्रोवाच वाक्यं मेघौघनिःस्वनम् ॥१०७॥

तब वह भयङ्कर राक्षस कुम्भकर्ण सुमित्रानन्दन लक्ष्मण जी से, उनका तिरस्कार करता हुआ, मेघ के समान गर्ज कर बोला ॥१०७॥

अन्तकस्यापि क्रुद्धस्य भयदातारमाहवे।
युध्यता मामभीतेन ख्यापिता वीरता त्वया ॥१०८॥

युद्ध में क्रुद्ध काल तक को भयभीत करने वाले मुझ निर्भीक के साथ युद्ध कर, तुमने अपनी वीरता प्रसिद्ध कर दी ॥ १०८ ॥

प्रगृहीतायुधस्येव मृत्योरिव महामृधे।
तिष्ठन्नप्यग्रतः पूज्यः को मे युद्धप्रदायकः ॥१०९॥

जब मैं आयुध हाथ में ले साक्षात् काल की तरह समरभूमि में आता हूँ, तब मेरे सामने जो खड़ा भी रहे, वह भी प्रशंसा का पात्र है, मेरे साथ लड़ने वाले की तो बात ही क्या है॥ १०९॥

ऐरावतगजारूढो वृतः सर्वामरैः प्रभुः ।
नैव शक्रोऽपि समरे स्थितपूर्वः कदाचन ॥११०॥

ऐरावत गज पर चढ़े और समस्त देवताओं को साथ लिये महाराज इन्द्र भी आज तक कभी युद्ध में मेरे सामने खड़े नहीं रह सके॥ ११०॥

अद्य त्वयाऽहं सौमित्रे बालेनापि पराक्रमैः ॥१११॥

पर, हे सुमित्रानन्दन ! तुमने बालक होने पर भी आज अपने बल एवं पराक्रम से॥ १११॥

तोषितो गन्तुमिच्छामि त्वामनुज्ञाप्य राघवम् ।
सत्वधैर्यबलोत्साहैस्तोषितोऽहं रणे त्वया ॥११२॥

मुझे सन्तुष्ट कर दिया है। अतः मैं तुम्हारी अनुमति ले कर, रामचन्द्र जी के पास जाना चाहता हूँ। समर में तुमने मुझे अपने वीर्य, धैर्य, बल और उत्साह से सन्तुष्ट कर दिया॥ ११२॥

राममेवैकमिच्छामि हन्तुं यस्मिन्हते हतम् ।
रामे मया चेन्निहते येऽन्ये स्थास्यन्ति संयुगे ॥११३॥

मैं तो अब अकेले रामचन्द्र ही को मारना चाहता हूँ—क्योंकि उनके मारे जाने पर आप ही सब मरे हुए के समान हो जांयगे। यदि मैंने राम को मार डाला, तो और जो कोई युद्ध में मेरा सामना करेंगे॥ ११३॥

तानहं योधयिष्यामि स्वबलेन प्रमाथिना।
इत्युक्तवाक्यं तद्रक्षः प्रोवाच स्तुतिसंहितम् ॥११४॥
मृधे घोरतरं वाक्यं सौमित्रिः प्रहसन्निव।
यस्त्वं शक्रादिभिर्देवैरसह्यं प्राह पौरुषम् ॥११५॥
तत्सत्यं नान्यथा वीर दृष्टस्तेऽद्य पराक्रमः।
एष दाशरथी रामस्तिष्ठत्यद्रिरिवापरः ॥११६॥

उनको मैं शत्रु को मथन करने वाली अपनी सेना के साथ लड़वाऊँगा। जब कुम्भकर्ण ने प्रशंसायुक्त ये चुभती हुई बातें कहीं; तब लक्ष्मण जी ने मुसक्या कर उत्तर देते हुए कहा—हे वीर! तुम्हारा यह कथन कि, तुममें ऐसा पुरुषार्थ है कि, समस्त देवताओं सहित इन्द्र भी तुम्हारा सामना नहीं कर सकते—सत्य है, झूठ नहीं है। क्योंकि आज मैंने स्वयं तुम्हारा पराक्रम देखा है। देखो, एक दूसरे पर्वत की तरह अचल अटल दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र जी खड़े हैं॥ ११४॥ ११५॥ ११६॥

मनोरथो रात्रिचर तत्समीपे भविष्यति।
इति श्रुत्वा ह्यनादृत्य लक्ष्मणं स निशाचरः] ॥११७॥
अतिक्रम्य च सौमित्रिं कुम्भकर्णो महाबलः।
राममेवाभिदुद्राव दारयन्निव मेदिनीम् ॥११८॥

हे निशाचर! तुम्हारा मनोरथ उनके द्वारा पूर्ण हो जायगा। यह सुन और लक्ष्मण को अनादर पूर्वक वहीं छोड़, महाबली कुम्भकर्ण श्रीरामचन्द्र जी की ओर धरती को कँपाता हुआ दौड़ा॥ ११७॥ ११८॥

अथ दाशरथी रामो रौद्रमस्त्रं प्रयोजयन् ।
कुम्भकर्णस्य हृदये ससर्ज निशिताञ्शरान् ॥११९॥

तब श्रीरामचन्द्र जी ने कुम्भकर्ण पर रौद्रास्त्र का प्रयोग कर, उसके हृदय में बड़े पैने पैने बाण मारे ॥ ११९ ॥

तस्य रामेण विद्धस्य सहसाभिप्रधावतः ।
अङ्गारमिश्राः क्रुद्धस्य मुखान्निश्चेरुरर्चिषः ॥१२०॥

श्रीरामचन्द्र जी के द्वारा बाणों से वेधा जा कर भी कुम्भकर्ण उनकी ओर बड़े वेग से आया। उस समय मारे क्रोध के उसके मुख से चिनगारियाँ निकल रही थीं ॥ १२० ॥

रामास्त्रविद्धो घोरं वै नदन्राक्षसपुङ्गवः ।
अभ्यधावत संक्रुद्धो हरीन्विद्रावयन्रणे ॥१२१॥

श्रीराम जी के चलाये रौद्रास्त्र के लगने पर, कुम्भकर्ण ने भयङ्कर चीत्कार किया और वह अत्यन्त क्रुद्ध हो वानरों को खदेड़ता हुआ रणक्षेत्र में दौड़ने लगा ॥ १२१ ॥

तस्योरसि निमग्नाश्च शरा बर्हिणवाससः ।
[रेजुनीलाद्रिकटके नृत्यन्त इव बर्हिणः] ॥१२२॥

मोर के पंख युक्त बाण उसकी छाती में बिधे हुए ऐसे जान पड़ते थे, मानों नीलाद्रि (नीलगिरि) पर्वत पर मोर नाच रहे हों ॥ १२२ ॥

हस्ताच्चापि परिभ्रष्टा पपातोर्व्यां महागदा ।
आयुधानि च सर्वाणि विप्राकीर्यन्त भूतले ॥१२३॥

उन बाणों की चोट से कुम्भकर्ण ऐसा व्यथित हुआ कि, उसके हाथ से उसकी बड़ी भारी गदा छूट कर पृथिवी पर गिर पड़ी। गदा के अतिरिक्त उसके हाथ में और जो आयुध (हथियार) थे, वे सब भी पृथिवी पर बिखर गये ॥ १२३ ॥

स निरायुधमात्मानं यदा मेने महाबलः ।
मुष्टिभ्यां चरणाभ्यां च चकार कदनं महत् ॥१२४॥

जब उस महाबली ने अपने को निरायुध देखा, तब उसने घूँसों और लातों से वानरी सेना का संहार करना आरम्भ किया ॥१२४॥

स बाणैरतिविद्धाङ्गः क्षतजेन समुक्षितः ।
रुधिरं प्रतिसुस्राव गिरिः प्रस्रवणं यथा ॥१२५॥

श्रीरामचन्द्र जी के बाणों से उसका सारा शरीर विध कर क्षत-विक्षत हो गया। उसके शरीर से लोहू वैसे ही टपकने लगा, जैसे पहाड़ से जल चूता है ॥ १२५ ॥

स तीव्रेण च कोपेन रुधिरेण च मूर्छितः ।
वानरान्राक्षसानृक्षान्खादन्विपरिधावति ॥१२६॥

शरीर से बहुत सा रक्त बह जाने के कारण तथा अत्यन्त क्रुद्ध होने से वह अपने होश में न था—अतः वह वानरों, राक्षसों और रीछों को भक्षण करता हुआ, रणभूमि में दौड़ रहा था ॥ १२६ ॥

अथ शृङ्गं समाविध्य भीमं भीमपराक्रमः ।
चिक्षेप राममुद्दिश्य बलवानन्तकोपमः ॥१२७॥

उस बलवान भीमपराक्रमी और काल के समान कुम्भकर्ण ने एक बड़ा भारी पर्वतशृङ्ग श्रीरामचन्द्र जी को लक्ष्य कर फेंका ॥१२७॥

अप्राप्तमन्तरा रामः सप्तभिस्तैरजिह्मगैः ।
शरैः काञ्चनचित्राङ्गैश्चिच्छेद पुरुषर्षभः ॥१२८॥

पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी के पास वह पर्वतशिखर पहुँचने भी न पाया था कि, उन्होंने बीच ही में सीधे जाने वाले और सुवर्ण-भूषित बाणों से उस पर्वतशृङ्ग को चूर चूर कर डाला ॥ १२८ ॥

तन्मेरुशिखराकारं द्योतमानमिव श्रिया ।
द्वे शते वानरेन्द्राणां पतमानमपातयत् ॥१२९॥

अपनी कान्ति से मेरु पर्वत की तरह प्रकाशमान वह पर्वतशृङ्ग चूर चूर होकर नीचे गिरा तो; किन्तु उसकी चूर से दब कर दो सौ बड़े बड़े वानर मर गये ॥ १२९ ॥

तस्मिन्काले स धर्मात्मा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ।
कुम्भकर्णवधे युक्तो [1]योगान्परिमृशन्बहून् ॥१३०॥

उस समय कुम्भकर्ण के वध के लिये अनेक उपायों को विचारते हुए लक्ष्मण जी ने श्रीरामचन्द्र जी से कहा ॥ १३० ॥

नैवायं वानरान्राजन्नापि जानाति राक्षसान् ।
मत्तः शोणितगन्धेन स्वान्परांश्चैव खादति ॥१३१॥

हे राजन्! रक्त की गन्ध से कुम्भकर्ण अपने आपे में न होने के कारण, अपने बिराने को नहीं चीन्हता। इसीसे वह वानरों और राक्षसों को—जो उसके सामने पड़ जाते हैं, खा डालता है ॥१३१॥

साध्वेनमधिरोहन्तु सर्वे ते वानरर्षभाः ।
यूथपाश्च यथा मुख्यास्तिष्ठन्त्वस्य समन्ततः ॥१३२॥

---

१ योगान् परिमृशन्—उपायान् विचारयन्। (गो०)

सो यदि इसके ऊपर भारी भारी वानर चढ़ जांय और वानर यूथपति इसे चारों ओर से घेर कर खड़े हो जांय ॥ १३२ ॥

अप्ययं दुर्मतिः काले गुरुभारप्रपीडितः ।
प्रपतन्राक्षसो भूमौ नान्यान्हन्यात्प्लवङ्गमान् ॥१३३॥

तो यह दुष्ट राक्षस वानरों के बोझ को न सह कर, पृथिवी पर गिर पड़ेगा और तब यह वानरों का संहार भी न कर पावेगा ॥ १३३ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमतः ।
ते समारुरुहुर्हृष्टाः कुम्भकर्णं प्लवङ्गमाः ॥१३४॥

बुद्धिमान राजपुत्र लक्ष्मण जी के ये वचन सुन, वानरगण प्रसन्न हो कुम्भकर्ण के ऊपर चढ़ गये ॥ १३४ ॥

कुम्भकर्णस्तु संक्रुद्धः समारूढः प्लवङ्गमैः ।
व्यधूनयत्तान्वेगेन दुष्टहस्तीव हस्तिपान् ॥१३५॥

जब वानर कुम्भकर्ण के ऊपर चढ़ गये, तब उसने क्रोध में भर अपना शरीर ऐसे ज़ोर से हिलाया कि, वे सब वानर वैसे ही नीचे गिर पड़े, जैसे दुष्ट हाथी अपनी गरदन हिला कर, हथवान को गिरा देता है ॥ १३५ ॥

तान्दृष्ट्वा निर्धुतान्रामो दुष्टोऽयमिति राक्षसः ।
समुत्पपात वेगेन धनुरुत्तममाददे ॥१३६॥

वानरों को गिरा हुआ देख, श्रीरामचन्द्र जी ने निश्चय कर लिया कि, यह राक्षस बड़ा दुष्ट है और वे हाथ में एक श्रेष्ठ धनुष ले सहसा उठ खड़े हुए ॥ १३६ ॥

क्रोधताम्रेक्षणो वीरो निर्दहन्निव चक्षुषा ।
राघवो राक्षसं रोषादभिदुद्राव वेगितः ।
यूथपान्हर्षयन्सर्वान्कुम्भकर्णभयार्दितान् ॥१३७॥

उस समय क्रोध के मारे उनके नेत्र लाल हो गये और ऐसा जान पड़ता था मानों वे नेत्राग्नि ही से कुम्भकर्ण को भस्म कर डालेंगे । वे बड़े वेग से कुम्भकर्ण पर झपटे । उनको कुम्भकर्ण पर आक्रमण करते देख, कुम्भकर्ण के भय से पीड़ित समस्त वानर-यूथपति हर्षित हुए ॥ १३७ ॥

स चापमादाय भुजङ्गकल्पं
दृढज्यमुग्रं तपनीयचित्रम् ।
हरीन्समाश्वास्य समुत्पपात
रामो निबद्धोत्तमतूणबाणः ॥१३८॥

सोने की मीनाकारी के धनुष को जिस पर साँप की तरह मज़बूत प्रत्यञ्चा (डोरी) बँधी हुई थी, हाथ में ले और वानरों को ढाढ़स बँधा तथा बाणों से भरे तरकस को अपनी पीठ पर बाँध, श्रीरामचन्द्र जी उस राक्षस पर झपटे ॥ १३८ ॥

स वानरगणैस्तैस्तु वृतः परमदुर्जयः ।
लक्ष्मणानुचरो रामः सम्प्रतस्थे महाबलः ॥१३९॥

उस समय परम दुर्जेय वानर महाबलवान श्रीरामचन्द्र जी को घेर कर, उनके साथ हो लिये और लक्ष्मण जी भी उनके पीछे पीछे चले ॥ १३९ ॥

स ददर्श महात्मानं किरीटिनमरिन्दमम् ।
शोणिताप्लुतसर्वाङ्गं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥१४०॥

श्रीरामचन्द्र जी ने मुकुट धारण किये हुए शत्रुहन्ता महाबलवान कुम्भकर्ण का सारा शरीर लोहूलुहान देखा ॥ १४० ॥

सर्वान्समभिधावन्तं यथा रुष्टं दिशागजम् ।
मार्गमाणं हरीन्क्रुद्धं राक्षसैः परिवारितम् ॥१४१॥

वह क्रुद्ध दिग्गज की तरह सब वानरों को खदेड़ रहा था। उसको अनेक राक्षस घेरे हुए थे और क्रोध में भर, वह वानरों को ढूँढ़ता फिरता था ॥ १४१ ॥

विन्ध्यमन्दरसङ्काशं काञ्चनाङ्गदभूषणम् ।
स्रवन्तं रुधिरं वक्त्राद्वर्षमेघमिवोत्थितम् ॥१४२॥

उसका आकार विन्ध्याचल अथवा मन्दराचल पर्वत जैसा था। वह सोने के बाजू पहिने हुए था। जल बरसाने वाले बादलों की तरह वह अपने मुख से रक्त उगल रहा था ॥ १४२ ॥

जिह्वया परिलिह्यन्तं सृक्किणी शोणिते क्षिते ।
मृद्गन्तं वानरानीकं कालान्तकयमोपमम् ॥१४३॥

वह रुधिर से सने हुए अपने दोनों गलफड़े जीभ से चाट रहा था और कालान्तक यमराज की तरह वानरी सेना का संहार कर रहा था ॥ १४३ ॥

तं दृष्ट्वा राक्षसश्रेष्ठं प्रदीप्तानलवर्चसम् ।
विस्फारयामास तदा कार्मुकं पुरुषर्षभः ॥१४४॥

प्रज्वलित अग्नि की तरह उस राक्षसश्रेष्ठ को देख, श्रीरामचन्द्र जी ने अपने धनुष के रोदे को खींच टंकारा ॥ १४४ ॥

स तस्य चापनिर्घोषात्कुपितो राक्षसर्षभः ।
अमृष्यमाणस्तं घोषमभिदुद्राव राघवम् ॥१४५॥

धनुष की टंकार के शब्द को सुन कुम्भकर्ण से न रहा गया। वह अत्यन्त कुपित हुआ और श्रीरामचन्द्र जी की ओर लपका ॥ १४५ ॥

पुरस्ताद्राघवस्यार्थे गदायुक्तो विभीषणः ।
अभिदुद्राव वेगेन भ्राता भ्रातरमाहवे ॥१४६॥

श्रीरामचन्द्र जी की ओर से लड़ने के लिये, उनके आगे हाथ में गदा लिये विभीषण अपने भाई से लड़ने के लिये दौड़े ॥१४६॥

विभीषणं पुरो दृष्ट्वा कुम्भकर्णोऽब्रवीदिदम् ।
प्रहरस्व रणे शीघ्रं क्षत्रधर्मे स्थिरो भव ॥१४७॥

विभीषण को सामने देख, कुम्भकर्ण ने उनसे यह कहा—तुम मेरे ऊपर प्रहार कर क्षात्रकर्म का पालन करो ॥ १४७ ॥

भ्रातृस्नेहं परित्यज्य राघवस्य प्रियं कुरु ।
अस्मत्कार्यं कृतं वत्स यस्त्वं राममुपागतः ॥१४८॥

और इस समय भ्रातृस्नेह को त्याग कर श्रीरामचन्द्र जी को प्रसन्न करने वाला कार्य करो। हे वत्स ! तुम जो श्रीरामचन्द्र जी के पास चले गये सो तुमने हमारा कार्य बना दिया ॥ १४८ ॥

त्वमेको रक्षसां लोके सत्यधर्माभिरक्षिता ।
नास्तिधर्माभिरक्तस्य व्यसनं तु कदाचन ।
सन्तानार्थं त्वमेवैकः कुलस्यास्य भविष्यसि ॥१४९॥

समस्त राक्षसों में तुम्हीं अकेले ने सत्य और धर्म की रक्षा की है। जो धर्म में रत हैं, उन्हें कभी दुःख नहीं भोगना पड़ता। सन्तानोत्पत्ति कर इस कुल का नाम रखने को एक तुम्हीं जीवित रहोगे और सब मारे जायँगे ॥ १४९ ॥

राघवस्य प्रसादात्त्वं रक्षसां राज्यमाप्स्यसि ।
प्रकृत्या मम दुर्धर्ष शीघ्रं मार्गादपक्रम ॥१५०॥

श्रीरामचन्द्र जी के अनुग्रह से तुम राक्षसों के राजा होगे। इस समय मेरा स्वभाव दुर्धर्ष हो रहा है, अतः तुम तुरन्त रास्ता छोड़ दो ॥ १५० ॥

न स्थातव्यं पुरस्तान्मे संभ्रमान्नष्टचेतसः ।
न वेद्मि संयुगे शक्तः स्वान्परान्वा निशाचर ॥१५१॥

क्योंकि इस समय मारे क्रोध के मैं अपने आपे में नहीं हूँ— अतः तुम मेरे सामने खड़े मत हो। हे विभीषण ! इस समय मैं युद्ध में आसक्त हो रहा हूँ। इस समय मुझे अपने बिराने का ज्ञान नहीं है ॥ १५१ ॥

रक्षणीयोऽसि मे वत्स सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
एवमुक्तो वचस्तेन कुम्भकर्णेन धीमता ॥१५२॥
विभीषणो महाबाहुः कुम्भकर्णमुवाच ह ।
गदितं मे कुलस्यास्य रक्षणार्थमरिन्दम ॥१५३॥

किन्तु हे भाई ! मैं चाहता हूँ कि, तुम बचे रहो अर्थात् न मारे जाओ। यह मैं तुम से मुँह देखी बात नहीं कहता, बल्कि सच्ची बात कह रहा हूँ। जब बुद्धिमान कुम्भकर्ण ने इस प्रकार के वचन कहे, तब महाबलवान विभीषण ने कुम्भकर्ण से कहा—हे अरिन्दम ! मैंने तो इस कुल की रक्षा के लिये ही सब को बहुत समझाया था ॥ १५२ ॥ १५३ ॥

न श्रुतं सर्वरक्षोभिस्ततोऽहं राममागतः ।
कृतं तु तन्महाभाग सुकृतं दुष्कृतं तु वा ॥१५४॥

किन्तु किसी भी राक्षस ने जब मेरी बात पर ध्यान न दिया ; तब मैं लाचार हो श्रीरामचन्द्र जी के पास चला आया। हे महाभाग ! इसे आप चाहे मेरा अच्छा काम समझिये चाहे बुरा ॥१५४॥

एवमुक्त्वाश्रुपूर्णाक्षः गदापाणिर्विभीषणः ।
एकान्तमाश्रितो भूत्वा चिन्तयामास सुस्थितः ॥१५५॥

आँखों में आँसू भर गदापाणि विभीषण यह कह कर, एकान्त में चले गये और वहाँ स्वस्थ हो विचार करने लगे ॥ १५५ ॥

ततस्तु वातोद्धतमेघकल्पं
भुजङ्गराजोत्तमभोगबाहुम् ।
तमापतन्तं धरणीधराभम्
उवाच रामो युधि कुम्भकर्णम् ॥१५६॥

तदनन्तर नागराज सदृश बाहुयुगलशाली श्रीरामचन्द्र जी पर्वत के समान कुम्भकर्ण को पवन के झोंके से उड़ते हुए मेघ की तरह अपनी ओर आते देख, समरभूमि में उससे बोले ॥ १५६ ॥

आगच्छ रक्षोऽधिप मा विषादम्
अवस्थितोऽहं प्रगृहीतचापः ।
अवेहि मां राक्षसवंशनाशनं
यस्त्वं मुहूर्ताद्भविता विचेताः ॥१५७॥

हे राक्षसपति ! तुम विषादित मत हो और चले आओ। मैं हाथ में धनुष लिये हुए खड़ा हूँ। मुझको तुम राक्षसों के वंश का नाश करने वाला जानो। मैं थोड़ी देर में तुम्हें भी अचेत कर दूँगा ॥ १५७ ॥

रामोऽयमिति विज्ञाय जहास विकृतस्वनम्।
अभ्यधावत संक्रुद्धो हरीन्विद्रावयन्रणे ॥१५८॥

इन वचनों के द्वारा यह जान कर कि, यह राम है, कुम्भकर्ण बड़े ज़ोर से हँसा और क्रोध में भर, वानरों को खदेड़ता हुआ श्रीरामचन्द्र जी की ओर दौड़ा ॥ १५८ ॥

पातयन्निव सर्वेषां हृदयानि वनौकसाम्।
प्रहस्य विकृतं भीमं स मेघस्तनितोपमम् ॥१५९॥

वह वानरों के हृदयों को दहलाता हुआ मेघ की गर्जन की तरह विकट स्वर से अट्टहास करता हुआ ॥ १५९ ॥

कुम्भकर्णो महातेजा राघवं वाक्यमब्रवीत्।
नाहं विराधो विज्ञेयो न कबन्धः खरो न च ॥१६०॥
न वाली न च मारीचः कुम्भकर्णोऽहमागतः।
पश्य मे मुद्गरं घोरं सर्वकालायसं महत् ॥१६१॥

महातेजस्वी कुम्भकर्ण, श्रीरामचन्द्र जी से बोला—हे राम! तुम मुझे विराध कहीं मत समझ लेना। मैं न तो कबन्ध हूँ, न खर, न वाली और न मारीच ही हूँ। मैं हूँ कुम्भकर्ण। इस मेरे विशाल मुगदर को ज़रा देख लो। यह लोहे का बना हुआ है ॥१६०॥१६१॥

अनेन निर्जिता देवा दानवाश्च पुरा मया।
विकर्णनास इति मां नावज्ञातुं त्वमर्हसि ॥१६२॥

पूर्वकाल में इसीसे मैंने देवताओं और दानवों को परास्त किया था। मुझे नकटा बूचा देख कहीं मेरा तिरस्कार मत कर बैठना ॥ १६२ ॥

स्वल्पाऽपि हि न मे पीडा कर्णनासाविनाशनात् ।
दर्शयेक्ष्वाकुशार्दूल वीर्यं गात्रेषु मेऽनघ ।
ततस्त्वां भक्षयिष्यामि दृष्टपौरुषविक्रमम् ॥१६३॥

नाक और कानों के कट जाने से मुझे तिल भर भी कष्ट नहीं हो रहा है। हे इक्ष्वाकुशार्दूल ! हे अनघ ! पहिले तुम्हीं मेरे ऊपर वार कर के अपना बल आज़मा लो। तुम्हारा पुरुषार्थ और पराक्रम देख चुकने के बाद मैं तुमको खाऊँगा ॥ १६३ ॥

स कुम्भकर्णस्य वचो निशम्य
रामः सुपुङ्खान्विससर्ज बाणान् ।
तैराहतो वज्रसमप्रवेगैः
न चुक्षुभे न व्यथते सुरारिः ॥१६४॥

कुम्भकर्ण के इन वचनों को सुन, श्रीरामचन्द्र जी ने अच्छी फोंकों वाले बाण उसके ऊपर छोड़े। किन्तु उन वज्र के समान वेगवान् बाणों के प्रहार से भी वह देवताओं का शत्रु कुम्भकर्ण न तो विचलित हुआ, न व्यथित ही हुआ ॥ १६४ ॥

यैः सायकैः सालवरा निकृत्ता
वाली हतो वानरपुङ्गवश्च ।
ते कुम्भकर्णस्य तदा शरीरे
वज्रोपमा न व्यथयांप्रचक्रुः ॥१६५॥

जिन बाणों से श्रीरामचन्द्र जी ने साल के वृक्ष वेधे थे और वानरश्रेष्ठ वाली को मारा था, उन वज्र के समान बाणों के प्रहार से कुम्भकर्ण के शरीर में कुछ भी पीड़ा न हुई ॥ १६५ ॥

स वारिधारा इव सायकांस्तान्
पिबञ्शरीरेण महेन्द्रशत्रुः ।
जघान रामस्य शरप्रवेगं
व्याविध्य तं मुद्गरमुग्रवेगम् ॥१६६॥

इन्द्रशत्रु कुम्भकर्ण ने, पानी की वृष्टि की तरह उस बाणवृष्टि को अपने शरीर में सोख लिया। वह अपना मुगदर घुमा घुमा कर, श्रीरामचन्द्र जी के चलाये हुए बाणों के वेग को रोक रहा था ॥ १६६ ॥

ततस्तु रक्षः क्षतजानुलिप्तं
वित्रासनं देवमहाचमूनाम् ।
विव्याध तं मुद्गरमुग्रवेगं
विद्रावयामास चमूं हरीणाम् ॥१६७॥

तदनन्तर कुम्भकर्ण, खून से सने और देवताओं की सेना को भयभीत करने वाले अपने प्रचण्ड मुगदर को घुमा कर और उसके प्रहार से वानरों की महती सेना को भगाने लगा ॥ १६७ ॥

वायव्यमादाय ततो वरास्त्रं
रामः प्रचिक्षेप निशाचराय ।
समुद्गरं तेन जघान बाहुं
स कृत्तबाहुस्तुमुलं ननाद ॥१६८॥

तब अस्त्रों में श्रेष्ठ वायव्यास्त्र को ले श्रीरामचन्द्र जी ने कुम्भकर्ण के ऊपर छोड़ा। वह अस्त्र कुम्भकर्ण की उस भुजा में लगा, जिसमें

मुगूदर था और उस भुजा को काट गिराया। भुजा के कटते ही कुम्भकर्ण बड़े ज़ोर से गर्जा ॥ १६८ ॥

स तस्य बाहुर्गिरिशृङ्गकल्पः
समुद्गरो राघवबाणकृत्तः ।
पपात तस्मिन्हरिराजसैन्ये
जघान तां वानरवाहिनीं च ॥१६९॥

पर्वतशिखर के समान कुम्भकर्ण की मुगूदर सहित भुजा, श्रीरामचन्द्र जी के चलाये बाण से कट कर, वानरी सेना के बीच जा गिरी, उसके गिरने से बहुत सी वानरी सेना दब कर मर गयी ॥ १६९ ॥

ते वानरा भग्नहतावशेषाः
पर्यन्तमाश्रित्य तदा विषण्णाः ।
प्रवेपिताङ्गं ददृशुः सुघोरं
नरेन्द्ररक्षोधिपसन्निपातम् ॥१७०॥

भागे हुए तथा जो वानर उसके नीचे दब कर भी मरने से बच गये थे, वे अत्यन्त पीड़ित हो एक ओर हट कर, श्रीरामचन्द्र जी और कुम्भकर्ण का युद्ध देखने लगे ॥ १७० ॥

स कुम्भकर्णोऽस्त्रनिकृत्तबाहुः
महेन्द्रकृत्ताग्र इवाचलेन्द्रः ।
उत्पाटयामास करेण वृक्षं
ततोऽभिदुद्राव रणे नरेन्द्रम् ॥१७१॥

बाहु कटा हुआ कुम्भकर्ण उस समय ऐसा देख पड़ता था; मानों इन्द्र द्वारा शृङ्ग कटा हुआ पर्वतराज हो। कुम्भकर्ण ने बचे हुए हाथ से एक वृक्ष उखाड़ा और वह उसे लिये हुए श्रीरामचन्द्र जी पर झपटा ॥ १७१ ॥

स तस्य बाहुं सहसालवृक्षं
समुद्यतं पन्नगभोगकल्पम् ।
ऐन्द्रास्त्रयुक्तेन जघान रामो
बाणेन जाम्बूनदचित्रितेन ॥ १७२ ॥

परन्तु श्रीरामचन्द्र जी ने सुवर्ण चित्रित एक बाण को ऐन्द्रास्त्र के मंत्र से अभिमंत्रित कर, उससे उसकी उस भुजा को भी काट डाला, जिसमें वह साल का वृक्ष लिये हुए था और जो एक बड़े फनधारी सर्प की तरह जान पड़ती थी ॥ १७२ ॥

स कुम्भकर्णस्य भुजो निकृत्तः
पपात भूमौ गिरिसन्निकाशः ।
विचेष्टमानोऽभिजघान वृक्षान्
शैलाञ्शिला वानरराक्षसांश्च ॥ १७३ ॥

कुम्भकर्ण की वह पर्वत के समान विशाल भुजा बाण से कट कर और भूमि पर गिर, छटपटाने लगी। उसके गिरने से वृक्ष, पर्वत की शिलाएँ, वानर और राक्षस दब कर पिस गये ॥ १७३ ॥

तं छिन्नबाहुं समवेक्ष्य रामः
समापतन्तं सहसा नदन्तम् ।
द्वावर्धचन्द्रौ निशितौ प्रगृह्य
चिच्छेद पादौ युधि राक्षसस्य ॥१७४॥

इस पर जब श्रीरामचन्द्र जी ने देखा कि, दोनों भुजाओं के कट जाने पर भी वह राक्षस गर्जता हुआ चला ही आ रहा है; तब उन्होंने दो अर्धचन्द्राकार पैने बाणों को निकाल, उनसे युद्ध करते हुए उस राक्षस के दोनों पैर काट डाले ॥ १७४ ॥

तौ तस्य पादौ प्रदिशो दिशश्च
गिरीन्गुहाश्चैव महार्णवं च ।
लङ्कां च सेनां कपिराक्षसानां
विनादयन्तौ विनिपेततुश्च ॥ १७५ ॥

उसके कटे हुए दोनों पैर दिशाओं, विदिशाओं, गुफाओं, समुद्र और लङ्कापुरी को गुँजाते तथा वानर एवं राक्षसी सेना को मसलते हुए धम्म से गिरे ॥ १७५ ॥

निकृत्तबाहुर्विनिकृत्तपादो
विदार्य वक्त्रं बडवामुखाभम् ।
दुद्राव रामं सहसाभिगर्जन्
राहुर्यथा चन्द्रमिवान्तरिक्षे ॥ १७६ ॥

जब उस राक्षस की दोनों भुजाएँ और दोनों पैर कट गये, तब वह बड़वानल के समान अपना मुख बाये हुए और सहसा गर्जता हुआ, बड़े वेग से श्रीराम जी के ऊपर वैसे ही झपटा; जैसे राहु चन्द्रमा पर झपटता है ॥ १७६ ॥

अपूरयत्तस्य मुखं शिताग्रै
रामः शरैर्हेमपिनद्धपुङ्खैः ।
स पूर्णवक्त्रो न शशाक वक्तुं
चुकूज कृच्छ्रेण मुमोह चापि ॥ १७७ ॥

तब श्रीरामचन्द्र जी ने सुवर्ण की फोंक वाले पैने बाणों से उसके मुख को भर दिया। तब बाणों से मुख भर जाने के कारण वह कुछ बोल भी न सका। कुछ अस्पष्ट शब्द करता हुआ मूर्छित हो गया॥ १७७॥

अथाददे सूर्यमरीचिकल्पं
स ब्रह्मदण्डान्तककालकल्पम्।
अरिष्टमैन्द्रं निशितं सुपुङ्खं
रामः शरं मारुततुल्यवेगम्॥ १७८॥

उस समय श्रीरामचन्द्र जी ने सूर्य की किरणों के समान चमचमाता, ब्रह्मदण्ड और कालदण्ड की तरह भयङ्कर, शत्रुनाशकारी, अत्यन्त पैना और सुन्दर फोंक लगा हुआ, प्रचण्ड पवन के वेग की तरह वेगवान् ऐन्द्रास्त्र निकाला॥ १७८॥

तं वज्रजाम्बूनदचारुपुङ्खं
प्रदीप्तसूर्यज्वलनप्रकाशम्।
महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगं
रामः प्रचिक्षेप निशाचराय॥ १७९॥

उसमें हीरे और सोने की फोंक लगी थी, वह चमचमाते हुए सूर्य और प्रज्वलित अग्नि की तरह चमचमा रहा था। वह इन्द्र के वज्र के समान वेग वाला था। उसे श्रीरामचन्द्र जी ने कुम्भकर्ण के ऊपर छोड़ा॥ १७९॥

स सायको राघवबाहुचोदितो
दिशः स्वभासा दश संप्रकाशयन्।

सधूमवैश्वानरदीप्तदर्शनो
जगाम शक्राशनिवीर्यविक्रमः ॥ १८० ॥

श्रीरामचन्द्र जी के हाथ से छूटा हुआ वह बाण दसों दिशाओं को अपने प्रकाश से प्रकाशित करता हुआ, धूमरहित अग्नि की तरह दिखलाई देता हुआ, इन्द्रवज्र के समान बल विक्रमशाली उस राक्षस की ओर चला ॥ १८० ॥

स तन्महापर्वतकूटसन्निभं
निवृत्तदंष्ट्रं चलचारुकुण्डलम् ।
चकर्त रक्षोऽधिपतेः शिरस्तथा
यथैव वृत्रस्य पुरा पुरन्दरः ॥ १८१ ॥

उस बाण ने कुम्भकर्ण का पर्वतशिखर के तुल्य बड़ा, दाँत बाये और दो हिलते हुए कुण्डलों से सुशोभित मस्तक उसी तरह काट डाला, जिस प्रकार वृत्रासुर का सिर इन्द्र के वज्र ने काट डाला था ॥ १८१ ॥

कुम्भकर्णशिरो भाति कुण्डलालङ्कृतं महत् ।
आदित्येऽभ्युदिते [1]ऽरात्रौ मध्यस्थ इव चन्द्रमाः ॥१८२॥

कुण्डलों से युक्त कुम्भकर्ण का वह कटा हुआ सिर, ऐसा जान पड़ता था, जैसा कि, प्रातःकाल में सूर्योदय होने पर आकाशस्थित चन्द्रमा ॥ १८२ ॥

तद्रामबाणाभिहतं पपात
रक्षःशिरः पर्वतसन्निकाशम् ।

---

१ अरात्रौ—प्रातःकाले। (रा०)

बभञ्ज चर्यागृहगोपुराणि
प्राकारमुच्चं तमपातयच्च ॥ १८३ ॥

श्रीरामचन्द्र जी के बाण के आघात से पर्वत के समान राक्षस का बड़ा सिर कट कर गिरा और उसकी धमक से राजमार्ग पर बने हुए अनेक घर, लङ्का के बाहिरी फाटक और परकोटे की ऊँची दीवार भी गिर पड़ी ॥ १८३ ॥

न्यपतत्कुम्भकर्णोऽथ स्वकायेन निपातयन् ।
प्लवङ्गमानां कोटीश्च परितः संप्रधावताम् ॥ १८४ ॥

कुम्भकर्ण के धड़ के गिरने से समरभूमि में चारों ओर दौड़ते हुए एक करोड़ वानर दब गये ॥ १८४ ॥

तच्चातिकायं हिमवत्प्रकाशं
रक्षस्ततस्तोयनिधौ पपात ।
ग्राहान्वरान्मीनवरान्भुजङ्गान्
ममर्द भूमिं च तदा विवेश ॥ १८५ ॥

हिमालय के समान बड़े आकार वाले उस राक्षस का धड़ जा कर जब समुद्र में गिरा; तब बड़े बड़े मगर, बड़े बड़े मत्स्य और बड़े बड़े साँपों को कुचलता हुआ वह समुद्र की तली में घुस गया ॥ १८५ ॥

तस्मिन्हते ब्राह्मणदेवशत्रौ
महाबले संयति कुम्भकर्णे ।
चचाल भूर्भूमिधराश्च सर्वे
हर्षाच्च देवास्तुमुलं प्रणेदुः ॥ १८६ ॥

उस ब्राह्मण एवं देवताओं के शत्रु महाबली कुम्भकर्ण के युद्ध में मारे जाने पर समस्त पर्वतों सहित भूमि काँप उठी और देवता लोग हर्षनाद करने लगे ॥ ॥ १८६ ॥

ततस्तु देवर्षिमहर्षिपन्नगाः
सुराश्च भूतानि सुपर्णगुह्यकाः ।
सयक्षगन्धर्वगणा नभोगताः
प्रहर्षिता रामपराक्रमेण ॥ १८७ ॥

तदनन्तर आकाशस्थित देवर्षि, महर्षि, पन्नग, देवता, भूत, सुपर्ण, गुह्यक, यक्ष और गन्धर्व, श्रीरामचन्द्र जी का पराक्रम देख, परम हर्षित हुए ॥ १८७ ॥

ततस्तु ते तस्य वधेन भूरिणा
मनस्विनो नैर्ऋतराजबान्धवाः ।
विनेदुरुच्चैर्व्यथिता रघूत्तमं
हरिं समीक्ष्यैव यथा मतङ्गजाः ॥ १८८ ॥

राक्षसराज रावण के मनस्वी बन्धु बान्धव, कुम्भकर्ण के इस दारुण वध से अत्यन्त दुःखी हो तथा श्रीरामचन्द्र जी को देख, वैसे ही चिल्ला कर भागे; जैसे सिंह को देख, हाथी भागते हैं ॥ १८८ ॥

स देवलोकस्य तमो निहत्य
सूर्यो यथा राहुमुखाद्विमुक्तः ।
तथा व्यभासीद्भुवि वानरौघे
निहत्य रामो युधि कुम्भकर्णम् ॥ १८९ ॥

उस समय श्रीरामचन्द्र जी स्वर्ग के अन्धकार रूपी कुम्भकर्ण का संग्रामभूमि में नाश कर और अपनी सेना के बीच में बैठे हुए

वैसे ही सुशोभित हुए, जैसे राहु के मुख से निकले हुए सूर्य की शोभा होती है ॥ १८९ ॥

प्रहर्षमीयुर्बहवस्तु वानराः
प्रबुद्धपद्मप्रतिमैरिवाननैः ।
अपूजयन्राघवमिष्टभागिनं
हते रिपौ भीमबले दुरासदे ॥ १९० ॥

उस भयङ्कर बलवान शत्रु के मारे जाने पर समस्त वानर वीरों के मुख खिले हुए कमल की तरह प्रसन्न हो गये। उस समय वाञ्छित विजय को प्राप्त करने वाले श्रीरामचन्द्र जी की वे स्तुति करने लगे ॥ १९० ॥

स कुम्भकर्णं सुरसङ्घमर्दनं
महत्सु युद्धेषु पराजितश्रमम् ।
ननन्द हत्वा भरताग्रजो रणे
महासुरं वृत्रमिवामराधिपः ॥ १९१ ॥

इति सप्तषष्टितमः सर्गः ॥

इन्द्र जिस तरह वृत्रासुर को मार कर प्रसन्न हुए थे, उसी तरह श्रीरामचन्द्र जी उस कुम्भकर्ण को, जो कभी किसी युद्ध में किसी से हारा ही न था और देवताओं की सेना को मर्दन कर चुका था, मार कर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ १९१ ॥

युद्धकाण्ड का सड़सठवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—※—

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad.

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्रामायणपारायणसमापनक्रमः

श्रीवैष्णवसम्प्रदायः

—※—

एवमेतत्पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः ।
प्रव्याहरत विस्रब्धं बलं विष्णोः प्रवर्धताम् ॥ १ ॥

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदये सुप्रतिष्ठितः ॥ २ ॥

काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः ॥ ३ ॥

कावेरी वर्धतां काले काले वर्षतु वासवः ।
श्रीरङ्गनाथो जयतु श्रीरङ्गश्रीश्च वर्धताम् ॥ ४ ॥

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥ ५ ॥

मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणाब्धये ।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥ ६ ॥

वेदवेदान्तवेद्याय मेघश्यामलमूर्तये ।
पुंसां मोहनरूपाय पुण्यश्लोकाय मङ्गलम् ॥ ७ ॥

विश्वामित्रान्तरङ्गाय मिथिलानगरीपतेः ।
भाग्यानां परिपाकाय भव्यरूपाय मङ्गलम् ॥ ८ ॥

पितृभक्ताय सततं भ्रातृभिः सह सीतया ।
नन्दिताखिललोकाय रामभद्राय मङ्गलम् ॥ ९ ॥

त्यक्तसाकेतवासाय चित्रकूटविहारिणे ।
सेव्याय सर्वयमिनां धीरोदाराय मङ्गलम् ॥ १० ॥

सौमित्रिणा च जानक्या चापबाणासिधारिणे ।
संसेव्याय सदा भक्त्या स्वामिने मम मङ्गलम् ॥ ११ ॥

दण्डकारण्यवासाय खण्डितामरशत्रवे ।
गृध्रराजाय भक्ताय मुक्तिदायस्तु मङ्गलम् ॥ १२ ॥

सादरं शबरीदत्तफलमूलाभिलाषिणे ।
सौलभ्यपरिपूर्णाय सत्त्वोद्रिक्ताय मङ्गलम् ॥ १३ ॥

हनुमत्समवेताय हरीशाभीष्टदायिने ।
वालिप्रमथनायास्तु महाधीराय मङ्गलम् ॥ १४ ॥

श्रीमते रघुवीराय सेतूल्लङ्घितसिन्धवे ।
जितराक्षसराजाय रणधीराय मङ्गलम् ॥ १५ ॥

आसाद्य नगरीं दिव्यामभिषिक्ताय सीतया ।
राजाधिराजराजाय रामभद्राय मङ्गलम् ॥ १६ ॥

मङ्गलाशासनपरैर्मदाचार्यपुरोगमैः ।
सर्वैश्च पूर्वैराचार्यैः सत्कृतायास्तु मङ्गलम् ॥ १७ ॥

—*—

माध्वसम्प्रदायः

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥ १ ॥

काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः ॥ २ ॥

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदये सुप्रतिष्ठितः ॥ ३ ॥

मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणाब्धये ।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥ ४ ॥

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्यात्मना वा प्रकृतेः स्वभावात् ।
करोमि यद्यत्सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयामि ॥ ५ ॥

स्मार्तसम्प्रदायः

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥ १ ॥

काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः ॥ २ ॥

अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः ।
अधनाः सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदां शतम् ॥ ३ ॥

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ।
एकैकमक्षरं प्रोक्तं महापातकनाशनम् ॥ ४ ॥

शृण्वन्रामायणं भक्त्या यः पादं पदमेव वा ।
स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्रह्मणा पूज्यते सदा ॥ ५ ॥

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥ ६ ॥

यन्मङ्गलं सहस्राक्षे सर्वदेवनमस्कृते ।
वृत्रनाशे समभवत्तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ ७ ॥

मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणात्मने ।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥ ८ ॥

यन्मङ्गलं सुपर्णस्य विनताकल्पयत्पुरा ।
अमृतं प्रार्थयानस्य तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ ९ ॥

अमृतोत्पादने दैत्यान्घ्नतो वज्रधरस्य यत् ।
अदितिर्मङ्गलं प्रादात्तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ १० ॥

त्रीन्विक्रमान्प्रक्रमतो विष्णोरमिततेजसः ।
यदासीन्मङ्गलं राम तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥ ११ ॥

ऋतवः सागरा द्वीपा वेदा लोका दिशश्च ते ।
मङ्गलानि महाबाहो दिशन्तु तव सर्वदा ॥ १२ ॥

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्यात्मना वा प्रकृतेः स्वभावात् ।
करोमि यद्यत्सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयामि ॥ १३ ॥

—*—